राजपाल—अध्यक्ष
आर्य्य पुस्तकालय तथा सरस्वती आश्रम
लाहौर

जगदीशनारायण तिवारी द्वारा
मुद्रित
"वणिक् प्रेस"
१०, मिर्जापुर स्ट्रीट, कलकत्ता

समर्पण

पूज्य पिताजी! आप मेरे पहले गुरु हैं। इतिहास-शास्त्रकी रुचि भी आपने ही मेरे मनमें उत्पन्न की। अतएव अपने प्यारे देशके प्राचीन इतिहासपर इस अपूर्ण पुस्तकको आपके श्रीचरणोंमें भेंट करता हूं। स्वीकार करनेकी कृपा कीजिये।

आपका प्रिय पुत्र,

लाजपतराय।

लाला लाजपतराय

विषय-सूची

पहला खण्ड ।

दूसरा परिच्छेद ।

तीसरा परिच्छेद ।

वैदिक कालकी सभ्यता ।

चौथा परिच्छेद ।

आर्य्योंके महाकाव्य ।

पांचवां परिच्छेद ।

संख्या विषय

चौथा खण्ड।

भारतका ऐतिहासिक काल।

पहला परिच्छेद ।

दूसरा परिच्छेद।

पांचवां खण्ड।

पहला परिच्छेद।

दूसरा परिच्छेद।

तीसरा परिच्छेद।

( )

चौथा परिच्छेद ।

संख्या विषय पृष्ठ

छठा खण्ड।

१—परिवर्तनकी चार शताब्दीयां,
२—इस कालके आर्य-हिन्दू कुल,
३—दूसरी जातियोंका हस्तक्षेप।

पहला परिच्छेद।

दूसरा परिच्छेद।

संख्या विषय पृष्ठ

तीसरा परिच्छेद

सातवां खंड।

गुप्तवंशका शासनकाल

पहला परिच्छेद।

दूसरा परिच्छेद ।

. संख्या विषय पृष्ठ

आठवां खण्ड।

हूण जातिके आक्रमण।

पहला परिच्छेद।

नवां खंड।

ईसाकी सातवीं शताब्दी।

पहला परिच्छेद।

दसवां खण्ड ।

सातवीं शताब्दीसे दसवीं शताब्दीके अन्ततक भारतका इतिहास ।

पहला परिच्छेद ।

दूसरा परिच्छेद ।

तीसरा परिच्छेद ।

छठा परिच्छेद ।

ग्यारहवां खण्ड ।

दक्षिण भारतका इतिहास ।

पहला परिच्छेद ।

दूसरा परिच्छेद ।

पहला परिशिष्ट ।

हिन्दू और यूरोपीय सभ्यतांकी तुलना।

दूसरा परिशिष्ट

हिन्दुओंकी राजनीतिक पद्धति

तीसरा परिशिष्ट

आर्य्योंका मूल स्थान और वेदोंकी प्राचीनता

चौथा परिशिष्ट

केम्ब्रिज हिस्टरी आव इण्डियाका प्रथम खण्ड

सूची [क]

हिन्दू-इतिहासकी कतिपय प्रसिद्ध और महत्वपूर्ण तिथियां

सूची [ख]

पांचवां परिशिष्ट।

प्राचीन भारतीय इतिहास-विषयक पुस्तकोंकी सूची

अनुवादकका निवेदन।

श्रीमान् लाला लाजपतरायका नाम, उनकी अनन्य देशभक्ति और राजनीतिक परिज्ञानके कारण, आज केवल भारतहीमें नहीं वरन् समस्त भूमण्डलमें प्रसिद्ध हो चुका है। लालाजीको आरम्भसे ही भारतीय इतिहासपर विशेष प्रेम रहा है। उन्होंने संवत् १६५५ वि०में इस विषयपर उर्दू में एक छोटी सी पुस्तक भी लिखी थी। जनताने उसका अच्छा स्वागत किया था। इसके पश्चात् उन्हें यूरोप और अमरीका आदि स्वतन्त्र देशोंमें कई वर्षतक रहने और अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिका अध्ययन करनेका अच्छा अवसर मिला है। कहें तो कह सकते हैं कि संसारकी राजनीतिका जितना अच्छा ज्ञान लालाजीको है उतना हमारे वर्तमान नेताओंमेंसे बहुत कमको होगा। इसलिये इस नवीन भारतका—हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पारसी, बौद्ध, और यहूदी आदि भिन्न भिन्न जातियोंकी खिचड़ी भारतका, राष्ट्रीय इतिहास लिखनेके लिये लालाजीसे बढ़कर उपयुक्त मनुष्य मिलना सुगम नहीं। बड़े हर्षकी बात है कि आपने अपने जेल-जीवनको भारतका इतिहास लिखनेमें लगानेका निश्चय किया है। प्रस्तुत पुस्तक उनके इसी शुभ निश्चयका सुफल है। यह उस बृहद् ग्रन्थका केवल प्रथम भाग है जो श्रीमान् लालाजी भारतीय इतिहासपर लिखनेका विचार रखते हैं।

हमें पूर्ण आशा है कि भारतीय जनता लालाजीके इस ग्रंथको पढ़कर उनके ऐतिहासिक परिज्ञानसे लाभ उठानेका यत्न करेगी।

साहित्य-सदन,
लाहौर।

भूमिका।

पहला संस्करण।

इस कथनमें बहुत कुछ सत्यांश है कि मनुष्यके लिये अध्ययनका सबसे उत्तम विषय मनुष्य है। इस वाक्यमें शेपोक्त मनुष्यसे अभिप्राय किसी एक मनुष्यसे नहीं; वरन् मनुष्य-जातिसे है। मनुष्यका जीवन बहुत अल्प है। इस अल्प जीवनमें वह मनुष्योंकी बहुत थोड़ी संख्यासे परिचय प्राप्त कर सकता है। अपने समयकी मनुष्य-जातिका ज्ञान उसको उस समयके ग्रन्थों, समाचारपत्रों और पर्यटनके द्वारा होता है। परन्तु भूतकालके मनुष्योंके कथन, वचन और उनके वृत्तान्त इतिहास द्वारा ही ज्ञात हो सकते हैं। इसीलिये यूरोपीय जातियां और यूरोपीय विद्वान् इतिहास-शास्त्रपर बहुत बल देते हैं। उनका यह कहना उचित ही है कि इतिहासहीसे मनुष्य उत्तम रीतिसे अपने स्रष्टाके उस नैतिक नियमके परिणामको मालूम कर सकता है जो उसकी सारी सृष्टिमें व्यापक है।

कोई मनुष्य सुशिक्षित कहलानेका अधिकार नहीं रखता जो कमसे कम अपने देश और अपनी जातिके इतिहाससे परिचित न हो। प्रत्येक मनुष्यको उचित है कि वह अपने धर्म, रीति-रिवाज, अपनी जातिके नैतिक, सामाजिक और राजनीतिक इतिहाससे परिचित हो। यह समझना उसका कर्तव्य है कि वर्तमान अवस्थायें किन किन कारणोंका परिणाम हैं और वे कारण स्वयं पहले किस प्रकार उत्पन्न हुए थे, क्योंकि इस जानकारीसे ही वह उन्नति करनेमें समर्थ होता है। अपने देश

तथा अपनी जातिके इतिहाससे ही उसको उन विशेषताओंका पता मिल सकता है जिनके कारण वह अन्य देशों और जातियों-के मनुष्योंसे पहचाना जाता है।

उदाहरणार्थ, यदि हम अपनी ओर देखें तो विशेष रूपसे हमें यह आवश्यक मालूम होता है कि अपने जातीय इतिहाससे परिचय प्राप्त करें। उत्पन्न होनेसे कुछ ही वर्ष पश्चात् हमको अन्य जातियोंके लोगोंसे काम पड़ता है। हम उन लोगोंके स्वभाव, उनके रीति-रिवाज, उनके विचार और उनकी सामग्री अपनेसे भिन्न पाते हैं। स्वभावतः ही हमको उनके स्वभाव और रीति-रिवाज आदिकी अपने स्वभाव और रीति-रिवाजसे तुलना करनी पड़ती है। इसका परिणाम यह होता है कि हम दूसरोंके कुछ स्वभाव ग्रहण करने और अपने छोड़नेके लिये तैयार हो जाते हैं। यही बात हमारे धर्म, हमारे विचारों और हमारी रीतियोंकी है। जब यह अवस्था है तो इसके पूर्व कि हम इस प्रकारके परिवर्तनको ग्रहण करें, हमारे लिये उचित है कि इस बातको जान लें कि हमारे वर्तमान स्वभावों, प्रथाओं, रिवाजों और विचारोंका इतिहास क्या है ; हमने कब और किस प्रकार उनको ग्रहण किया है, और उनसे हमपर और हमारी जातिपर क्या प्रभाव पड़ा है।

हम प्राय. देखते हैं कि हमारे बालकोंको अपने जातीय इतिहासका बहुत कम ज्ञान है। जातीय इतिहास पढ़ानेकी दो रीतियाँ हैं। एक ऐतिहासिक उपाख्यानों और ऐतिहासिक कहानियों द्वारा, जो बालकोंकी प्रारम्भिक शिक्षामें सम्मिलित कर दी जायँ, और दूसरा ऐतिहासिक पुस्तकों द्वारा। इस समय प्रारम्भिक शिक्षाकी जो पुस्तकें प्रचलित हैं उनमें भी हमारे इतिहासका बहुत ही कम भाग है। फिर प्रचलित

ऐतिहासिक पुस्तकोंमें भी हिन्दुओंके समयका वृत्तान्त बहुत ही कम है। इसका फल यह है कि वर्तमान रीतिसे शिक्षा पाये हुए नवयुवकोंको अपनी जातीय बातोंका बहुत कम और प्रायः अयथार्थ ज्ञान है। बहुतसे हिन्दू नवयुवकोंको यथार्थ रूपसे यह ज्ञात नहीं कि वेद कितने हैं और वर्तमान धर्मों का उनके साथ क्या सम्बन्ध है। बहुतसे रीति-रिवाज हमें इस समय झूठे और व्यर्थ देख पड़ते हैं, और हम उनको सर्वथा छोड़ देनेपर उद्यत हैं। परन्तु यदि हमें उनके मूलका पता हो तो शायद हम उन्हें न छोड़ें, अथवा इस प्रकारसे उनका सुधार कर सकें कि वास्तवमें वे जिस लाभके लिये बनाये गये थे वह कम न हो। कालके परिवर्तनसे हममें बहुतसे दोष आ घुसे हैं। परन्तु हमें पूर्ण विश्वास है कि यदि हमारी जातिमें अपने अतीत इतिहासका यथार्थ ज्ञान फैल जाय तो वे दोष और वे बुराइयाँ बहुत शीघ्र और बहुत हदतक दूर हो जावें।

एक समय था जब इस देशमें, और इस जातिमें पढ़ने लिखनेका बहुत रिवाज था और यहाँके लोग प्रायः विद्या-व्यसनी समझे जाते थे। परन्तु इस समय जातिका एक बड़ा भाग लिखना पढ़ना भी नहीं जानता।

एक समय था जब यह जाति सामान्यतः सत्यवादी थी मिथ्या-भाषणको, झूठी साक्षी देनेको, और कपट और छलको बड़ी घृणाकी दृष्टिसे देखा जाता था या अब यह समय आ गया है कि हमारे बहुतसे वर्तमान राजकर्मचारी सामान्यतः भारतवासियोंको झूठा समझते हैं। ऐसे ही हमारी वीरता, हमारा शौर्य्य, हमारी बाहरी और भीतरी स्वच्छता, और हमारी ईमानदारी सब नष्ट हो गई; और हम वर्तमान अपमानित दशाको प्राप्त हो गये। हमें पूर्ण विश्वास है कि यदि हमारे बालक

को सच्चे और विश्वास्य जातीय वृत्तान्तोंका ज्ञान कराया जाय तो वे बड़े होकर यथासम्भव अपने पूर्वजोंके चरण-चिह्नोंपर चलनेका यत्न करें। इसके अतिरिक्त वर्त्तमान अधःपतनके जो कारण हैं भविष्यमें वे उनसे दूर रहें, और उन कारणोंसे भी बचें जो उनमेंसे अपने जातीय गुणोंको दूर करनेवाले हैं।

अँगरेजोंके राजत्वकालमें कई शताब्दियोंके पश्चात् आर्य जातिके अतीत इतिहासपर प्रकाश पड़ा है। इस प्रकाशके प्राप्त करानेमें सबसे प्रथम और सबसे अधिक काम यूरोपके विद्वानोंने किया है। अब भी अन्वेषणका अधिकांश कार्य उनके ही हाथमें है। यद्यपि कई भारतीय विद्वान् भी चिरकालसे इसमें यथोचित भाग ले रहे हैं, तथापि अँगरेज विद्वान् जिस उत्साहसे परिश्रम करते हैं वह अबतक भी भारतीय विद्वानोंके उत्साह और परिश्रमसे बहुत अधिक है। भारतीय इतिहासका वह काल जो मुसलमानोंके आक्रमणोंके पहले हो चुका अभी अधिकांश अन्धकारमें ढका हुआ है। यद्यपि गत सौ वर्षोंके समयमें बहुतसी बातें मालूम हो चुकी हैं जिनके विषयमें अब कुछ सन्देह शेष नहीं रहा, तो भी हम यह नहीं कह सकते कि इस कालका क्रमिक, विश्वास्य और पूर्ण इतिहास तैयार हो गया है। अँगरेजीमें बहुतसी ऐसी उत्तम पुस्तकें विद्यमान हैं जिनमें विद्यार्थीको ये वृत्तान्त एक स्थानमें एकत्रित मिल सकते हैं। वह उनकी सहायतासे अधिक अन्वेषण भी कर सकता है। वह उन पुस्तकोंके पाठका भी आनन्द ले सकता है जो उक्त कालके विविध भागोंके विषयमें भिन्न भिन्न विद्वानोंकी लेखनीसे निकली हैं और जिनमें सविस्तर व्याख्यायें लिखी हुई हैं। इन पुस्तकों-के समूहमेंसे शायद सर्वोत्तम इतिहास हमारे विद्वान् देश-भाई श्री रमेशचन्द्रदत्तकी रचना है। इसमें उस कालके वृत्तान्तों-

क्रमिक रूपसे एकत्रित करके विद्यार्थियोंके सामने रक्खा गया है और उनको उन बड़ी पुस्तकोंका पता बतलाया गया है जिनमें भिन्न भिन्न भागोंके विषयमें सविस्तर वर्णन दिये गये हैं। दूसरे स्थानपर लार्ड एलफिंस्टन और सर विलियम हण्टरके इतिहास हैं। इनमें सब प्रकारके वृत्तान्त पाये जाते हैं। परन्तु देशी भाषाओंमें विशेषतः उर्दू भाषामें ऐसी पुस्तकें बहुत कम हैं जिनमें मुसलमानोंके आक्रमणोंके पहलेके वृत्तान्त विस्तार पूर्वक दिये गये हों। पाठशालाओंमें जो उर्दूका 'भारतीय इतिहास' पढ़ाया जाता है उसमें इतिहासका यह भाग बहुत संक्षिप्त शब्दोंमें दिया गया है। इसलिये उर्दू भाषामें भारतीय इतिहासके इस भागपर विश्वास्य पुस्तकोंकी बहुत आवश्यकता है। परन्तु साधारण पाठकोंके लिये लिखी हुई पुस्तकें विद्यार्थियोंके लिये अधिक लाभदायक नहीं हो सकतीं। पाठशालाओंके विद्यार्थियोंके पास समय बहुत थोड़ा होता है। इसके अतिरिक्त उनकी आरम्भिक शिक्षा इस बातकी बाधक होती है कि वे विवादास्पद विषयोंके सम्बन्धमें सविस्तर विवादोंको भलीभाँति समझकर हृदयङ्गम कर सकें। अतएव उनके लिये ऐसी पुस्तकोंकी आवश्यकता है जिनमें संक्षिप्त शब्दोंमें और सरल भाषामें वे वृत्तान्त लिखे हों जिनका विश्वास्य विद्वानोंने अन्वेषण किया है। आगेके पृष्ठोंमें मैंने विश्वास्य वृत्तान्तोंको संक्षिप्त और सरल भाषामें इकट्ठा करनेका यत्न किया है।

इस पुस्तकके लिखनेका उद्देश्य यह है कि प्रत्येक विद्यार्थीको पाठशाला छोड़नेके पहले अपने जातीय इतिहासके कुछ न कुछ वृत्तान्त मालूम हो जायँ, और वे ऐसे वृत्तान्त हों जो अतिशयोक्तिसे रहित हों और जिनपर निष्पक्ष, तटस्थ और सत्यप्रिय विद्वानोंके प्रमाण मौजूद हों। यदि इस छोटी सी पुस्तकको

पढ़कर उनको अधिक जानकारीका चस्का पैदा हो जाय तो वे बड़े ग्रन्थोंका अध्ययन कर सकते हैं, और अंगरेजी भाषाका ज्ञान प्राप्त करके मूल भाण्डारोंकी खोज कर सकते हैं। मेरा विचार है कि इस विषयपर एक बड़ी पुस्तक लिखूँ जिसमें सविस्तर विवाद लिखे हों; ताकि जो लोग अँगरेजी नहीं जानते और इतना अवकाश और अवसर नहीं रखते कि उस शुद्ध भाषाका ज्ञान प्राप्त कर सकें वे भी अपनी ऐतिहासिक रुचिको पूरा कर सकें। यह छोटीसी पुस्तक उस बड़ी पुस्तककी अग्रगामिनी है और मैं बड़े संकोचके साथ इसको जनताके सामने उपस्थित करता हूँ। मैं किसी भाषाका पण्डित होनेकी प्रतिज्ञा नहीं करता। न मैं इतिहासके विस्तृत ज्ञानकी प्रतिज्ञा कर सकता हूँ। उर्दूका मर्मज्ञ नहीं हूँ और न किसी मर्मज्ञ अध्यापकसे ही मैंने उर्दू लिखने और पढ़नेकी शिक्षा पाई है। ऐसी अवस्थामें मैं बड़े संकोचसे इस पुस्तकको प्रकाशित करता हूँ। विचार केवल यही है कि शायद मेरी यह छोटीसी पुस्तक, जिसमें वृत्तान्तोंको इकट्ठा करनेमें बहुत परिश्रम और खोजसे काम लिया गया है, किसी अंशमें उस अभावकी पूर्त्ति कर सके जिसका उल्लेख मैंने ऊपर किया है।

मैं सहर्ष स्वीकार करता हूँ कि इस पुस्तकके बनानेमें सबसे अधिक सहायता मुझे बाबू रमेशचन्द्रदत्तके इतिहाससे मिली है। मैंने इस पुस्तकसे पता पाकर मूल पुस्तकोंको भी पढ़ा और बहुतसे अन्य ऐतिहासिक ग्रन्थोंका भी अध्ययन किया। परन्तु फिर भी जो सहायता मुझको उस पुस्तकसे मिली वह किसी दूसरी एक पुस्तकसे नहीं मिली। इसलिये मैं सबसे अधिक विद्वान् बाबू महाशयका आभारी हूँ। किन्तु मैंने दूसरी ऐतिहासिक पुस्तकोंसे भी सहायता ली है। उनके नाम आगे देता हूँ :—

१—डा० हएटरकी इण्डियन एम्पायर।
२—लार्ड एलफिंस्टनका भारतवर्षका इतिहास।
३—डङ्करकृत भारतवर्षका इतिहास।
४—वेल्ज़कृत भारतवर्षका इतिहास।
५—श्रीमती यङ्ग रचित प्राचीन और मध्य कालीन भारत।
६—अध्यापक मेक्समुलरके ग्रन्थ।
७—श्री० बेलकृत चीनी पर्यटकोंके भ्रमण-वृत्तान्तोंके अनुवाद।
८—श्री०मकरएडल द्वारा अनुवादित यूनानी लेखकोंके ग्रंथ।
९—डा० ज़ाखो द्वारा अनुवादित अलबेरुनी।
१०—डा० म्यूरकी संस्कृत टेक्स्ट, ५ खएड।
११—फ्रे़ज़र कृत भारतवर्षका साहित्यिक इतिहास (सन् १८९८)
१२—कनङ्घम कृत प्राचीन भारतका भूगोल।
१३—टाड महाशयका राजस्थानका इतिहास।
१४—रामायण, ग्रिफ़िथका अनुवाद।

इनके अतिरिक्त मैंने और बहुतसे ग्रन्थोंके प्रमाण दिये हैं। उनमेंसे कुछको तो मैंने मूलमें पढ़ा है और कुछको उपर्युक्त लेखकोंके प्रमाणोंसे नक़ल कर दिया है।

सारांश यह कि मुझे यह कहते तनिक भी संकोच नहीं होता कि यद्यपि इस पुस्तकको मैंने परिश्रम और खोजसे तैयार किया है तो भी इसमें कोई नयी बात नहीं। इसमें कोई ऐसा विचार नहीं जिसे मेरा अपना कहा जा सके। मेरा काम केवल चुनने, क्रममें लाने और संग्रह करनेका था। अब कतिपय शब्द पुस्तकके क्रमके विषयमें कहना आवश्यक है।

पहले खएडमें कुछ प्राचीन और आधुनिक भूगोल संक्षेपसे

दिया गया है। इसमें कतिपय प्राचीन नामोंके वर्तमान ठिकाने लिखे गये हैं ताकि विद्यार्थी इतिहासके विषयको भली भाँति समझ सके।

दूसरे खण्डमें आर्योंके मूल निवास-स्थानपर बहुत संक्षिप्त सा विवाद दिया गया है।

शेष पुस्तकको तीन भागोंमें विभक्त किया गया है। उनमें भिन्न भिन्न परिच्छेद और विषय हैं। अर्थात्,

तीसरा खण्ड (क) वैदिक काल।

चौथा खण्ड (ख) बौद्ध काल।

पाँचवाँ खण्ड (ग) पौराणिक काल।

मुझे दृढ़ विश्वास है कि इस प्रान्तके अध्यापक मेरी इस तुच्छ कृतिको कृपादृष्टिसे देखेंगे, और अपने विद्यार्थियोंकी आवश्यकताके अनुसार इसमें जो कुछ घटाना बढ़ाना चाहें उससे मुझे सूचित करेंगे ताकि मैं अगले संस्करणमें उनकी विद्वत्ता-पूर्ण और उचित समालोचनासे लाभ उठा सकूँ।

अक्तोबर सन् १८९८ ई० } लाजपत राय।

भूमिका ।

दूसरा संस्करण ।

ईसाकी अठारहवीं शताब्दीमें यूरोपके लोगोंको भारतीय इतिहास और भारतीय सभ्यताका कुछ ज्ञान न था। अठारहवीं शताब्दीके उत्तरार्द्ध में जब कुछ अँगरेजोंने पहले पहल कई एक संस्कृत पुस्तकोंका अनुवाद किया तो एक अँगरेज़ विद्वान् यह सन्देह करने लगा कि शायद ब्राह्मणोंने संस्कृत भाषाको अब बना लिया है, और इन पुस्तकोंकी रचना करके यूरोपको धोखा देना आरम्भ किया है। पहले पहल यूरोपीय लोगोंने मनुस्मृति, भगवद्गीता, और कालिदासके शकुन्तला नाटकका अनुवाद किया। इन पुस्तकोंके पाठसे उनकी रुचि बढ़ने लगी। यहाँतक कि फ्रांसीसी और जर्मन लोगोंने संस्कृत-पुस्तकोंको बड़े मूल्यपर ख़रीद कर और बड़े परिश्रम तथा बड़े व्ययसे उनके यूरोपीय संस्करण प्रकाशित करके अनुवाद कराने आरम्भ किये। इस सम्बंधमें सबसे अधिक यत्न और सबसे बहुमूल्य अन्वेषण जर्मन अध्यापकोंने किया। इंग्लैडका सबसे प्रसिद्ध संस्कृत विद्वान् अध्यापक मेक्समुलर भी जर्मन था।

उन्नीसवीं शताब्दीमें यूरोपके प्राच्य विद्याव्यसनी संस्कृतमें निपुणता प्राप्त करनेके लिये निरन्तर यत्न करते रहे और उन्होंने बहुतसे संस्कृत-ग्रन्थोंके अनुवाद कर डाले। इन अनुवादोंसे उनको भारतीय विद्याओंका हाल तो मालूम हुआ, परन्तु हिन्दू-सभ्यताका पूरा चित्र वे न बना सके। उन्नीसवीं शताब्दीके

पिछले पचास वर्षोंमें वस्तुतः यूरोपीय अन्वेषकों और विद्वानोंने हिन्दू-इतिहास लिखना आरम्भ किया। आरम्भमें हिन्दू-कालके जो इतिहास लिखे गये वे बहुत अधूरे और अशुद्ध थे। परंतु ज्यों ज्यों अन्वेषण बढ़ता गया और जानकारीमें वृद्धि होती गई यह इतिहास अधिक पूर्ण और अधिक शुद्ध होता गया। पहले इतिहासोंमें जो परिणाम और घटनायें वर्णित थीं वे बहुत सी बातोंमें अब भ्रममूलक सिद्ध हो चुकी हैं। इस अपूर्ण प्रारम्भिक ऐतिहासिक अन्वेषणके आधारपर इतिहासकी जो पाठ्य पुस्तकें बालकोंकी शिक्षाके लिये बनाई गईं वे बहुत भटकानेवाली थीं। सबसे पहले जिस अँगरेज़ने हिन्दू-इतिहासपर प्रकाश डाला वह बम्बईका गवर्नर माँनस्टूअर्ट एलफिंस्टन था। हिन्दू-शास्त्रोंका सबसे पहले अनुवाद करनेवाले अँगरेज़ सर विलियम, जोन्ज़ और कोलब्रुक थे। उन्नीसवीं शताब्दीके अन्तिम पचास वर्षोंमें हिन्दू विद्वानोंने भी हिन्दू-इतिहासके भिन्न भिन्न अंगोंपर अन्वेषण करना आरम्भ किया। यह अन्वेषण अबतक जारी है, और कोई नहीं कह सकता कि हिन्दू-काल और हिन्दू-सभ्यताका इतिहास अभी तक पूर्ण बन चुका है। हिन्दू-इतिहास अभी आविष्कृत हो रहा है। यूरोपीय अन्वेषकोंके अतिरिक्त, जिनके अन्वेषण और परिश्रमके लिये हम उनके हृदयसे कृतज्ञ हैं, हिन्दू-अन्वेषकों और विद्वानोंकी भी एक बड़ी संख्या अब इस खोजमें लगी हुई है। इस समय तक जो कुछ अन्वेषण हो चुका है उसके आधारपर हिन्दू-कालके जो क्रमिक इतिहास तैयार किये गये हैं उनमें इस समय सबसे अधिक महत्वपूर्ण और विश्वास्य श्रीयुत हेवल और श्रीयुत विंसेंट स्मिथकी पुस्तकें हैं। विंसेंट स्मिथकी 'अर्लो हिस्टरी आव इण्डिया' सन् १६०४ ई०में प्रकाशित हुई थी। इसका तीसरा संस्करण सन् १६१४

ई०में निकला। परंतु सन् १९१९ ई० में विंसेंट स्मिथने एक और पुस्तक समाप्त की। उसका नाम 'आक्सफ़ोर्ड हिस्टरी आँव इण्डिया' है। इसमें भारतका सम्पूर्ण इतिहास देनेकी चेष्टा की गई है।

इस पुस्तकमें हिन्दू-काल पर जो भाग है वह विंसेंट स्मिथका अन्तिम लेख है। उसके परिणाम कई बातोंमें उसकी सन् १९०४ ई० की पुस्तकके परिणामोंसे भिन्न हैं।

विंसेंट स्मिथ इण्डियन सिविल सर्विसमें रह चुका था। उसके मनमें कुछ पक्षपात ऐसे बैठे हुए थे जिनसे अपनी प्रकृतिको मुक्त करना उसके लिये असम्भव था। अपनी पुस्तकके पहले संस्करणोंमें उसने कई जगह इस पक्षपातका परिचय दिया है। कई बातोंमें उसने यह सिद्ध करनेकी चेष्टा की है कि हिन्दूसभ्यता और हिन्दूकलाका सर्वोत्तम भाग उनके अपने मस्तिष्कके उद्योगका फल न था वरन् बाहरसे आया हुआ था। शनैः शनैः नवीन घटनाओंके प्रकाशने और नवीन जानकारीने उसको अपने विचारोंमें परिवर्तन करने पर विवश किया। यद्यपि अब भी कहीं कहीं उसकी अन्तिम पुस्तकोंमें इस पक्षपातके चिह्न पाये जाते हैं परन्तु वे ऐसे हलके हैं कि उनपर ध्यान न देते हुए हम कह सकते हैं कि इस समय तक जो पुस्तकें हिन्दुओंके राजनीतिक इतिहासपर लिखी गई हैं उनमेंसे विंसेंट स्मिथकी अन्तिम पुस्तकें सबसे अधिक पूर्ण हैं। उनको लिखने और सुव्यवस्थित करनेमें विद्वान् लेखकने अतीव परिश्रम और ईमानदारीसे काम लिया है। उसकी पुस्तकको विशेषता यह है कि प्रत्येक अध्यायकी समाप्तिपर रचयिताने उन सनदोंका प्रमाण दे दिया है जिनके आधारपर उसने उस अध्यायकी घटनाओंको लेखबद्ध किया है।

श्रीयुत हेवल भारतमें बहुत वर्षतक रहे। यहाँ उन्होंने बड़े परिश्रमसे भारतीय कला और भारतीय सभ्यताका अध्ययन किया। भारतीय वास्तुविद्या, चित्रकारी और तक्षणविद्या आदि कलाओंपर उनकी पुस्तकें सर्वोत्तम गिनी जाती हैं। अब उन्होंने हिन्दू-इतिहासपर भी एक क्रमिक पुस्तक लिखकर इतिहास-प्रेमियोंपर भारी उपकार किया है। उनकी पुस्तक अधिकतर हिन्दूसभ्यताके भिन्न भिन्न अङ्गोंका वर्णन करती है। इस दृष्टिसे वह विंसेण्ट स्मिथकी पुस्तकसे भी अधिक मूल्यवान् है। हिन्दू-इतिहासका कोई भी विद्यार्थी इन दोनों पुस्तकोंको तुच्छ समझकर छोड़ नहीं सकता। इन दोनों पुस्तकोंके परिणामोंको परखनेके लिये जो उद्धरण और प्रमाण इनमें दिये गये हैं वे इतने पर्याप्त हैं कि उनकी जाँच और पड़तालसे प्रत्येक व्यक्ति अपने लिये यथार्थ परिणाम निकाल सकता है।

हिन्दुओंके लिये लज्जाका स्थान है कि उनके इतिहासपर प्रामाणिक पुस्तकें अँगरेजोंने लिखी हैं, और उन्होंने स्वयम् इस ओर अभी पर्याप्त ध्यान नहीं दिया। यह सच्ची बात उनके जातीय और धार्मिक कर्तव्यानुरागको प्रकट नहीं करती। बहुतसे हिन्दू यह कहते सुनाई देते हैं कि प्राचीन हिन्दू इतिहास लिखनेकी परवाह नहीं करते थे। परन्तु यह उनकी भूल है। इतिहाससे अभिप्राय केवल राजनीतिक इतिहाससे नहीं है। इतिहाससे अभिप्राय केवल राजाओंके इतिहाससे नहीं है। इतिहाससे अभिप्राय केवल युद्धोंके इतिहाससे नहीं है। वरन् इतिहासका प्रकृत काम यह है कि वह हमको यह बता सके कि हमारी वर्तमान अवस्था, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक, सामाजिक, नैतिक और मानसिक दृष्टिसे, किस प्रकार बनी। इतिहासका यह काम है कि हमको बता सके कि वर्तमान अवस्था-

ओंका आविर्भाव किस प्रकार हुआ और उनकी पीठके पीछे क्या क्या हेतु थे। राजाओंके नाम उनके समयके राजनीतिक परिवर्तन, उनके युद्ध और उनकी जीतें नैमित्तिक बातें हैं, उनसे प्रकृत लाभ अधिक नहीं। अँगरेज इतिहासकार और अन्वेषक अपनी पुस्तकोंका बहुतसा भाग ऐसी बातोंके अन्वेषणमें व्यय करते हैं जिनसे प्रकृत इतिहासका उतना सम्बन्ध नहीं। नामोंका अन्वेषण, नगरोंका अन्वेषण, संवतोंका अन्वेषण यह सारी खोज उस परिश्रम और उद्योगकी पात्र नहीं जो अँगरेज अन्वेषक इन बातोंपर करते हैं। अन्वेषणके योग्य वास्तविक बातें धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और नैतिक संस्थायें हैं जिनसे हमको यह पता लगे कि इस समय जो कुछ हमारे विचार हैं, या इस समय जिन रीति-रिवाजोंके हम पाबन्द हैं, या इस समय जो नैतिक आदर्श हमारे यहाँ प्रचलित हैं, या इस समय जो कुछ हमारे समाजका मानसिक वातावरण है उसका किस प्रकार विकास हुआ, ताकि भावी प्रगतिमें हमको अपने इतिहासके ज्ञानसे पर्याप्त सहायता मिल सके। इस प्रकारके अन्वेषणके लिये हमारे पास पर्याप्तसे अधिक सामग्री मौजूद है; और यह सामग्री मूक भावसे हिन्दू नवयुवक अन्वेषकोंको बुला रही है। हमारा धार्मिक इतिहास, हमारा कानूनी इतिहास, हमारा शिक्षा-सम्बंधी इतिहास, हमारा सामाजिक इतिहास—ये सब इतिहास मूल स्रोतोंसे लिखे जाने चाहियें। यह काम ऐसे मनुष्य कर सकते हैं जो संस्कृत, पाली और प्राकृतके पूर्ण पण्डित हों, और जिन्हें अन्वेषणकी आधुनिक रीतियोंका भी यथोचित ज्ञान हो, परन्तु सबसे अधिक बात यह कि उनको अपने इस कार्यसे अनुराग हो, और वे अपने जीवन इसी कार्यके अर्पण कर सकें। बङ्गाल, महाराष्ट्र और दक्षिणमें कई नवयुव-

कोंने यह कार्य आरम्भ किया है। परंतु जब हम उनके कामकी यूरोपीय विद्वानोंके कामसे तुलना करते हैं तो अभी तक वह हमको बहुत कुछ अधूरा, अपर्याप्त और अपूर्ण दिखाई देता है।

आजकल हमारे स्कूलोंमें इतिहासकी जो पुस्तकें पढ़ाई जाती हैं वे न केवल अपूर्ण हैं वरन् भ्रमात्मक और भटका देनेवाली हैं। इसी अभावकी पूर्तिके लिये मैंने इस पुस्तकका पहला संस्करण सन् १८९८ ई०में प्रकाशित किया था। उसके पश्चात् मुझे इस छोटी सी संक्षिप्त पुस्तिकाके संशोधनका अवकाश नहीं मिला। जीवनकी दौड़-धूप और सार्वजनिक कार्योंमें लगा रहनेके कारण मुझे न अध्ययनके लिये और न लिखनेके लिये अवकाश मिल सका। अब जब कि असहयोग आन्दोलनने राष्ट्रीय शिक्षाके प्रश्नको एक नूतन रूप दिया तो मुझे भी उत्सुकता हुई कि मैं इस विषयपर एक अबतक परिशोधित पुस्तक लिखूँ, जो नवयुवकोंके मनमें हिन्दू-इतिहासके मूल स्रोतोंकी ओर बढ़नेकी रुचि उत्पन्न करे, ताकि वे उस अथाह सरोवरसे अपनी तृषाको शान्त कर सकें।

इस पुस्तकके प्रणयनके संबंधमें मैं किसी मौलिक अन्वेषण या खोजकी प्रतिज्ञा नहीं करता। यह पुस्तक मेरे द्वारा रचित नहीं, संकलित मात्र है, यद्यपि इतिहासकी पुस्तकें बहुधा संकलित ही हुआ करती हैं। गत बीस वर्षकी अवधिमें हिन्दू-इतिहासके भिन्न भिन्न अंगोंपर जो पुस्तकें लिखी गई हैं उनकी एक संक्षिप्त नामावली इस पुस्तकके अन्तमें लिख दी गई है ताकि जो लोग अधिक अन्वेषण करना चाहें वे कर सकें।

यह भी स्मरण रहे कि यह पुस्तक लाहौर सेंट्रल जेलमें मेरे कारावासके पहले दो मासमें क्रमबद्ध की गई। लगभग सारीकी सारी दिसम्बर और जनवरीमें लिखी गई। विषयपर मेरा पहलेसे

ही किसी कदर अधिकार था। केवल स्मृतिको ताज़ा करना था। मैंने जेलमें जाते ही इस कामको आरम्भ कर दिया। डाकृर गोपीचन्द्र भार्गव, म्यूनिसिपल कमिश्नर लाहौरने जो मेरे साथ इस कालमें उस वंदीगृहमें कैद थे मुझे लिखनेमें सहायता दी। मैं लिखाता गया, और वे लिखते गये। यहाँ तक कि उनके छुटकारे तक पुस्तक लगभग संपूर्ण हो गई। वे चले गये और मैं रह गया। उनके चले जाने पर मैंने इसका संशोधन किया। यह स्पष्ट है कि वंदीगृहमें मुझे प्रमाणोंके लिये पर्याप्त पुस्तकें नहीं मिल सकीं, क्योंकि वहाँ पुस्तकोंकी इतनी विपुल राशिको एकत्र करना कठिन था। फिर भी मैं कह सकता हूं कि इस समय आङ्गल भाषामें इस विषयपर जितनी भी प्रामाणिक पुस्तकें छप चुकी हैं उनमेंसे यदि सबको नहीं तो बहुतको मैंने अवश्य पढ़ा है। हेवल और विंसेंट स्मिथका उल्लेख तो ऊपर हो चुका है। जिन पुस्तकोंका उल्लेख प्रथम संस्करणकी भूमिकामें हुआ है उनका उल्लेख दुबारा करना व्यर्थ है। हिन्दुओंकी राजनीतिक पद्धतिपर जो साहित्य अबतक निकल चुका है उसमें सबसे आदरणीय डाकृर प्रमथ नाथ बंद्योपाध्यायकी पुस्तक है। परंतु इस विषयपर डाकृर नरेन्द्रनाथ ला, बाबू राधाकुमुद मुखोपाध्याय डाकृर रमेशचन्द्र मोज़ामदार, बाबू काशीप्रसाद जायसवाल, बाबू विनयकुमार सरकार और डाकृर भण्डारकरकी पुस्तकोंसे भी सहायता ली गई है।

जब मैंने पुस्तक लिखना आरम्भ किया तो मेरा विचार इतना लिखनेका न था। परन्तु जब मैं लिख चुका तब मुझे अनुभव होने लगा कि जो कुछ मैंने लिखा है वह अपर्याप्त है। इस विषयके बहुतसे अंग छूट गये हैं। जी चाहता था कि हिन्दुओंकी वैज्ञानिक उन्नतिपर अधिक विस्तारके साथ लिखा

जाता। इस विषयपर श्रीयुत प्रफुल्लचन्द्र रायने अपने 'हिन्दू-रसायनके इतिहासमें और डाक्टर ब्रजेन्द्रनाथ सीलने अपनी पुस्तक 'पाज़िटिव साइंस आव दि हिन्दूज़' में बहुत कुछ प्रकाश डाला है। इसी प्रकार हिन्दू ललित कलाओंपर जो कुछ लिखा गया वह बहुत थोड़ा और अपर्याप्त है। हिन्दुओंकी पोतविद्यापर श्रीयुत राधाकुमुद मुखोपाध्यायकी पुस्तक पढ़ने योग्य है।

क्योंकि राष्ट्रीय विद्यालयों और महाविद्यालयोंके लिये पुस्तककी मांग है इसलिये मैं अभी अपूर्ण पुस्तकको प्रकाशित करा रहा हूं। यदि राजनीतिक दौड़धूपसे अवकाश मिला और जीवनका तन्तु अटूट बना रहा तो तीसरे संस्करणमें इस विषयपर इससे अधिक प्रकाश डालनेकी इच्छा रखता हूं। अध्यापकोंको चाहिये कि इस पुस्तककी सहायतासे अपने विषयपर अधिक जानकारी प्राप्त करके अपने विद्यार्थियों तक पहुंचायें। वरन् उसमें ऐसी मनोरञ्जकता उत्पन्न करें कि बालक अपने आप उसे ग्रहण करते चले जायं।

साधारण रसिकोंको भी इस पुस्तकके अध्ययनसे लाभ पहुंचेगा और उनकी इस विषयमें रुचि बढ़ेगी।

एप्रिल, १९२२ लाजपत राय

प्रस्तावना

भारतवर्षकी ऐतिहासिक प्राचीनता

भारतवर्षका प्राचीन इतिहास हिन्दुओंके उस कालका इतिहास है जब कि मुसलमान इस देशमें नहीं आये थे। ऐतिहासिक काल ईसाके जन्मके ६०० या ७०० वर्ष पहलेसे आरम्भ होता है। इस बातको सभी मानते हैं कि हिन्दुओंका इतिहास उससे बहुत पहले आरम्भ होता है। संसारमें केवल तीन चार जातियां ऐसी हैं जिनका इतिहास इतनी प्राचीनता तक पहुंचता है। इन प्राचीन जातियोंमें भी केवल एक ही जाति है जिसके पास एक क्रमिक इतिहास मौजूद है। यह चीनी जाति है। उस काल की केवल दो और प्राचीन जातियां हैं जिनका उल्लेख इतिहासमें मिलता है और जिनके विषयमें दिन पर दिन जानकारी बढ़ती जाती है। ये हैं बाबलकी जाति और मिस्र देशकी जाति। यदि यूनानियोंको भी सम्मिलित कर लिया जाय तो अधिकसे अधिक पांच जातियां ऐसी कही जा सकती हैं जिनका इतिहास ईसाके ५०० वर्ष पूर्वसे आरम्भ होता है—अर्थात् मिसरी, चीनी, बाबली,* भारतीय और यूनानी। इनमेंसे ऐतिहासिकोंकी दृष्टिमें यूनान और भारतकी अपेक्षा बाबल, मिस्र, और चीन अधिक प्राचीन गिने जाते हैं और यूनान सबसे कम। मिस्रवालों और बाबलवालोंका इतिहास उन खंडहरों, शिला-लेखों और मुद्राओंसे तैयार किया जा रहा है जो आधुनिक समयके अन्वेषणकर्त्ताओंने भूमिके नीचेसे खोद खोदकर निकाले हैं। यद्यपि यह सामग्री बहुत मूल्यवान् है परन्तु इसका वह महत्व नहीं जो

* बाबलका वर्तमान नाम मैसोपोटामिया या इराक अरब है।

हिन्दुओंकी प्राचीन पुस्तकोंका है। हिन्दुओंकी यह प्रतिज्ञा नहीं कि उन्होंने कभी क्रमिक इतिहास लिखनेका यत्न किया परन्तु उनकी पुस्तकोंमें ऐसी पर्याप्त सामग्री मौजूद है जो उनकी सभ्यता और नागरिकताके इतिहासको ईसाके कमसे कम तीन सहस्र वर्ष पूर्वतक पहुंचा देता है। यह सामग्री संसारकी सभ्यताके इतिहासमें अद्वितीय मूल्यवान् है और सब प्रकारसे आर्य-जातियोंके इतिहासमें अनुपम है।

ऐतिहासिक कालके पहलेका साहित्य

ऐतिहासिक काल, जैसा कि मैंने ऊपर कहा, ईसाके ६०० या ७०० वर्ष पहलेसे आरम्भ होता है। हिन्दुओंके पवित्र ग्रन्थ प्रामाणिक रूपसे इससे पुराने हैं। यूरोपीय अन्वेषकोंने भी इस बातको स्वीकार किया है कि उनका काल कमसे कम १५०० से लेकर ३००० वर्ष ईसाके पूर्वका है। कई अन्वेषक इसको ईसाके ४००० वर्ष पूर्वतक ले जाते हैं। स्वर्गीय बाल गङ्गाधर तिलकने अपने अन्वेषणसे यह सम्मति स्थिर की थी कि वेदोंकी प्राचीनता ईसाके लगभग आठ दस सहस्र वर्ष पूर्वतक पहुंचती है। धार्मिक विचार-दृष्टिसे हिन्दू वेदोंको भगवद्वाणी और ईश्वरकृत मानते हैं। उनके समीप वेद सनातन और नित्य हैं। परन्तु ऐतिहासिक विचार-दृष्टिसे हमको इस विवादमें पड़नेकी आवश्यकता नहीं। वैदिक साहित्यके अन्तर्गत केवल वेद पवित्र ही नहीं, वरन् वे पुस्तकें भी हैं जिनका आधार वेदकी श्रुतियां हैं और जिनमें वेदोंके विषयोंकी व्याख्याय तत्कालीन हिन्दू आर्योंके ऐतिहासिक वृत्तान्तोंसे मिली हुई हैं, उदाहरणार्थ ब्राह्मण ग्रन्थ और उपनिषद्। इन पुस्तकोंके रचना-कालका ठीक ठीक निरूपण करना लगभग ऐसा ही असम्भव है जैसा कि वेदोंका। परन्तु इसमें किसी मान्य विचारकको सन्देह नहीं कि कुछ भी हो ये ऐति-

हासिक कालके बहुत पहलेकी लिखी हुई हैं। ये पुस्तकें हमें उस कालके हिन्दू आर्योंकी सभ्यता और नागरिकताका सच्चा चित्र अतीव स्पष्ट रीतिसे दिखाती हैं। चीनके सिवा भूमण्डलमें कोई भी दूसरी जाति ऐसी नहीं जो यह प्रतिज्ञा कर सकती हो कि इतनी प्राचीन और इतनी उच्च कोटिकी पुस्तकें उनके यहां मौजूद हैं। चीनियोंके पास दो सहस्रसे पचीस सौ वर्ष ईसाके पूर्वतककी पुस्तकें मौजूद हैं। परन्तु मैं यह माननेके लिये तैयार नहीं कि उन पुस्तकोंमें कोई पुस्तक इस कोटिकी है जैसे कि हिन्दुओंके उपनिषद् या वेद हैं।

इस दृष्टिसे हिन्दुओंकी प्राचीन पुस्तकें ऐतिहासिक कालके पहलेके वृत्तान्तोंको जाननेके लिये अतीव मूल्यवान् और आवश्यक हैं। मानुषी उन्नति और सभ्यताके इतिहासका वे आवश्यक, बहुमूल्य और प्राचीन अंश हैं। भूमण्डलकी जातियोंमें हिन्दू ही एक ऐसी जाति है जो साभिमान यह कह सकती है कि उन्होंने आजतक अपनी सभ्यताको सुशृङ्खलित और शुद्ध रक्खा है। मैं यह नहीं कहता कि ऐतिहासिक कालमें हिन्दू सभ्यतापर बाह्य सभ्यताका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। परन्तु मैं यह कहनेके लिये तैयार हूं कि धर्म और नागरिकता दोनोंमें हिन्दुओंने बाहरसे कुछ नहीं लिया। उनकी प्राचीन सभ्यता और प्राचीन नागरिकता अपने ही मन और मस्तिष्ककी उपज हैं। पश्चिममें ईरानियोंने, यूनानियोंने और अरबोंने बहुत कुछ हिन्दू-सभ्यता और हिन्दू-तत्वज्ञानसे सीखा। पूर्वमें चीन, प्राचीन (ब्रह्मा, सियाम, अनाम, कोरिया, तिब्बत) और जापान तो स्पष्ट रूपसे भारतके शिष्य रहे। परन्तु कोई यह नहीं कह सकता कि भारतकी वास्तविक सभ्यताकी कोई आधारशिला और उनकी नागरिकताकी रीतिका कोई नियम बाहरसे आया।

क्या हिन्दू भारतके मूल-निवासी हैं ?

मेरी सम्मतिमें इस बातको अभी ऐतिहासिक रूपसे स्वीकार कर लेना चाहिये कि हिन्दू आर्य भारतवर्षके मूल-निवासी नहीं हैं। आर्य-जाति एक बहुत बड़ी जाति थी। यूरोपकी प्रायः सभी जातियाँ और एशियामें भारतीय तथा ईरानी ये सब इसी वंशसे बतलाई जाती हैं। यूरोपीय माता-पितासे उत्पन्न अमरीकन भी इसी जातिसे हैं। प्राचीन आर्योंकी मूल जन्मभूमि कहाँ थी, वे लोग कब वहांसे चले और किस किस कालमें किस किस देशमें जाकर बसे, इस विषयमें अन्वेषकोंका आपसमें बहुत मतभेद है। विद्वानोंका एक दल यह कहता है कि इस जातिका आदि देश उत्तरीय सागरके दक्षिणी भागोंमें अर्थात् स्वीडन, नार्वे, डन्मार्क और उत्तरीय रूसमें था। दूसरे दलका कथन है कि इस जातिकी जन्म भूमि एशिया और यूरोपका वह भाग था जिसके उत्तरमें रूम सागर और फ़ारसकी खाड़ी है, जिसकी उत्तरीय सीमा वाल्गा नदी और एशियाई रूसका दक्षिणी भाग था; और जिसके अन्तर्गत कस्पियन समुद्रका निकटवर्ती प्रदेश, कृष्ण सागर और क़ाफ़की पर्वतमाला थी। पूर्वीय एशियामें उसकी दक्षिणी सीमा हिमालयकी गिरिमाला थी। जो हो, हमारे प्रयोजनके लिये यही पर्याप्त है कि हिन्दू आर्य भारतवर्षमें उत्तर-पश्चिमी दर्रोंसे ऐतिहासिक कालके बहुत पहले प्रविष्ट हुए। कहा जाता है कि उस समय भारतमें द्रविड़-जाति अपनी सभ्यताके उच्चतम शिखरपर थी और आर्यलोगोंने उनको दक्षिणकी ओर ढकेल दिया, जहां अबतक उस जातिके मनुष्य बसते हैं और उस सभ्यताके चिह्न मौजूद हैं। कई यूरोपीय ऐतिहासिकोंका यह कथन कि आर्योंके आगमनके पहले भारतके मूल-निवासी केवल

असभ्य और जङ्गली थे अधिकांशमें भ्रमात्मक और निस्सार है। उस समय भी भारतमें सभ्यता और उन्नतिके भिन्न भिन्न परत मौजूद थे। परन्तु तत्कालीन सभ्यताके विषयमें कोई पर्याप्त और विश्वास्य ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिलता। इसलिये निश्चय रूपसे उस कालकी अवस्थापर कोई टीका टिप्पणी करना असम्भव है।*

भारतकी जातियां वर्तमान भारतीय जनता जगत्की सभी बड़ी बड़ी जातियोंका मिश्रण है। उसका बड़ा भाग निस्सन्देह आर्यवंशसे है। परन्तु उसमें द्रविड़, तातारी तथा अरब जाति और कुछ अंश उस जातिके भी सम्मिलित हैं जिसको नीग्रो या हब्शी कहा जाता है। उत्तरीय भारतके विशेषतः पंजाब, संयुक्त प्रान्त, राजपूताना, गुजरात, बङ्गाल और विहारके अधिवासी अधिकतर आर्यवंशके हैं। उत्तर-पश्चिममें कुछ अंश अरब और तातारी मूलके हैं। उत्तर-पूर्वमें कुछ रक्त मङ्गोलियन जातिका है। दक्षिणमें अधिकतर भाग द्रविड़-जातिका है और मालावार सागर-तटपर एक विशेष संख्या अरबी वंशके मुसलमानोंकी है। मध्यभारत तथा दक्षिणमें और विन्ध्याचलके भागोंमें और नीलगिरी पर्वतके प्रदेशमें वे जातियां बसती जिनको भारतके आदिमनिवासी कहा जाता है, जैसा कि भील और गोंड आदि।

भारतकी भाषायें आर्योंके आनेके पूर्व उत्तरीय भारतकी क्या भाषा थी, यह कोई नहीं बता सकता। मदरास प्रान्तकी भाषायें द्रविड़ स्रोतसे हैं। सम्भव है कि आर्योंके आनेके समय उस स्रोतकी भाषायें उत्तरीय भारतमें भी प्रचलित हों, परंतु यदि ऐसा था तो हिन्दू

* इस विषयपर परिशिष्टमें एक नोट देखो।

आर्योंने अपनी भाषाको द्रविड़-स्रोतके शब्दों और मुहावरोंसे अमिश्रित रखनेमें भारी सफलता प्राप्त की। आधुनिक द्रविड़ भाषाओंमें संस्कृतके असंख्य शब्द हैं, परन्तु क्या प्राचीन और क्या नूतन संस्कृतमें द्रविड़ भाषाओंके शब्दों और मुहावरोंकी सूरततक दिखाई नहीं देती। यदि वे होंगे भी तो ऐसे कम कि उनका होना और न होना समान है। उत्तरीय और पश्चिमी भारतकी सभी भाषायें अर्थात् वङ्गला, हिन्दी, पंजाबी, गुजराती और मराठी संस्कृतसे निकली हैं। हां, उर्दूमें अरबी, फारसी और तातारी शब्दों तथा मुहावरोंकी बहुत कुछ मिलावट है। परन्तु बोल चालकी उर्दूमें भी सौ पीछे ७५ से भी अधिक शब्द निश्चय पूर्वक संस्कृतके हैं।

भारतके धर्म

प्रायः यह समझा जाता है कि भारतवर्षमें असंख्य धर्म्म हैं। कई लोग यहांतक कह देते हैं कि जितने मनुष्य उतने धर्म्म। वास्तवमें तो यह अन्तिम कथन संसारके सभी अधिवासियोंपर चरितार्थ होता है; क्योंकि धर्म एक व्यक्तिगत लक्षण है जो प्रत्येक मनुष्यके लिये अलग अलग है। धर्मका संबन्ध मनुष्यकी आत्मासे है। मनुष्योंकी आत्मायें भिन्न भिन्न हैं। इसीलिये किन्हीं दो मनुष्योंका धर्म वास्तवमें एक नहीं है। परंतु जिन साधारण अर्थोंमें "धर्म्म" शब्दका प्रयोग किया जाता है उनका ध्यान रखकर यह कहा जा सकता है कि भारतमें तीन धर्मों के अनुयायियोंकी संख्या सबसे अधिक है—(१) हिन्दू, (२) इसलाम, (३) ईसाई। इनके अतिरिक्त सिक्ख, जैन, बौद्ध और पारसी भी हैं। ये सब आर्यजातिके धर्म्म या मत हैं। इसलाम और ईसाई दोनोंका मूल यहूदी है। भारतमें यहूदियोंकी भी कुछ संख्या है। संसारमें तीन प्रकारके धर्म्म हैं, अर्थात् आर्य,

सैमेटिक और मङ्गोलियन। यहूदी, ईसाई और इसलाम इन तीनोंका प्रकाश सैमेटिक लोगोंके अन्दर हुआ। परन्तु अब वे भूमण्डलकी सभी जातियोंमें पाये जाते हैं।

मङ्गोलियन जातियोंका धर्म वह है जो प्राचीन चीनियों, प्राचीन जापानियों और प्राचीन तातारियोंका था।* इन सब धर्मोंमें बहुतसे ऐतिह्य और धार्मिक उपाख्यान एक ही प्रकारके हैं और उनके सिद्धान्तोंमें भी बहुत कुछ समानता पाई जाती है। फिर भी उनका धार्मिक ढांचा और संगठन भिन्न भिन्न है। ईसाई लोग यद्यपि भारतमें यूरोपीय अधिकारके पहले थे, परन्तु बहुत थोड़े। यूरोपीय राजत्वकालमें उनकी बहुत वृद्धि हुई और दिनपर दिन हो रही है। मुसलमानी समाज संख्याकी दृष्टिसे दूसरे दर्जे पर है। साधारणतया राजनीतिक प्रयोजनोंके लिये बाह्य जगत यही जानता है कि भारतमें दो ही बड़े धर्म्म हैं—हिन्दू और मुसलमान। यद्यपि भारतके भिन्न २ प्रान्तोंमें ऐसे धार्मिक सम्प्रदाय मौजूद हैं जो अपने आपको हिन्दुओं और मुसलमानोंसे भिन्न समझते हैं, जैसे कि पंजाबमें सिक्ख, परन्तु हिन्दुओं, मुसलमानों, और ईसाइयोंमें असंख्य ऐसे मत हैं जो एक दूसरेसे ऐसे ही अलग अलग हैं जैसे कि हिन्दू मुसलमानोंसे और मुसलमान ईसाइयोंसे।

अंगरेजी राज्यके पहलेके इतिहासमें कोई प्रमाण इस प्रकारका मौजूद नहीं जिससे यह मालूम होता हो कि धार्मिक मतभेदोंके कारण भारतमें उस प्रकारके रक्तपात और युद्ध हुए जैसे कि यूरोपमें रोमन कैथोलिक और प्रोटस्टेण्ट सम्प्रदायोंके बीच कई शताब्दियोंतक जारी रहे। कुछ यूरोपीय लोगोंने यह

---

* इसको चीनमें ताओ मतके नामसे पुकारा जाता है और जापानमें शिन्तोमत कहा जाता है।

मत प्रकट किया था कि मुसलमानोंके शासन-कालके पहले हिन्दुओं और बौद्धोंमें इस प्रकारके रक्तपात और युद्ध जारी रहे। परन्तु अधिक प्रतिष्ठित विद्वानोंने इस मतका प्रबल खंडन किया है। यह भी कहा जाता है कि मुसलमानी शासन-कालमें हिन्दुओंपर असीम धार्मिक अत्याचार हुए। यद्यपि यह ठीक हो कि कई मुसलमान आक्रमणकारियोंने ऐसा किया, परन्तु उसकी तहमें धार्मिक पक्षपात बहुत कम था। वे अत्याचार और अनर्थ अधिकतर राजनीतिक और आर्थिक कारणोंसे किये जाते थे। नादिरशाहने जिस समय दिल्लीमें सर्व-हत्याकी आज्ञा दी तो हिन्दू और मुसलमानका कोई भेद नहीं रखा। औरङ्गजेबने अपने भाइयों और उनके साथी मुसलमानोंका उसी प्रकार वध किया जिस प्रकार कि हिन्दुओंका। भारतके इतिहासमें, भली भांति ढूँढनेसे भी किसी व्यक्तिको उस प्रकारके रक्तपातका चिह्न नहीं मिलता जैसा कि फ्रांसमें सेंट बारथलमूके दिन हुआ और हालैण्ड, बेलजियम, जर्मनी, स्काटलैण्ड, इङ्गलैण्ड और आयरलैण्डमें भिन्न भिन्न ईसाई सम्प्रदायोंमें कई शताब्दियोंतक जारी रहा और जिसमें लाखों मनुष्यके वधकी नौबत पहुंची।

भारतके इतिहासमें उस प्रकारकी लड़ाइयोंका भी कोई उदाहरण नहीं मिलता जैसी कि मुसलमानों और ईसाइयोंमें 'पवित्र भूमि' के लिये हुई। कुछ हिन्दू राजाओंने निस्सन्देह जैनों और बौद्धोंपर कुछ अत्याचार किये और जैन और बौद्ध राजाओंने भी हिन्दुओंपर अत्याचार किये, परन्तु साधारणतया हिन्दुओंके समयमें बौद्ध और जैन-धर्मके प्रचारकोंका और बौद्ध और जैन राजाओंके समयमें हिन्दू पण्डितोंका सम्मान होता रहा। कई मुसलमान आक्रमणकारियोंने भी निस्सन्देह हिन्दू

मन्दिरोंको गिराया और हिन्दू मूर्तियोंको तोड़ा, परन्तु यह सब कुछ अधिकतर आरम्भिक मुसलमान आक्रमणकारियोंने किया और बहुत थोड़े कालतक यह सिलसिला जारी रहा।

प्रत्येक राजसत्ता अपनी राजनीतिक और सैनिक शक्तिको दृढ़ करनेके लिये धर्मका उपयोग ढालके रूपमें करती है। जहां राजकर्मचारियोंका धर्म शासितोंके धर्मसे भिन्न हो वहां राज्य अपने सहधर्मियोंका कुछ न कुछ पक्ष अवश्य लेता है। इस पक्षपातसे न हिन्दू खाली हैं, न मुसलमान और न ईसाई। परन्तु भिन्न भिन्न धर्म-समाजोंमें भेदभाव उत्पन्न कराना और उनको एक दूसरेके विरुद्ध भड़काना प्रायः बाह्य शासकोंकी विशेषता रही है। जो शासक किसी विजित या शासित देशको अपनी मातृ-भूमि बना लेते हैं वे स्वयं या उनके उत्तराधिकारी नियमपूर्वक ऐसा नहीं करते।

भारतकी जनसंख्या इतनी अधिक है और हिन्दू मुसलमानोंका दल इतना बड़ा है कि उनके लिये एक दूसरेका उन्मूलन करना असम्भव है। ऐसी अवस्थामें उन सभी धार्मिक सम्प्रदायोंका कर्त्तव्य हो जाता है कि पुराने उपाख्यानों और ऐतिह्योंको भुलाकर अपने वर्तमान और भविष्यके हितके लिये अपने धार्मिक मत-भेदोंको ऐसा सुलझा लें कि उनसे किसी दूसरेको लाभ उठानेकी गुञ्जायश न रहे।

राष्ट्रीय प्रयोजनोंके लिये भारतीय इतिहासकी निर्दोष और नियमपूर्वक शिक्षा तथा अध्ययनकी आवश्यकता

किसी बच्चेकी शिक्षा तबतक पूर्ण नहीं समझी जा सकती जबतक कि उसको उस जाति और उस समाजके इतिहासका ज्ञान न हो जिसके अन्दर वह उत्पन्न हुआ है और जिसमें रहकर उसे अपने मानुषी कर्त्तव्योंको पूरा

करना है। प्रत्येक व्यक्ति जो संसारमें जन्म लेता है वह बहुतसी प्रवृत्तियां अपने मातापिता और प्राचीन पूर्वजोंसे दायमें पाता है। जिस प्रकार प्रत्येक मनुष्य अपने पूर्वजोंका प्रतिनिधि है उसी प्रकार प्रत्येक मानुषी समूह अपने जातीय पूर्वजोंका प्रतिनिधि है। कोई समाज अपनी वर्तमान अवस्थाओंको पूर्णरूपसे नहीं जान सकता जबतक उसे यह ज्ञान न हो कि वह किन किन अवस्थाओंमेंसे होकर यहांतक पहुंचा है। समाजकी उन्नतिके लिये यह आवश्यक है कि उसे अपनी सब पूर्व अवस्थाओंका पूर्ण ज्ञान हो। प्रत्येक मनुष्य और प्रत्येक मानव-समुदाय अपने समाजकी वर्तमान अवस्थासे प्रभावित होता है। वर्तमान अवस्थायें भूतकालीन अवस्थाओंका परिणाम हुआ करती हैं। ऐसी अवस्थामें प्रत्येक मनुष्यसमुदायकी उन्नतिके लिये आवश्यक है कि उसको अपनी जातिके इतिहासकी अच्छी जानकारी हो। जबतक उसको ऐसी जानकारी न हो वह अपनी जातिकी उन्नति और सुधारके क्षेत्रमें कोई यथोचित पग उठानेके योग्य नहीं हो सकता।

प्रत्येक जातिकी सभ्यता और नागरिकता अपना इतिहास रखती है। कई जातियां अपनी पहली सभ्यतासे गिरकर अपने आपको अधःपतनकी अवस्थामें पाती हैं। दूसरी जातियां वर्तमान कालमें समृद्धिशालिनी होते हुए भी अधिक उन्नतिकी इच्छुक हैं, क्योंकि किसी जातिका किसी कालके लिये एक ही अवस्थामें स्थिर रहना असम्भव है। परिवर्त्तन मनुष्यका आवश्यक धर्म है। जो व्यक्ति उन्नति नहीं करता वह अवनति करता है। परन्तु उन्नति और अवनतिके अर्थोंमें भी जातियों और मनुष्योंके आशयोंमें अन्तर हो सकता है। इसलिये प्रत्येक दृष्टिसे जिस प्रकार एक योग्य डाक्टर रोगके निदान और चिकित्साके पूर्व

अपने रोगीके शारीरिक इतिहासको जाननेका यत्न करता है उसी प्रकार जातिके एक सुशिक्षित सदस्यका यह कर्त्तव्य है कि वह अपनी जातिके कारबारमें यथोचित रूपसे भाग लेनेके लिये अपनी जातिके भूतपूर्व इतिहासका ज्ञान रखता हो। आधुनिक भारतवासी उन भारतवासियोंके स्थानापन्न और उत्तराधिकारी हैं जो इस देशमें आजसे पांच सहस्र वर्ष पूर्व बसते थे। इस अवधिमें उनमें कई नयी जातियां आकर सम्मिलित हो गई और उनकी सभ्यतापर भी कुछ बाह्य प्रभाव पड़े। परन्तु ये सब उनके व्यक्तिगत और जातीय इतिहासके भिन्न २ पृष्ठ हैं। इनका ज्ञान प्राप्त किये बिना वे न तो अपने व्यक्तित्वको अच्छी तरह समझ सकते हैं और न अपने जातीय व्यक्तित्वको भली भाँति जान सकते हैं। प्रत्येक ऐसे व्यक्तिके लिये जो अपनी जातिके इतिहाससे अनभिज्ञ हो उन्नतिका यत्न या जातीय दौड़धूपमें सम्मिलित होनेकी चेष्टा करना एक बालिश कर्म है। इसमें बहुत सी भूलोंकी सम्भावना रहती है। जो जातियां उन्नतिके आकाशसे गिरकर आज अवनतिकी पृथ्वीपर बसी हैं, जो जातियां स्वतन्त्रताको खोकर आज दासत्वकी दलदलमें फंसी हुई हैं, जो जातियां किसी समय संसारकी प्रथम पंक्तिमें बैठ कर आज पिछली पंक्तियोंमें खड़ी हैं, उनके लिये विशेष रूपसे आवश्यक है कि उनको अपनी भूतपूर्व उन्नति और अवनतिके इतिहासका पूर्ण ज्ञान हो।

जातियोंके बीच जो दौड़धूप सदा और प्रत्येक समयमें जारी रहती है उस दौड़धूपमें भिन्न २ जातियां भिन्न २ कालमें नीचे ऊपर होती रहती हैं। ये परिवर्त्तन सार्वभौम नियमोंपर उसी प्रकार अवलम्बित हैं जैसे कि संसारके भौतिक और भूतत्त्व-संबन्धी परिवर्त्तन। संसार सदा बदलता रहता है। जहां आज बड़े २

ऊंचे पहाड़ हैं वहां किसी समयमें सागरकी लहरें उठा करती थीं। जहां आज गहरा समुद्र है वहां किसी समयमें ऊंचे पहाड़ थे। जहां आज निर्जन मरुस्थली है वहां कभी हरी हरी वाटिकायें लहलहाया करती थीं। जहां आज सुन्दर उपत्यकायें और घाटियां हैं वहां किसी समयमें सुनसान वन थे। ये परिवर्त्तन प्रकृतिमें प्राकृतिक कारणोंसे हुए। इसी प्रकार मानवी इतिहासमें भी परिवर्त्तन हुए जो उसी प्रकारके नैसर्गिक कारणोंका परिणाम है। इन परिवर्त्तनोंका इतिहास हमारे लिये न केवल मनोरञ्जक और शिक्षाप्रद है वरन् हमारी भावी उन्नति और अस्तित्वके लिये आवश्यक और अनिवार्य है।

हमारे सामने कई बार यह प्रश्न उठता है कि हमारी जाति क्यों, किन कारणोंसे और किन अवस्थाओंमें वर्तमान दशाको प्राप्त हुई। हमारे छिद्रान्वेषी ऐसे ऐसे कारण बताते हैं जो हमारे लिये आशाओंके बढ़ाने और उत्साहके उच्च करनेवाले नहीं। उदाहरणार्थ वे कहते हैं कि "प्राचीन भारतीय असभ्य थे" या "भारतवर्षमें प्रजातन्त्र राज्यकी बुद्धि कभी उत्पन्न नहीं हुई" "भारतमें कभी देश-भक्तिका भाव न था" "भारतीय लोग सदा शासित रहे, उनमें प्रबन्धकी शक्ति नहीं" "उनकी सभ्यता उन तत्त्वोंसे शून्य है जो जातियोंको पराक्रमी और उच्च विचार-सम्पन्न बनाते हैं" इत्यादि, इत्यादि। कितने यह कहते हैं कि हमारे जल वायुका ऐसा ही प्रभाव है। कितने कहते हैं कि हमारे धर्मकी यह शिक्षा है। कई एकका मत है कि हमारे रक्तका ही यह विशेष दोष है। हमारे पास यह विश्वास करनेके लिये पर्याप्त हेतु मौजूद हैं और हम बहुतसे विचारकों और विद्वानोंके प्रमाण उपस्थित कर सकते हैं कि शासक जातियोंके शासनका एक यह रहस्य है कि वे अपनी अधीन और शासित

जातियोंको उनकी अयोग्यता और असमर्थताका विश्वास करा दें।

शासक और शासितका सम्बन्ध कायम रखनेके लिये केवल तलवारकी शक्ति ही पर्याप्त नहीं, केवल मानसिक योग्यता ही की आवश्यकता नहीं, केवल उच्चकोटिका चरित्र ही नहीं चाहिये; वरन् यह आवश्यक है कि शासककी मानसिक अवस्था (Psychology) अधिराजक (Impèrial) हो और शासितकी दास-प्रकृति (Slave mentality) हो। गत महायुद्धमें यह बात भली भांति स्पष्ट हो गई कि किस प्रकार संसारकी बड़ी बड़ी जातियोंने, जिनमें अङ्गरेज़, जर्मन, फ्रांसीस और अमरीकन सम्मिलित थे, अपने अपने इतिहासोंको ऐसी दृष्टिसे क्रमबद्ध किया जिससे उनके बच्चोंमें उस प्रकारकी मानसिक और हार्दिक अवस्था उत्पन्न हो जो उनको अपनी जातीय सफलताके लिये आवश्यक थी। अमरीकन स्कूलोंमें सन् १९१८ ई० तक ऐसे इतिहास पढ़ाये जाते थे जिनमें ब्रिटिश जातिके विरुद्ध बहुत कुछ विष उगला हुआ था और जिनमें उन अत्याचारोंका बहुत उल्लेख था जो लिखनेवालोंके विचारमें ब्रिटिश जातिने अमरीकन औपनिवेशिकोंपर अमरीकन स्वतंत्रताके पहले किये थे। उसी समयकी घटनाओंका वर्णन करते हुए उन इतिहास-पुस्तकोंमें जो बरतानिया द्वीपसमूहके स्कूलोंमें पढ़ाई जाती थीं अमरीकन देश-भक्तोंके विरुद्ध पर्याप्त विष उगला हुआ था। सारांश यह कि एक ही घटनाको दोनों जातियोंने अपने बच्चोंके सामने भिन्न २ रूपमें उपस्थित किया।

सन् १९१८ ई० में जब अङ्गरेज़ों और अमरीकनोंके बीच जर्मनीके विरुद्ध एकता हो गई तो दोनों जातियोंको इस आवश्यकताका अनुभव हुआ कि अपने अपने देशोंकी पाठ्य पुस्तकों-

को ऐसे ढङ्गसे बदलें जिससे घृणा और शत्रुताके स्थानमें प्रेम और एकताके भाव उन्नत हों। हमारे विचारमें किसी राष्ट्र और देशके इतिहासको किसी जातीय स्वार्थके लिये अशुद्ध रूपमें वर्णन करना महा पाप है। हम किसी प्रकारसे इस बातको उचित नहीं ठहरा सकते कि इतिहास-शास्त्रका उपयोग बेईमानीसे असत्य विचारोंके प्रचारके लिये किया जावे। जातीय स्वार्थों की प्राप्तिके लिये हम ऐतिहासिक घटनाओंका उलट पुलट करना अनुचित और अपवित्र कर्म समझते हैं। किसी प्रकार भी इस अनुचित और अपवित्र चेष्टाओंका परिणाम शुभ नहीं हो सकता। अतएव हमारी सम्मतिमें सच्ची देशभक्तिकी यह मांग नहीं कि वह किसी जातिको अशुद्ध इतिहासके प्रचारमें सहायता दे परन्तु जहां हम देशभक्तिके लिये अशुद्ध इतिहासका प्रचार और अशुद्ध इतिहासका पढ़ाना पाप समझते हैं वहां हम अपने शासनके प्रयोजनोंके लिये किसी जातिको उसके अन्दर दास्य-प्रकृति उत्पन्न करनेके उद्देश्यसे अशुद्ध इतिहासकी शिक्षा देना अतीव जघन्य पाप समझते हैं। दुर्भाग्यसे इस समय भारतके इतिहासपर जितनी प्रामाणिक पुस्तकें हैं वे, कतिपय अपवादोंको छोड़कर, प्रायः अ-भारतीय लोगोंकी लिखी हुई हैं। कई एकने अज्ञान और अविद्यासे, कई एकने बेईमानीसे और कई एकने पक्ष-पातसे हमारे इतिहासकी घटनाओंको अयथार्थ रूपमें उपस्थित किया है। हमको लज्जासे यह बात स्वीकार करनी पड़ती है कि इस सम्बन्धमें जो कुछ बुरा भला मालूम है वह अ-भारतीय अन्वेषकोंके अन्वेषणका परिणाम है। इसलिये जहां एक ओर हमको उनकी अविद्या, पक्षपात और असाधुताका शोक है, वहां दूसरी ओर हमको उनके परिश्रम, खोज, अन्वेषण और सत्य-प्रियताको भी स्वीकार करना पड़ता है। गत बीस वर्षों कई

भारतीय विद्वानोंने भी इस ओर ध्यान दिया है और भारतीय इतिहासके भिन्न २ अङ्गों और कालोंपर प्रकाश डाला है। यूरोपीय इतिहासकारोंमें, जिन्होंने भारतके इतिहासपर लेखनी उठायी है, कई ऐसे भी हैं जिनके सत्यानुराग, शुद्ध भाव और निष्कपटतामें हमको कोई सन्देह नहीं। परन्तु प्रायः हमारे विद्यालयोंमें उनकी पुस्तकें नहीं पढ़ाई जातीं।

हमारी सम्मतिमें इस सारे विवादका परिणाम यह है कि—

(क) भारतीय इतिहासकी यथोचित जानकारी प्रत्येक भारतीय बच्चेकी शिक्षाका आवश्यक अङ्ग हो।

(ख) यह आवश्यक है कि भारतीय बच्चोंकी शिक्षाके लिये उनके हाथमें भारतका यथार्थ और विश्वास्य इतिहास दिया जाय।

(ग) इस यथार्थ और विश्वास्य इतिहासका तैयार करना और उसको रुचिर रूपमें अपनी जातिके बच्चोंके सामने उपस्थित करना भारतीय विद्वानों और महापुरुषोंका कर्त्तव्य है और यह ऐसा कर्त्तव्य है कि जिसकी उपेक्षा करना जातीय स्रोतको चिरकालके लिये गन्दे और दुर्गन्धयुक्त कीटाणुओंसे अपवित्र और सड़ा हुआ रहने देना है।

(घ) यह कर्त्तव्य न हिन्दुओंका है और न मुसलमानोंका और न किसी दूसरे धर्म-सम्प्रदायका, वरन् प्रत्येक भारतीयका है कि वह अपने देशकी सत्य घटनाओंका संग्रह करके प्रकाशित करे।

इतिहासके ये अर्थ नहीं कि उसमें प्राचीन राजाओंकी लड़ाइयोंका ही वर्णन हो या उनकी प्रशंसा या निन्दा हो। इतिहाससे अभिप्राय हमारे ऐसे इतिहाससे है जिसमें जातिके धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक, नागरिक, और राजनीतिक उत्कर्ष तथा अधःपतनकी सत्य घटनाओंका उल्लेख हो।

भारतके इतिहासके आधार।

भारतका इतिहास चार बड़े भागोंमें विभक्त किया जा सकता है:—

(प्रथम) ऐतिहासिक कालके पहलेका इतिहास, अर्थात् २५०० वर्षके पहलेका इतिहास।

(द्वितीय) उस समयका इतिहास जब कि इस देशमें हिन्दुओं या बौद्धोंका राज्य था, अर्थात् ईसाके जन्मके ६०० या ७०० वर्ष पहलेसे लेकर ईसाकी दसवीं शताब्दीतक।

(तृतीय) वह काल जिसे कि मुसलमानोंके राजत्वका काल कहा जाता है, अर्थात् दसवी शताब्दीसे लेकर सन् १७५७ तक।

(चतुर्थ) सन् १७५७ ई० से लेकर वर्तमान कालतक। प्रत्येक बड़े भागको फिर आगेसे आगे बांटा जा सकता है।

प्रथम भागके ऐतिहासिक आधार।

भारतके प्राचीन इतिहासके लिये सर्वोत्तम सामग्री संस्कृतकी उन पुस्तकोंसे मिलती है जो प्रामाणिक रूपसे आजसे २५०० या २६०० वर्षसे पहले लिखी गईं। बहुत कुछ सामग्री उन पुस्तकोंमें भी मिलती है जो २५०० से २६०० वर्षके अन्दर अन्दर लिखी गईं परन्तु जिनमें प्राचीन घटनायें और ऐतिह्य वर्णित हैं।

उस कालके राजनीतिक इतिहासका सक्रम वर्णन करनेके लिये पर्याप्त सामग्री मौजूद नहीं। परंतु उस समयके धार्मिक, नैतिक, सामाजिक, कानूनी और साहित्यिक वृत्तान्त जाननेके लिये पर्याप्त सामग्री मौजूद है। उस कालका साहित्य ही उस कालका इतिहास है।

द्वितीय भाग के इतिहासके आधार बहुतसे हैं। उनमेंसे मोटे मोटे आगे दिये जाते हैं:—

(क) बौद्ध धर्मका साहित्य।

(ख) उस समयकी कानूनी पुस्तकें।

(ग) उस समयका साधारण साहित्य, जिसके अन्तर्गत भिन्न भिन्न विद्याओंकी पुस्तकें, पुराण, नाटक और उपाख्यान, इतिहास, ज्योतिष और गणितकी पुस्तकें हैं।

(घ) उस समयके भवन, शिलालेख और मुद्रायें।

(ङ) उस कालके सम्बन्धमें ईरानियों, यूनानियों और रोमवालोंके लेख।

(च) चीनी पर्यटकोंके भ्रमण-वृत्तान्त।

(छ) मुसलमान-पर्यटकोंके यात्रा-वृत्तान्त और अन्य मुसलमानी पुस्तकें, जिनमेंसे प्राचीन भारतके इतिहासके विषयमें अलबेरूनीकी पुस्तक * बड़े महत्वकी है।

इस खण्डमें केवल प्रथम भाग और द्वितीय भागके इतिहास-का वर्णन होगा, इसलिये तृतीय और चतुर्थ भागोंके आधारों-का उल्लेख करनेकी यहां आवश्यकता नहीं।

* इस महत्व पूर्ण पुस्तककी अड़तालीस अध्यायोंका हिन्दी अनुवाद मैं कर चुका हूं। वह 'अलबेरूनीका भारत' नामक पुस्तकके रूपमें इण्डियन प्रेस, प्रयागसे प्रकाशित हो चुका है—अनुवादक।

पहला खण्ड

भूगोल
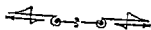
भारतभूमिको भिन्न भिन्न लोग अपनी अपनी भाषामें भिन्न भिन्न नामोंसे पुकारते हैं। यह स्वयं एक छोटा सा महाद्वीप है। इसके उत्तरमें हिमालयकी गिरिमाला लगभग १६०० मील लम्बी है। सभी मानते हैं कि यह पर्वत संसारके सब पहाड़ोंसे ऊँचा है। कवि इकबालने लिखा है—

"पर्वत वह सबसे ऊँचा हमसाया आसमाका।"

यह देश एक प्रकारसे अपने आपमें एक छोटासा संसार है। इसमें प्रत्येक जातिके मनुष्य, प्रत्येक धर्मके अनुयायी, प्रत्येक रङ्गके व्यक्ति और सभ्यता तथा श्रेष्ठताकी दृष्टिसे भी सब प्रकारके मनुष्य मिलते हैं। इस देशके पहाड़ ऊंचे और लम्बे हैं। उनमें बहुतसी बहुमूल्य खानें हैं। इस देशकी नदियां लम्बी, चौड़ी और पानीसे मुंहामुंह भरी हुई हैं। उनमें नावें चल सकती हैं। यहांके वन सैकड़ों वर्गमीलतक फैले हुए हैं। वे प्रत्येक प्रकारकी वनस्पतिसे सज्जित और नाना प्रकारके वृक्षोंसे परिपूर्ण हैं। उनमेंसे बहुतसे अब कट चुके हैं और वहांकी भूमिपर अब खेती होने लगी है।

इस देशमें रेतीले मैदान सैकड़ों मीलोंतक फैले हुए हैं। इनमें रेतके टीलों और कतिपय जङ्गली झाड़ियोंके सिवा हरियाली-

का और कोई चिह्न नहीं। वहां पानी भी पृथ्वी-तलसे बहुत दूर है।

इस देशके अधिक भागमें खेती होती है। भूमि बहुत उर्वरा है, इसलिये अधिक जोतने और खाद डालनेकी आवश्यकता नहीं होती। जिस प्रचुरतासे विविध प्रकारके शस्य, बीज, फल और फूल इस देशमें उत्पन्न होते हैं कदाचित् ही संसारके किसी अन्य भागमें उत्पन्न होते हों। यहांके वृक्ष बड़े सुन्दर, छायादायक और फलदार हैं। हमारे देशके बहुतसे प्रदेश ऐसे हैं जो अपनी उपजकी दृष्टिसे उद्यानके नमूने हैं। उनके दृश्य बहुत ही सुन्दर और मनोहर हैं। वहां सब प्रकारकी जड़ी बूटी, फल फूल और अन्य अनेक वस्तुयें उत्पन्न होती हैं। हमारे पर्वतोंमें बहुतसी घाटियां ऐसी मिलती हैं जो निस्सन्देह स्वर्गका नमूना हैं, जैसे कि काश्मीरकी दृश्यावली, कुल्लूकी घाटियां, और दार्जिलिङ्गकी चोटियां। ये सब इस लोकमें अद्वितीय हैं। काश्मीरके विषयमें किसी कविने सत्य कहा है:—

अगर फ़िरदौस वर रूए ज़मीं अस्त।
हमीं अस्तो हमीं अस्तो हमीं अस्त॥

अर्थ—यदि भूतलपर कोई स्वर्ग है तो वह यही है, यही है, यही है।

भौगोलिक दशा। इस देशकी भौगोलिक दशाका संक्षिप्त वर्णन आगे चलकर किया जायगा। यहां केवल इतना लिखना ही पर्याप्त होगा कि यह देश सारे जगत्का शिरमौर है। सुन्दरता, महत्ता, उर्वरता और सम्पत्तिके साधनोंकी प्रचुरताकी दृष्टिसे संसारका कोई भी अन्य देश इसकी बराबरी नहीं कर सकता। यह देश इस योग्य है कि यहांके निवासी न केवल इसपर अभिमान करें वरन् शुद्धभावसे इसकी पूजा भी करें।

नाम।

आर्य्यावर्त और भारतवर्ष
जैसा कि ऊपर लिख आये हैं, भिन्न भिन्न लोग इस देशको भिन्न भिन्न नामोंसे पुकारते हैं। हिन्दू-आर्य्योंकी भाषामें इसके दो सर्वप्रिय नाम हैं—

(१) आर्य्यावर्त, और (२) भारतवर्ष।

आर्य्यावर्त इस देशके केवल उस उत्तरीय भागका नाम था जिसके उत्तरमें हिमालय पर्वत, दक्षिणमें विन्ध्याचल, पूर्वमें ब्रह्मा तथा बंगालकी खाडी, और पश्चिममें अफगानिस्तान, बलोचिस्तान तथा अरबसागरका कुछ भाग है। भारतवर्ष उस सारे देशका नाम है जो हिमालयसे लेकर कुमारी अन्तरीप-तक जाता है, और पश्चिम तथा पूर्वमें उपरोक्त देशोंके अतिरिक्त बंगालकी खाडी और अरबसागरसे घिरा हुआ है।

हिन्दुस्तान। मुसलमानोंकी पुस्तकोंमें इस देशको हिन्द और हिन्दुस्तान कहा गया है। हिन्दुस्तान शब्द एक समास है जो अफगानिस्तान, बलोचिस्तान, तुर्किस्तान और जाबलिस्तानके ढंगपर दो शब्दोंसे मिलकर बना है। और हिन्द वह पुराना नाम है जो सब विदेशी जातियोंने बहुत प्राचीन कालसे इसे दे रक्खा है। पुरानी रोमन और यूनानी पुस्तकोंमें इस देशके नाम इण्डो, इण्डीज और इण्ड आदि लिखे हैं। 'हिन्दू' उन्हीं शब्दोंका बिगडा हुआ रूप है। बहुत सम्भव है कि इसका यह नाम इण्डस नदीके कारण पड़ गया हो क्योंकि उसको संस्कृतमें सिन्धु नदी कहते हैं। इसी व्युत्पत्तिके कारण यूरोपीय भाषाओंमें इस देशको इण्डिया कहा गया है।

ईस्ट इण्डिया। चौदहवीं शताब्दीमें जब कोलम्बसने भारतवर्षका सागर-पथ ढूंढ निकालनेका बीड़ा उठाया और

अति दीर्घ तथा निराशाजनक यात्राके पश्चात् उसको एटलान्टिक महासागरमें पृथ्वी दिखाई दी तो वह यही समझ बैठा कि वह भूमि भारतकी है। फिर जब यह भूल मालूम हुई तो संसारके उस भागका नाम बदलकर पश्चिमी हिन्द या वेस्ट इण्डीज़ रख दिया गया। इसलिये यूरोपीय लोगोंने हमारे देशका नाम पूर्वी हिन्द या ईस्ट इण्डीज़ रख दिया। परन्तु ईस्ट इण्डीज़ कभी कभी जावा और सुमात्राके द्वीपोंको भी कहते हैं, क्योंकि डच लोगोंने जब सबसे पहले यूरोपका व्यापार पूर्वके साथ समुद्री मार्गसे खोला तब उन्होंने भारतवर्ष, लङ्का और भारतीय सागरके सभी द्वीपोंको, ईस्ट इण्डियाके नामसे पुकारा। कुछ भी हो इस समय हमारे लिये सबसे प्यारा और विश्वव्यापी नाम "हिन्दूस्तान" है।

क्या भारत एक देश है? कुछ लोगोंको यह कहनेका चसका पड़ गया है कि भारत कोई एक देश नहीं। इसका क्षेत्रफल बहुत बड़ा होने और इसमें अनेक जातियोंके ऐसे मनुष्योंकी बस्तीके कारण, जिनके धर्म भी पृथक् पृथक् हैं और जिनकी भाषायें भी अनेक हैं, वे लोग इस देशको एक देश और उसके निवासियोंको एक जाति नहीं मानते। इस प्रश्नके दो अंग हैं, एक तो भौगोलिक दृष्टिके अनुसार और दूसरा राजनीति और सभ्यताकी दृष्टिसे। भौगोलिक दृष्टिसे तो प्रायः सभी मान्य लेखकोंने इस सारे देशको एक अभिन्न देश स्वीकार कर लिया है। सारा देश जो पेशावर और कराचीसे लेकर आसामकी पूर्वी सीमाओंतक फैला हुआ है, और जो लम्बाईमें हिमालयसे कुमारी अन्तरीपतक है, भौगोलिक दृष्टिसे एक ही देश मान लिया गया है।

राजनीतिक दृष्टि। राजनीतिक दृष्टिसे भी अधिकतर लोग

सब इसी मतके हैं कि राजनीतिक अर्थोंमें भी इस देशको एक ही समझना चाहिये। भारतके इतिहासमें कई एक समय ऐसे पाये जाते हैं कि जब अफ़गानिस्तान और बलोचिस्तान भी भारतके साम्राज्यमें मिले हुए थे। हिन्दुओंके समयमें और उसके पश्चात् मुसलमानोंके समयमें भी ये पश्चिमी देश अनेक बार भारतकी राजनीतिक अधीनतामें आये और इसका अंग गिने गये। अब भी बलोचिस्तानके कुछ भाग ब्रिटिश भारतमें सम्मिलित हैं और पूर्वमें ब्रह्मा भी ब्रिटिश भारतके ही अन्तर्गत है। चिरकालतक लङ्का द्वीप भी भारतका ही एक भाग गिना जाता था। इसमें सन्देह नहीं कि राजनीतिक अर्थोंमें सारा भारतवर्ष सदा एक ही राजशक्तिके अधीन नहीं रहा, परन्तु ब्रिटिश शासनके पहले अनेक ऐसे समय हो चुके हैं कि जब वर्तमान ब्रिटिश भारतका अधिकांश नहीं, वरन् सबका सब भारतके राज्यमें ही गिना जाता था। उदाहरणके तौरपर यहां तीन राजाओंके नाम दिये जाते हैं जिनके शासनकालमें वर्तमान ब्रिटिश इण्डियाका प्रायः अधिकांश एक ही राज्यके अधीन था—

(१) महाराजा अशोक,

(२) महाराजा समुद्रगुप्त, और

(३) सम्राट अकबर।

श्रेष्ठता और सभ्यताकी दृष्टिसे। • श्रेष्ठता और सभ्यताकी दृष्टिसे भारतको निश्चय ही एक देश स्वीकार करना उचित है। भारतकी सभ्यता और संस्कृतिकी जड़ हिन्दू सभ्यता है जो इसी देशमें उत्पन्न हुई और जो यहीं विकसित होकर सारे देशमें फैल गयी। सारी हिन्दू सभ्यताकी जड़ एक है, इस सिद्धांतको बहुतसे यूरोपियनोंने मान लिया है। इस हिन्दू-सभ्यताके सम्बन्धमें यह बात निश्चित है कि वह संसारकी

सारी सभ्यताओंसे निराली है और अपने ढंगकी एक ही है। इस सभ्यताके मुख्य मुख्य अंग ये हैं:—

(क) गऊ-माताकी पूजा।

(ख) ब्राह्मणोंका सत्कार और उनकी पूजा।

(ग) वर्णव्यवस्था अर्थात् जाति-पाँतिका भेद।

(घ) बहुत थोड़े ऐसे हिन्दू हैं जो वेदोंको ईश्वरकृत पुस्तकें (श्रुति) नहीं मानते।

(ङ) हिन्दू संस्कृत भाषाको अपनी पवित्र भाषा समझते हैं।

(च) बहुधा हिंदू विष्णु और शिव आदि बड़े बड़े देवताओंको पूजते हैं।

(छ) हिन्दुओंके तीर्थस्थान देशकी उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम, सभी दिशाओंमें फैले हुए हैं। उत्तरमें केदारनाथ और बद्रीनारायण, दक्षिणमें सेतुबंध रामेश्वर, पूर्वमें जगन्नाथजी और पश्चिममें द्वारिका—इन सब तीर्थोंको हिन्दुओंकी बहुत बड़ी संख्या पवित्र मानती है।

(ज) बहुधा हिन्दू-रीतियोंमें उनके पवित्र नगरोंका वर्णन होता है। ये नगर भारतकी चारों दिशाओंमें फैले हुए हैं।

(झ) रामायण और महाभारत हिन्दुओंकी उन पूज्य पुस्तकोंमेंसे हैं जिनको सारे हिन्दू बड़े प्रेम और मानकी दृष्टिसे देखते हैं। इन पुस्तकोंके अनेक भाग हिन्दू-जीवनके विशेष और सम्मानित अंग हैं। रामायणके नायक और महाभारतके नायक श्रीकृष्णजीको सभी हिन्दू पूजते हैं। भगवद्गीता महाभारतका एक भाग है और रामलीला लगभग सारे हिन्दू-समाजमें मनाई जाती है।* प्रत्येक भारतीय बालकका यह

* नोट १—एक बंगाली लेखक, श्रीयुत् राधाकुमुद मुकरजीने इस विषयपर "Fundamental Unity of Hinduism" नामकी एक अतीव रोचक पुस्तक लिखी है। वह पढ़नेके योग्य है।

धर्म है कि वह जिस प्रकार प्रकृतिके अनेक दृश्योंमें परस्पर भेद देखने और सारे देवी देवताओं तथा अनेक सिद्धांतोंको माननेपर भी परमात्माको अद्वैत (एक) समझता है, ठीक वैसे ही वह सारे भारतको एक ही देश समझे और यहांके निवासियोंको निज देशबंधु जाने, चाहे उनकी जाति, वर्ण, और धर्म कुछ भी हो।

हिन्दुओंके पश्चात् सबसे बड़ी संख्या इस देशमें मुसलमानोंकी है। हिन्दू-सभ्यताने मुसलमान-सभ्यतापर अपना प्रभाव डाला है और इस बातसे भी इन्कार नहीं किया जा सकता कि इसलामका भी हिन्दू-सभ्यतापर प्रभाव पड़ा है। इन दोनों संस्कृतियोंकी मिलावटसे इस देशमें एक ऐसी संस्कृति उत्पन्न हो गयी है जिसे एक वचनमें भारतीय सभ्यता या भारतीय संस्कृति कह सकते हैं। हिन्दुओंके बहुतसे साधु, महात्मा और भक्त ऐसे हुए हैं जिनको मुसलमान सम्मानकी दृष्टिसे देखते हैं। मुसलमान फकीरों और भक्तोंमें भी बहुतसे ऐसे हैं जिनको

नोट २—अंगरेज इतिहासकार प्रो॰ विंसेंट स्मिथने, अपनी नवीन पुस्तक, आक्सफोर्ड हिस्टरी आफ इण्डियामें इस विषयपर यह मत प्रकट किया है—

India beyond all doubt passesses a deep underlying fundamental unity, far more profound than that produced either by Geographical isolation or by political suzerainty. That unity transcends the innumerable diversities of blood, colour, language, dress, manners and sect.

अर्थ—निःसन्देह भारतवर्षमें एक गहरी मौलिक एकता है। वह उससे बहुत अधिक गहरी है जो भौगोलिक पृथकत्व और राजनीतिक अधीनतासे उत्पन्न होती है। यह एकता उन असंख्य विभिन्नताओंसे परे है जो जाति, वर्ण, भाषा, पहिनाव, आचार व्यवहार और मत मतान्तरोंसे उत्पन्न होती हैं।

हिन्दू सम्मान और पूजाके योग्य समझते हैं। इसलामकी यह शिक्षा अवश्य है कि मुसलमान अन्य देशोंके मुसलमानोंको अपना प्रिय बन्धु समझें परन्तु इस शिक्षाका यह अर्थ नहीं निकलता कि वे भारतको अपनी जन्म-भूमि और अन्य भारत-निवासियोंको अपना देशबन्धु न समझें। गत पांच सात वर्षकी घटनाओंने हिन्दू मुसलमानोंकी राजनीतिक एकताको ऐसा दृढ़ कर दिया है कि अब किसीको यह कहनेकी गुञ्जायश नहीं रही कि भारत राजनीतिक दृष्टिसे एक अभिन्न भूभाग नहीं है।

भारतकी सीमायें।

भारतके चारों ओरकी सीमाओंका वर्णन यद्यपि पहले कर आये हैं पर यहां उसको संक्षेपसे फिर लिखते हैं।

भारतके उत्तरमें हिमालय पर्वत है। वह १६०० मील लंबा है। इसके पार तिब्बत देश है। इस उत्तरीय भागमें नेपाल, भोटान और सिकिम मिले हुए हैं। भारतके पूर्वमें ब्रह्मा और बङ्गालकी खाड़ी हैं। ब्रह्मा इस समय ब्रिटिश भारतका एक अङ्ग है, परन्तु प्राकृतिक रूपसे वह भारतका अङ्ग नहीं है। भारतके पश्चिममें अफगानिस्तान, बलोचिस्तान और अरबसागर हैं। इसके दक्षिणमें लंकाद्वीप और भारतीय सागर हैं। इस देशका सागर-तट लगभग चार सहस्र मील लंबा है।

भारतके प्राकृतिक विभाग।

साधारणतया यह देश दो प्राकृतिक भागोंमें बंटा हुआ है। इन भागोंको हिन्दुओंकी पुस्तकोंमें उत्तर और दक्षिण लिखा है। उत्तरमें वह भाग है जिसमें सिन्धु, गङ्गा, ब्रह्मपुत्र और उनमें गिरनेवाली उपनदियाँ और नालें बहते हैं। दक्षिण उस भागको

कहते हैं जिसके उत्तरमें विन्ध्याचल है और जो एक प्रायद्वीपके रूपमें कुमारी अन्तरीपतक जाकर समाप्त हो जाता है। कुछ लोग दक्षिणके दो भाग कर देते हैं। दक्षिण-विशेषमें वह भाग गिना जाता है जो उत्तरमें नर्मदा नदी और दक्षिणमें कृष्णा और तुङ्गभद्राके बीचोंबीच स्थित है। दूसरा वह भाग है जो कृष्णा तथा तुङ्गभद्रासे लेकर कुमारी अन्तरीपतक चला गया है।

क्षेत्रफल

भारतवर्षका सम्पूर्ण क्षेत्रफल १८,०२,६५७ वर्गमील है। भारतके उस समस्त भागका क्षेत्रफल जिसमें अङ्गरेजोंका राज्य है और जिसे ब्रिटिश भारत कहते हैं १०,९३,०७४ वर्गमील है। देशी राज्योंका क्षेत्रफल ७,०९,५८३ वर्गमील है।

भारतकी जन-संख्या।

सन् १९२१ ई० की मनुष्य-गणनाका विवरण अभी प्रकाशित नहीं हुआ। सन् १९११ की मनुष्य-गणनाके अनुसार (क) समस्त भारतकी जन-संख्या ३१५१५६३९६ है। प्रत्येक धर्मके अनुयायियोंकी संख्या अलग अलग नीचे लिखी जाती है—

धर्म	जन-संख्या
हिन्दू	२१७५८६८९२
मुसलमान	६६६४७२९९
सिक्ख	३०१४४६६
ईसाई	३८७६२०३
जैन	१२४८१८२
बौद्ध	१०७२१४५३
अन्य	१२०६१९०१

(ख) ब्रिटिश भारतकी जन-संख्या २४४२६७१४२ है।

धर्म्म	जन-संख्या
हिन्दू	१६३६२१४२१
मुसलमान	५७४२३८८९
सिक्ख	२१७१९०८
ईसाई	२४९२२८४
जैन	४५८५७८
बौद्ध	१६४४४०९
अन्य	७४५५०४२

(ग) देशी राज्योंकी जन-संख्या ७०८८८८५४ है।

धर्म्म	जन-संख्या
हिन्दू	५३९६५४६१
मुसलमान	९२२३४१०
सिक्ख	८४२५५८
ईसाई	१३८३९१९
जैन	७८९६०४
बौद्ध	७१०४४
अन्य	४६०६८५८

प्राकृतिक आकृतिमें परिवर्तन।

भूतत्व विद्याके अन्वेषकोंकी सम्मति है कि कभी प्राचीन कालमें उस स्थानपर समुद्र लहरें मारता था जहां इस समय हिमालयके ऊंचेसे ऊंचे शिखर हैं और जहां हिमालयके नीचेके प्रदेशोंमें आजकल पञ्जाब तथा संयुक्तप्रान्त आदि स्थित हैं वहां भी समुद्र ही था। वे यह भी बताते हैं कि इस देशके दक्षिणी भागकी पृथ्वी अफ्रीका महाद्वीपके पूर्वी भागसे मिली हुई थी।

परन्तु इसके अतिरिक्त ऐतिहासिक समयमें भी देशकी प्राकृतिक दशामें बहुत परिवर्तन हुआ है। उदाहरणके लिये नदियोंहीको ले लीजिये। प्रायः सब ही नदियोंके प्रवाह-मार्ग बदल गये हैं। वर्तमान नदियां जिस स्थानपर वैदिक कालमें बहती थीं अब वहां नहीं बहतीं। सतलुज नदी किसी समयमें भटिण्डाके दुर्गके नीचे बहती थी पर अब वह फीरोजपुर नगरसे दो तीन मील दूर बहती है। इसी प्रकार इस समयमें यह कोई नहीं बता सकता है कि जब राजा सिकन्दरने आक्रमण किया था उस समय सिन्धु नदीका प्रवाह-मार्ग कहाँ था; अथवा गङ्गा, कोसी, ब्रह्मपुत्र इत्यादि अन्य नदियां कहाँ कहाँ बहती थीं।

कई नदियोंका तो अब कहीं चिह्न भी नहीं है, जिनमें सबसे अधिक प्रसिद्ध नदी सरस्वती है। हिन्दुओंकी रुचि नदियोंके किनारे बड़े बड़े नगर बसानेकी ओर बहुत थी। इसलिये आजकलके मानचित्रोंपर उनके पुराने नगरोंका पता लगाना प्रायः असंभव है। भारतके इतिहासमें कितने ही नगर ऐसे मिलेंगे जो अनेक बार उजड़े और अनेक बार बसे। कुछके नाम अभीतक वही हैं। पर बहुतोंके बदल गये हैं। कई स्थानोंपर खुदाई करके पृथ्वीके भीतरसे दो दो मंजिले ऊंचे घरोंके खँडहर निकाले गये हैं। ये दबे हुए नगर भारतके प्रत्येक भागमें बहुत मिलते हैं। अनेक स्थानोंपर ये खँडहर बड़े बड़े टीलोंसे ढके हुए हैं। पटनाके समीप भूमिको बहुत गहरा खोदकर प्राचीन पाटलिपुत्रके विशाल राजभवनोंके खँडहर निकाले गये हैं। इसी प्रकार रोहतक और हिसारके जिलोंमें भी भूमि खोदनेपर कई मकान निकले हैं। देहली और कन्नौज आदि बड़े बड़े नगरोंके आस पासकी भूमि इस प्रकारके खँडहरोंसे भरी पड़ी है। रावलपिण्डीके समीप हिन्दुओंका प्रसिद्ध विश्वविद्यालय, तक्षशिला, भूमिको खोदकर

निकाला गया है। उसके अद्‌भुत खँडहर, सामग्री, चित्र और मूर्तियाँ निकालकर परिणामदर्शी लोगों तथा विद्वानोंके अध्ययनके लिये प्रदर्शित की जा रही हैं।

भारतके प्राचीन इतिहासका अध्ययन करके प्रसिद्ध स्थानोंका निश्चय करना अति कठिन काम है। इस विषयमें जो कुछ अन्वेषण गवर्नमेंटके पुरातत्व विभागने किया है और उसके परिणाममें जो कुछ ज्ञान प्राप्त हुआ है वह बहुत मूल्यवान् है। यहां यदि संक्षेपसे भी उसका वर्णन किया जाय तो पुस्तक बहुत लंबी चौड़ी हो जायगी, जो ठीक नहीं है। इसलिये श्री० कनिंगहमके प्राचीन भारतके भूगोलसे लेकर केवल कुछ बातें यहाँ लिखते हैं:—

देशके प्राचीन विभाग

महाभारतमें भारतको नौ खण्डोंमें बाँटा गया है। अब उन नौ भागोंका पता नहीं चलता। परन्तु चीनी पर्यटकोंने भारतको पाँच बड़े प्रान्तोंमें विभक्त किया है। वे पाँच प्रान्त ये थे :—

१ उत्तरीय भारत। इसमें सम्पूर्ण पंजाब-विशेष, काश्मीर तथा अन्य निकटवर्ती पहाड़ी राज्य, सिन्धु नदीके पार सम्पूर्ण पूर्वी अफगानिस्तान और वे सब देशी राज्य हैं जो सरस्वती नदीके पश्चिममें स्थित हैं।

२ पश्चिमी भारत। अर्थात् सिंधु देश, पश्चिमी राजपूताना, थोड़ासा गुजरात तथा कुछ भाग उस प्रदेशका जो नर्मदा नदीके निचले भागमें स्थित है।

३ मध्य भारत। इसमें वह सम्पूर्ण प्रदेश मिला हुआ था जो गङ्गा नदीके किनारोंपर स्थित है, अर्थात् थानेश्वरसे लेकर त्रिकोण द्वीप ('डेल्टा') के मुहानेतक और हिमालय पर्वतसे लेकर नर्मदातक।

४ पूर्वी भारत, अर्थात् आसाम, बङ्गाल, गङ्गाके त्रिकोण द्वीपकी भूमि, सम्भलपूर, उड़ीसा और गंजाम।

५ दाक्षिणी भारत, अर्थात् सम्पूर्ण दक्षिण, पश्चिममें नासिकतक, पूर्वमें गंजामतक, दक्षिणमें कुमारी अन्तरीपतक। इसमें वर्तमान बरार, तैलङ्ग, महाराष्ट्र, कोंकण, हैदराबाद, मैसुर और ट्रावङ्कोर मिले हुए थे, अर्थात् वह सम्पूर्ण प्रदेश जो नर्मदा और महानदीके दक्षिणमें स्थित है।

प्राचीन कालका राजनीतिक-विभाग

चीनी पर्यटक ह्यून साङ्गके पर्यटनके समय सारा भारत अस्सी राज्योंमें विभक्त था। इनमेंसे कई छोटे छोटे राज्य बड़े बड़े राज्योंके अधीन थे। उदाहरणार्थ :—

(क) उत्तर भारतमें काबुल, जलालाबाद, पेशावर, गजनी और बन्नू सब कपिशा-नरेशको कर देते थे। इस नरेशकी राजधानी सम्भवतः चिरीकार थी।

(ख) पंजाब-विशेषमें तक्षशिला, सिंहपुर, उरुष (उसा) पोंच और राजावरी काश्मीरके महाराजाके अधीन थे।

(ग) सारे मैदानी प्रदेश तथा मुलतान और शोरकोटके प्रदेश साङ्गला-नरेशके अधीन थे और यह स्थान लाहौरके समीप था।

(घ) पश्चिमी भारतमें सिन्धके वल्लभी आदि राजा राज्य करते थे।

(ङ) मध्यभारतमें थानेश्वरसे लेकर गङ्गाके मुहानेतकका सारा प्रान्त, उत्तरमें हिमालयसे लेकर नर्मदाके किनारेतक जिसमें जालन्धरका राज्य भी मिला था, कन्नौजके राजा हर्ष-वर्धनके अधीन था। इस प्रदेशमें ३६ राज्य थे जो उसको कर देते थे। इस राजाने महाराष्ट्रके राजाको छोड़कर शेप सब भार-

तीय राजाओं महाराजाओंको जीत लिया था। उत्तरमें काश्मीर तक, उत्तर-पश्चिममें महाराष्ट्रतक और पूर्वमें गंजामतक उसने चढ़ाई की और उस प्रदेशके राजाओंको अपना करद बनाया।

(च) दक्षिणमें महाराष्ट्र, कोसल, कलिङ्ग, आन्ध्र, कोंकण, धनकटक (धनककता), जोरिफा, द्रविड़ और मालयंकूट ये ६ राज्य थे।

नगरों और नदियोंके प्राचीन और वर्तमान नाम और स्थान — पंजाबकी नदियोंके प्राचीन नाम ये हैं —

जेहलम—वितस्ता।
चनाव—चन्द्रभागा।
रावी—ईरावती।
व्यास—व्यासा।
सतलुज—शतद्रु।

अब हम उन कतिपय बड़े बड़े नगरोंके नाम और स्थान बतलाते हैं, जिनका उल्लेख इस पुस्तकमें किया गया है—

तक्षशिला—सुआन नदीके समीप हसन अबदाल और जेहलमके बीच था। बहुत सम्भव है कि इस नगरकी स्थिति वैसी ही थी जैसी कि इस समय रावलपिण्डीकी है।

सिंहापुर या सिंघापुर—जेहलम जिलेके अन्तर्गत कटासके झरनेके समीप था।

मतिपुर—पश्चिमी रुहेलखण्ड।
ब्रह्मपुर—गढ़वाल और कुमाऊँ।
कौशाम्बी—यमुना नदीके तटपर प्रयागसे ऊपर स्थित है।
प्रयाग—इलाहाबाद।
वाराणसी या बनारस—बनारस।
वैशाली—गङ्गा नदीके उत्तरमें तिर्हुत प्रान्त।

सरस्वती—वैदिक कालमें उस नदीका नाम था जो थानेश्वरके नीचे बहती थी। बौद्धकालमें सरस्वती एक प्रदेशका नाम था जो अयोध्याके उत्तरमें राप्ती नदीके तटपर था।

पाटलिपुत्र—पटना।

राजगृह—पाटलिपुत्र और गयाके बीच एक नगर था।

नालन्द—पाटलिपुत्र और गयाके बीच एक प्रसिद्ध विश्वविद्यालय।

दूसरा खण्ड

आर्य्योंके समयके पहले भारतकी दशा

यूरोपके वैज्ञानिकोंका यह मत है कि मनुष्य अपने विकासमें अनेक अवस्थाओंमेंसे होकर वर्तमान अवस्थाको पहुंचा है। यह पहले पशु था और उन्नति करते करते अब उसने मनुष्यका चोला पाया है। यद्यपि इन विचारोंका आधार बहुत कुछ कल्पनापर है तोभी वे बड़े मनोरञ्जक हैं और इन मोटे मोटे सिद्धान्तोंको संसारके बहुतसे विद्वान अब दार्शनिक मानते हैं।

पृथ्वीमण्डलकी बनावट और उसपर प्रारम्भिक जीवनका आरम्भ होना एक बहुत ही रोचक विषय है, पर इस इतिहास-का उससे बहुत सम्बन्ध नहीं है। केवल मुख्य मुख्य घटनायें और कुछ आवश्यक अङ्क यहां लिखे जाते हैं।

कुछ वैज्ञानिकोंका यह मत है कि इस पृथ्वीकी आयु दस करोड़ वर्षसे लेकर एक अरब साठ करोड़ वर्षतककी है। कहनेका प्रयोजन यह है कि भिन्न भिन्न विद्वानोंने इसकी आयु-का पृथक् पृथक् अनुमान किया है। सबसे पहला वह समय बताया जाता है जब बहुत सम्भव है कि, पृथ्वीपर कोई भी जीव विद्यमान नहीं था। दूसरा समय जो पहलेके करोड़ों वर्ष पीछे आया वह समय है जब इसपर केवल छोटी मछलियां

आदिकी सृष्टि हुई। फिर और अधिक अच्छी बनावटकी मछलियां तथा वन आदि प्रकट हुए। इसके पीछेका समय रेंगनेवाले जीवोंका समय कहा जाता है। अन्तिम समय वह है जब पृथ्वीपर घास और जङ्गल उत्पन्न हुए और पशुओंमें दूध पिलानेवाले जीव दिखायी पड़े। (मनुष्य भी एक दूध पिलानेवाला जीव है।) उसीके साथ ही मनुष्यकी भी उत्पत्ति हुई। इस समयके तीन भाग किये गये हैं, अर्थात्—

प्रथम वह भाग जिसको प्राचीन "शिला-काल" कहते हैं या यों कहिये कि जिस समयमें मनुष्य साधारण मोटे मोटे पत्थरके यन्त्रोंसे काम लेता था। मनुष्य-जीवनका यह काल ईसाके समयसे छः लाख वर्ष पहलेका काल गिना जाता है। इस समयमें कई बार बर्फके तूफान आये। वर्तमान आकारकी पृथ्वीको बने हुए लगभग पचास सहस्र वर्ष हुए।

दूसरा समय वह है जिसमें पत्थरके अच्छे यन्त्रोंका विकास हुआ है।

तीसरा समय वह है जब मनुष्यने धातुओंका उपयोग आरम्भ किया।

ऐसा ज्ञान पड़ता है कि प्राचीन कालमें मनुष्योंकी कब्रें नहीं बनायी जाती थीं। उस समयके मनुष्योंके कुछ चिह्न दक्षिणी भारतमें पाये जाते हैं। पर दूसरे कालके अर्थात् सुन्दर शिला-यन्त्रोंके निशान अधिकांशमें दिखायी देते हैं। ऐसा कहते हैं कि इन लोगोंको स्वर्णके अतिरिक्त अन्य किसी धातुके अस्तित्वका ज्ञान न था। वे मिट्टीके बर्तन बनाते और गऊ, भैंस, बकरी इत्यादि पालतू पशु रखते थे। ये लोग खेती बारी करते थे। वे अपने मुर्दोंको धरतीमें गाड़ते और उनकी कब्रें बनाते थे। पर उस समयकी कब्रें भी अब भारतमें विरले ही मिलती हैं।

दूसरा खण्ड

आर्य्योंके समयके पहले भारतकी दशा

यूरोपके वैज्ञानिकोंका यह मत है कि मनुष्य अपने विकासमें अनेक अवस्थाओंमेंसे होकर वर्तमान अवस्थाको पहुंचा है। वह पहले पशु था और उन्नति करते करते अब उसने मनुष्यका चोला पाया है। यद्यपि इन विचारोंका आधार बहुत कुछ कल्पनापर है तोभी ये बड़े मनोरञ्जक हैं और इन मोटे मोटे सिद्धान्तोंको संसारके बहुतसे विद्वान अब दार्शनिक मानते हैं।

पृथ्वीमण्डलकी बनावट और उसपर प्रारम्भिक जीवनका आरम्भ होना एक बहुत ही रोचक विषय है, पर इस इतिहास-का उससे बहुत सम्बन्ध नहीं है। केवल मुख्य मुख्य घटनायें और कुछ आवश्यक अङ्क यहां लिखे जाते हैं।

कुछ वैज्ञानिकोंका यह मत है कि इस पृथ्वीकी आयु दस करोड़ वर्षसे लेकर एक अरब साठ करोड़ वर्षतककी है। कहनेका प्रयोजन यह है कि भिन्न भिन्न विद्वानोंने इसकी आयु-का पृथक् पृथक् अनुमान किया है। सबसे पहला वह समय बताया जाता है जब बहुत सम्भव है कि, पृथ्वीपर कोई भी जीव विद्यमान नहीं था। दूसरा समय जो पहलेके करोड़ों वर्ष पीछे आया वह समय है जब इसपर केवल छोटी मछलियां (Jelly fish) आदि ऐसे जीव थे जिनकी बनावट बहुत सादी थी। इसके पश्चात् वह समय आता है जब समुद्री कछुओं

आदिकी सृष्टि हुई। फिर और अधिक अच्छी बनावटकी मछलियां तथा वन आदि प्रकट हुए। इसके पीछेका समय रेंगनेवाले जीवोंका समय कहा जाता है। अन्तिम समय वह है जब पृथ्वीपर घास और जङ्गल उत्पन्न हुए और पशुओंमें दूध पिलानेवाले जीव दिखायी पड़े। (मनुष्य भी एक दूध पिलानेवाला जीव है।) उसीके साथ ही मनुष्यकी भी उत्पत्ति हुई। इस समयके तीन भाग किये गये हैं, अर्थात्—

प्रथम वह भाग जिसको प्राचीन "शिला-काल" कहते हैं या यों कहिये कि जिस समयमें मनुष्य साधारण मोटे मोटे पत्थरके यन्त्रोंसे काम लेता था। मनुष्य-जीवनका यह काल ईसाके समयसे छः लाख वर्ष पहलेका काल गिना जाता है। इस समयमें कई बार वर्फके तूफान आये। वर्तमान आकारकी पृथ्वीको बने हुए लगभग पचास सहस्र वर्ष हुए।

दूसरा समय वह है जिसमें पत्थरके अच्छे यन्त्रोंका विकास हुआ है।

तीसरा समय वह है जब मनुष्यने धातुओंका उपयोग आरम्भ किया।

ऐसा जान पड़ता है कि प्राचीन कालमें मनुष्योंकी कब्रें नहीं बनायी जाती थीं। उस समयके मनुष्योंके कुछ चिह्न दक्षिणी भारतमें पाये जाते हैं। पर दूसरे कालके अर्थात् सुन्दर शिला-यन्त्रोंके निशान अधिकांशमें दिखायी देते हैं। ऐसा कहते हैं कि इन लोगोंको स्वर्णके अतिरिक्त अन्य किसी धातुके अस्तित्वका ज्ञान न था। वे मिट्टीके बर्तन बनाते और गऊ, भैंस, बकरी इत्यादि पालतू पशु रखते थे। ये लोग खेती बारी करते थे। वे अपने मुर्दोंको धरतीमें गाड़ते और उनकी कब्रें बनाते थे। पर उस समयकी कब्रें भी अब भारतमें विरले ही मिलती हैं।

अधिकांश कब्रें मद्रास प्रान्तके तिनावली जिलेमें मिली हैं। ये लोग मृतक शरीरको एक मर्तवानमें बंद करके गाड़ते थे। भारतमें मृतक शरीरके दाहकी रीति, बहुत सम्भव है कि, आर्य्योंने सबसे पहले चलाई।

इसके पश्चात् उस समयका प्रारम्भ होता है जिसे लोह-काल कहते हैं। कुछ लोगोंका यह विचार है कि लोह-कालके पूर्व यन्त्र, तलवारें, कुल्हाड़ियाँ और भाले ताँबे के बनाये जाते थे। इस प्रकारके शस्त्र मध्य प्रान्त, छोटा नागपुर, तथा कानपुर जिलेके निकट मिले हैं। जिस समयमें ऋग्वेदके मन्त्रोंको सर्व-साधारण मानने लग गये थे, उस समयमें ताँबेके यन्त्रोंका उपयोग होता था। अथर्ववेदमें ऐसे आन्तरिक प्रमाण मिलते हैं जिनसे उस समय लोहेका उपयोग सिद्ध होता है। यूरोपीय अन्वेषक, जो वेदोंके समयको केवल कल्पना द्वारा बहुत संक्षेपसे वर्णन करते हैं, भारतवर्षमें लोह-कालका समय भी ठीक ठीक निरूपित नहीं कर सकते। पर कुछ भी हो, इन सब प्रमाणोंसे यह परिणाम निकलता है कि मनुष्य लगभग आदि कालसे भारतके दक्षिणी भागमें विद्यमान हैं।

प्राचीन कालमें जब उत्तरी भारतमें पानी ही पानी था तब अधिक बस्ती दक्षिणमें ही थी। परन्तु उसके बहुत समय पीछे-तक भी जब उत्तरी भारतमें समुद्रके स्थानपर पृथ्वी बन गई, दक्षिण और उत्तरमें परस्पर सम्बन्ध बहुत थोड़ा रहा।

जैसा कि पहले लिख आये हैं, उत्तरकी बस्ती अधिकांश आर्य्य जातिसे है यद्यपि इसमें अन्य जातियोंका रक्त भी कुछ मिल गया है। दक्षिणी भारतमें कहा जाता है कि अनार्य्य जातिकी बस्ती है और वहांके लोग प्राचीन समयके आदिम मनुष्योंके उत्तराधिकारी हैं। यह कहना तो बहुत कठिन है कि

यह बात कहांतक सत्य है, परन्तु यह तो स्पष्ट है कि जबतक आर्य्योंकी सभ्यताका प्रवेश भारतवर्षमें नही हुआ था उस समयतक यहांकी सभ्यता दक्षिणी ही थी।

भारतीय प्रजाके कौन कौनसे अंग हैं इसका वर्णन भूमिकामें हो चुका है। उसको दुहरानेकी आवश्यकता नहीं। पर संक्षेपसे यह लिख देते हैं कि साधारणतया भारतमें दो प्रकारके मनुष्य पाये जाते हैं। एक वे जो लम्बे डील, श्वेत वर्ण और लम्बी नाकवाले हैं। ये लोग साधारण तौरपर आर्य्य-वंशसे समझे जाते हैं। दक्षिणी भारतमें मालाबारके नामबूद्री ब्राह्मण भी ऐसे ही हैं।

दूसरे प्रकारके वे मनुष्य हैं जिनका डील ठिंगना, रंग काला और नाक कुछ चौड़ी होती है। कहा जाता है कि इस प्रकारके मनुष्य भारतके मूलनिवासियोंकी सन्तान हैं और उनके रक्तमें बहुत थोड़ी मिलावट है।

इनके अतिरिक्त एक और प्रकारके भी मनुष्य हैं जो मङ्गोलियन जातिसे हैं, जैसे कि तिब्बतवाले या गोरखा लोग।

पहले प्रकारके मनुष्य प्रायः उत्तर-पश्चिमसे आये। उनमें हिन्दू आर्य्या (इण्डो आरियन), थोड़ेसे यूनानी, शक, यूची और हूण जातिके भी मनुष्य मिले हुए हैं। इस देशमें हिन्दू आर्य्योंके प्रवेशका ठीक ठीक समय निरूपित नहीं किया जा सकता। पर इस विषयमें जो जो कल्पनायें की जाती हैं उनका वर्णन पहले किया जा चुका है। इसके पश्चात् ऐतिहासिक कालतक इनमें न मालूम कितनी अन्य जातियां आकर मिल गईं। केवल इतना मालूम है कि सिकन्दरके धावेके पश्चात् यूनानियोंकी कुछ संख्या पञ्जाब देश तथा पश्चिमी सीमापर बस गई।

इसके पश्चात् ईसाके दो शताब्दी पहले यहां उस जातिका

प्रवेश हुआ, जिसको हिन्दुओंके ग्रन्थोंमें 'शक' लिखा है। इन लोगोंमें भद्दे, कुरूप तथा छोटे नेत्रवाले मङ्गोल-जातिके मनुष्य भी मिले थे। पर इनके अतिरिक्त इस जातिमें अन्य रूपवान जातियां भी मिश्रित थीं जिनका डोल-डौल और रूप-रंग तुर्कोंके समान आर्य्योंका सा था।

कहा जाता है कि ईसाकी प्रथम शताब्दीमें भारतके अन्दर उत्तर-पश्चिम मार्गसे एक और भी भ्रमणशील जातिका प्रवेश हुआ। इस जातिको यूची कहते हैं। इसके मनुष्य फैलते फैलते नर्मदा-तटतक पहुंच गये। इनके एक प्रसिद्ध अंशका नाम "कुशाण" था जो कि बड़े डील-डौल और श्वेत रंगके थे। बहुत सम्भव है इनका ईरानियोंसे भी कुछ सम्बन्ध था। यह भी कहा जाता है कि कुछ अन्य जातियाँ भी, जिनको साधारण तौर पर 'हूण' कहते हैं, पांचवीं और छठी शताब्दियोंमें मध्य एशिया-के उपवनोंसे चलकर भारतमें आई और यहाँ रहने सहने लगीं। कुछ लोगोंका अनुमान है कि राजपूतोंकी कुछ जातियाँ और जाट तथा गूजर लोग इसी हूण जातिकी सन्तान हैं।

ये सब बातें यहां केवल इस पुस्तकको सर्वाङ्ग पूर्ण बनानेके लिये लिखी गई हैं, पर हमारी सम्मतिमें इन सारे आगमनोंका कोई गहरा प्रभाव भारतकी सभ्यतापर नहीं पड़ा। यह स्पष्ट है कि हिन्दू-आर्य्य भारतमें उत्तर-पश्चिमी दर्रों द्वारा आये और कई शताब्दियोंतक वे एक ओर तो भारतवर्षके निवासियोंसे युद्ध करते रहे और दूसरी ओर नयी आनेवाली जातियोंसे अपनी रक्षा।

इसमें सन्देह नहीं हो सकता कि हिन्दू-आर्य्यों में आदि समूहों-के यहां आनेके पश्चात् उसी प्रकारकी और भी जातियां उत्तर-पश्चिमी मार्गोंसे भारतमें आई होंगी। सम्भव है कि स्वयं हिन्दू

आर्य्योंने इनमेंसे कुछ जातियोंको अपनी सहायता तथा पुष्टिके लिये बुलाया हो।

कुछ समूहोंने नये नये आक्रमणकारियोंसे परास्त होकर यहां शरण ली होगी। कुछ लोग बलात् आ गये होंगे। परन्तु यह स्पष्ट है कि भारतमें प्रवेश करनेके पश्चात् इन जातियोंमें और यहांके हिन्दू-आर्य्योंमें परस्पर कोई भेद नहीं रहा। यहांके आर्य्य-निवासियोंने उनको अपने धर्म तथा समाजमें मिलाकर अपनी जातिमें मिला लिया, जिसके कारण वे अन्य जातियाँ भी हिन्दू-आर्य्योंके समाजका एक अङ्ग बन गईं। मुसलमानोंके प्रवेशके पहले कोई ऐसी जाति भारतमें नहीं आई जो अपने संग नयी सभ्यता या कोई नया धर्म लेकर आई हो और जिसके धर्म या सामाजिक जीवनका प्रत्यक्ष प्रभाव हिन्दू-आर्य्योंके रहने-सहने के ढंगपर पड़ा हो। ऐसी अनेक जातियोंका हिन्दू-शास्त्रोंमें वर्णन पाया जाता है जिनको हिन्दुओंने यज्ञोपवीत देकर हिन्दू बना लिया अथवा द्विज बनाके उनको हिन्दू-समाजमें मिला लिया। यह भी बहुत सम्भव जान पड़ता है कि कुछ लोग भारतसे विदेश जाकर पतित भी हो गये होंगे जिन्हें फिरसे शुद्ध करके समाजमें मिला लेनेकी आवश्यकताका अनुभव हुआ हो।

हिन्दू-आर्य्योंके प्रवेशके पहले भारतका इतिहास केवल कल्पनाके आधारपर स्थित है, पर दक्षिणमें आर्य्य-सभ्यताके विलम्बसे प्रवेश होनेके कारण ऐसा प्रतीत होता है कि उसके उन्नत दशामें पहुंचनेके पश्चात् भी बहुत कालतक दक्षिणमें वहांकी प्राचीन सभ्यता प्रचलित रही, जिसके कुछ आदि चिह्न रामायण आदि अनेक ग्रन्थोंमें पाये जाते हैं। दक्षिणके कुछ नवयुवक विद्वान उस सभ्यताके इतिहासको लिप-

नेका यत्न कर रहे हैं। सम्भव है कि उनके इस उद्योगके सफल होने पर इस विषयपर कुछ अधिक प्रकाश पड़ सके। पर अभी तो इतना ही कहना पर्याप्त है कि वैदिक कालसे पूर्व समयके भारतीय भी जंगली नहीं थे यद्यपि उनकी सभ्यता और वैदिक सभ्यतामें प्राकृतिक भेद था।

तीसरा खण्ड
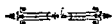
वैदिक काल ।

पहला परिच्छेद
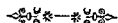
वैदिक साहित्य और रीति-नीति

हिन्दुओंके सबसे प्राचीन ग्रन्थ वेद हैं ।

हिन्दू आर्य्य जातिकी सबसे प्राचीन पुस्तकें वेद हैं। इनको हिन्दू पवित्र और भगवद्वाणी मानते हैं। हिन्दू आर्य्योंकी यह प्रतिज्ञा है कि वेद ईश्वरीय ज्ञान हैं। जिस प्रकार परमेश्वर नित्य और सनातन है, ठीक उसी प्रकार उसका यह ज्ञान भी नित्य और सनातन अर्थात् अनादि कालसे हैं। सृष्टिके आदिमें मुक्त आत्माओं द्वारा उस ज्ञानका प्रकाश होता है। वर्तमान सृष्टि १९५५८८५००० वर्षोंसे है।

यूरोपीय लोग इस कथनको स्वीकार नहीं करते और अनेक युक्तियों तथा प्रमाणोंसे वैदिक कालका निश्चय करते हैं। वे लोग ऋग्वेदको प्राचीनतम मानते हैं और उसको ईसाके जन्मसे ढाई या तीन सहस्र वर्ष पूर्वका निरूपित करते हैं। उनका

मत है कि वेदोंके अनेक अङ्ग भिन्न भिन्न समयमें रचे और लिखे गये हैं। तथापि यह माना जाता है कि आर्य्य सन्तानके साहित्य-भाण्डारमें ऋग्वेद सबसे अधिक प्राचीन पुस्तक है।

वेद चार हैं। वेद गिनतीमें चार हैं, अर्थात् ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद। ये प्राचीन समयकी संस्कृतमें हैं जो कि आधुनिक संस्कृतसे बहुत भिन्न है। संस्कृत भाषामें परिवर्तन होते रहे हैं और इसलिये कुछ संस्कृत शब्दोंके अर्थ भिन्न भिन्न कालोंमें भिन्न भिन्न रहे। सब विद्वानोंका एक मत है, कि वर्तमान संस्कृत भाषा पढ़ लेनेसे वेदोंका ठीक अर्थ समझमें नहीं आ सकता। हिन्दुओंकी यह प्रतिज्ञा है कि वैदिक संस्कृतके सब शब्द सार्थक हैं। जिस कालमें भारतमें वैदिक संस्कृत बोल-चालकी भाषा थी उसको वैदिक काल और उस समयके प्रचलित धर्मको वैदिक-धर्म कहते हैं। वेद अधिकांश पद्यमें हैं और इनके पदोंको मंत्र कहते हैं। इन मन्त्रोंके समूहको संहिता कहा जाता है।

वैदिक साहित्य (क) ब्राह्मण—बड़े खेदकी बात है कि वेदोंका कोई प्राचीन भाष्य विद्यमान नहीं। लोगोंका विचार है कि वे भाष्य राजनोतिक परिवर्तनोंमें शायद लोप हो गये। इस अनुमानका कारण यह है कि संस्कृत पुस्तकोंमें कहीं कहीं ऐसी पुस्तकोंका उल्लेख है जो अब नहीं मिलतीं। फिर भी जिन पुस्तकोंको सहायतासे वेदके अर्थ किये जाते हैं उनका संक्षेपसे यहां वर्णन करते हैं। वेदोंके पश्चात् जो सबसे प्राचीन संस्कृत ग्रन्थ पाये जाते हैं उनको ब्राह्मण-ग्रन्थ कहते हैं। उनमें कुछ वेद-मंत्रोंका भाष्य भी किया गया है।

प्रत्येक वेद-संहिताके पृथक् पृथक् ब्राह्मण हैं। प्रसिद्ध ब्राह्मण-ग्रन्थ ये हैं :—

ऋग्वेदके दो ब्राह्मण हैं, एक ऐतरेय और दूसरा कौशिकीय। यजुर्वेदके भी दो ब्राह्मण हैं, एक शतपथ और दूसरा तैत्तिरीय। सामवेदके तीन हैं, ताण्डय, षड्विंश और छान्दोग्य।

इन ग्रन्थोंमें कुछ वेद मंत्रोंके उपयोगके अवसर लिखे हैं। यज्ञ करनेकी रीतिपर बहुत वादविवाद है। इसके अतिरिक्त धार्मिक और नैतिक शिक्षा भी इनमें दी गई है जिसमें कहीं कहीं पर बड़े गूढ़ सिद्धान्तोंका वर्णन है।

(ख) उपनिषद्—ब्राह्मणोंके अतिरिक्त वैदिक साहित्यमें जो पुस्तकें प्रामाणिक मानी जाती हैं उनमें दस प्रसिद्ध उपनिषद हैं। उनके नाम ये हैं:—केन, प्रश्न, कठ, मुण्डक, माण्डूक्य, ईश (या वाचस्पति), ऐतरेय, छान्दोग्य, तैत्तिरीय, बृहदारण्यक*।

उपनिषद् शब्दका अर्थ है "रहस्य", मानों इन पुस्तकोंमें उस विद्याकी शिक्षा है जिसको ज्ञानी लोग गुप्तविद्या अर्थात् ब्रह्म-ज्ञान कहते हैं।

शाहजहां बादशाहके पुत्र दाराशकोहने इन ग्रन्थोंका फारसी भाषामें अनुवाद कराया और उनको ब्रह्मज्ञानके ग्रन्थोंमें सर्वोत्तम पदवी दी।

उपनिषदोंके अनुवाद लातीनी, जर्मन और अङ्गरेजी भाषाओं-में भी मौजूद हैं। यूरोपके कुछ विद्वानों और दार्शनिकोंने उनको बहुत उच्च कोटिकी पुस्तकें माना है†।

---

* कुछ विद्वानोंके मतसे ग्यारह उपनिषद मान्य हैं। देखो अध्यापक मैक्स मुलर कृत उपनिषदोंका अनुवाद।

† जर्मनीका आधुनिक समयका प्रसिद्ध दार्शनिक शोपन हावर लिखता है कि उपनिषदोंके द्वारा मुझे अपने जीवनमें शान्ति प्राप्त हुई और मेरे अन्तकालमें भी मुझे उन्हींसे शान्ति मिलेगी। उसकी सम्मतिमें संसारकी कोई पुस्तक उनके समान महत्वपूर्ण और उनके ऊँचे विचारोंसे सम्पन्न नहीं है। अध्यापक

वेदों, ब्राह्मण-ग्रन्थों और उपनिषदोंकी संस्कृत।

वेदों, ब्राह्मण ग्रन्थों और उपनिषदोंकी भाषामें भी बहुत अन्तर है। इससे यह प्रत्यक्ष है कि ये ग्रन्थ भिन्न भिन्न कालोंमें लिखे गये और उन कालोंमें भी परस्पर बड़ा अन्तर है। फिर भी इन ग्रन्थोंकी भाषा और उनसे पीछेके संस्कृत साहित्यकी भाषामें इतना भारी अन्तर है कि सभी विद्वान इन पुस्तकोंको अति प्राचीन मानते हैं। इनके अतिरिक्त जो अन्य पुस्तकें वैदिक साहित्यके अन्तर्गत हैं उनका आगे संक्षेपसे वर्णन किया जाता है।

उपवेद—वास्तवमें उपवेद चार हैं।

(१) धनुर्वेद, अर्थात् युद्ध-विद्या।
(२) गान्धर्ववेद, अर्थात् संगीत विद्या।
(३) अथर्ववेद, अर्थात् शिल्प-विद्या।
(४) आयुर्वेद, अर्थात् वैद्यक।

वेदाङ्ग—वैदिक साहित्यको ठीक ठीक तौरपर समझनेके लिये यह आवश्यक है कि मनुष्य कमसे कम विद्याकी उन छः शाखाओंसे परिचित हो जिनको हिन्दू-शास्त्रोंमें "वेदाङ्ग" कहते हैं। वे छः वेदाङ्ग ये हैं :—

पहला—शिक्षा।
दूसरा—छन्द
तीसरा—व्याकरण।
चौथा—निरुक्त।
पाँचवाँ—ज्योतिष
छठवाँ—कल्प अर्थात् धर्म्म-शास्त्र।

मैक्समुलरने वेदान्तपर अपने व्याख्यानोंमें कहा है कि यदि इस कथनके समर्थनकी आवश्यकता हो तो मैं सहर्ष समर्थन करता हूँ।

शिक्षा और व्याकरण इनमेंसे पहला और तीसरा अर्थात शिक्षा और व्याकरण वास्तवमें एक ही विद्याकी शाखायें और अङ्गरेजी शब्द 'ग्रामर' में समाविष्ट हैं।

वैदिक व्याकरणमें सबसे प्रसिद्ध और नामी पुस्तक पाणिनिकी रची हुई अष्टाध्यायी है। यह पुस्तक आकारमें बहुत छोटी सी है परन्तु इसमें मजमून इतना भरा हुआ है कि उसकी व्याख्यामें पतञ्जलि ऋषिने एक भारी ग्रन्थ लिखा है। इस ग्रन्थको 'महाभाष्य' कहते हैं। अष्टाध्यायीमें पूर्ण योग्यता प्राप्त करनेके लिये महाभाष्यका अध्ययन आवश्यक है और पण्डितोंमें महाभाष्यके जाननेवालोंका पद बहुत ऊंचा होता है। वैदिक व्याकरण बड़ा पूर्ण व्याकरण है। इसमें भाषाकी रचना और उसके परिवर्तनोंपर सम्यक्रूपसे विचार किया गया है। व्याकरणने जैसी उन्नति संस्कृतमें की है वैसी किसी भी दूसरी भाषामें नहः की। वेदोंके विद्यार्थीके लिये अष्टाध्यायीमें निपुणता प्राप्त करना बहुत आवश्यक है।

छन्द और निरुक्त छन्दशास्त्रपर जो प्रसिद्ध पुस्तक है वह पिङ्गल ऋषिकी बनाई हुई है। उसको पिङ्गल छन्दसूत्र कहते हैं।

निरुक्तपर इसी नामकी एक पुस्तक यास्क मुनिकी रची हुई है। यह ऐसी पुस्तक है जिसमें अनेक वेद-मन्त्रोंके अर्थ दिये हुए हैं। हिन्दू-पण्डित-समाजमें यह पुस्तक बड़े आदरकी दृष्टिसे देखी जाती है। वेदार्थके सम्बन्धमें इसका प्रमाण सर्वोपरि समझा जाता है।

पुस्तकके विषयसे ऐसा जान पड़ता है कि जिस कालमें इस पुस्तककी रचना हुई उस कालमें भी वेदार्थके विषयमें बहुत भिन्नता हो गई थी। इससे यह परिणाम निकलता है कि

वैदिक काल और निरुक्तके निर्माण-कालके बीच बहुत अन्तर होगा।

ज्योतिष ज्योतिष विद्या हिन्दू-आर्य लोगोंमें बहुत प्राचीन कालसे पायी जाती है। वरन् जबतक यह सिद्ध न हो कि इनके पहले और किसी जातिको भी यह विद्या मालूम थी तबतक यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि हिन्दू-आर्य ज्योतिष-विद्याके आविष्कारक थे और बादको उन्होंने इस विद्याको उन्नतिकी चरम सीमातक पहुंचा दिया था।

कल्प कल्पसे तात्पर्य्य सारे धर्म्म-सूत्रोंसे है। संस्कृत-साहित्यमें 'सूत्र' शब्द ऐसा ही प्रसिद्ध और अर्थगर्भित है जैसा कि 'श्रुति और स्मृति'।

श्रुति शब्दका प्रयोग वेदोंके लिये होता है और किसी २ स्थानपर वेदों, ब्राह्मणों और उपनिषदोंके लिये भी। स्मृतिसे तात्पर्य्य धर्म-शास्त्रकी पुस्तकोंसे है। बहुत सी स्मृतियोंकी रचना सूत्रोंमें की गई है। सूत्र ऐसे वाक्यको कहते हैं जिसमें बहुतसे विषयको बहुत ही थोड़े शब्दोंमें भर दिया गया हो। सूत्रकारोंने एक भी फालतू या अनावश्यक शब्दका प्रयोग नहीं किया। सारे मतलबको ठीक तौरपर प्रकट करनेके लिये ऐसी ग्रन्थियें बांधा है कि एक शब्दको घटा-बढ़ा देनेसे अर्थोंमें अन्तर पड़ जाता है। आर्य लोगोंका मानसिक भाण्डार प्रायः सूत्रोंके रूपमें है। सारा धर्म-शास्त्र, अर्थात् हिन्दुओंकी सारी कानूनी पुस्तकें, उनका व्याकरण, उनका तत्त्वज्ञान, उनका तर्कशास्त्र, उनकी गणित-विद्या, उनका वैद्यक, उनका पदार्थ-विज्ञान, और उनकी ब्रह्मविद्या सबके सब सूत्रोंमें वर्णित हैं; और ये सूत्र ऐसी चतुराईसे बनाये गये हैं कि संसारमें उनकी कोई उपमा नहीं। यद्यपि इनका अपना आकार संक्षिप्तसे संक्षिप्त है परन्तु इनकी

व्याख्यामें बड़े बड़े ग्रन्थ लिखे गये और लिखे जा रहे हैं। इन सूत्रोंका विशेष वर्णन हम "आर्य्योंकी क्रियायें" शीर्षकके नीचे करेंगे।

वैदिक अभिधान

वैदिक अभिधान भी आजकलकी संस्कृतके शब्द-कोशसे भिन्न हैं। इस विषयके दो प्रसिद्ध ग्रन्थ निघण्टु और उणादि कोश हैं।

दूसरा परिच्छेद

वैदिक धर्म्म।

वैदिक कालमें आर्य्य लोगोंका धर्म्म वही था जिसका उपदेश वेद करते हैं और जिसकी व्याख्या ब्राह्मण-ग्रन्थों और उपनिषदोंमें की गई है। इन पुस्तकोंमें वे अनुष्ठान भी दिये गये हैं जो वैदिक कालमें आर्य्य हिन्दू लोगोंमें प्रचलित थे।

वेद अपौरुषेय हैं।

वैदिक धर्म्मके विषयमें स्वयं हिन्दुओंमें और फिर हिन्दू और यूरोपीय पण्डितोंमें, बहुत मत-भेद है। हिन्दुओंके कई सम्प्रदाय (जिनमें आर्य-समाज सबसे अधिक प्रसिद्ध है) यह मानते हैं कि केवल चार वेद-संहितायें ही ईश्वरकृत हैं, ब्राह्मण, उपनिषद, इतिहास और पुराण उनकी व्याख्या हैं। बहुतसे सनातनधर्मी यह मानते हैं कि ये सभी पुस्तकें ईश्वरकृत हैं। इसके अतिरिक्त हिन्दू विद्वानोंमें इस विषयमें भी मत-भेद है कि वेदका केवल ज्ञान ही ईश्वरीय है या उसके शब्द भी। कई ऋषि, जिनमें महर्षि पतञ्जलि भी एक हैं, केवल ज्ञानको ईश्वरीय मानते हैं। परन्तु दूसरे बहुत-

से ऋषि ऐसे हैं जो शब्द और अर्थ दोनोंको ईश्वरीय स्वीकार करते हैं।

वेदोंका धर्म एक ईश्वरकी पूजा है या तत्वोंकी पूजा ?

आर्य-समाजियोंकी प्रतिज्ञा है कि वेदोंमें एक ईश्वरकी पूजाके सिवा और किसीकी पूजा नहीं है। वेदमें जिन नाना देवीदेवताओं-का उल्लेख है वे भी सब परमात्माहीके नाम हैं। यहांतक कि वेदोंमें भी इस बातकी भीतरी साक्षी विद्यमान है कि अग्नि, इन्द्र, वरुण और मित्र आदि जो देवता पूज्य और आराध्य बतलाये गये हैं वे सब एक ही परमेश्वरके नाम हैं। सनातनधर्मी पण्डित यह तो स्वीकार करते हैं कि वेदोंमें एक ईश्वरकी पूजा है, परन्तु वे यह भी मानते हैं कि ये नाना देवी देवता ईश्वरके भिन्न भिन्न गुण हैं, और इनका अलग अस्तित्व भी है। वेदोंमें कोई विवाद नहीं। इनमें या तो प्रार्थनायें हैं या विधियां हैं। परन्तु कुछ भी हो प्रायः सभी विद्वान-क्या सनातनधर्मी, क्या आर्यसमाजी और क्या यूरोपीय, इस बातमें एकमत हैं कि वेदोंमें मूर्तिपूजा नहीं है, और न मूर्तिका और न मन्दिरोंका उल्लेख है।

वैदिक धर्मकी सरलता और उच्चता।

वेदोंकी भाषा अतीव गहन है। उसका समझना बहुत कठिन है। तोभी कुछ मन्त्र सरल और स्पष्ट हैं और उनके विषय बहुत ही उच्च हैं। मेरी सम्मतिमें संसारकी शायद ही कोई दूसरी पुस्तक ऐसी हो जिसमें इस प्रकारके उच्च विषयोंका ऐसी सरलता-पूर्वक वर्णन किया गया हो। वैदिक धर्म उन लोगोंका धर्म था जो अपनी प्रकृतिकी सरलता और सचाई-से अपने हृदयके गम्भीर भावोंको अति सादे और स्पष्ट शब्दोंमें प्रकाश करते थे, और जिन्होंने हृदयकी पवित्रता और भावोंको

उच्चतामें बहुत ऊंचा स्थान प्राप्त किया था। अतएव चाहे ये पुस्तकें अपौरुषेय मानी जायँ या पौरुषेय, इनके विषय ऐसे हैं जिनसे भारतवर्षके प्रत्येक मनुष्यको, चाहे वह किसी भी मत या सम्प्रदायका हो, कुछ न कुछ परिचय अवश्य होना चाहिये। कई मन्त्र तो अपनी सुन्दरता, अपनी रचना, और अपने उच्च भावोंकी दृष्टिसे संसारमें अनुपम हैं। उदाहरणार्थ आगे दिये मन्त्र निर्भयता सिखलाते हैं:—

यथा द्यौश्च पृथिवी च न विभीतो नरिष्यत। एवामे प्राण मा विभेः॥ १॥ यथाहश्च रात्री च न विभीतो०॥ २॥ यथा सुर्य्यश्च चन्द्रश्च०॥३॥ यथा ब्रह्म च क्षत्रं च०॥४॥ यथा भूतं च भव्यं च न बिभीतो न रिष्यतः॥ ५॥ एवामे प्राणमाविभेः॥ ६॥

अर्थ—१-जैसे द्यौ और पृथ्वी निर्भय हैं और कभी नुकसान नहीं उठाते वैसे ही मेरी आत्मा अभय रहे।

२-जैसे दिन और रात निर्भय हैं और कभी नुकसान नहीं उठाते वैसे ही मेरी आत्मा अभय रहे।

३-जैसे सूर्य और चन्द्र अभय हैं और कभी नुकसान नहीं उठाते वैसे ही मेरी आत्मा अभय रहे।

४ जैसे ब्राह्मणत्व और क्षत्रियत्व अभय हैं और कभी नुकसान नहीं उठाते वैसे ही मेरी आत्मा अभय रहे।

५ जैसे भूत और भविष्यत् अभय हैं और कभी नुकसान नहीं उठाते वैसे ही मेरी अत्मा अभय रहे।

(अथर्व वेद, काण्ड २, सूत्र १५, मन्त्र १—५)

अभयं मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञातादभयं परोक्षात्।
अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु।

(अथर्व० कां० १९ सू० १५ मं० ६।)

अर्थ—हमें मित्रसे भय न हो, हमें शत्रुसे भी भय न हो। जो

कुछ हमें ज्ञात है उससे हमें भय न हो और जो कुछ हमें ज्ञात नहीं है उससे भी हमें भय न हो। न हमें दिनमें भयहो और न रातमें। सब ओरसे हम अभय रहें।

आगे दो तीन मन्त्र स्वतन्त्रताकी प्रशंसामें दिये जाते हैं:—

१-आ सर्वतातिमदितिं वृणीमहे। ऋग्वेद, कां० १०, सू० १००, मन्त्र १।

अर्थ—१-हम स्वतन्त्रता और परमानन्द चाहते हैं।

आदित्यासो अदितयः स्याम पूर्देवत्रावसवोमर्त्यत्रा। सनेम-मित्रावरुणा सनन्तो भवेमद्यावापृथिवी भवन्तः॥ १॥

ऋ० ७।५२।१

अर्थ—२-हे देवताओं और मनुष्योंमें शक्तिके केन्द्र! हम प्रत्येक प्रकारकी दासतासे बचे रहें। हे जीतनेवाले! हम मित्रोंके मित्रको जीतें और हे सर्वशक्तिमान् सत्ता! हम धन, शक्ति और यशसे जीवित रहें।

३-नू मित्रो वरुणो अर्यमानस्त्मनेतोकाय वरिवो दधन्तु। सुगानो विश्वा सुपथानि सन्तु यूयंपात स्वस्तिभिः सदानः॥३॥

(ऋ० ७। ६२। ६)

अर्थ—मित्र, वरुण और अर्यमन हमें अपने और अपने बच्चोंके लिये स्वतन्त्रता और स्थान दे। हमारी यात्राके लिये सब मार्ग साफ और शुभ हों। हे स्वामिन्! हमें सदा आशीर्वादके साथ सुरक्षित रख।

४-बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चादुतोत्तर स्मादधरादघायोः। इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरिवः कृणोतु। अथर्व० २०।१७। ११॥

अर्थ—बृहस्पति हमको पीछेसे, ऊपरसे, नीचेसे, दुष्कर्मोंसे सुरक्षित रक्खे। इन्द्र हमको जगह और स्वतन्त्रता प्रदान

करे, जैसा कि मित्रोंका मित्र आगेसे और मध्यसे प्रदान करता है।

ऋग्वेदके दसवें मण्डलका १२६ वां सूक्त सृष्टिकी उत्पत्तिके विषयमें उच्चकोटिके तत्त्वज्ञानसे भरा हुआ है। उदाहरणार्थ दो मन्त्र नीचे दिये जाते हैं:—

नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं नासीद्रजो नो व्योमा परोयत्। किमावरीवः कुह कस्य शर्मन्नम्भः किमासीद्गहनं गभीरम् ॥१॥

२-इयं विसृष्टिर्यत आबभूव यदि वा दधे यदि वा न। यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन्त्सो अङ्ग वेद यदि वा न वेद ॥७॥

अर्थ—१ उस समय न असत् (जगत्) था, न सत् (प्रकृति), न पृथ्वी थी न आकाश। कोई वस्तु इनको आच्छादित करनेवाली भी न थी। क्या और किसके लिये कुछ होता? यह गहरा समुद्र भी उस समय कहां था?

२ यह सृष्टि जिससे उत्पन्न हुई है वही एक इसे धारण करनेवाला है। जो इस विस्तृत आकाशमें व्यापक और उसे धारण करता है वही इसके विषयमें जान सकता है।

एक और मन्त्र भी नकल किया जाता है। इसमें सर्व सृष्टिको मित्रकी दृष्टिसे देखनेका उपदेश है:—

दृते दृँह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्। मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे। मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ॥ यजुर्वेद ३६। १८।

अर्थ—मेरे टूटे फूटे काममें मुझे दृढ़ करो। सब प्राणी मुझे मित्रकी दृष्टिसे देखें। मैं सब प्राणियोंको मित्रकी दृष्टिसे देखूं। सब एक दूसरेको मित्र-दृष्टिसे देखें।

संगच्छध्वं संवदध्वं संवोमनांसिजानताम्। देवाभागंयथा पूर्वे संजानाना उपासते ॥ २ ॥

अर्थ—तुम्हारी चाल एक हो, बात एक हो, हृदयके भाव एक हों, प्राचीन कालसे जिस प्रकार देवता लोग एक भावसे अपने अपने यज्ञके भागको लेते हैं उसी प्रकार तुम भी धनको बांटो।

समानोमन्त्रः समितिः समानो समानं मनः सहचित्तमेषां।
समनमन्त्रममिमंत्रयेवः समानें घोहविषा जुहोमि ॥ ३॥

अर्थ—तुम्हारी सलाहें एक हों, तुम्हारी सभाका एक मत हो, तुम्हारे विचार और विश्वास एक ही हों। तुम्हारे भीतर मैं एकताका मन्त्र फूंकता हूँ। एक ही आहुतिसे मैं तुम्हारे लिये यज्ञ करूं।

समानीव आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वीमनोयथावः सुसहासति ॥ ४ ॥

अर्थ—तुम्हारे संकल्प एक हों। तुम्हारे हृदय ऐसे एक हों कि तुममें पूर्णरूपसे एकता स्थापित रहे।

इस प्रकारके बहुतसे मन्त्र दिये जा सकते हैं, परन्तु इनसे पुस्तकका आकार अनुचित रूपसे बढ़ जायगा।

ब्राह्मण ग्रंथोंका धर्म

ब्राह्मण-ग्रन्थ प्रायः अनुष्ठानोंके नियमोंका समुच्चय है। आर्योंका सबसे बड़ा अनुष्ठान यजन करना था। हवन यजनका आवश्यक अङ्ग था। ये यजन व्यक्तिगत, सामूहिक, और जातीय पवित्रता-के लिये किये जाते थे। हवनमें सुगन्धित पदार्थ जलाये जाते थे। यजन शब्दके अर्थोंमें धर्मका प्रत्येक ऐसा कृत्य आ जाता है जिसमें त्यागका भाव काम करता हो और जिससे दूसरेका कुछ हित-साधन होता हो। ये यजन कई प्रकारके हैं। इनका सविस्तार वर्णन "हिन्दुओंके रीति-रिवाज" शीर्षकके नीचे किया जायगा। इन ब्राह्मण-ग्रंथोंमें इन यज्ञोंकी रीति और उनके रीति-

रियाजोंका वर्णन है। परन्तु उनका यह भाग जिसको आरण्यक कहते हैं, अर्थात जो वनमें तैयार हुआ, तत्त्वज्ञानके गहन-विवादोंसे पूर्ण है।

उपनिषदोंकी शिक्षा। उपनिषदोंकी शिक्षा बहुत ही गहन, गम्भीर और सूक्ष्म है। उनके विचार बहुत ही श्रेष्ठ और उच्च कोटिके हैं। उनमें जीवन और मृत्युके सभी प्रश्नोंकी अतीव विद्वत्तापूर्ण और दार्शनिक व्याख्या की गई है। ससार-के साहित्यमें ये पुस्तकें अद्वितीय हैं। भूमण्डलके सभी धर्मोंके विद्वानोंने उनकी प्रतिष्ठा की है। हिन्दुओंके वेदान्तके आधार उपनिषद् हैं। उपनिषदोंके विषय ऐसे सरल और काव्य-मय नहीं हैं जैसे कि वेदोंके हैं। उनमें प्राय. वे कथनोपकथन और विवाद हैं जो तत्कालीन धार्मिक नेताओ, ऋषियों और वान-प्रस्थोंके और उनके शिष्योंके बीच हुए। परन्तु उन विवादोंमें कटुता और मनोमालिन्यका कहीं नाम निशान नहीं। धार्मिक दृष्टिसे सभी गहन और कठिन विषयोंपर प्रकाश डाला गया है और उत्पत्ति, जीवन और मृत्युके सभी रहस्योंपर विचार किया गया है। उपनिषदोंकी शिक्षा निस्सन्देह उच्च कोटिका एकेश्वरवाद है। यद्यपि इस बातपर विद्वानोंका मत भेद है कि उपनिषद् द्वैतवादका प्रतिपादन करते हैं या अद्वैतवादका, परन्तु मेरी सम्मतिमें उनमें दोनों प्रकारकी शिक्षा मौजूद है। उपनिषदोंका उद्देश्य मत मतान्तरोंका कायम करना नहीं वरन् केवल अपने विचारोंका प्रकट करना था।

तीसरा परिच्छेद

वैदिक कालकी सभ्यता।

वैदिक कालकी सभ्यताका चित्र अधिकतर वैदिक साहित्यमें ही मिलता है, क्योंकि प्रामाणिक रूपसे उस समयके कोई भवन अथवा मन्दिर विद्यमान नहीं हैं। फिर भी यह सामग्री ऐसी पर्याप्त है कि इससे वैदिक कालका अच्छा खासा चित्र तय्यार किया जा सकता है। आर्य्योंके धर्मका उल्लेख तो ऊपर हो चुका है। अब उनका सामाजिक और राजनीतिक जीवन तथा उनके रहन-सहनका संक्षिप्त वर्णन किया जायगा।

रहन सहनका ढङ्ग कृषि और भोजन। हिन्दु-आर्य्य लोगोंके विषयमें कई यूरोपीय इतिहासकारोंने लिखा है कि वे अस्थिरवासी थे। परन्तु यह बात सर्वथा असत्य है। इस बातका बहुत पर्याप्त प्रमाण मौजूद है कि आर्य्य लोग भारतमें आनेके पहले और भारतमें आनेके बाद भी मैसोपोटेमिया अर्थात् इराक अरब, इराक अजम, फारस और अफगानिस्तानके प्रदेशोंमें राज्य करते थे और कृषि-शास्त्र, वास्तुविद्या और शस्त्र-निर्माण-विद्यासे भली भांति परिचित थे। ऐसा ज्ञान पड़ता है कि हिन्दू आर्य्यों के पहले भारतमें रहनेवाले लोग अधिकतर चावल खाते थे, चावलकी खेती करते थे और जंगली फल खाते थे। हिन्दु-आर्य्योंने उनको गेहूं, जौ आदि अनाज तथा सरसों और तिल आदि बीज और नाना प्रकारके फल उत्पन्न करना सिखलाया। आर्य्य लोग पशु भी असंख्य रखते थे। वे गऊ और घोड़ेकी बड़ी कदर करते थे। वेदोंमें जो शब्द गऊके

लिये आया है उससे स्पष्ट प्रकट होता है कि वैदिक आर्य्योंके हृदयमें गऊके प्रति बड़ा सम्मान था। यद्यपि यह कहना असम्भव है कि वे लोग मांस बिलकुल न खाते थे, पर शायद यह कहना ठीक होगा कि मांस उनका साधारण भोजन न था। दूध, अन्न, तरकारी और फल यही उनका साधारण भोजन था।

रूईकी खेती और कपड़ा बुनना। इस बातका भी पर्याप्त प्रमाण मौजूद है कि प्राचीन आर्य्य कपड़ा बुनना, चमड़ा रंगना और धातुकी नाना वस्तुयें बनाना भली भांति जानते थे। रूईकी खेती सबसे पहले भारतमें हुई और रूईका वस्त्र सबसे पहले इसी देशमें बनाया गया। भारतसे रूईकी खेती और रूईसे कपड़ा बनानेकी विद्या पूर्वमें चीन और जापानतक और पश्चिममें पहले अरबमें, और फिर अरबसे यूरोपमें प्रचलित हुई। यहां तक कि रूईके लिये अंग्रेजीमें जो शब्द "काटन" प्रयुक्त होता है वह अरबी शब्द 'कुतन' का अपभ्रंश है।

वास्तुविद्या। प्राचीन आर्य घर बनाकर रहते थे। वे दुर्ग बनाते थे। यज्ञ-शाला बनानेमें भी वास्तुविद्यासे काम लेते थे। आर्य्य धातुओंका उपयोग भी अच्छी तरह जानते थे। यद्यपि लोग कई यूरोपीय ऐतिहासिक इस बातमें सन्देह करते हैं कि वैदिक कालके आर्य्योंको लोहेका ज्ञान था, परन्तु यह तो सब कोई मानता है कि उस कालमें तांबा, सोना और चाँदीका प्रचुर उपयोग किया जाता था। लोहेके उपयोगके प्रमाण भी पर्याप्त मौजूद हैं। आर्य्य लोग धनुष-बाणके अतिरिक्त भाला और सैनिक कुठारका भी उपयोग करते थे। वे घोड़ोंके रथपर चढ़कर लड़ते थे।

सामाजिक जीवन वर्ण विभाग और जातिभेद। वैदिक कालमें जाति-पांतिका भेद ऐसा न था जैसा कि अब है। स्मरण रहना चाहिये कि जैसा कि पहले कह आये हैं आर्य्योंके पहले

इस देशके अधिवासी सारेके सारे असभ्य और अशिक्षित न थे। द्राविड़ रहन-सहनमें पुरुषोंकी तुलनामें स्त्रियोंको बहुत अधिक स्वतन्त्रता और अधिकार प्राप्त थे। पिताके स्थान माता ही प्रत्येक परिवारकी मुखिया और अग्रणी गिनी जाती थी। विवाहोंकी ऐसी रीति न थी जैसी कि आजकल है। वरन् कहा जाता है कि स्त्रियां और पुरुष जब मेलों या पर्वोंके अवसरोंपर एकत्र होते थे तो आपसमें सम्भोग करते थे और उससे जो सन्तान होती थी वह अपनी माताकी देखरेखमें पालित और पोषित होती थी। इस प्रकार कई बार एक एक स्त्रीके कई कई पति भी होते थे। सारे घरका काम और गांवका प्रबन्ध स्त्रियोंके सिपुर्द था। पुरुष प्रायः शिकार करते थे, वे जब गाँवोंमें आते थे तो पृथक् भागमें सोते थे। परन्तु आर्य्योंका रहन सहन इससे सर्वथा भिन्न था। उनके यहां विवाहकी रीति प्रचलित थी और अधिक सम्भव है कि कि वैदिक कालमें एक पतिकी एक ही पत्नी होती थी। बहुपत्नीत्वकी प्रथा न थी। परिवारका मुखिया पिता होता था। जब आर्यों का द्रविड़ लोगोंसे मेल जोल हुआ तो द्रविड़ लोगोंने अपने रहन सहनका ढङ्ग बदलकर आर्योंका सामाजिक जीवन ग्रहण कर लिया। आरम्भमें जैसा कि प्रकट है, प्रजाके अन्य भागोंकी अपेक्षा युयुत्सु पुरुषोंकी प्रतिष्ठा अधिक थी। अतएव जातिका नेतृत्व क्षत्रियोंके सिपुर्द था। वही लड़नेवाले और वही पुरोहित थे। आर्य्योंमें धर्म-बुद्धिका विकास उनके भारतमें आनेसे पहले ही हो चुका था। अतएव प्रत्येक कुल और प्रत्येक गोत्रका यह कर्त्तव्य था कि वह अपने धर्म-कृत्य अपने सर्वोत्तम मनुष्योंसे करवाये। प्रत्येक कुल अपनी भिन्न भिन्न शाखायें फैलनेपर गोत्र बन जाता था। साधारणतः एक गांवमें एक गोत्रके लोग रहते थे और

उसी गोत्रके बड़े लोग लड़नेवाले और धर्मकृत्य करानेवाले होते थे।

जब आर्य्य लोगोंने भारतमें आकर यहांके प्रचलित रीति रवाजों और रहन सहनकी शैलीको देखा तो उनको यह चिन्ता हुई कि कहीं उनकी जातीय पवित्रता और धार्मिक व्यक्तित्वमें अन्तर न आ जाये *। ये लोग अपने आपको दूसरोंसे श्रेष्ठतर और उच्चतर मानते थे और समझते थे कि वे परमेश्वरके विशेष प्रिय मनुष्य हैं और उनके पास एक धर्म-पुस्तक है। इसके अनुसार वे अपनी धार्मिक रीतियोंकी रक्षा करना और अपने उच्च नैतिक और आध्यात्मिक आदर्शोंको स्थिर रखना अपना कर्त्तव्य समझते थे। अतएव बहुत सम्भव है कि भारतमें आ बसनेके थोड़े ही दिन पश्चात् उनको इस बातकी आवश्यकताका अनुभव हुआ कि वे अपने समाजका एक ऐसा विभाग नियत करें जो उनकी इस उच्च धार्मिक और सामाजिक श्रेष्ठताकी रक्षा कर सके। आर्य्य लोगोंकी नीति और उनकी आध्यात्मिकताकी यह विशेषता है कि वे अपनी सैनिक उत्कृष्टतापर उतना भरोसा न करते थे जितना कि अपने आध्यात्मिक बल और अपनी सभ्यतापर। उन्होंने भारतके मूल निवासियोंसे लड़ाइयां अवश्य लड़ीं और उनको पराजित किया, परन्तु उनको नष्ट नहीं किया, उनको अपमानित नहीं किया, और उनके रीति-रिवाजमें बलात् हस्तक्षेप नहीं किया। उन्होंने शनैः शनैः

* संसारकी सभी बड़ी बड़ी जातियोंमें, विशेषत यहूदियों, चीनियों और अरबोंमें, यह विचार पाया जाता है। अपने अपने समयमें सभी प्रबल जातियां अपने आपको परमेश्वरकी विशेष प्रिय और उत्कृष्ट सन्तान समझती रही हैं। वर्तमान कालमें यूरोपके लोग अपनेको समाग्यत ऐसा ही समझते हैं। परन्तु जर्मन लोगोंने और सबसे इस धारणाको बहुत दृढ़ किया। आज अङ्गरेज भी ऐसा समझते हैं कि वे संसारमें शासन करने और सभ्यता फैलानेके लिये उत्पन्न हुए हैं।

अनुग्रह और प्रेम बर्तावसे उनको अपने सामाजिक बाड़ेमें सम्मिलित कर लिया और उनको अपना नैतिक और आध्यात्मिक शिष्य बनाकर बहुत शीघ्र समताकी पदवी दे दी। बहुतसे प्रमाणोंसे यह प्रतीत होता है कि आर्य्य लोगोंने भारतके आदिम निवासियोंमेंसे जो लोग अच्छे और शिष्ट थे उनको अपने संगठनमें सम्मिलित कर लिया और गायत्रीका उपदेश देकर उनको द्विज बना लिया। यह धारणा सर्वथा निर्मूल है कि आर्य लोगोंने भारतके सभी आदिम निवासियोंको शूद्र बनाया। हां, यह अवश्य है कि आरम्भमें उन्होंने अपने वंशको पवित्र रखने लिये ऐसे उपाय अवश्य किये जिनसे उनकी जातिमें मिश्रण कम हो और वे अपनी सभ्यताके आदर्शसे न गिर जायं। परन्तु जिस समय द्रविड़ लोगोंने अपने पहले रीति-रवाजको छोड़कर आर्य्य लोगोंकी नैतिक और आध्यात्मिक प्रथायें स्वीकार कर लीं तो उन्होंने उनको अति उदारतासे अपने समाजमें मिला लिया और उनको उनकी योग्यता तथा गुण-कर्म और स्वभावके अनुसार पद दिया। आरम्भमें क्षत्रिय सबसे ऊंचा गिना जाता था परन्तु ऐसा जान पड़ता है कि क्रमशः धार्मिक नेताओंको सर्वोच्च स्थान देनेकी आवश्यकताका अनुभव होने लगा ताकि वे सारी जातिके चरित्र और आध्यात्मिकताकी रक्षा कर सकें और उनके जीवन लड़ाई-भिड़ाईके भयसे सुरक्षित रहें। हिन्दू-शास्त्रोंमें इस बातका पर्याप्त प्रमाण विद्यमान है कि हिन्दू आर्य्योंने अपने प्रारम्भिक इतिहासमें वर्णको जन्मसिद्ध नहीं समझा। उन्होंने अतीव स्वतन्त्रता-पूर्वक लोगोंको अपने गुण, कर्म और स्वभावके अनुसार वंश-भेदका विचार छोड़कर भिन्न भिन्न वर्णोंमें भर्ती किया और फिर उनके पतित हो जानेपर उनको बहिष्कृत भी किया। ऐसा प्रतीत

होता है कि वैदिक कालके बहुत समय पश्चात्तक जाति-पांतिका यह बंधन कड़ा नहीं हुआ और उसपर वह जंजीरें नहीं लगाई गई जो बादको लगाई गई हैं। वर्ण-विभागका आरम्भ आजुर्वेदके इस एक मंत्रसे बतलाया जाता है :—

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां ॅ शूद्रो अजायत ॥ यजुः ३१।११ ॥

अर्थ—ब्राह्मण उसका (ईश्वरका) मुंह हुआ, क्षत्रिय बाहु, वैश्य टांगें और शूद्र पैर।

परन्तु इस मंत्रसे केवल यही प्रकट होता है कि मन्त्रद्रष्टाऋषिकी दृष्टिमें मनुष्यसे भिन्न भिन्न कर्म किस दर्जेकी प्रतिष्ठा और सम्मानके पात्र हैं। यह वर्णन अलङ्काररूपमें है न कि किसी सत्य घटनाके उल्लेखके रूपमें। और जो घटनायें इस काल और इसके पीछेके कालमें मालूम होती हैं उनसे भी इस बातका समर्थन होता है। देखिये, प्राचीन हिन्दू-शास्त्रोंमें सैकड़ों नाम ऐसे मनुष्योंके आते हैं जो अतीव छोटी जातियोंमें उत्पन्न हुए और फिर ब्राह्मणोंमें परिगणित हुए। ऐसे भी नाम पाये जाते हैं जो आरम्भमें ब्राह्मण थे परन्तु पीछेसे अपने दुष्कर्मोंके कारण पतित हो गये। हिन्दू शास्त्रोंमें इस बातका यथेष्ट प्रमाण मिलता है कि बाहरसे आये हुए विदेशियोंको यज्ञोपवीत देकर और गायत्रीका उपदेश करके द्विज बनाया गया और भारतके अन्त्यज लोगोंको भी यह पदवी दी गई। इससे साफ प्रकट होता है कि चिरकालतक आर्य्यसमाजमें वर्ण-विभाग केवल गुण, कर्म और स्वभावके अनुसार रहा, और आर्य्य लोग इस बातको अपना धर्म समझते रहे कि अनार्य्य लोगोंको उपदेश और शिक्षा द्वारा आर्य्य बनाकर समाजमें सम्मिलित कर लें। वर्ण-विभाग और जाति-भेद कब कड़ा हुआ, इसका काल निरू-

पण करना बड़ा कठिन है। परन्तु कुछ भी हो, यह वैदिक कालमें कड़ा न था।

स्त्रियोंका स्थान।

वैदिक कालके साहित्यसे यह भी मालूम होता है कि वैदिक समाजमें स्त्रियोंका स्थान बहुत ऊंचा था। यद्यपि उनको वह स्वतन्त्रता और वह शक्ति प्राप्त न थी जो द्रविड़ लोगोंके मातृक संगठनमें स्त्रियोंको प्राप्त थी, तो भी इस बातका पर्याप्त प्रमाण मौजूद है कि विवाह एक दूसरेकी पसन्दसे होता था और विवाहके पश्चात् दुलहिन अपने घरमें स्वाधीन स्वामिनी समझी जाती थी। यहांतक कि यदि वृद्ध माता पिता उसके साथ रहना पसंद करें तो उनको भी उस की आज्ञा माननी पड़ती थी। हिन्दू-समाजमें इस समय स्त्रीकी जो स्थिति है वह अवनतिका चिह्न है।

हिन्दू समाजमें शिल्पियोंका स्थान।

ऐसा मालूम होता है कि वैदिक कालमें जहां ब्राह्मणोंके कामकी बहुत ऊंची पदवी थी वहां शिल्प कलाकौशल और वाणिज्यको भी घृणाकी दृष्टिसे नहीं देखा जाता था। जातिका एक बड़ा भाग इन्हीं कार्योंमें लगा रहता था और वे बहुत सम्मान-की दृष्टिसे देखे जाते थे। शिल्पशास्त्रकी बहुत उच्च पदवी थी। जो लोग शिल्प-शास्त्रके अनुसार यज्ञशाला बनाते थे या ग्रामों, भवनों और कृषिसम्बन्धी मकानोंकी कल्पना और आलेख्य तैयार करते थे उनको ब्राह्मणकी पदवी दी जाती थी। शूद्रोंकी कोटिमें वही लोग थे जो केवल मेहनत और मजदूरी करते थे।

मदिरा।

बहुतसे यूरोपीय लोग कहते हैं कि वैदिक-आर्य्य एक विशेष प्रकारकी मदिरा पीते थे। उसका नाम 'सोमरस' था। 'सोम' एक वनस्पति-का नाम था। आज कोई नहीं बतला सकता कि कौन सी वन-

स्पति है। पारसी लोग अब भी सोमयज्ञ करते हैं और उसमें एक प्रकारका रस बनाकर पीते हैं। परन्तु वह नशीला नहीं है वरन् कड़वा है। इसके अतिरिक्त इस बातकी और कोई साक्षी मौजूद नहीं कि वैदिक आर्य्य नशीली वस्तुओंका सेवन करते थे। कहा जाता है कि वैदिक साहित्यमें एक शब्द 'सुरा' आता है जो एक प्रकारकी हल्की मदिरा थी। परन्तु यह भी केवल एक आनुमानिक बात है। इसका कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं।

संगीत शास्त्र। प्राचीन आर्य्य गाना, नाचना और घुड़-दौड़ करना जानते थे और सम्भवतः पासोंके साथ जुआ खेलते थे।

वैदिक कालकी राजनीतिक पद्धति। वैदिक कालकी राजनीतिक पद्धति अधिकांशमें प्रजातन्त्र थी। वैदिक आर्य्य लोग बड़े बड़े नगर नहीं बनाते थे वरन् प्रायः देहातमें रहते थे। बहुधा गांव एक ही वंशके मनुष्योंसे आबाद थे। गांवका प्रबंध प्रायः एक पञ्चायतके सिपुर्द होता था। यह पञ्चायत गांवके भिन्न भिन्न परिवारोंके मुखियों द्वारा चुनी जाती थी। प्रायः गांव स्वतन्त्र थे और वे अपनेमेंसे एकको राजा निर्वाचित करते थे। उसको पदच्युत और अलग कर देनेका भी उनको अधिकार था। इसी प्रकार बहुतसे ग्राम मिलकर भी अपना राजा और अपनी राजसभाका निर्वाचन करते थे। इनमेंसे कई राजा परस्परीण भी बन जाते थे। परन्तु वैदिक कालकी राजनीतिक व्यवस्थामें किसी राजाको क़ानूनके विरुद्ध आचरण करने या अपने अधिकारोंको अन्यायपूर्वक जातिके वृद्धोंकी सभा या पञ्चायतकी आज्ञाओंके विरुद्ध काममें लानेका अधिकार न था। वेदोंमें बहुतसे मन्त्र ऐसे हैं जिनमें

यह लिखा है कि राजा किस प्रकारका होना चाहिये। वैदिक साहित्यमें राजाओंके चुनाव और उनको पदच्युत करनेकी रीतियां भी लिखी हैं। वहां न्याय करने और युद्ध आरम्भ करनेके नियम भी वर्णित हैं।

आर्य्य-युद्ध-नीतिमें विपाक्त वाणोंका उपयोग निषिद्ध है और न किसीको यह आज्ञा है कि वह शस्त्र छिपाकर किसीपर आघात करे या निहत्थे मनुष्यपर शस्त्र चलावे। उनके नियममें यह भी आज्ञा न थी कि जो लोग युद्धमें सम्मिलित नहीं उनकी हत्या की जाय या अन्य रीतियोंसे उन्हें दुःख दिया जाय। सोये हुए और घोर रूपसे आहत शत्रुपर प्रहार करना अपराध था। नंगे व्यक्तिपर या जिसके शस्त्र टूट गये हों या जिसका कवच खोया गया हो उसपर भी आघात करनेकी आज्ञा न थी। ऐसा जान पड़ता है कि गत पांच सहस्त्र वर्षोंमें संसारने युद्ध-नीतिमें उन्नतिके स्थान अवनति की है। आजकल वे जातियां अपने आपको बहुत ही सभ्य और शिष्ट समझती हैं जो निहत्थोंपर हथियार चलाती हैं, जो वायुयानोंसे स्त्रियों और बच्चोंतककी हत्या करना अनुचित नहीं समझतीं, जो जलमग्न नावों द्वारा न लड़नेवाली जातियों और निरपराध मनुष्योंके जहाज डूबोती हैं और जो विपाक्त धुएँसे शत्रुकी प्रजाकी अकथनीय हानि करती हैं।

प्राचीन आर्य्योंकी नागरिकता।

ऐसा मालूम होता है कि आर्य्योंके आनेके पहले अनार्य्य लोगोंकी नागरिकता बहुस्वामिक Communel थी। गांवकी आबादी विभाजित न थी और न व्यक्तिगत सम्पत्तिकी प्रथा थी। जो कुछ उत्पन्न होता था या पुरुष जो कुछ बाहरसे उठाकर लाते थे वह आवश्यकतानुसार बांट लिया जाता था। प्राचीन आर्य्य

लोगोंने आकर इस नागरिकतामें किसी कदर परिवर्त्तन किया, यद्यपि उनके समयमें भी चिरकालतक खेतीकी भूमियों और रहनेके मकानोंमें स्वामित्वके कोई अधिकार स्वीकार नहीं किये गये।

भूमियां समय समयपर खेतीके लिये गांवके अधिवासियोंमें बांट दी जाती थीं और किसी मनुष्यको अपनी कृषिकी भूमिको बेचने या रेहन करनेका अधिकार न था। गांवके इर्द-गिर्द कुछ भूमि पशुओंके चरनेके लिये जङ्गलके रूपमें शामिलात छोड़ी जाती थी। गांवके जोहड़ और कुएं सब शामलात थे। हां, यह सम्भव है कि ढोर डंगर प्रत्येकके अपने अलग हों और उपज भी स्वकीय सम्पत्ति समझी जाती हो। कृषिके अतिरिक्त लोग अन्य नाना प्रकारके व्यवसाय भी करते थे। प्रत्येक गांव अपनी आवश्यकताओंको पूरा कर लेता था। सम्भव है व्यवसायी लोगोंको उनकी सेवाओंका पुरस्कार खेतीकी भूमियोंकी उपजके भागके रूपमें दिया जाता हो जैसा कि अंगरेज़ी राज्यके आरम्भतक होता रहा है और कई स्थानोंमें अब भी है।

विद्यायें वैदिक आर्य्य गद्य और पद्यकी कलासे परिचित थे। कई वेद-संहितायें पद्यमें हैं परन्तु ब्राह्मण-ग्रन्थ गद्यमें हैं इसके अतिरिक्त जैसा कि पहले कह आये हैं, इन लोगोंने संक्षिप्त वर्णनकी एक ऐसी विधि निकाली थी जो संसारमें अनुपम है। इसे संस्कृत भाषामें "सूत्र" कहा गया है। हिन्दुओंने अपनी सारी विद्याओंको सूत्रोंके रूपमें वर्णन किया है। एक ओर व्याकरणके सूत्र हैं तो दूसरी ओर धर्म्म सूत्र और श्रौत सूत्र। श्रौत सूत्रोंमें यज्ञ करनेकी भिन्न भिन्न रीतियों और अनुष्ठानोंका वर्णन है। धर्म्म-सूत्रोंमें कानून और शिक्षा-पद्धति आदि हैं। परन्तु आर्य्योंके बहुतसे दूसरे शास्त्र भी

जिनमें दूसरे प्रकारकी विद्याओंका उल्लेख है, सूत्रोंके रूपमें वर्णित हैं। यह कहना बहुत कठिन है कि जो सूत्र इस समय मौजूद हैं वे अपने वर्तमान रूपमें किस समयके बने हुए हैं परन्तु यह बात स्पष्ट है कि उनका मूलाधार वैदिक कालीन है। हिन्दुओंका तत्वज्ञान और तर्कशास्त्र भी सूत्रोंके रूपमें वर्णित है। इनको संस्कृत भाषामें दर्शन कहा गया है।

चौथा परिच्छेद

—:०:—

आर्योंके महाकाव्य।

महाकाव्य। संसारके साहित्यमें महाकाव्योंको एक विशेष स्थान प्राप्त है। यूरोपके महाकाव्य अर्थात् युद्धकी कवितायें-यूनानी महाकवि होमर रचित इलियड और ओडेसी, इटालियन कवि होरेस रचित वर्जिल जगत् प्रसिद्ध हैं। इसी प्रकार फारसीमें फिरदौसीका शाहनामा बड़ी उच्च कोटिकी पुस्तक है। संस्कृत-साहित्यमें रामायण और महाभारतको बहुत उच्च स्थान प्राप्त है। उनकी कविता उत्तम उनकी भाषा पवित्र और उनके विचार अति निर्मल हैं, संस्कृत साहित्य तो क्या, संसार भरके साहित्यमें ये दोनों ग्रन्थ अद्भुत गिने जाते हैं। यूरोपीय विद्वान महाभारतकी कथाको रामायणकी कथासे प्राचीन मानते हैं, परन्तु हिन्दु-विद्वान महाभारत को पीछेकी रचना मानते हैं। देखिये, साधारणतया कहा

रचना है और महाभारतकी अन्तिम लड़ाईसे कलियुगका आरम्भ हुआ, जिसको आज चार हजार नौ सौ अठानवे वर्ष हो चुके। वास्तवमें निश्चयपूर्वक यह कहना कि जिन घटनाओंका इन ग्रन्थोंमें उल्लेख है वे कब घटित हुईं और कब ये ग्रंथ लिखे गये, असम्भव है। अङ्गरेज विद्वानोंका विचार है कि जब आर्य लोगोंने पंजाबको पार करके गङ्गा और यमुनाके बीचके प्रदेशमें राजधानियां प्रतिष्ठित की थीं उस समय वे घटनायें घटित हुईं जिनका इन ग्रन्थोंमें वर्णन है, चाहे इनके घटित होनेके बहुत काल पीछे ये दोनों ग्रन्थ लिखे गये। परन्तु इन ग्रन्थोंमें उनकी रचनाकी जो कथा मिलती है वह इस विचारका समर्थन नहीं करती। डाकृर हण्टर* महाशय लिखते हैं कि यह सम्भव है कि रामायणके कुछ भाग महाभारतके पहलेके हों। हिन्दू लङ्का-विजयके स्मारकके रूपमें प्रति वर्ष आश्विनमें दशहरेका पर्व मनाते हैं, और फिर उससे कोई पन्द्रह दिन पीछे कार्तिक मासमें श्रीरामचन्द्रजीके अयोध्यामें लौट आनेकी स्मृतिमें दीपावलीका त्योहार करते हैं। दीपावलीके उपलक्ष्यमें सब हिन्दू-भवनोंमें सफाई होती है, मकान सजाये जाते हैं और प्रत्येक मकानमें प्रकाश किया जाता है। बाजारोंमें भी प्रकाश किया जाता है। भाई बन्दों और मित्रों-सम्बन्धियोंको मिठाई बांटी जाती है। हिन्दू-पुरुष और हिन्दू-स्त्रियां रामायणकी कथा सुननेके लिये बड़ी उत्सुक रहती हैं। इस कथाका सुनना वे बड़ा पुण्य कर्म समझती हैं।

रामायण

रामायण वाल्मीकि मुनिकी रचना है। यह श्रीरामचन्द्रजी महाराजके समयका इतिहास है या यों कहिये कि यह उनका जीवन चरित है। पुस्तक-

* देखो, हण्टर महाशय कृत इण्डियन इम्पायर, पृष्ठ १९९

की वर्णन-शैलीसे ऐसा जान पड़ता है कि इसका कर्ता श्रीरामचन्द्रजीका समकालीन था। क्योंकि कथामें अनेक स्थलोंपर ग्रन्थकर्त्ताका उल्लेख मिलता है। इसी महाकाव्यमें आर्योंके दक्षिण और लङ्काको जीतनेका वर्णन है।

रामचन्द्रजी कोशल नरेश दशरथके पुत्र थे। उनकी राजधानी अयोध्यामें थी। अयोध्या अवध प्रान्तमें है। ऐसा जान पड़ता है कि उस समय गङ्गाके निकट आर्य जातिके तीन बड़े राज्य थे। एक तो कोशल राज्य अवधमें, जिसमें महाराज रामचन्द्रजीका जन्म हुआ था। दूसरा उत्तर विहारमें विदेहोंका। वहाँके राजा विदेहकी पुत्री श्रीसीताजीसे श्रीरामचन्द्रजीका विवाह हुआ। तीसरा काशी राज्य, वर्तमान बनारसके आसपास। रामचन्द्रजीकी कथा भारतवर्षमें बहुत प्रसिद्ध है।

रामायणके प्रारम्भिक भागमें रामचन्द्रजीके जन्म, उनके शिक्षण, और उनके विवाहका वर्णन है। आर्योंके प्रसिद्ध ऋषि वसिष्ठ रामचन्द्रजी और उनके भाइयोंके गुरु थे। जब रामचन्द्रजी और उनके भाई विद्या प्राप्त कर चुके और जवान हो गये तब विश्वामित्रजी उन्हें म्लेच्छोंके साथ लड़नेके लिये ले गये। इस युद्धमें इन क्षत्रिय युवकोंने विजय पाई। तत्पश्चात् सीताजीका स्वयम्वर रचा गया। वहाँ रामचन्द्रजीने समस्त देशके राजाओं, महाराजाओं, और राजकुमारोंके सामने, शिवजीका धनुष, जो किसीसे न उठता था, उठाया, और इस प्रकार स्वयंवर जीतकर राज-कन्या सीताजीको प्राप्त किया।

रामचन्द्रजी महाराजा दशरथके सबसे बड़े पुत्र थे। कुछ कालके अनन्तर राजाने उनके राज्याभिषेककी तैयारी की। इसपर उनकी छोटी रानी कैकेयीके मनमें ईर्ष्या और द्वेषकी अग्नि उत्पन्न हुई। यह भरतकी माता थी। यह किसी समय रणमें

अपने पतिकी सहायता करके उससे तीन वर पानेकी प्रतिज्ञा ले चुकी थी। उसने इस समय वही प्रतिज्ञा स्मरण कराई और राजासे वर माँगा कि रामचन्द्रजीको चौदह वर्षके लिये वनवास और मेरे पुत्र भरतको राजतिलक दिया जाय। महाराज दशरथ यह सुनकर बड़े दुःखित हुए। यद्यपि उन्होंने रामचन्द्रजीको आप वनवासकी आज्ञा नहीं दी, पर जब रामचन्द्रजीको सारी बातका पता लगा तब उन्होंने अपने पिताके वचनको पूरा करनेके निमित्त कैकयीकी इच्छानुसार कार्य करनेका दृढ़ निश्चय कर लिया। उनके छोटे भाई लक्ष्मण और धर्मपत्नी सीताजी भी उनके साथ चलनेको तैयार हो गईं। अन्ततः बहुत कुछ हेरफेरके पश्चात् श्रीरामचन्द्रजी, उनके भाई लक्ष्मण और श्रीसीताजी, ये तीनों दण्डक वनके लिये चल पड़े। भरतजीने बड़े भाईके वियोग और माताके द्रोहपर केवल शोक ही नहीं प्रकट किया वरन् सारे परिवार और राजकर्मचारियोंको साथ ले वह रामचन्द्रजीको मार्गमें जा मिले और उनसे लौट आनेकी प्रार्थना करने लगे। पर उन्होंने ऐसा करनेसे इन्कार कर दिया। तब वह उनकी खड़ाऊं साथ लाये और उनको राजसिंहासनपर रखकर आप केवल एक निक्षेप-रक्षकके रूपमें राज्य करने लगे।

रामायणकी कथा बड़ी ही हृदयद्रावक है और आर्य्योंके धर्म तथा आचारका एक अत्युत्तम नमूना है।

इस घटनावलीको कविने ऐसी ललित और मर्मस्पर्शी भाषामें वर्णन किया है और मानवी भावोंका ऐसी उत्तम रीतिसे चित्र खींचा है कि उसकी तुलना किसी दूसरे साहित्यमें मिलनी कठिन है। कैकेयीके द्वेष, दशरथके शोक, रामचन्द्रजीकी पितृभक्ति और धर्मपरायणता, कौशल्याके संताप, लक्ष्मणके भ्रातृ-

स्नेह तथा भक्तिभाव, और सीताजीके पातिव्रत्यका जो दुर्लभ चित्र रामायणमें देखनेको मिलता है वह आर्योंके उच्च आचार और पवित्र जीवनका आदर्श बताता है। आगे चलकर जब कवि भरतजीको जो उस समय अपने नानाके यहां थे, अयोध्यामें वापस लाता है तब वह और ही कवि-कौशल दिखलाता है। भरतका निःस्वार्थ प्रेम और धर्मानुकूल आचरण प्रत्येक पाठकके सामने पवित्रता और शुद्ध प्रेमका आदर्श स्थापित करता है।

वनमें राम और लक्ष्मणपर अनेक विपत्तियां आती हैं। अन्तको उनके दुर्भाग्यकी चरमसीमा आ पहुंचती है। एक दिन आखेटसे वापस आकर, वे क्या देखते हैं कि सीताजी कुटीमें नहीं। ढूंढने और खोजनेसे पता लगता है कि लङ्काका राजा रावण उन्हें बलात् उठा ले गया है। सीताजीके सतीत्व और रावणकी कामान्धताका चित्र खींचनेमें भी कविने अप्रतिम कौशल दिखलाया है।

इसी खोजमें दक्षिणकी विजयका वर्णन है। रामचन्द्र और लक्ष्मण दक्षिणी जातियोंकी सेना लेकर समुद्रके पार लङ्कापर धावा करते हैं, और लङ्काको जीतकर वहांका राज्य रावणके भाई विभीषणको प्रदान कर देते हैं।

वनवासकी अवधिकी समाप्तिपर कवि महाराजा रामचन्द्रजीको लक्ष्मणजी, सीताजी तथा अन्य साथियों सहित बड़ी धूमधामके साथ अयोध्यामें वापस लाकर राजसिंहासनपर बैठाता है। कारण यह कि महाराज दशरथका देहान्त तो रामचन्द्रजीके वन-गमनके समय ही हो गया था, और भरतजी इस कालमें केवल रामचन्द्रजीके प्रतिनिधिके रूपमें राज्य करते थे। यहीं पर पहले काण्डका पर्यवसान (?) समाप्त होता है।

उत्तरार्द्ध की कथा यों है कि जब अयोध्यामें लौटकर श्री-रामचन्द्रजी राज्य करने लगे तो एक दिन उनको यह पता लगा कि प्रजा सीताजीके रावणके घरमें रहनेका उपालम्भ देती है। वे, इस विचारसे कि राजाको लोकमतकी परवाह करनी चाहिये, गर्भवती सीताजीको घरसे निकाल देते हैं। इस स्थल-पर कविने राजधर्मका बड़ा सुन्दरतासे वर्णन करते हुए बत-लाया है कि यद्यपि महाराज रामचन्द्रजीको अपनी भार्याकी पवित्रतापर कुछ भी सन्देह न था तो भी लोकमतके सामने सिर झुकाते हुए, उन्होंने ऐसी प्यारी स्त्रीको, ऐसे संकटके समयमें एकाकी घरसे निर्वासित कर दिया। सीताजी रोती धोती बनको चली गईं। वहां वाल्मीकि मुनिने उन्हें अपने आश्रममें शरण दी। वहीं महारानीके दो यमज पुत्र हुए। उनका पालन-पोषण और शिक्षण वाल्मीकिजीने किया। इनके शिक्षण कालमें ही वाल्मीकिने रामायणकी रचना की और उसे इन लड़कोंको कण्ठस्थ करा दिया। जब वे लड़के उसे कण्ठस्थ कर चुके तब उनको अपने साथ रामचन्द्रजीके यज्ञमें अयोध्या ले गये। वहां वे रामायण सुनाते फिरते रहे। यह समाचार फैलते फैलते महाराजा रामचन्द्रजीको भी पहुंचा। उन्होंने उन लड़कोंको बुला-कर उनसे रामायण सुना। इसे सुनकर सीताजीके वियोगका दुःख उनके हृदयमें फिर ताजा हो गया। उन्होंने वाल्मीकिजीसे कहा कि यदि प्रजा स्वीकृति दे तो मैं सीताको पुनः ग्रहण करने को उद्यत हूं। वाल्मीकिजीको विश्वास था कि प्रजापर अब सीताजीकी पवित्रता सिद्ध हो चुकी है और वे उसकी करुणो-त्पादक दशा देखकर, रामचन्द्रजीसे उसको ग्रहण करनेकी अवश्य प्रार्थना करेंगी। इसलिये ऋषिने सीताजीको अयोध्यामें बुला भेजा। सीताजी यह सुनकर बहुत प्रसन्न हुईं और अयोध्यामें

चली आई। परंतु जब रामचन्द्रजीने प्रजाकी सम्मति ली तो थोड़े से लोगोंको अबतक भी विरोधी पाया। इसपर सीताजीको इतना भारी शोक हुआ कि वे तत्काल मूर्च्छित होकर गिर पड़ीं और वहीं उनका प्राणान्त हो गया।

महाभारत

आर्य्योंका दूसरा महाकाव्य महाभारत है। अँगरेज ऐतिहासिक इसका समय ईसासे १४०० वर्ष पूर्व ठहराते हैं। यह पुस्तक व्यासजीकी रचना बताई जाती है। परन्तु यह स्पष्ट है कि वर्त्तमान महाभारत किसी एक समय लिखी हुई नहीं है। प्रत्येक कालके पण्डित इसमें अपनी ओरसे कुछ न कुछ वृद्धि करते आये हैं। यहांतक कि इस समय इसकी श्लोक-संख्या एक लाखसे अधिक है। बहुतसे विद्वान इस बातपर सहमत हैं कि मूल पुस्तक बहुत छोटी थी। कुछ इसे दस सहस्र श्लोककी और कुछ इससे भी कमकी बतलाते हैं। डाक्टर हण्टर लिखते हैं कि मूल पुस्तकमें केवल ८००० श्लोक थे। इसी कारण इस पुस्तकसे उस समयकी आर्य्य-सभ्यताका सच्चा और यथार्थ ज्ञान नहीं हो सकता।

महाभारतका युद्ध कौरवों और पाण्डवोंके युद्धके नामसे प्रसिद्ध है। परन्तु ऐतिहासिक पुस्तकोंमें यह युद्ध कौरवों और पाँचालोंका युद्ध कहलाता है। पाञ्चालका राजा द्रुपद पाण्डवोंका ससुर था। ऐतरेय ब्राह्मणमें उत्तर कुरुका देश हिमालयके उत्तरमें लिखा है। एक यूरोपीय विद्वानका मत है कि यह उत्तर कुरु देश चीनी तातारके अन्तर्गत वर्त्तमान काशगरके पूर्वमें था। परन्तु कई दूसरे विद्वान लिखते हैं कि वर्त्तमान काश्मीर प्रदेश ही उत्तर कुरु देश था। अस्तु, कुछ भी हो इसमें सन्देह नहीं कि कुरु लोग उत्तरीय पर्वतोंके रहनेवाले थे। वहांसे उतरकर उन्होंने गङ्गा और यमुनाके बीचके प्रदेशमें एक प्रबल राज्यकी

स्थापना की। जिस समयमें कौरव दिल्लीके निकट राज्य करते थे उस समय कन्नौजके समीप एक और प्रबल राजधानी पाञ्चाल लोगोंकी थी। अधिक सम्भव है कि ये दोनों कौरव और पाण्डव एक ही वंशसे थे, और उनकी आपसमें बहुत घनिष्ठता थी।

संक्षेपसे महाभारतकी कथा इस प्रकार है :—

जब कुरु कुलके राजा शन्तनुका देहान्त हुआ तब उसके दो पुत्र थे। उनमें ज्येष्ठ भीष्म था। यह संस्कृत साहित्यमें बालब्रह्मचारीके नामसे प्रसिद्ध है। उसने आजन्म ब्रह्मचारी रहने की प्रतिज्ञा* की। भीष्मसे छोटा लड़का शन्तनुके पश्चात् हस्तिनापुरको गद्दीपर बैठा। हस्तिनापुर इस राज्यकी राजधानी थी। यह जिस स्थानपर दिल्ली है वहांसे ६५ मील ऐशानी दिशामें गङ्गा तटपर बसा हुआ था। इस राजाके दो पुत्र हुए एक धृतराष्ट्र और दूसरा पाण्डु। धृतराष्ट्र चक्षुहीन था।

---

* इस प्रतिज्ञाका मूल कारण भी बड़ा मनोरञ्जक है। कहते हैं, एक दिन राजा शन्तनु शिकार खेलते हुए एक नदीके किनारे पहुंचे। वहां वे एक धीवरकी कन्यापर आसक्त हो गये। उन्होंने विवाहके लिये धीवरसे प्रार्थना की। धीवरने कहा कि यदि आप वचन दें कि आपके पीछे मेरी कन्याका पुत्र राजसिंहासनपर बैठेगा तो मैं विवाहकी स्वीकृति दे सकता हूं। महाराज शन्तनु उसकी यह बात न मान सके, क्योंकि इससे उनके बड़े पुत्र भीष्मका अधिकार छिनता था। जब भीष्मको यह समाचार मिला, तब उसने आप धीवरके पास जाकर प्रतिज्ञा की कि महाराज शन्तनुके पीछे राज्यका अधिकारी तुम्हारा दौहित्र होगा। परन्तु धीवर इसपर भी न माना, उसने कहा मेरी सन्तान मेरी कन्याकी सन्तानसे राजगद्दी छीन लेगी। इसपर भीष्मने यह प्रतिज्ञा की कि मैं विवाह भी न करूंगा। तब धीवरने स्वीकार कर लिया।

इस कथासे यह अनुमान किया जा सकता है कि उस कालमें स्वयं राजा लोग कहांतक कानूनपर चलते थे। एक राजाको भी यह साहस न हो सकता था कि वह एक धीवरकी कन्याको बलात् घरमें लाता है।

पाण्डुके पाँच पुत्र हुए। बाल्यावस्थामें ही इनके पिताका देहान्त हो गया। पाण्डवोंके अल्पवयस्क होनेके कारण राज्यका काम धृतराष्ट्र करने लगा। उसने अपने पुत्रों और पाँचों पाण्डवोंको शिक्षा प्राप्तिके लिये द्रोणाचार्य्यके सिपुर्द कर दिया। धृतराष्ट्र के पुत्र महाभारतमें कौरव कहलाते हैं।

द्रोणाचार्य्य बड़ा विद्वान था। वह शस्त्र-विद्या और युद्ध सञ्चालनकलामें बड़ा निपुण था। वह पहले राजा द्रुपद पञ्चालकी राजसभामें रहा करता था। फिर वहांसे रुष्ट होकर यहां चला आया था। वह राजा द्रुपदसे बदला लेना चाहता था। इसने बड़े परिश्रम और योग्यतासे अपने शिष्योंको शिक्षा दी। पाण्डवोंमें युधिष्ठिर सबसे बड़ा था। वह धर्म-शास्त्र और ब्रह्म-विद्यामें सब भाइयोंसे बढ़ा चढ़ा था। उससे छोटा भीम मल्ल-युद्ध और गतका खेलनेमें निपुण था। तीसरा अर्जुन धनु-विद्या और खड्ग चलानेमें अद्वितीय था। चौथा नकुल अश्व-विद्याका और पांचवा सहदेव ज्योतिषका पण्डित था। सारांश यह कि यों तो पाँचोंके पाँचों भाई साधारणतया योग्य, विद्वान् और शास्त्रज्ञ थे, पर फिर भी उनमेंसे प्रत्येक एक विशेष काममें नाम रखता था।

धृतराष्ट्रका ज्येष्ठ पुत्र दुर्योधन भीमके सदृश मल्ल-युद्ध और गतका खेलनेमें विशेष निपुण था। जब इन नवयुवकोंकी शिक्षा समाप्त हो चुकी तब उनकी परीक्षाकी ठहरी। एक शुभ दिन इस कामके लिये नियत हुआ। और बहुत बड़ा उत्सव रचा गया।

समस्त प्रदेशकी प्रजा एक विस्तृत क्षेत्रमें राजकुमारोंके करतब देखनेके लिये एकत्र हुई। स्वयं महाराजा धृतराष्ट्र भी वहाँ पधारे। दुर्योधनकी माता गान्धारी भी गई। युधिष्ठिर, भीम,

और अर्जुनकी माता कुन्ती भी वहां उपस्थित थी। सबसे पहले भीम और दुर्योधनके बलकी परीक्षा आरम्भ हुई। दोनों बड़े आवेशमें आकर लड़ने लगे। मनुष्य क्या थे, हाथी थे या बला थे। उनके कोलाहलसे आकाश गूंजने लगा। दोनोंने पराक्रमकी पराकाष्ठा दिखलाई। करीब था कि दोनों कट जाते, पर बलात् उनको अलग कर दिया गया। अब अर्जुन मैदानमें आया। इसने वह बाण छोड़े कि चारों ओरसे 'साधु, साधु!, का शब्द गूंजने लगा। दर्शकके मुखसे प्रशंसाके वाक्य अनायास निकलने लगे। कुन्तीकी छाती प्रसन्नतासे फूली न समाती थी। बाणोंके अतिरिक्त अर्जुनने खड्ग और अन्य शस्त्रोंसे भी खूब करतब दिखाये। लड़का क्या, बलाका पुतला था। लक्ष्यभेदनमें ऐसा निपुण, ऐसा अभ्यस्त, ऐसा कुशलहस्त और ऐसा फुर्तीला कि उसके समान संसारमें दूसरा उत्पन्न नहीं हुआ। सारे कौशल दिखलाकर वह गुरुजीकी ओर बढ़ा। झुककर प्रणाम किया और अपने स्थानपर आ बैठा। अर्जुनका यश दुर्योधनसे न देखा गया। उसकी छातीमें द्वेषकी ज्वाला धधकने लगी। वह जलकर कोयला हो गया। वह और उसके भाई एक और जवानको मैदानमें लाये और पाण्डुपुत्रोंको उसके साथ लड़नेके लिये ललकारा। इस युवकका नाम कर्ण था।

राजपूत राजा लोगोंके सिवा दूसरोंके साथ लड़ना लज्जाजनक समझते थे। इसलिये दुर्योधनके पिता महाराजा धृतराष्ट्रने तत्काल कर्णको राजाकी पदवी दे दी। परन्तु जब पाण्डुपुत्रोंने कर्णसे उसकी वंशावली पूछी तब उसने स्पष्ट उत्तर देनेमें संकोच किया। इसपर पाण्डवोंने वंशावली मालूम किये बिना कर्णसे मुकाबिला करनेसे इन्कार कर दिया।

अब द्रोणाचार्य्यने* दक्षिणा मांगी अर्थात् अपने परिश्रमके लिये पुरस्कारकी याञ्चा की राजाने कहा, मांगिये जो मांगते हैं। अग्निरूप ब्राह्मणने इतने वर्षोंतक जिस रहस्यको अपने उरमें छिपा रक्खा था उसको प्रकटकर दिया और राजा द्रुपदसे बदला लेनेका वर मांगा। राजा वचन दे चुका था और उसका पालन करना धर्म्म था। सारांश यह कि द्रोणाचार्य्यने राजा द्रुपदपर चढ़ाई की और उसका आधा राज्य छीन लिया।

पाण्डुपुत्र युवा होते जाते थे और राजा वृद्ध होता जाता था। देशकी रीतिके अनुसार यह आवश्यक था कि किसीको युवराज चुना जाय। युधिष्ठिर सबसे बड़ा था और पिताके राज्यपर सबसे पहला अधिकार भी उसीका था। अतएव वही युवराज निर्वाचित हुआ। परन्तु दुर्योधनने इस निर्वाचनको स्वीकार न किया और अपने पिताको बहकाकर पाण्डवोंको देशसे निर्वासित करा दिया। पाण्डुपुत्र हस्तिनापुर छोड़कर वारणावत नगरमें (जिसको आजकल इलाहाबाद कहते हैं) जा बसे। दुर्योधनने यह सोचकर कि जबतक पाण्डव जीते हैं उनकी ओरसे आशङ्का बराबर बनी हुई है, पाण्डवोंके रहनेके मकानमें आग लगवा दी। परन्तु विदुर†की कृपासे पाण्डवोंको समयपर पता लग गया। वे अपनी मातासहित एक गुप्त मार्गसे बच निकले। जिन दिनों वे ब्राह्मणोंके वेषमें वनोंमें फिरते थे, पाञ्चाल देशके राजा द्रुपदने अपनी बेटी द्रौपदीका स्वयंवर रचा। स्वयंवरमें उसने यह प्रण किया था कि जो पुरुष धनुर्विद्यामें उच

* प्राचीन कालमें शिक्षण-कालमें आचार्य शिक्षा देनेके लिये फीस या वेतन न लेते थे। शिष्य ब्रह्मचर्य-पूर्वक शिक्षा समाप्त कर लेता था तब वे अपने परिश्रमका पुरस्कार मांगते थे।

† विदुर कौरवों और पाण्डवोंका चचा था। यह बड़ा मनुष्य था जिसकी विदुर-नीति प्रसिद्ध है। विदुर-नीति राजनीति-शास्त्रकी एक प्रामाणिक पुस्तक है।

कोटिकी योग्यताका परिचय देगा उसीके साथ द्रौपदीका विवाह कर दिया जायगा। एक लकड़ी पर एक चक्कर बाँधा गया। उस चक्करके ऊपर सोनेकी एक घूमती हुई मछली थी। एक भारी धनुष उपस्थित किया गया। प्रण यह था कि जो पुरुष उस घूमती हुई मछलीकी आँखमें बाण मारे, वही द्रौपदीका पति बने। दूर दूरके देशोंसे राजा, राजकुमार, धनुर्धर, पहलवान और क्षत्रिय इकट्ठे हुए। ब्राह्मणोंने वेदमन्त्र उच्चारण करके यज्ञ किया। राज-कन्या द्रौपदी हाथमें फूलोंकी माला लेकर अपने भाई धृष्टद्युम्नके साथ राजभवनसे उतरी। सब राजा और राजकुमार बारी बारी उठे और अपने भाग्यकी परीक्षा करने लगे। परन्तु किसीको सफलता न हुई। कर्ण भी आगे बढ़ा। परन्तु उसे पीछे हटा दिया गया क्योंकि वह एक कुमारीका पुत्र था। दर्शकोंकी पंक्तिमेंसे एक पुरुष ब्राह्मण-वेषमें आगे बढ़ा। धनुष उठाया, और बात करते करते लक्ष्यवेध कर दिया। चारों ओरसे वाह वाह होने लगी। द्रौपदीने चटपट जयमाल उसके गलेमें पहना दी। वीर ब्राह्मणने राज-कन्याका पाणिग्रहण किया। जो क्षत्रिय राजा और राजकुमार आये हुए थे, उन्होंने शोर मचा दिया कि राजकन्याके साथ ब्राह्मण विवाह नहीं कर सकता। इसका परिणाम हुआ कि ब्राह्मणने अपना वेष उतार दिया और अपनी वंशावली बताकर अपने आपको पाण्डु पुत्र अर्जुन प्रकट किया।

इस प्रकार स्वयंवर जीतकर जब पाण्डव अपनी माताके पास आये तो कहने लगे कि आज हमको एक उपहार मिला है। माताको क्या मालूम था कि क्या उपहार मिला है। उसने कहा कि यह उपहार पाँचोंका साझेका माल है। इसपर माताकी आज्ञाका पालन करनेके लिये पाँचों पाण्डुपुत्रोंने द्रौपदीसे विवाह कर लिया।

अब तो पाण्डवोंको एक प्रबल राजाकी सहायता मिल गई। राजा द्रुपद उनका सहायक हो गया। उसने धृतराष्ट्रको विवश किया कि वह आधा राज्य पाण्डवोंको दे दे। इस बाँटमें भी पाण्डवोंके साथ अन्याय ही हुआ। जंगली इलाका उनको मिला।

खाण्डव वनको साफ करके पाण्डवोंने इन्द्रप्रस्थ नगरी बसाई। इसके खँडहर अवतक दिल्ली नगरके निकट विद्यमान हैं। फिर अपने पराक्रम और वीरतासे उन्होंने और भी बहुतसे प्रदेश जीत लिये, और अपनी विजय तथा उत्तम राज्य-प्रबंधके कारण ! अपने आपको राजसूययज्ञ करनेका अधिकारी बना लिया। सभी राजा महाराजा इस यज्ञमें निमन्त्रित हुए। दुर्योधनादि भी सम्मिलित हुए। श्रीकृष्णको प्रधानकी पदवी दी गई। अन्ततः जब यज्ञ सम्पूर्ण हो चुका तब दुर्योधनने हँसी हँसीमें एक दिन युधिष्ठिरको जूआ खेलनेपर सहमत कर लिया। धर्मात्मा युधिष्ठिर इस चालमें आ गया और जूएकी बाज़ीमें राज-पाट सब कुछ हार गया। यहाँतककी अपनी स्त्री भी दाँवपर लगा दी और उसे भी हार गया। जब द्रौपदीको यह समाचार पहुंचा तो वह बहुत क्रुद्ध हुई। उसने दुर्योधनके पास जानेसे इन्कार कर दिया किन्तु दुःशासन उसको केशोंसे घसीटकर राजसभामें ले आया। उपद्रव हुआ ही चाहता था कि इतनेमें अंधे धृतराष्ट्रकी सवारी आ गई। उसने मध्यस्थ होकर यह निर्णय किया कि पाण्डव बारह वर्षके लिये वनमें चले जावें। बारह वर्षके पश्चात् एक वर्ष और छिपे रहें। यदि इस तेरहवें वर्षमें दुर्योधन उनका पता न पा सके तो चौदहवें वर्षके आरम्भमें उनको उनका राज्य लौटा दिया जाय।

लाचार पाण्डवोंको दुबारा वनमें जाकर रहना पड़ा। बारह

वर्ष वनोंमें घूमकर तेरहवें वर्ष उन्होंने राजा विराटके यहाँ नौकरी कर ली। तेरहवाँ वर्ष समाप्त होनेको था अथवा हो चुका था कि हस्तिनापुर राज्यके मनुष्य विराट्की गउएं ले गये। अर्जुनने युद्ध करके उन गउओंको छुड़ाया। यद्यपि अर्जुन वेष बदले हुए था, उसको किसीने नहीं पहचाना फिर भी दुर्योधनने यह प्रसिद्ध कर दिया कि अर्जुनके सिवा और किसीमें यह सामर्थ्य न थी जो यह काम करता। जब पाण्डवोंने अपना राज्य वापस माँगा तब उसने इसी बहानेसे राज्य देनेसे इन्कार कर दिया। अन्तको दोनोंमें एक भारी युद्ध हुआ। आर्य्यावर्तके सभी राजे इसमें सम्मिलित थे। कोई पाण्डवोंकी ओर और कोई कौरवोंकी ओर। श्रीकृष्ण पाण्डवोंकी ओर थे और इनकी सारी सेना कौरवोंकी यह सर्व विनाशकारी भयङ्कर युद्ध बहुत दिनतक रहा। इसमें द्रोणाचार्य, भीष्म, कर्ण, दुर्योधन और दुःशासन आदि सभी मारे गये। अन्तको असीम नर-संहारके पश्चात् युधिष्ठिरको विजय प्राप्त हुई। युधिष्ठिर विजय पाकर दिल्लीके सिंहासनपर बैठा। आर्य्यावर्तके सब राजे उसने जीत लिये। अन्तको उसने अश्वमेध यज्ञ* किया। इससे सारे भारतवर्षके महाराजाधिराजकी पदवी मिली। संक्षेपसे महाभारतकी कथा यही है।

महाभारतमें धर्म्म, राजनीति और आचारपर बड़े बड़े दुर्लभ उपदेश हैं। एक प्रसंगमें दूसरा प्रसंग चलाकर कथाको इतना

---

* अश्वमेध यज्ञ—जब कोई राजा सारे राजाओंको जीतकर अपने अधीन कर लेता था तब उसे अधिकार होता था कि वह एक घोड़ा छोड़ दे। किसी राजाकी मजाल न थी कि वह उस घोड़े को पकड़ ले। वर्षभरतक वह घोड़ा घूमता रहता था। वर्ष भरके पश्चात् उसे पकड़कर मारा जाता था। इस अवसरपर एक भारी यज्ञ होता था। इसमें सारे देशके राजा सम्मिलित होते और आकर उस राजाको महाराजाधिराज स्वीकार करते थे।

कहा दिया है कि पुस्तक क्या, एक असीम सागर है। हि
महाभारतको बड़े आदर और मानकी दृष्टिसे देखते हैं औ
इसकी कथा सुनते सुनाते हैं। सहस्रों वर्षोंसे इसकी बा
हिन्दुओंको धार्मिक और नैतिक अवस्थाको प्रभावित करत
चली आई हैं। विवादोंमें भी पण्डित लोग बहुधा महाभारत
श्लोक प्रमाणके रूपमें उपस्थित करते हैं। भगवद्गीता भी महा-
भारतका एक भाग है। इसमें श्रीकृष्ण और अर्जुनका रण-क्षेत्र
होनेवाला कथोपकथन है।

भगवद्गीता। भगवद्गीता एक अतीव विलक्षण पुस्तक है। इसको हिन्दू आर्य्य बड़ी ही प्रतिष्ठाकी दृष्टिसे
देखते हैं। इस पुस्तकका आरम्भ इस प्रकार होता है f.
अर्जुन रण-क्षेत्रके मध्यमें जाकर अपने सारथि, श्रीकृष्णसे
प्रश्न करता है कि हे कृष्ण! क्या मेरे लिये उचित है कि
संसारके राज्यके लिये अपने इन भाइयों, सम्बन्धियों औ
पितरोंसे, जो कौरवोंकी सेनामें हैं, युद्ध करूं और उनके रक्तसे
अपने हाथ रंगूं!

श्रीकृष्ण इस प्रश्नके उत्तरमें बतलाते हैं कि आत्मा अमर
इसको कोई नहीं मार सकता। यह अनश्वर पदार्थ है। प्रत्येक
व्यक्तिका कर्तव्य है कि निष्काम भावसे अपने धर्मका पालन
करे। धर्म-युद्धमें क्षत्रियको उचित है कि लड़ाई करे, चा
सामने कोई हो। जो क्षत्रिय युद्धसे विमुख होता है या रण
क्षेत्रसे भागता है, वह अपने धर्मसे पतित होता है।

यह पुस्तक अपनी शिक्षा, अपनी सुन्दरता, और अपन
गम्भीरताकी दृष्टिसे संसारकी उन अद्वितीय पुस्तकोंमेंसे
जिनको सारा जगत् श्रद्धाकी दृष्टिसे देखता है। इस समय
संसारकी कदाचित् ही कोई साहित्यिक भाषा होगी जिसमें

भगवद्गीताका अनुवाद न हुआ हो। भारतवर्षमें तो यह पुस्तक प्रतिवर्ष लाखोंकी संख्यामें बिकती है। लाखों हिन्दू इसका प्रति दिन पाठ करते हैं। बहुतसे साधु गीताका गुटका गलेमें लटकाये फिरते हैं।

श्रीकृष्णको * हिन्दू विष्णुका अवतार मानते हैं और गीता उनकी शिक्षा है।

पाँचवाँ परिच्छेद

रामायण और महाभारतके समयकी सभ्यता।

महाभारतके विषयमें यह सदैव स्मरण रखना चाहिये कि इसमें आर्य्य सभ्यताका जो चित्र है वह आवश्यक रूपसे किसी एक कालका नहीं, क्योंकि मूल महाभारतमें बहुत कुछ परिवर्त्तन होता गया है। यही कारण है कि महाभारतमें अनेक विषयोंमें परस्पर विरोधी आज्ञायें पाई जाती हैं। मूल पुस्तक ऐतिहासिक कालसे पूर्वकी है। परन्तु वर्त्तमान पुस्तकमें बौद्ध और जैन मतोंके भी बहुत कुछ चिह्न पाये जाते हैं। रामायणमें अपेक्षाकृत कम मिलावट है।

इन महाकाव्योंके अध्ययनसे ज्ञात होता है कि उस समय हिन्दु-सभ्यता वैदिक-कालकी सरलताका बहुत कुछ अतिक्रम कर चुकी थी। धर्म्म, आचार, सामाजिक जीवन, और राजनीति आदि सभी बातोंमें जीवन अधिक जटिल और आडम्बर-

* श्रीकृष्णका जीवनचरित और उनकी शिक्षाका सारांश पंडितोंने एक अलग पुस्तकमें लिखा है। यह संसारके महापुरुषोंके सिलसिलेमें छपी है।

मय हो गया था। इन दोनों पुस्तकोंमें यद्यपि आचारका आदर्श बहुत ऊँचा है परन्तु ऐसा सरल नहीं जैसा कि वैदिक-कालमें था। और न समाजकी बनावट और न सामाजिक संगठन ही सादा था।

धार्मिक दृष्टि। धार्मिक दृष्टिसे वेदोंकी एकेश्वर-पूजापर बहुदेव-पूजाका कलस चढ़ चुका था। वैदिक देवताओंके स्थानमें विष्णु और शिव अधिक लोकप्रिय हो गये थे। यज्ञोंकी प्रक्रिया भी बहुत जटिल हो गई थी। रामायणमें महाराज रामचन्द्रको और महाभारतमें श्रीकृष्णको विष्णुका अवतार कहा गया है। अवतारोंकी यह कल्पना भी वैदिक कल्पना नहीं है।

सामाजिक संगठन। यद्यपि इन दोनों पुस्तकोंमें ऐसे चिह्न मिलते हैं जिनसे यह प्रकट होता है कि ब्राह्मण और क्षत्रियोंकी प्रतिद्वंद्विताका अभीतक अन्त नहीं हुआ था, तो भी ऐसा जान पड़ता है कि इन ग्रन्थोंके प्रणयन-कालमें वर्ण-विभागका भाव अधिक दृढ़ हो चुका था। धर्मके विषयमें ब्राह्मण दूसरे वर्णोंका हस्ताक्षेप पसंद न करते थे। परन्तु दूसरे वर्ण विशेषतः क्षत्रिय इस बातको स्वीकार नहीं करते थे कि धर्मके विषयोंमें किसी दूसरेको सोचने या अपने विचारोंको प्रगट करने या ब्राह्मणोंको बतलायी हुई रीतिसे विपरीत आचरण करनेका अधिकार नहीं। ऐसा जान पड़ता है कि उपनिषदोंके विवादों और कथोपकथनोंके आधारपर इन महाकाव्योंके समयमें उस तत्वज्ञानकी आधार-शिला रक्खी जा चुकी थी, जिसका परिणाम बुद्ध-धर्म हुआ। जनता ब्राह्मणोंके नेतृत्वसे, कड़े धार्मिक बन्धनोंसे, रीति-रवाजोंके जटिल जालसे ऐसे तंग आ गयी कि उनमेंसे कमसे कम विचारशील लोग स्वतन्त्र

रूपसे सोचने लगे और उन्होंने भिन्न भिन्न विचारोंसे भिन्न भिन्न दर्शन बनाये। यह बात द्रष्टव्य है कि विष्णुके ये दोनों अवतार जिनका अद्भुत कार्यकलाप इन पुस्तकोंमें दिया गया है, क्षत्रिय वर्णके थे और यद्यपि महाराजा रामचन्द्रजीको धर्मोपदेश करनेका कोई अवसर प्राप्त नहीं हुआ परन्तु श्रीकृष्ण महाराजने धर्मका उपदेश किया। उनका उपदेश इस समय लोकप्रिय हो रहा है। इसके अतिरिक्त दोनों पुस्तकोंमें ब्राह्मणोंको युद्ध-विद्याका आचार्य्य बतलाया गया है। यदि रामचन्द्रजी तथा उनके भाइयोंको वशिष्ठजी तथा विश्वामित्रजीने शिक्षा दी तो कौरवों और पाण्डवोंके गुरु भी द्रोणाचार्य्य थे और वे ब्राह्मण थे। रामायण और महाभारतके कालमें भी जाति-पांतिके बन्धन अभी बहुत कड़े नहीं हुए थे, यद्यपि उनमें वैदिक कालकी सी सरलता न थी।

विवाहादि। स्त्रियों और पुरुषोंके सम्बन्धोंमें भी अधिक परिवर्त्तन हुआ जान पड़ता है। महाभारत-कालमें मुझको हिन्दू-समाजका चित्र बहुतसी बातोंसे वर्त्तमान यूरोपीय समाजके सदृश जान पड़ता है। यह स्पष्ट है कि स्त्रियों और पुरुषोंके सम्बन्धमें ऐसे कड़े नियम न थे जैसे कि वे अब हैं। पुरुष एकसे अधिक स्त्रियोंसे विवाह करते थे। विवाहिता स्त्रीके अतिरिक्त दूसरी स्त्रियोंसे संसर्ग हो जानेपर भी वे ऐसी घृणाकी दृष्टिसे नहीं देखे जाते थे जैसा कि आजकल देखे जाते हैं। महाभारतके समयमें नियोगकी प्रथा थी और स्त्रियोंको स्पष्टतया अधिक स्वतन्त्रता प्राप्त थी। राज-परिवारोंकी स्त्रियां घोड़ोंपर चढ़ती थीं, शस्त्र चलाना जानती थीं और सभा समाजोंमें सम्मिलित होती थीं। स्त्री-शिक्षाका खूब प्रचार था और गाना बजाना तथा नाचना भी बुरा न

समझा जाता था। गुरु और शिष्यका पवित्र सम्बन्ध था और ऋषियों तथा विद्वानोंका आदर सब कोई करता था।

समाजकी आर्थिक अवस्था। रामायण एक ऐसे समाजका चित्र उपस्थित करता है जो बड़ा सुखी और समृद्धिशाली था, जो आचार और धर्म्मके उच्च आदर्शपर स्थित था और जिसमें प्रत्येक सदस्य धर्मात्मा और कर्त्तव्यानुरागी था। इन दोनों पुस्तकोंमें कोई भी ऐसा प्रमाण नहीं मिलता जिससे यह मालूम होता हो कि जनता खाने पीने और पहननेकी वस्तुओंके अभावसे अथवा दरिद्रतासे दुखी थी। कलाकौशल भी अच्छी उन्नत अवस्थामें था।

राजनीतिक अवस्था। रामायण और महाभारतके कालमें इस देशमें बड़े बड़े नगर बन गये थे। यद्यपि आर्य्योंकी राजनीतिक पद्धतिकी आधारशिला प्रत्येक गांव था जो अपने भीतरी विषयोंमें स्वतन्त्र था, किन्तु बड़े बड़े नगरोंमें शासनप्रणाली किसी कदर अधिक जटिल हो गई थी। महाभारतकी भीतरी साक्षीसे यह मालूम होता है कि राजा स्वेच्छाचारी न था। जब महाराजा दशरथने रामचन्द्रजीको युवराजकी पदवीके लिये चुना तो उनका यह चुनाव प्रजाकी स्वीकृतिके अधीन था। अभिषेकके लिये तिथि नियत करनेके पूर्व उन्होंने अपने चुनावको पहले मंत्रियों और राजकर्मचारियोंसे स्वीकृत कराया और तत्पश्चात् सर्वसाधारणसे। हमारे पास यह कहनेके लिये यथेष्ट प्रमाण हैं कि आर्य्य-शासनपद्धतिमें राजा कभी स्वेच्छाचारी न था। उसका कर्त्तव्य था कि वह पञ्चायतके निर्णयों और राजनियमोंके अनुसार कार्य करे। आर्य्य-शासन-प्रणालीमें कानून बनानेका अधिकार कभी राजाको नहीं दिया गया। कानून सदैव राजासे ऊपर समझा

जाता था। यह श्रुतियों और स्मृतियोंके आधारपर ब्राह्मणों और आम लोगोंके निर्णयोंके रूपमें जारी होता था। राजाके कर्त्तव्य ऐसे कठिन होते थे कि यदि उसके राज्यमें कोई मनुष्य युवावस्थामें मर जाय, या दुर्भिक्ष या महामारी फैल जाय तो उसका उत्तरदाता राज्यको समझा जाता था। वरन् यहांतक लिखा है कि प्रजा जो पाप करे उसका भी किसी कदर दायित्व राजापर है। शासन (गवर्नमेंट) की बनावट किस प्रकारकी थी और वह किन नियमोंपर अवलम्बित थी, इसका सविस्तर वर्णन हम किसी अगले परिच्छेदमें करेंगे।

भीतरी और बाहरी वाणिज्य। भारतीय लोग सदासे विदेशोंके साथ वाणिज्य व्यापार करते रहे हैं। इसके बहुतसे प्रमाण हमें दूसरी जातियोंके साहित्यमें मिलते हैं। रामायण और महाभारतमें भी इस बातका यथेष्ट प्रमाण मौजूद है कि भारतीय लोग पश्चिममें अरब, ईरान और इराकके साथ और पूर्वमें चीन और जापानतक व्यापार करते थे। वे नाविक-विद्यामें बड़े निपुण थे।

महाभारतमें इस प्रकारकी अनेक साक्षियां हैं जिनसे विदित होता है कि युद्ध-विद्यामें आर्य्योंने बहुत कमाल पैदा किया था। वे बहुतसे ऐसे शस्त्रास्त्रोंको जानते थे जिनका अब किसीको ज्ञानतक नहीं। महाभारतका यह भाग शस्त्रास्त्रके वर्णनसे भरा हुआ है। रामायणमें भी युद्धकलाका विशेष रूपसे उल्लेख है। परन्तु दोनों महाकाव्योंसे ऐसा मालूम होता है कि आर्य्य लोग अपने पारस्परिक युद्धमें लड़नेवाली जनतापर किसी प्रकारका अत्याचार न करते थे और प्रजा उन संग्रामोंमें नष्ट न होती थी। योद्धा लोग वे पाशविक कर्म न करते थे जो आधुनिक यूरोपीय युद्धोंकी विशेषता है। छिपकर शत्रुपर

आघात करना, शस्त्रहीन रिपुका वध करना, अबलाओं और वृद्धोंपर आक्रमण करना अति कुत्सित कर्म समझा जाता था। शत्रु की सम्पत्तिको लूट लेना भी उचित न था। इस सम्बन्धमें आर्य्योंका आचरण इतना उच्च था कि पांचों पाण्डवोंने युद्ध आरम्भ होनेके पूर्व भीष्म पितामहकी सेवामें उपस्थित होकर प्रणाम किया और उनसे युद्ध आरम्भ करनेकी आज्ञा प्राप्त की। इन पुस्तकोंसे यह भी ज्ञात होता है कि आर्य्योंने जभी किसी आर्य्य या अनार्य्य राजाको पराजित किया तो उसे अपना दास नहीं बनाया वरन् उसे फिर उसका राज्य प्रदान कर दिया। उस समय आर्य्य शब्द ऐसा सम्मानसूचक था कि अनार्य्य कहलाना परले दरजेकी अप्रतिष्ठाकी बात थी। गीताके दूसरे अध्यायके आरम्भमें जब महाराज कृष्ण अर्जुनकी उदासीनता और उत्साहहीनतापर उसे धिक्कारने लगे तब उस समय उन्होंने उसके भावको अनार्य्य ठहराकर उसे उपालम्भ दिया। इन दोनों पुस्तकोंमें आर्य्यपुत्र एक बड़े सम्मानका शब्द गिना जाता था। किसी आर्य्यसे कोई कपट-छल और वञ्चनाका कर्म होना, अथवा भीरुता प्रकट होना, अथवा कोई नीति और धर्मके विरुद्ध कार्य होना प्रायः असम्भव समझा जाता था। इन पुस्तकोंमें यद्यपि हमें आर्य्योंकी त्रुटियोंसे भी (जिनमेंसे जुआ खेलना विशेष रूपसे उल्लेखनीय है) पर्याप्त शिक्षा मिलती है, परन्तु उनके सामान्य आचार और धर्मके आदर्श बहुत ऊंचे मालूम होते हैं। यही कारण है कि हिन्दुओंने इन दोनों पुस्तकोंके पढ़ने-पढ़ाने और सुनने-सुनानेको पुण्य कर्म ठहराया है। शताब्दियोंतक हिन्दू लोग इन्हीं ग्रन्थोंके विपुल भाण्डारसे लाभ उठाते रहे हैं। क्या ही अच्छा हो जो वर्त्तमान पीढ़ियां भी इनके अध्ययनको उसी प्रकार आवश्यक समझें।

विद्यायें और कलायें।

विद्याओं और कलाओंकी जिन शाखाओंका वर्णन हम पहले कर चुके हैं उनके अतिरिक्त इस अवसरपर कतिपय और विद्याओंका उल्लेख किया जाता है जो अधिक सम्भव है, उस समयमें पूर्णताको प्राप्त हो चुकी थीं।

(क) ज्योतिष विद्या।

इस समयमें विद्यायें और कलायें बहुत उन्नत थीं। आर्य्योंको विज्ञानका बहुत अच्छा ज्ञान था। ज्योतिष तो विशेष रूपसे उन्हींका आविष्कार थी इसमें उन्होंने विशेष उन्नति की थी। चन्द्र, सूर्य्य और तारागणके हिसाबसे आर्य्य लोगोंने वर्ष, मास, दिवस और राशियां निश्चित की थीं। वर्षके बारह मास थे। परन्तु चान्द्र वर्षको सौर वर्षके अनुसार करनेके निमित्त कभी कभी लौंदका महीना डाल देते थे। चन्द्रमाके अट्ठाईस नक्षत्र इन लोगोंको ज्ञात थे और उन्होंने स्वयम्* अपने अवलोकनसे इनको स्थिर किया था। सारांश यह कि नक्षत्रोंकी विद्या उन्नतिके उच्चतम शिखरपर थी। छान्दोग्योपनिषद्में एक स्थलपर नक्षत्र-विद्याके अतिरिक्त और बहुतसी विद्याओंका उल्लेख है।

(ख) रेखागणित।

रेखागणित† (यूक्लिड) भी भारतमें सबसे पहले आविष्कृत हुआ था। यद्यपि यह विद्या यूक्लिड नामके एक यूनानी विद्वानके नामसे प्रसिद्ध है परन्तु अन्वेषणसे यह सिद्ध हो चुका है कि ईसाके जन्मके आठ सौ वर्ष पहले यह विद्या भारतीयोंको ज्ञात थी।‡ संस्कृत भाषामें इस विद्याका उल्लेख शुल्व सूत्रोंके नामसे किया गया है।

---

* देखो कोलब्रुकके निबन्ध।

†—डाक्टर थीबा।

‡—श्रीयुत दत्त, दूसरा खण्ड पृ० १२२।

(ग) दशमलव और मौलिक विद्या। इसके अतिरिक्त यह बात भी प्रमाणित हो चुकी है कि दशमलव और मौलिक-गणित भी आर्य्य लोगोंका ही आविष्कार है। अरबवालोंने इसे भारतीयोंसे सीखा और फिर यह यूरोपमें फैला।

दर्शन। इन सब सूत्रोंके अतिरिक्त आर्य्योंके षट्-शास्त्र हैं। दर्शनका अर्थ है आयना। मानो ये सूत्र प्रत्येक मनुष्यके लिये दर्पणका काम देते हैं। इन छः दर्शनोंमें आर्य्योंका तत्व-ज्ञान और तर्क भरा हुआ है। ये छः दर्शन बहुत प्रसिद्ध और प्राचीन हैं। इनके विषय बड़े गहन और सूक्ष्म हैं। वाक्य-रचना निहायत संक्षिप्त और ऐसी कारीगरी की है कि एक शब्द भी घट-बढ़ नहीं सकता।

पहला—सबसे पुराना दर्शन कपिलका बनाया हुआ सांख्य-शास्त्र है। इस दर्शनमें यह सिद्ध किया गया है कि जीव और प्रकृति दो अनादि पदार्थ हैं। इनका कभी नाश नहीं होता। इस दर्शन-पर सबसे प्रसिद्ध टीका भागुरि मुनिकी है।

दूसरा—पतञ्जलिका योग-दर्शन है। इसमें परमात्माकी भक्ति और गुणोंका वर्णन है। इसमें उपासनाकी रीतियाँ भी बत-लाई गई हैं। योगविद्यापर सबसे प्रामाणिक ग्रन्थ यही है। सभी योगी इसका प्रमाण देते हैं। इसपर सबसे प्रामाणिक भाष्य व्यास मुनिका है।

तीसरा—गोतमका न्याय-दर्शन है। गोतमको भारतका अरस्तू कहते हैं। न्याय मानो आर्य्य लोगोंका तर्क-शास्त्र है। संसारमें तर्क-विद्या सबसे पहले आर्य्योंका आविष्कार है। इसपर सबसे उत्तम भाष्य वात्स्यायन मुनिका है।

चौथा—कणादका वैशेषिक शास्त्र है। यह दर्शन मानो आर्य्योंका पदार्थ-विज्ञान है। इसमें पदार्थोंका स्वरूप और उनकी रचनाको सिद्ध करनेकी चेष्टा की गई है। इसपर गोतम मुनिकी बनाई हुई टीका प्रामाणिक मानी जाती है।

पांचवां—जैमिनीका पूर्व-मीमांसा है। इसमें कर्म-काण्डका वर्णन है, और अनुष्ठानों आदिकी व्याख्या है। आर्य्योंने कर्म-काण्डको भी विज्ञानका रूप दे दिया है और उसे शास्त्रीय सूत्रोंके तौरपर वर्णन किया है। इस दर्शनपर सबसे प्रामाणिक भाष्य व्यास मुनिका है।

छठा—व्यासका उत्तर-मीमांसा है। इसको वेदान्त-सूत्र भी कहते हैं। इसमें परमेश्वरका वर्णन है। उसके गुण भी बताये गये हैं। उसीको सारे जगत्‌का मूल सिद्ध किया गया है। वेदान्त-सूत्रोंपर सबसे बढ़िया भाष्य वात्स्यायन मुनि या बौद्धायन मुनिका है।

धर्म-शास्त्र या धर्म-सूत्र। वेद, ब्राह्मण और उपनिषद् प्राचीन आर्य्योंके धर्मका चित्र खींचते हैं। रामायण और महाभारत उनकी लड़ाइयों और विजयोंका वर्णन करते हैं। दर्शन-सूत्र आदि उनके पाण्डित्यको प्रकट करते हैं। परन्तु धर्म-सूत्र उनके धार्मिक, सामाजिक, और गृह्य अनुष्ठानोंका और रहन-सहनका चित्र खींचते हैं।

ये धर्म-सूत्र तीन प्रकारके हैं:—

प्रथम—श्रौत सूत्र, अर्थात् वे नियम जिनका सम्बन्ध धार्मिक अनुष्ठानों और यज्ञ-कर्मोंसे है।

द्वितीय—धर्म-सूत्र, अर्थात् दाय और शासनसम्बन्धी नियम।

तृतीय–गृह्य सूत्र, जिनमें घरेलू सम्बन्धोंका वर्णन है और पारिवारिक कर्त्तव्य बतलाये गये हैं।

हम यहाँ दूसरे और तीसरे प्रकारके सूत्रोंका कुछ संक्षेप करेंगे।

(क) धर्म-सूत्र। धर्म-सूत्रोंमें सबसे प्राचीन सूत्र मनु महाराजके माने जाते हैं। इन्हींसे, किसी पीछेके कालमें, वर्त्तमान मनु-स्मृतिकी श्लोकोंमें रचना हुई है। मनुके सूत्रोंके अतिरिक्त अन्य प्राचीन धर्म-सूत्रोंके नाम ये हैं:—(१) वसिष्ठ-सूत्र, (२) गोतम-सूत्र, (३) बौद्धायन-सूत्र, और (४) आपस्तम्भ-सूत्र। इन सूत्रोंके पीछे भिन्न भिन्न स्मृतियाँ पद्यमें लिखी गईं। इनमेंसे मनु-स्मृतिको छोड़कर, सबसे प्रसिद्ध और प्रामाणिक याज्ञवल्क्य, पराशर और नारद आदिकी स्मृतियाँ हैं।

ये स्मृतियाँ हिन्दुओंके धर्म-शास्त्र हैं। आजतक वे न्यूनाधिक सभी कानूनी बातोंमें इनके अनुसार कार्य करते हैं। चार वर्णोंका पूर्ण विभाग इन स्मृतियोंमें है। कहीं कहीं ऐसी अवस्थायें भी लिखी हैं जिनमें मनुष्य अपने वर्णसे गिर जाता है। चतुर्वर्णके पारस्परिक संबंधोंका सविस्तर वर्णन दिया गया है। चारों वर्णोंके धर्म और कर्त्तव्य अलग अलग बतलाये गये हैं। राज-धर्म बहुत विस्तारपूर्वक दिया गया है। शासनके जो नियम लिखे हैं उनसे जान पड़ता है कि प्राचीन आर्य्य लोगोंने पोलीटिकल साइंस अर्थात् राजनीतिमें भी बहुत अच्छी उन्नति की थी। अन्य कर्त्तव्योंके अतिरिक्त राजाके लिये यह आदेश है कि अपना राजसदन नगरके मध्यमें बनावे। उसके ठीक सामने एक बड़ी शाला हो, जिसमें वह लोगोंसे मिला करे। नगरसे कुछ अन्तरपर दक्षिण दिशामें वह एक बड़ा भवन सभाके लिये बनावे। वृक्षोंकी रक्षा करे। राजस्वके अतिरिक्त प्रजासे और कुछ न ले, इत्यादि।

गोतम-सूत्रोंमें राजस्वके विषयमें निम्नलिखित आदेश हैं:—

(१) किसानसे उपजका दसवां, आठवाँ, या छठा भाग लिया जावे।

(२) पशुओं और स्वर्णपर $\frac{१}{५०}$ भाग।

(३) व्यापारपर $\frac{१}{२०}$ भाग।

(४) फल, फूल, औषध, मधु, मांस, घास और लकड़ीपर $\frac{१}{६०}$ भाग।

राजाकी सहायताके लिये तीन प्रकारकी सभायें होती थीं—धर्म्म-सभा, राज-सभा, और विद्या-सभा।

इन सूत्रोंमें न्यायके लिये बहुत ताकीद है। दीवानी और फौजदारी मुकद्दमोंका निर्णय करनेके लिये भी आदेश लिखे हुए हैं। झूंठी गवाही देना महापाप बतलाया है। इन धर्म्म-सूत्रोंमें दत्तक पुत्र बनाने, दाय और शिक्षादिके सविस्तर नियम हैं। इन्हीं धर्म्म-सूत्रोंमें जहाँ वर्ण-विभागका उल्लेख है, वहां, प्रत्येक मनुष्यके जीवनके चार आश्रम अर्थात् चार भाग भी बतलाये गये हैं। पहला ब्रह्मचर्याश्रम। इसमें बालक आठ वर्षकी अवस्थासे विद्यार्थी रूपमें प्रवेश करके कमसे कम पचीस वर्षकी अवस्थातक रहता था। इस आश्रममें वह विद्या पढ़ता था। विवाह करने या किसी अन्य प्रकारसे अपने वीर्य्यको नष्ट करनेका उसके लिये निषेध था अच्छे अच्छे भोजन भी उसके लिये निषिद्ध था। माता-पिताका घर छोडकर वनमें गुरुकुलमें रहना पड़ता था। भूमिपर सोना होता था। सारांश यह कि इस आश्रमके नियम बड़े कडे थे। इनके कारण बालक कष्ट सहन करनेके योग्य हो जाता था। उसका शरीर दृढ़ रहता था। उसका आचार शुद्ध और पवित्र होता था, और वह विद्यामें

पारङ्गत हो जाता था। पचीस वर्षकी आयुमें वह विवाह करके गृहस्थाश्रममें प्रवेश करता था। सन्तान उत्पन्न करता था, धन कमाता था। सम्पत्ति बनाता था। धर्मके काम करता था। पचास वर्षकी आयुमें अपना धन और जायदाद अपने पुत्रों और सम्बन्धियोंमें बाँटकर वानप्रस्थ हो जाता था। वह वनमें जाकर तपस्या करता था। पचहत्तर वर्षकी आयुमें सन्यास आश्रममें चला जाता था।

इन सूत्रोंके पढ़नेसे मालूम होता है कि प्राचीन आर्य्य सदाचारपर बड़ा बल देते थे। वाशिष्ठ सूत्रोंमें एक जगह लिखा है कि "आचारहीन मनुष्य वेद शास्त्रके पाठसे शुद्ध नहीं होता। ऐसे मनुष्यको वेद कल्याणकारी नहीं होते।"

गोतमऋषि लिखते हैं कि निम्नलिखित कामोंसे मनुष्य अपने वर्णसे पतित हो जाता है :—

"हत्या, सुरापान, गुरु-भार्य्याके साथ व्यभिचार, चोरी, वेद-निन्दा, ईश्वरको न मानना, बार बार पाप करना, अपराधियोंको शरण देना, निर्दोष मित्रका साथ छोड़ देना, दूसरोंको पापकर्मके लिये प्रेरणा करना, मिथ्या दोषारोपण और अन्य ऐसे ही दुष्कर्म।"

इन शास्त्रोंमें समुद्रके पार जाने या विदेश-यात्राका निषेध नहीं है।

(ख) गृह्य सूत्र। गृह्य-सूत्रोंमें आर्य्योंको सोलह संस्कार करनेकी आज्ञा है।

पहला—गर्भाधान, अर्थात् गर्भ रहनेके समयका संस्कार।

दूसरा—पुंसवन संस्कार। यह गर्भसे दो तीन मास पीछे किया जाता है।

तीसरा—सीमन्तोन्नय संस्कार। यह गर्भ-स्थापनासे पांचवें छठे मास पश्चात् किया जाता है।

चौथा—जातकर्म, अर्थात् उत्पत्तिका संस्कार।

पांचवां—नामकरण अर्थात् नाम रखनेका संस्कार।

छठा—निष्क्रमण, अर्थात् मकानके बदलनेका संस्कार।

सातवाँ—अन्नप्राशन, अर्थात् बालकको सबसे पहले अन्न खिलानेका संस्कार।

आठवां—चूडाकर्म, अर्थात् सिर मुंड़ानेका संस्कार।

नवां—कर्ण-वेध संस्कार, अर्थात् कानोंमें छेद करनेकी प्रक्रिया।

दसवां—उपनयन संस्कार, अर्थात् यज्ञोपवीत या जनेऊ पहनानेकी प्रक्रिया।

ग्यारहवां—वेदारम्भ संस्कार, अर्थात् वेदको आरम्भ करानेका अनुष्ठान।

बारहवां—समावर्त्तन संस्कार, अर्थात् विद्याकी समाप्तिपर गुरुके आश्रमसे वापस आनेकी प्रक्रिया।

तेरहवां—विवाह संस्कार।

चौदहवां—गृहस्थाश्रम, अर्थात् गृहस्थ बननेका संस्कार।

पन्द्रहवां—वानप्रस्थ, अर्थात् संसार छोड़कर वनमें जानेका संस्कार।

सोलहवां—सन्यास, अर्थात् तप करनेके पश्चात् सन्यासी बननेका संस्कार।

सत्रहवां—मृतक संस्कार, अर्थात् शवको जलानेकी प्रक्रिया।

नोट—वास्तवमें उपनयन और वेदारम्भ संस्कार एक ही है।

शिक्षा। इस कालकी शिक्षा-प्रणालीके विषयमें निश्चयात्मक रूपसे कोई सम्मति बनाना

कठिन है। परन्तु यह स्पष्ट है कि पुरुषों और स्त्रियोंमें शिक्षाका खूब प्रचार था और आश्रमोंकी प्रथा सम्भवतः जारी हो चुकी थी। द्विजोंमें प्रत्येक बालकको ब्रह्मचर्य्य-पूर्वक गुरु-गृहमें रहकर विद्योपार्जन करना पड़ता था। इसके अतिरिक्त वनों और भिन्न भिन्न रमणीक स्थानोंमें इस प्रकारके आश्रम थे जहाँ विद्वान लोग विद्या-दान देते थे। ये आश्रम और परिषद उस समयके कालेज और यूनिवर्सिटियां थीं। वहां लड़के और लड़कियों-को डिगरियाँ दी जाती थीं, वहांसे प्रमाण-पत्र पाकर वे संसार-
लब्धि और यश प्राप्त करते थे। संस्कृत-साहित्यमें ऐसे अनेक आश्रमोंका उल्लेख मिलता है जिनमें व्याकरणसे लेकर धनुर्वेदतक सब प्रकारकी विद्यायें सिखलाई जाती थीं। धर्म-शास्त्रका जानना सम्भवतः सबके लिये आवश्यक था, क्योंकि उसको जाने बिना कोई भी मनुष्य अपने कर्त्तव्यों और स्वत्वोंको पूरी तरह न जान सकता था। आजकल भी यूरोप और अमरीकाके विश्वविद्यालयोंमें स्वत्वों और कर्त्तव्योंकी शिक्षा आरम्भिक पाठशालाओंसे शुरू की जाती है और भारतवर्षके सदृश लड़कोंको प्रचलित कानूनों और नागरिकताके अधिकारोंसे अनभिज्ञ नहीं रक्खा जात

चौथा खण्ड
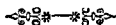
भारतका ऐतिहासिक काल।
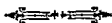
पहला परिच्छेद।

महात्मा बुद्धके जन्मके पूर्वका इतिहास।

भारतवर्षका ऐतिहासिक काल ईसाके जन्मके सात सौ वर्ष पहले आरम्भ होता है। इसी कालके इतिहासमें (वरन कदाचित् उसके पहले भी) हिन्दुओंके सात पवित्र नगर गिने जाते थे—अर्थात् (१) काशी, (२) हरिद्वार जिसका दूसरा नाम मायापुरी है, (३) कांजी जिसका दूसरा नाम कांजीवरम् है, (४) अयोध्या, (५) द्वारावती-अर्थात् द्वारका, (६) मथुरा, (७) उज्जैन, जिसका दूसरा नाम 'अवन्तिकापुरी' है।

महात्मा बुद्धके जन्मके निकट भारतवर्षका राजनीतिक मान-चित्र।

तत्कालीन राज्य। महात्मा बुद्धके जन्मके कुछ काल पूर्व अथवा उसके समीप भारतवर्षके राजनीतिक मान-चित्रमें कई निरङ्कुश राज्य थे और कई प्रजातन्त्र। उस

समयके प्रसिद्ध राज्योंमेंसे चार राज्योंका विशेष रूपसे उल्लेख मिलता है :—

(१) मगध, इसकी राजधानी राजगृह थी। यही वादको पाटलिपुत्र बन गई। यहाँ पहले राजा विम्बिसारने राज्य किया और उसके पीछे अजातशत्रुने। इस वंशका प्रवर्त्तक ईसाके ६४२ वर्ष पूर्व बनारसका शिशुनाग नामक एक राजा था। विंबिसार उस वंशका पांचवां राजा था। उसने अङ्गदेश अर्थात् वर्त्तमान मुंगेर और भागलपुरको जीतकर अपने राज्यमें मिला लिया। ईसाके ५५४ वर्ष पूर्व अजातशत्रु अपने पिता विंबिसारके सिंहासनपर बैठा। उसने २७ वर्ष राज किया। उसने सोन नदीपर पाटलि नामका एक दुर्ग बनाया। यही पीछेसे पाटलि-पुत्र हो गया। इसकी माता प्रसिद्ध लिच्छवी जातिकी थी और भार्या कोशलकी राजकुमारी थी। अजातशत्रुके पश्चात् उसका पुत्र दर्भक ईसासे ५२७ वर्ष पूर्व सिंहासनपर बैठा। फिर उसके पश्चात् उसका पुत्र उदयन ईसासे ५०३ वर्ष पूर्व राजा बना। इस राजाने गङ्गा-तीरपर पाटलिपुत्रसे कुछ मील दूर, कुसुमपुर नामक एक नगर बसाया।

(२) दूसरा राज्य उत्तर-पश्चिममें कोशलका था। इसकी राजधानी सावत्थी रापती नदीके तटपर पर्वतके अञ्चलमें स्थित थी।

(३) तीसरा राज्य कोशलसे दक्षिणकी ओर वत्सोंका था। इसकी राजधानी यमुनापर कौशाम्बी थी। इसमें परन्तपका पुत्र उदयन राज्य करता था।

(४) चौथा राज्य इससे भी दक्षिणमें अवन्तिका था। इसकी राजधानी उज्जयनी थी। वहां राजा चण्डप्रद्योत (पज्जोत) राज करता था।

ये सभी राज-परिवार आपसमें एक दूसरेसे सम्बन्ध रखते थे। उनके विषयमें बहुतसे उपाख्यान और ऐतिह्य बौद्ध पुस्तकोंमें लिखे हैं। परन्तु उनमेंसे बहुत थोड़े विश्वासके योग्य हैं।

उस समयके राजनीतिक विभाग।

उस समय उत्तर भारतमें सोलह राजनीतिक शक्तियां राज्य करती थीं। उनमेंसे चारका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। शेष ये हैं :—

(१) अङ्ग, जिसकी राजधानी चम्पा आजकलके भागलपुरके समीप थी।

(२) काशी, जो किसी समय एक शक्तिशाली राज्य था।

(३) वज्री (वज्जो) जिसके अन्तर्गत आठ संयुक्त वंश थे। इनमेंसे सबसे बड़े लिच्छवी और विदेह थे। बुद्धके समयमें यह राज्य प्रजातन्त्र सिद्धान्तोंपर व्यवस्थित था। इसका क्षेत्रफल तेईस सौ मीलके लगभग था। इसकी राजधानी मिथिला थी, जहां राजा जनक बुद्ध-धर्मकी उत्पत्तिसे कुछ समय पहले राज्य करता था।

(४) कुशीनारा और पावाके मल्ल, ये भी स्वाधीन जातियां थीं। इनका प्रदेश पर्वतके अञ्चलमें था।

(५) चेति, इनके दो उपनिवेश थे—पुराना उपनिवेश नैपालमें और दूसरा पूर्वमें कौशाम्बीके समीप।

(६) कुरु लोगोंकी राजधानी इन्द्रप्रस्थ थी। इसके पूर्वमें पांचाल और दक्षिणमें मत्स्य जातियाँ बसती थीं। ऐतिह्योंके अनुसार इस राज्यका क्षेत्रफल दो सहस्र मील था।

(७) दो राज्य पांचालोंके, जो कुरुओंके पूर्वमें गङ्गा और पर्वतोंके बीच थे और जिनकी राजधानियां कम्पिला और कन्नौज थीं।

(८) मत्स्य, जो कुरुओंके दक्षिणमें और यमुनाके पश्चिममें थे।

(९) शूरसेनोंका राज्य, इसकी राजधानी मथुरामें थी।

(१०) बुद्धके समयमें गोदावरीके किनारे एक बस्ती अश्मक (अस्सक) लोगोंकी थी। इनकी राजधानी पोतन या पोतली थी।

(११) गान्धार, इसकी राजधानी तक्षशिला थी।

(१२) काम्बोजोंका राज्य, इसकी राजधानी द्वारकामें थी।

इनके अतिरिक्त दस स्वाधीन जातियोंका उल्लेख है। ये प्रजातन्त्र-सिद्धान्तोंपर शासन करती थीं। उनकी शासन-प्रणाली कई बातोंमें प्राचीनकालके यूनानी प्रजातन्त्र राज्योंके सदृश था। इन प्रजातन्त्र जातियोंमेंसे सबसे बड़ी शाक्य जाति थीं। इसके विषयमें लिखा है कि उसका प्रबन्ध और विचार-सम्बन्धी कार्य एक सार्वजनिक सभामें कपिलवस्तुके समीप हुआ करता था। इसमें छोटे बड़े सभी सम्मिलित होते थे। दूसरी जातियोंके जो सन्देश और पत्र आते थे वे भी इसी प्रति-निधि सभामें उपस्थित होते थे। इन लोगोंकी रीति थी कि एक मनुष्यको एक अधिवेशनके लिये या जब अधिवेशन न होते थे तो कुछ कालके लिये प्रधान चुन लेते थे।

निर्णय और विचारसम्बन्धी (जुडीशल) प्रबन्धके विषय-में ऐतिह्य कहता है कि वज्जी-वंशके संयुक्त राज्योंमें फ़ौज-दारीकी अदालतोंके छः दर्जे थे। उनमेंसे प्रत्येकको दोषीको छोड़ देनेका तो अधिकार था। परन्तु किसी एकको उसे दण्ड देनेका अधिकार न था। यदि वे छः एकमत होकर अपराधी ठहरायें तो राजा धर्मके अनुसार दण्ड देता था।

यह नहीं कहा जा सकता कि यह रीति सभी राज्योंमें प्रचलित थी। परन्तु इससे इतना तो अवश्य प्रकट हो जाता है कि उस समयके लोग व्यक्तिगत स्वतन्त्रताकी कितनी परवा करते थे।

उस समयके बड़े बड़े नगर। प्रोफेसर रिस डेविड्जने उस समयके बड़े बड़े नगरोंकी आगे लिखी सूची अपनी पुस्तकमें दी है :—

(१) अयोध्या, जो सरयू नदीपर थी।

(२) गङ्गा-तीरपर बनारस, इसका विस्तार पचासी मील बताया गया है।

(३) चम्पा, यह अङ्गदेशकी प्राचीन राजधानी थी और इसी नामकी नदीपर स्थित थी।

(४) कम्पिला, उत्तरीय पंचाल जातिकी राजधानी थी।

(५) कौशाम्बी, बनारससे २३० मील दूर यमुना-तटपर स्थित थी यह व्यापारकी बहुत बड़ी मण्डी थी।

(६) मधुपुरी, यमुना-तीरपर शूरसेनोंकी राजधानी थी। कई लोगोंका मत है कि वर्त्तमान मथुरा वही स्थान है जहां मधुरा या मधुपुरी थी।

(७) मिथिला, राजा जनककी राजधानी।

(८) राजगृह, मगधकी राजधानी।

(९) रोरुक सौवीर, जो बादको रोरुआ बन गया और जिससे वर्त्तमान कालका सूरत निकला है। वह उस समयमें भी व्यापारकी बड़ी भारी मण्डी थी।

(१०) सागल, उत्तर-पश्चिममें। इसके राजाने सिकन्दरका सामना किया था।

(११) साकेत, जिसे उन्नाव जिलेके अन्तर्गत सई नदीके तटपर सुजानकोटके स्थानपर पहचाना गया है।

(१२) श्रावस्ती, यह बुद्ध-कालके छः प्रसिद्ध नगरोंमेंसे एक थी।

(१३) उज्जैन, यह मालवाका प्रसिद्ध नगर है।

(१४) वैशाली, जिसका घेरा १२ मीलका लिखा है।

उस समयके गांव। ग्रामोंका वर्णन करते हुए प्रोफेसर रिस डेविड्ज़ लिखते हैं कि प्रायः सभी ग्राम एक ही नमूनेपर बनाये जाते थे। सारी बस्ती एक जगह इकट्ठी की जाती थी और उसको गलियोंमें बांटा जाता था। गांवके समीप वृक्षोंका एक झुंड रक्खा जाता था। उनकी छायाके नीचे गांवकी पंचायतें हुआ करती थीं। बस्तीके इर्द गिर्द कृषिकी भूमि होती थी। गोचरभूमियां शामलात (बहुस्वामिक) रक्खी जाती थीं। इसके साथ ही जंगलका एक टुकड़ा भी छोड़ा जाता था। वहांसे प्रत्येक व्यक्तिको लकड़ी लेनेका अधिकार था। प्रत्येकके पशु अलग अलग थे, परन्तु गोचर भूमियां पृथक् पृथक् न थीं। फसलके कट जानेपर पशु सब जगह चरते फिरते थे परन्तु फसल खड़ी होनेपर वे केवल गोचर-भूमिमें चरते थे। जिस भूमिमें कृषि होती थी वह उतने भागोंमें विभक्त की जाती थी जितने घर कि गांवमें बसा करते थे। प्रत्येक परिवार अपने भागकी भूमिमें खेती करता था, और उसकी उपज लेता था। जल-सिंचनके लिये नालियां बनाई जाती थीं और नियम नियत थे। सारी जोती हुई भूमिकी एक बाड़ थी। अलग अलग खेतोंकी बाड़ें न थीं। सारी भूमि गांवकी साझेकी मिलकियत समझी जाती थी। पुरानी कथाओंमें कोई ऐसा उदाहरण वर्णित नहीं जिससे प्रकट होता हो कि किसी अकेले भागीदारने अपनी जोती हुई भूमिका भाग किसी परदेसीके हाथ बेच दिया हो। कमसे कम गांवकी पंचा-

यतंकी स्वीकृतिके बिना ऐसा करना असम्भव था। प्रोफेसर रिस डेविड्ज़ लिखते हैं कि पुस्तकोंमें केवल तीन ऐसे उदाहरणोंका उल्लेख है। इनमेंसे एककी अवस्थामें भूमिको उसके स्वामीने जङ्गल काटकर खेतीके लिये तैयार किया था। किसी अकेले भागीदारको अपनी भूमि वसीयत करनेका भी अधिकार न था। इन सब बातोंका निर्णय रवाजके अनुसार होता था। इन निर्णयोंमें परिवारकी आवश्यकताओंका ध्यान रक्खा जाता था। भूमिकी शामलातमें या गोचरभूमियोंमें किसी व्यक्तिको दान या क्रयके द्वारा मिलकियत प्राप्त करनेका अधिकार न था। यह बताया गया है कि राजा भूमिका स्वामी नहीं था। उसका अधिकार केवल कर लेनेका था।

गांवकी आर्थिक अवस्था बहुत सीधी सादी बताई गई है। गांवमें कोई व्यक्ति उन अर्थोंमें धनाढ्य न हो सकता था जिन अर्थोंमें धनाढ्य शब्द आजकल उपयुक्त होता है। परन्तु प्रत्येक व्यक्तिके पास अपनी आवश्यकताओंके अनुसार पर्याप्त सामग्री थी अतएव वह सन्तोष और स्वतन्त्रतासे रहता था। उस कालमें न भूमिके मालिक थे और न कङ्गाल * गाँवमें प्रायः अपराधका लेशमात्र न था। गाँवसे बाहर जो डाका आदिकी दुर्घटना हो उसको रोकना केन्द्रिक शक्तिका कर्त्तव्य था।

पुरस्कार लेकर श्रम करना बहुत बुरा समझा जाता था। प्रत्येक व्यक्तिको अपने परिवार और अपने गाँवका अभिमान था। वे लोग दूसरोंकी मजदूरी † करना बहुत ही अपमानजनक

* Neither landlords nor paupers.

† इसका तात्पर्य यह है कि 'working for wages' अर्थात् वेतन लेकर किसीके लिये मजदूरी करना निन्दित गिना जाता था। इसका यह अर्थ नहीं है कि श्रम और मिहनतको निन्दनीय समझा जाता था।

समझते थे। प्रोफेसर रिस डेविड्ज़की सम्मतिमें उस समय सत्तर अस्सी प्रतिशतकके लगभग लोग स्वतंत्र और समृद्धिशाली थे।

जातिपांतिका भेद। प्रोफेसर रिस डेविड्ज़ अपनी 'बुद्धिस्ट इण्डिया' नामक पुस्तकमें बहुतसे ऐसे उदाहरणोंका उल्लेख करते हैं जिनमें एक वर्णमें उत्पन्न हुआ मनुष्य अपने कर्मसे दूसरे वर्णमें प्रविष्ट हो गया।

नगर। नगरोंका उल्लेख करते हुए उक्त प्रोफेसर महोदय कहते हैं कि उस समयमें नगरोंके बड़े ऊँचे ऊँचे प्राचीर बनाये जाते थे। हैवलने अपने इतिहासमें नगरों और गांवोंके मानचित्रोंका उल्लेख शिल्प-शास्त्रोंकी पुस्तकोंके अनुसार विस्तारपूर्वक किया है।

मकानोंका उल्लेख करते हुए कहा गया है कि वे चूने और ईंट-पत्थरके बनाये जाते थे। लकड़ीका भी प्रचुरतासे उपयोग होता था। मकानोंको बहुत सजाया जाता था। कई मकान सात मंज़िले बताये गये हैं। मकानोंमें गरम स्नानागारोंका भी उल्लेख मिलता है। वे प्रायः उसी नमूनेके थे जिसके कि आजकल तुर्की स्नानागार बनाये जाते हैं।

आर्थिक अवस्थायें। उस समयकी कहानियों, ऐतिह्यों और पुस्तकोंसे प्रोफेसर रिस डेविड्ज़की धर्मपत्नीने एक सूची उन व्यवसायियोंकी तैयार की है जो उस समय आर्य्य-प्रदेशमें पाये जाते थे। इस सूचीमें बढ़ई, लोहार, पत्थर छीलनेवाले, जुलाहे, चमड़ेकी वस्तुयें बनानेवाले, कुम्हार, संगमरमरकी चीजें बनानेवाले, रँगरेज़, सुनार, धीवर, कसाई, व्याध, हलवाई, नाई, पालिश करनेवाले, फूल बेचनेवाले, नाविक, टोकरियां बनानेवाले और चित्रकार मिले हुए हैं।

उनकी कारीगरीके कुछ नमूने भी उनकी पुस्तकके छठे अध्याय में दिये हैं। इन व्यवसायियोंके अतिरिक्त किसानों, शिल्पियों, दूकानदारों और व्यापारियोंका भी उल्लेख है। कई आभूषणोंके सुन्दर नमूने भी दिये हैं। पुरानी पालीकी पुस्तकोंमें उन मार्गोंका भी उल्लेख है जो व्यापारके बड़े बड़े राजपथ गिने जाते थे। कहा जाता है कि उस समय पक्की सड़कें नहीं थीं, न पुल थे, और न रुपया लेने देनेके कुछ सुभीते थे। व्याजकी दर भी उस समयकी पुस्तकोंमें लिखी नहीं है। यद्यपि ऐसे लोगोंकी संख्या बहुत कम थी जिनको धनाढ्य कहा जा सके परन्तु उस अभाव और दरिद्रताके भी, जो आजकल यूरोपके बड़े बड़े नगरोंमें पाई जाती है, कोई चिह्न न थे।*

लेखन-कला। लिखित पत्रका प्रथम उल्लेख बुद्ध धर्मकी उस पुस्तकमें मिलता है जो बुद्ध देवकी बातचीतका प्रथम अध्याय कही गई है।† इससे यह मालूम होता है कि उस समय लेखन-विद्या भलीभांति प्रचलित थी और सरकारी घोषणाओं, सूचनाओं और पत्र-व्यवहारके लिये काममें लाई जाती थी। स्त्रियां और साधारण लोग भी लिखना जानते थे। यहांतक कि बच्चोंके खेलोंमें एक ऐसे खेलका उल्लेख है जिसमें लिखना खेलनेके रूपमें सीखा जाता था। लेख शब्दका उल्लेख भी बहुत मिलता है। उससे यह परिणाम निकाला जाता है कि यद्यपि लिपि-विज्ञान उस समयसे शताब्दियों पहले जारी हो चुका था परन्तु पुस्तकें लिखनेकी प्रथा अभी प्रचलित न हुई थी।

* ईसाके पूर्व छठीं शताब्दीकी आर्थिक अवस्थाके विषयमें प्रोफेसर रिस डेविड्सकी पुस्तकका यह भाग बहुत ही रोचक और पूर्ण रूपसे अध्ययनके योग्य है।

† Suttantan.

इस विषयके बहुतसे प्रमाण एकत्र किये गये हैं कि लेखन-कला उस समय भारतमें फ़रात नदीके तीरवर्ती प्रदेशोंसे आई * ।

दूसरा परिच्छेद ।
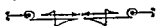
बौद्ध और जैन धर्मोंका आरम्भ ।

भारतीय इतिहासके उस कालमें दो महापुरुष उत्पन्न हुए। उन्होंने दो नये धर्मों की नींव डाली। उनमेंसे एक तो महात्मा शाक्य मुनि गौतम बुद्ध थे और दूसरे जैनोंके प्रसिद्ध तीर्थङ्कर श्रीवर्धमान महावीर थे। ये दोनों महापुरुष राजा बिंबिसारके जीवन-कालमें उत्पन्न हुए। कई ऐतिहासिक इस बातको प्रमाणित मानते हैं कि श्रीमहावीर राजा बिंबिसारके सम्बन्धी थे। बिंबिसारके पुत्र अजातशत्रुने दोनों महापुरुषोंके दर्शन किये।

महात्मा बुद्धका जन्म और बौद्ध धर्मकी उन्नति ।

राजकुमार शाक्य मुनिका जन्म और विवाह आदि ।

सूत्रोंके पढ़नेसे ऐसा प्रतीत होता है कि जिस समयमें सूत्रोंका निर्माण हुआ उस समयमें विद्वानोंमें एक विचित्र झगड़ा चल रहा था। वर्ण-व्यवस्था और जाति-पांतिके पूर्ण भेदने भारी उपद्रव उत्पन्न कर रक्खा था। ब्राह्मण लोग

* गत तीन चार वर्षमें जो नये अन्वेषण हुए हैं उन्होंने यह सिद्ध कर दिया है कि लेखन-कला भारतमें वैदिक कालसे ही पाई जाती है, यह कहीं बाहरसे नहीं आई। देखिये रायबहादुर गौरीशङ्कर हीराचन्द ओझाकृत प्राचीन लिपिमाला।
—अनुवादक ।

महात्मा बुद्ध

किसी दूसरे व्यक्तिको ब्राह्मण वर्णमें प्रवेश न करने देते थे, परन्तु दूसरे वर्णोंके लोग विद्या पढ़कर ब्राह्मण बन जाना अपना अधिकार मानते थे।

दूसरे—ब्राह्मणोंने धर्मको अनुष्ठानोंके ऐसे पेचीले जालमें जकड़ रखा था कि लोगोंको सन्देह होता था कि इस कर्मकाण्डका वास्तविक धर्मसे कुछ सम्बन्ध नहीं है।

तीसरे—यज्ञ-कर्मोंमें पशु-वध इतना अधिक होने लगा था कि सब लोगोंके मनमें घृणा उत्पन्न हो गई थी, और वे प्रश्न करने लगे थे कि क्या धर्मके लिये इस प्रकारके बलिदानकी आवश्यकता है?

चौथे—मन्त्र-यन्त्रका बहुत जोर हो गया था। लोग अपने जीवनको पवित्र बनानेका कुछ भी यत्न न करते थे। वे मन्त्र यन्त्र और यज्ञ-कर्म आदिसे ही ब्राह्मण देवताओंको प्रसन्न करके समाजमें प्रतिष्ठा प्राप्त कर लेते थे।

पांचवें—हठ-योगके अभ्यास भी उसी समय ज़ोरोंपर थे। सारांश यह कि आर्य्य लोगोंकी ऐसी ही अवस्था हो रही थी जब कि भारतवर्षके उस नगर (कपिलवस्तु) में जहां पहले सांख्य दर्शनके रचयिता कपिल उत्पन्न हुए थे, बुद्धदेवका प्रादुर्भाव हुआ। कपिलवस्तु शाक्य जातिकी राजधानी थी और उनके राजाका नाम शुद्धोदन था। उसके घरमें कल्याण जातिकी दो रानियां थीं। इन दोनों रानियोंमेंसे एकके यहां गौतम बुद्धका जन्म हुआ। बुद्धको शाक्यमुनि गौतम भी कहते हैं। यह अपने माता-पिताके एकलौते पुत्र थे और उनकी बड़ी अवस्थामें उत्पन्न हुए थे। यह जब बड़े हुए तो कोलीके राजाकी पुत्री यशोधरासे इनका विवाह हो गया।

उन्हें बचपनमें ही सोच-विचारका स्वभाव पड़ गया।

वह घण्टों विचारमें निमग्न रहने लगे। ऐसा प्रतीत होता है कि संसारकी असारता और पाप तथा बुराईने छोटी आयुमें ही उनके मनपर ऐसा प्रभाव डाला कि वह प्रभाव आयुके साथ साथ अधिकाधिक होता गया। उन्होंने सोचा कि मुझे कैसे विश्वास हो कि जिस जगत्में इतना पाप और बुराई फैली हुई है वह किसी ऐसी शक्तिका बनाया हुआ है जो पुण्यमय और सर्वज्ञ बताई जाती है। इस ठोकरको खाकर महात्मा बुद्ध आयुपर्यन्त न संभले। प्रचलित धार्मिक अनुष्ठानों और अन्य प्रथाओंने भी उनके हृदयपर चोट लगाई। अन्तको इसी प्रयासमें राजकुमार शाक्यमुनि, अपने विवाहके दस वर्ष पश्चात्, गृहस्थाश्रमको छोड़कर साधु हो गये। विवाहके दस वर्ष पीछे उनके यहां एक पुत्र उत्पन्न हुआ। इस घटनाने मानो उन्हें निद्रितावस्थासे जगा दिया। शाक्यमुनिने सोचा कि दिनपर दिन नये सम्बन्ध बढ़ते जाते हैं और मैं संसारके प्रेम और ममताके जालमें जकड़ा जा रहा हूँ। इससे भय है कि मैं भी कहीं लोगोंकी भांति पापमें न फंस जाऊँ।

शाक्य मुनिका घरसे निकलना और बुद्ध हो जाना।

यह सोचकर उन्होंने जङ्गलमें चले जानेकी ठान ली। सारे राज-पाट, धन-दौलत, सुखसम्पत्ति और ऐश्वर्यको एकाएक छोड़कर शाक्यमुनि घरसे निकल पड़े। जङ्गलों और पहाड़ोंमें जाकर ज्ञानोपार्जन करने लगे। भारतके दर्शन शास्त्रमें जो कुछ सार था उसका उन्होंने अध्ययन किया। परन्तु शान्ति न हुई। सोचा कि कदाचित् तपसे शान्ति मिले। इसलिये उन्होंने दर्शन और तत्त्वज्ञानको छोड़कर गयाके समीप उरुविल्वके वनोंमें छः वर्षतक निरन्तर घोर तपस्या की। उसकी तपस्याकी कहानियाँ सुनकर लोगोंके दलके

दल उनके गिर्द एकत्र होने लगे। परन्तु उनको इससे भी सन्तोष नहीं हुआ। यहांतक कि एक दिन बुद्धदेव अत्यन्त व्यथित होकर गिर पड़े। कुछ कालतक उनके शिष्योंने यही समझा कि गुरुदेवकी आत्मा उनके पार्थिव शरीरको छोड़ गई है। परन्तु उनका प्राणान्त नहीं हुआ। वे इस परिणामपर पहुंचे कि इस प्रकार शरीरको कष्ट देनेसे कुछ लाभ नहीं हो सकता।

जब तपस्यासे भी शान्ति न हुई तो वह भी छोड़ दी। उनके इन कर्मसे उनके साथियोंमें बहुत अश्रद्धा उत्पन्न हो गई और वे उनको छोड़कर काशी चले गये। कुछ काल बुद्धदेव एकाकी वनोंमें विचरते और चिन्तनमें मग्न रहे। अन्तको वे इस परिणाम-पर पहुंचे कि विश्व-प्रेम और पवित्र जीवनसे ही मनुष्यको शान्ति मिल सकती है। उन्होंने समझा कि धर्मकी वास्तविक चाबी अब मुझे मिल गई। मानो उन्हें आकाशवाणी हुई कि जो सचाई तुम्हें मिली है उसका प्रचार करना—उसे दूसरोंतक पहुंचाना तुम्हारा कर्त्तव्य है।

बुद्धका प्रचार। शाक्यमुनि इस हर्षमें मग्न काशी पहुंचे। यहां उन्होंने अपने धर्मका उपदेश करना आरम्भ किया। बुद्धके तप छोड़नेपर जो पांच शिष्य अश्रद्धाके कारण उनसे अलग हो गये थे वही सबसे पहले उनके धर्ममें सम्मिलित हुए। इनमेंसे एकका नाम यश था। वह एक धनाढ्य मनुष्यका पुत्र था और भोग-विलासके जीवनसे ऊबकर बुद्धकी शरणमें आया था।

पांच मासमें ६० पुरुषोंने बुद्ध धर्मको ग्रहण किया। इन साठोंको उसने आज्ञा दी कि जिस सचाईको मैंने इतने घोर परिश्रमसे प्राप्त किया है उसको फैलानेके लिये भिन्न भिन्न स्थानोंको अलग अलग होकर चले जाओ।

बुद्धने अपने जीवनमें अनेक राजाओं महाराजाओं, सेठ-

साहूकारों, संन्यासियों—सारांश यह कि सब प्रकार, सब स्थिति और सब सम्प्रदायोंके लोगों—को अपने धर्ममें सम्मिलित किया। समस्त मगध देश और उसके आस पासका प्रान्त उनका अनुयायी हो गया। उनके पिताने भी उनके धर्मकी दीक्षा ली। उनका पुत्र भी उनका चेला बना। उनकी माता और धर्मपत्नी भी उनके सम्प्रदायमें मिल गईं। अस्सी वर्षतककी आयुतक इसी प्रकार अपने धर्मका प्रचार करनेके पश्चात् इस महान् आत्माने अपनी मानवलीला समाप्त की।

कतिपय स्मरणीय तिथियां।

महात्मा बुद्धके सम्बन्धमें आगे लिखी तिथियां स्मरण रखनेके योग्य हैं:—

जन्म	ईसाके	५७७	वर्ष	पूर्व।
विवाह	„	५३८	„	„
गृह-त्याग	„	५२८	„	„
निर्वाण	„	५२२	„	„
मृत्यु	„	४७७	„	„

बुद्धकी शिक्षा।

महात्मा बुद्धने निर्वाण सिद्धान्तकी शिक्षा दी। निरन्तर परिश्रम, त्याग, और पवित्र जीवन द्वारा पुनर्जन्म और सांसारिक विषय-भोगकी इच्छाको नष्ट कर डालनेका नाम निर्वाण है। महात्मा बुद्धकी शिक्षाके अनुसार, निर्वाणसे जीवात्मा बार बारके जन्म-मरणके बंधनसे मुक्त हो जाता है। निर्वाणके पश्चात् आत्माकी क्या गति होगी, यह एक ऐसा प्रश्न है जिसका महात्मा बुद्धने कुछ उत्तर नहीं दिया। उसने स्पष्ट शब्दोंमें कहा है कि मैं नहीं जानता, निर्वाणके पीछे आत्माकी क्या गति होगी। महात्मा बुद्धका विश्वास था कि जबतक निर्वाण प्राप्त नहीं होता मनुष्य आवागमनमें

बंधा रहता है। निर्वाण-प्राप्तिके पश्चात् प्रत्येक व्यक्ति "बुद्ध" हो जाता है और उनकी पदवी सबसे उच्च हो जाती है।

जाति-पांतिका भेद। बुद्ध जाति-पांतिके भेदको स्वीकार न करते थे। यद्यपि थोड़े समयके पश्चात् बौद्ध लोगोंमें भी भिन्न भिन्न दल हो गये, तथापि यह बात स्पष्ट है कि यह दल-बन्दी उनकी शिक्षाके विरुद्ध थी। वैदिक यज्ञ और कर्मकाण्डकी पद्धतिका भी बुद्धने परित्याग कर दिया, क्योंकि उनकी सम्मतिमें वे न केवल व्यर्थ ही थे वरन् स्पष्ट रूपसे हानिकारक थे। बुद्धको अनुष्ठानों और बलिदानसे अतीव घृणा थी। अतएव उन्होंने इस विषयमें सारी पुरातन रीतिको बदलकर एक प्रकारकी समताका धर्म्म फैलाया। उनके जीवनमें और उनके जीवनके पश्चात् बहुत कालतक उनके धर्म्मकी नींव उनके शुद्ध, पवित्र और सच्चे जीवनपर थी। उनके मरते ही उनके धर्ममें वही बुराइयां घुस गईं जिनको उखाड़नेके लिये उन्होंने इस धार्मकी नींव रक्खी थी। परन्तु इस बातको भूल न जाना चाहिये कि बुद्धने किसी नवीन धर्म्मके प्रवर्त्तनकी प्रतिज्ञा नहीं की। वह यही कहते रहे कि मैं प्राचीन आर्य्य-मर्यादाकी शिक्षा देता हूं। उसने बहुतसे लोगोंको भिक्षु बनाया अर्थात् उनको यह प्रेरणा की कि वह साधारण गृहस्थका जीवन छोड़कर साधु हो जायँ और अपने जीवनको साधनोंमें डालकर धर्म्म-प्रचार करें। आर्य्योंके इतिहासमें यह पहला उद्योग था कि गृहस्थोंको इस प्रकार नियम-पूर्वक संसार-त्यागी बनाकर उनका एक पृथक विभाग बनाया गया। महात्मा बुद्धके पूर्व ऐसे ऋषि, महर्षि, ब्रह्मचारी और कदाचित् संन्यासी भी थे जो बस्तीसे अलग बनोंमें रहते थे, वहीं पढ़ते थे, शिक्षा देते थे, तपस्या करते थे, विचार करते थे और योग करते थे, परन्तु

उनके लिये अविवाहित रहना आवश्यक न था। उनमेंसे अनेक गृहस्थ होते थे।

सर्वसाधारणके लिये बुद्धने उस समयके प्रचलित देवी-देवताओंके पूजनका निषेध नहीं किया। उन्होंने भिक्षुओंके लिये विशेष मर्यादा बनाई परन्तु साधारण लोगोंके लिये केवल साधारण शिक्षा ही दी।

उन्होंने उनको उस समयमें प्रचलित मर्यादाको सर्वथा छुड़ा देनेका यत्न नहीं किया, वरन् वह यही कहते रहे कि जो मार्ग मैं बतलाता हूं और जो प्रकाश मैं लाया हूं वह कोई नया नहीं है।

महात्मा बुद्ध अपने अनुयायियोंको मन वचन और कर्मकी पवित्रताकी शिक्षा देते थे। उनके धर्ममें वाणी और कर्मकी सचाईपर बहुत बल दिया जाता था। अहिंसा और बड़ोंके प्रति श्रद्धा भी उनकी शिक्षाका प्रधान अङ्ग थी। चोरी न करना, किसीको न मारना, व्यभिचार न करना, झूठ न बोलना, परनिन्दा न करना, लोभ न करना, घृणा न करना, और अविद्यासे बचना, ये उनकी शिक्षाके मुख्य मुख्य सिद्धान्त थे। संसारमें कौनसा धर्म है जो यही शिक्षा नहीं देता, अतएव बुद्ध-धर्मका विशेष उद्देश्य यह था कि ये सचाइयां जो कर्मकाण्डके भारके नीचे दब गई थीं और जिनको सिद्धान्तोंके तत्त्वज्ञानने मन्द कर दिया था। पुनः जनताके जीवनोंमें स्थान पावें, लोग केवल विश्वाससे ही धर्मात्मा न हों वरन् उनका जीवन धर्ममय हो। उन्होंने लोगोंको आठ प्रकारका सच्चा मार्ग बताया—अर्थात् सत्य विश्वास, सत्य विचार, सत्य वाक्य, सत्य कर्म्म, सत्य आजीविका (शुद्ध अन्न), सत्य पुरुषार्थ, सत्य स्मृति और सत्य ध्यान। उनकी समझमें यह मार्ग मध्यवर्ती मार्ग था। यह एक ओर इन्द्रियोंकी दासतासे बचाता

था और दूसरी ओर संसार-त्यागी होनेसे रक्षा करता था। यह शिक्षा साधारण जनताके लिये थी, परन्तु जीवनका पूर्ण लाभ भिक्षु बननेसे ही प्राप्त हो सकता था। भिक्षुओंके दलको 'संघ' कहते थे। बुद्ध-धर्ममें भिक्षुओंके संघको वही अधिकार प्राप्त थे जो रोमन कैथोलिक धर्ममें पोपको और सिक्खोंके धर्ममें संगतको प्राप्त हैं। महात्मा बुद्धके धर्ममें स्त्रियां भी भिक्षुणी बन सकती थीं, परन्तु उनकी पदवी बहुत नीची मानी गई है।

बुद्ध देवने ईश्वर और आत्माके विषयमें कोई विशेष शिक्षा नहीं दी। उन्होंने न तो परमात्माके अस्तित्वसे इन्कार किया और न उसका स्वीकार। उनकी सम्मतिमें इस प्रकारके विवाद व्यर्थ हैं। मनुष्यके जीवनपर उनका कुछ प्रभाव नहीं पड़ता। बुद्ध अपने जीवनमें पवित्रताके देवता थे और पुण्य कर्मोंपर जोर देते थे। परन्तु खेदका विषय है कि उनके पीछे उनके अनुयायियोंने उनके धर्मको उन्हीं व्यर्थ बातोंसे भर दिया जो उसके पहले प्रचलित थीं। वे उनके पीछे फिर प्रचलित हो गईं। महात्मा बुद्ध आर्य्योंके पहले सुधारक थे जिन्होंने संसारमें अपना धार्मिक सिक्का ऐसा बैठाया कि आज प्रमाणित रूपसे मनुष्य-समाजके इतिहासमें उनकी कोटिका दूसरा मनुष्य नहीं माना जाता। ईसाई लोग ईसा मसीहको और मुसलमान मुहम्मद साहबको संसारका सबसे बड़ा ईश्वरीय दूत मानते हैं परन्तु शेष सारा संसार भगवान बुद्धको जगत्‌का सबसे बड़ा मनुष्य समझता है।

बौद्ध-धर्मकी सभाएं।

ईसाके जन्मके ४७७ वर्ष * पूर्व बुद्ध देवका देहान्त हुआ, और इसी वर्ष उनकी शिक्षा और उनके आदेशोंको शुद्ध करके एकत्रित

* कुछ लोग ४८२ और कुछ दूसरे लोग ५४२ वर्ष अनुमान करते हैं।

करनेके लिये सारे बौद्ध भिक्षुओंकी एक बड़ी सभा जुटी। इस सभाको बौद्ध धर्मकी प्रथम सभा कहते हैं। इसके एक सौ वर्ष पीछे दूसरी सभा वैशालीमें हुई। इसमें बौद्ध भिक्षुओंको सोना और चांदी रखनेकी आज्ञा दी गई। इसके अतिरिक्त आगे लिखे नियमोंसे मालूम होगा कि कैसी छोटी छोटी बातोंपर इन लोगोंमें मतभेद हो गये।

(१) सींगके पात्रमें नमक एकत्र किया जा सकता है।

(२) दोपहरकी रोटी उस समय खा सकते हैं जब सूर्य्य मध्याह्नोत्तर दो अङ्गुल नीचेको चला जाय।

(३) दोपहरके भोजनके पश्चात् दही खाया जा सकता है।

(४) जिस भङ्गमें नशा न हो उसके सेवनकी आज्ञा है।

(५) यदि चटाई या बोरियेके किनारे न हों तो यह आवश्यक नहीं कि वह नियत लम्बाई और चौड़ाईका ही हो, इत्यादि।

जिस महात्माने वैदिक कर्म-काण्डको इसलिये उड़ा दिया था कि उससे अनावश्यक कष्ट होता था और वास्तविक लाभ कुछ भी न था, उसीके अनुयायियोंने उनकी मृत्युके सौ वर्ष पश्चात् इस प्रकारकी छोटी छोटी बातोंको नियम बन्धनमें ला फँसाया। इसका अवश्यम्भावी परिणाम यह हुआ कि बौद्ध लोगोंमें दो दल हो गये। उत्तरीय प्रदेश अर्थात् तिब्बत, चीन और नेपालके बौद्ध एक सम्प्रदायके हैं और सिंहल तथा ब्रह्मा आदिके दूसरे सम्प्रदायके।

बौद्ध मतकी तीसरी सभा ईसाके जन्मके २४२ वर्ष पूर्व राजा अशोकके समयमें हुई। इस सभामें एक सहस्र बौद्ध सम्मिलित थे। सभाका प्रधान मुद्गलायनका पुत्र तिष्य था। स्मरण रहे कि यह सभा केवल दक्षिणी बौद्धोंकी थी। उत्तरीय बौद्धोंने

ईसाके जन्मके दस वर्ष पश्चात् काश्मीर-नरेश कनिष्कके राजत्व-कालमें तीसरी सभा की थी। इसमें पांच सौ भिक्षु सम्मिलित हुए थे।

बौद्ध-धर्मका प्रचार

कहते हैं कि बुद्ध-धर्मकी वृद्धिका एक बड़ा कारण यह था कि यह धर्म ऊंची और नीची जातियोंमें कुछ भेद न समझता था। बौद्ध धर्ममें सब मनुष्य समान थे। यदि कोई भेद था तो योग्यता या सत्कर्मका था। देखिये, इस धर्मकी छत्र-छायाके नीचे उपाली नामक एक नाईको और सुनीत नामके एक भंगीको आचार्यकी पदवी मिली।

यद्यपि बुद्ध भगवानके जीवन-कालमें ही कतिपय राजपरिवारोंने उनके धर्मको ग्रहण कर लिया था, परन्तु बौद्ध-धर्मकी वास्तविक उन्नति उस समय हुई जब मगध देशके अधिपतिने इस धर्मकी दीक्षा ली। और वह आप उस धर्मके प्रचारमें प्रवृत्त हुआ। इस नरेशका नाम अशोक था। यह मौर्य्य-वंशके मूलपुरुष चन्द्रगुप्तका पोता था। राजा अशोकने अपने पुत्र महेन्द्रको बौद्ध धर्मके प्रचारके लिये सिंहल अर्थात् लङ्का द्वीपमें भेजा। महेन्द्रने जाते ही लङ्का-नरेशको अपने धर्मकी दीक्षा दी। इस प्रकार बौद्ध धर्म लङ्कामें भी फैल गया। लङ्कासे यह धर्म मगध देशके एक ब्राह्मणके द्वारा सन् ४५० ई० में ब्रह्मामें फैला। इस ब्राह्मणका उपनाम बुद्ध घोष था। ब्रह्मासे सन् ६३८ ई० में यह धर्म स्याममें गया। इसी समयके लगभग बौद्ध धर्म जावा और सुमात्राके द्वीपोंमें पहुंचा। अशोकने बुद्ध-धर्मके प्रचारके लिये उपदेशक, और प्रचारक भिन्न भिन्न देशों, अर्थात्, काश्मीर, गंधार, मैसूरके निकट महेश, राजपूताना, पश्चिमी पञ्जाब, महाराष्ट्र, बलाख और अन्य यूनानी राज्योंको भेजे।

मलाया प्रायद्वीप और लङ्काके नाम दीपवंश और महावंशमें मिलते हैं। अशोकके जो लेख पहाड़ों और लाटोंपर खुदे हुए मिलते हैं उनसे सिद्ध होता है कि उसने दूर दूरके देशोंमें उपदेशक भेजे थे। इन देशोंमें पांच यूनानी राज्य भी थे अर्थात् एशियाई रूमके अन्तर्गत शाम देश, मिस्र, यूनान राज्यके अन्तर्गत मकदूनिया, साईरीन (Cyrine) और ऐपीरोस * (Epiros)।

उत्तरीय प्रान्तोंमें काश्मीर-नरेश कनिष्कने बौद्ध धर्मका प्रचार कराया। काश्मीरसे इस धर्मकी पुस्तकें चीनमें पहुंचीं। चीनसे कोरियामें और कोरियासे जापानमें यह धर्म गया। ईसाकी चौथीसे पांचवीं शताब्दीमें इस धर्मने चीनसे कोचीन, फारमोज़ा, मङ्गोलिया और अधिक सम्भव है कि सायबेरियामें भी अपना अधिकार जमाया। इस प्रकार यह काबुल और काश्मीरसे बलख, बुखारा और तुर्किस्तानमें पहुंचा। इसी प्रकार तिब्बत और नेपालमें भी यह छठी या सातवीं शताब्दीमें फैला। सारांश यह कि एक सहस्र वर्षके अन्दर बौद्ध धर्म भारतके मध्यमें जन्म लेकर (अरबके सिवा) लगभग समस्त एशियाका सामान्य धर्म हो गया। परन्तु भारतमें बुद्ध-धर्मका कभी विशेष अधिकार नहीं हुआ। देशके समस्त भागोंमें ब्राह्मण-धर्म पूर्ववत् प्रचलित रहा। यद्यपि राजनीतिक बलसे कई शताब्दियोंतक बुद्ध-धर्मका पलड़ा भारी रहा, परन्तु अन्तको ईसाकी छठी शताब्दीमें, जब यह धर्म अभी विदेशोंमें फैल ही रहा था, इसके जन्म स्थानमें इसको ऐसा धक्का लगा कि इसका अधःपतन आरम्भ हो गया, और शनैः शनैः सारे आर्य्यावर्तमें हिमालयसे कुमारी अन्तरीपतक और बंगालकी खाड़ीसे अरब सागरतक यह नाममात्रको ही रह गया।

* हण्टरकी "इण्डियन एम्पायर" पृष्ठ १८८

जो बौद्ध-धर्म इस समय लङ्का, ब्रह्मा, चीन जापान आदि देशोंमें प्रचलित है वह वर्त्तमान हिन्दू-धर्मसे भिन्न नहीं है। बुद्ध-को परमेश्वर मानकर स्थान स्थानपर उनके मन्दिर बनाये गये हैं। उनके शरीरके भिन्न भिन्न अंगोंपर बडे बड़े स्तूप खडे किये गये हैं। बुद्धकी असंख्य मूर्त्तियाँ मन्दिरोंमें और लोगोंके घरोंमें पाई जाती हैं। इनमेंसे कुछ मूर्त्तियाँ बहुत बडी हैं, और मनुष्य-पूरे डोलकी हैं। अधिकांश महात्मा बुद्धकी समाधि अवस्थाकी हैं। ये मूर्त्तियाँ एशियाकी कलाका सर्वोत्तम नमूना हैं। प्रायः यूरोपियन लोग इन्हें खरीद कर ले जाते हैं। पत्थर, लकडी, पीतल तांबा, सोना और चाँदी, सब ही की मूर्त्तियां हैं। बुद्धके अति-रिक्त बुद्धके चेलों और बुद्धके पहलेके बुद्धोंकी बहुत सी मूर्त्तियों-का पूजन होता है। बुद्धकी व्यक्तित्वके चारों ओर एक अतीव जटिल और सर्वाङ्गपूर्ण देवमाला उत्पन्न हो गई है। यह अपने प्रकार और विस्तारमें हिन्दू-पुराणोंसे कम नहीं।

धर्मात्मा बौद्धोंका जीवन भी पूजा पाठ, मन्त्र-यन्त्र और घण्टे घडियालका जीवन है। भारतमें मूर्त्तियाँ और मंदिर सबसे पहले बौद्ध लोगोंने बनाये और प्रतिमा-पूजनका आरम्भ भी उन्हींसे हुआ। परन्तु यह बात विचारणीय है कि जहां पौरा-णिक हिन्दू एक शोक-समाज हैं जिनके जीवनमें आमोद-प्रमोद-को बहुत तुच्छ समझा जाता है, वहां ब्रह्मा आदिके बौद्ध बहुत हंसमुख हैं और सदा प्रसन्न रहते हैं।

जैन-धर्म ।

आरम्भ । लोगोंका अनुमान है कि बुद्ध-धर्म आरम्भके पास पास ही जैन धर्मका प्रकाश हुआ। यद्यपि जैन यह मानते हैं कि जैन धर्मके मूल प्रवर्त्तक श्रीपारसनाथ थे जो भगवान् बुद्धसे लगभग ढाई सौ वर्ष पहले हुए। जैन धर्मके बड़े

मूल पुरुष श्रीवर्धमान महावीर हुए हैं। वे भगवान् बुद्धके सम-कालीन थे। महावीरजी मगध देशके राजकुमार थे। पूर्ण युवा-कालमें वे संसारका परित्याग करके पारसनाथजीके सम्प्रदायमें सम्मिलित हो गये। कुछ वर्षके पश्चात् उन्होंने एक नवीन सम्प्र-दायकी नींव डाली और अपनी शिक्षाका खूब विस्तार किया। उनके जीवन-कालमें अनेक राजपरिवार उनके श्रद्धालु थे, क्योंकि माताकी ओरसे उनका तीन राजपरिवारोंसे सम्बन्ध था। उनके देहान्तकी तिथिके विषयमें बहुत मतभेद है। प्रायः लोग ईसाके पूर्व ५२७ वां वर्ष निश्चित करते हैं। अध्यापक जेकोबीकी सम्मतिमें वे सन् ४७७ ईसा पूर्वमें पंचत्वको प्राप्त हुए।

जैन-धर्मकी शिक्षा। जैन-धर्मकी शिक्षा अधिकांश बौद्ध-धर्मकी शिक्षासे मिलती है। परन्तु सिद्धान्त-रूपसे दोनों धर्म भिन्न भिन्न हैं। जिस प्रकार बौद्ध-धर्मने हिन्दू समाजमें पूर्ण परिवर्त्तन नहीं किया और उसमें क्रान्तिकारी हेरफेर उत्पन्न करनेकी चेष्टा नहीं की, उसी प्रकार जैन धर्मने भी तत्कालीन हिन्दू-समाजका सुधार करनेका यत्न किया। उसने न तो जाति-पांतिको उखाड़ा, न देवी देवता-ओंको जवाब दिया, और न उनके रीति रिवाजोंमें बहुत हस्त-क्षेप किया। बौद्ध-धर्मकी तुलनामें जैन साधु बहुत अधिक त्यागी हैं। जैन-धर्मकी पूजन-विधि भी बौद्ध-धर्मसे भिन्न है।

जैन लोग प्रकृति और जीवको अलग अलग मानते हैं। उन-का बहुत बड़ा सिद्धान्त यह है कि सृष्टिके प्रत्येक पदार्थमें जीव है, केवल मनुष्य और पशु ही सजीव नहीं, वरन् समस्त प्रकारके पौधों, वृक्षों, साग पात, धातु-पाषाण और मिट्टी आदिमें भी जीव है। जैन स्पष्ट रूपसे ईश्वरके अस्तित्वसे इन्कार करते हैं।

उनके मतमें अच्छेसे अच्छा, श्रेष्ठसे श्रेठ और त्यागीसे त्यागी मनुष्य ही परमेश्वर है। इस अङ्गमें जैनोंका धर्म यूरोपीय दार्शनिक कमिट्टीके धर्मसे मिलता है। अमरीकामें ईसाइयोंका एक सम्प्रदाय भी लगभग इसी सिद्धान्तकी शिक्षा देने लगा है।

जैनोंका सबसे बड़ा सिद्धान्त अहिंसा है। बौद्धोंमें मृत पशुके मांसको खानेका निषेध नहीं। ब्रह्मामें, सिंहलमें, चीनमें, जापानमें-सारांश यह कि सभी बौद्ध देशोंमें-बौद्ध लोग मांस खाते हैं।

परन्तु कोई भी जैन मांस नहीं खाता। जैनोंका सबसे बड़ा नैतिक सिद्धान्त अहिंसा है। इस सिद्धान्तको जैनोंने चरमसीमातक पहुंचा दिया है, यहांतक कि कुछ लोगोंकी दृष्टिमें जैन होना परले दर्जेकी कायरता है। परन्तु जैन विद्वान् धर्म-युद्धमें लड़नेको पाप नहीं समझते और न दण्ड देना वे अपने धर्मके विरुद्ध समझते हैं।

जैनोंका आचार-दर्शन त्यागके अंगमें बहुत ऊंचा है। उसके अनुसार पूरा पूरा काम करना मनुष्योंके लिये असम्भव है। इसीलिये जैन-धर्मका प्रभाव मनुष्य-प्रकृतिपर ऐसा पड़ता है कि उससे मनुष्य जीवनके साधारण संग्रामके लिये निर्बल हो जाते हैं। एक ओर तो जैन साधु उच्च कोटिके संसार-त्यागी हैं, दूसरी ओर जैन जनता क्षुद्र जीवोंकी तो रक्षा करती है परन्तु मनुष्योंके साथ उनका बर्ताव बड़ी ही निर्दयताका होता है। शायद असाध्य आचार शास्त्रपर बल देनेका ही यह परिणाम है।

जैन साधु शेष समस्त साधु-सम्प्रदायोंकी तुलनामें अधिक सत्यवादी, अधिक त्यागी और अधिक निःस्वार्थ होते हैं।

जैनोंके दो प्रसिद्ध सम्प्रदाय हैं—एक श्वेताम्बर अर्थात् सफेद कपड़ा पहननेवाले और दूसरे दिगम्बर अर्थात् नंगे रहनेवाले।

हिन्दू धर्मपर प्रभाव।

हिन्दू-धर्मपर बुद्ध-धर्मकी अपेक्षा जैन-धर्मका अधिक प्रभाव पड़ा है और भारतमें बौद्धोंकी अपेक्षा जैनोंकी संख्या बहुत अधिक है।

मेरी सम्मतिमें बौद्ध-धर्म और जैन-धर्मका सामान्य प्रभाव भारतके राजनीतिक अधःपातका एक कारण हुआ है। जनतामें संसारकी असारताका विचार—जिसको शङ्करके वेदांत-ने भारी सहायता दी—इतना फैल गया कि वे स्वदेश-रक्षासे बिलकुल असावधान हो गये। त्यागका तत्वज्ञान वहींतक उप-योगी है जहांतक वह भोगकी उचित सीमाका उल्लंघन न करने दे। स्वयं त्यागको राजसिंहासनपर बैठाना और उसको मनुष्य-का धर्म बना देना भारी भूल है। संसार भोगका स्थान है। उसका भोग उतना ही उचित है जिससे मनुष्य भोगका दास न बन जाय और जिससे दूसरोंके स्वत्वोंमें हस्तक्षेप न होता हो। सर्वोत्तम नीति यह है जो न भोगको और न त्यागको अपना आदर्श बनावे, और मध्यवर्ती मार्गका अवलम्बन करे। इस दृष्टिसे महात्मा बुद्धकी प्रारम्भिक शिक्षा अधिक ग्राह्य और महत्वपूर्ण थी।

पांचवां खण्ड ।
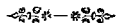
पहला परिच्छेद

मगध राज्य, बड़े सिकन्दरका आक्रमण, और मौर्य्य-वंशका शासन ।

मगध राज्यका आरम्भ । हम ऊपर कह आये हैं कि महात्मा बुद्धके जन्मके समय जो राज्य उन्नत अवस्थामें थे उनमेंसे एक मगध राज्य भी था । मगध राज्य महाभारत-कालमें कुछ अधिक शक्तिशाली न था । महाभारतमें लिखा है कि उस समय वहाँ जरासंध नामका एक प्रबल राजा राज्य करता था । उसके पश्चात् २८ और राजाओंने राज्य किया और उन २८ राजाओंके अनन्तर शिशुनागने ईसासे ६०० वर्ष पहले एक नवीन राजवंश चलाया। शिशुनागसे चौथी पीढ़ीमें विंबिसार था। इसीके कालमें महात्मा बुद्धका जन्म हुआ । इसने ५० वर्षसे ऊपर राज्य किया । विंबिसारकी मृत्युके पश्चात् उसका पुत्र अजातशत्रु ईसाके जन्मके ४८५ वर्ष पूर्व गद्दीपर बैठा । उसने कोशल तथा अन्य पश्चिमी राज्योंको परास्त करके अपने राज्यमें मिला लिया । वह उत्तरमें श्री तूरानी जातिके वज्जी वंशको विजित करके उत्तर विहारको अपने अधिकारमें ले आया । अजातशत्रुके बाद उस वंशके चार राजाओंने एक दूसरेके बाद राज्य किया ।

पुराणोंकी वंशावलियोंसे प्रतीत होता है कि शिशुनाग वंशके अन्तिम दो राजाओंके नाम नन्दीवर्धन और महानन्दी थे। इन्होंने ८३ वर्षतक राज्य किया। इस वंशके पश्चात् नन्दवंश सिंहासनारूढ़ हुआ। इसका मूल पुरुष महापद्म था। उसने तथा उसके आठ पुत्रोंने लगभग सौ वर्षतक राज्य किया।* इस वंशके अन्तिम राजा नन्दके समयमें महान् सिकन्दरने भारतपर आक्रमण किया। कहते हैं, नन्द राजा नीच जातिके थे। शायद यही कारण हो कि वे ब्राह्मणों और क्षत्रियोंके विरोधी थे। अन्तिम नन्द एक बड़ा शक्तिशाली राजा था। इसके पास सेना और सम्पत्ति बहुत थी। यूनानियोंके लेखानुसार उसकी सेनामें दो लाख पैदल सिपाही, बीस सहस्र अश्वारोही, तीन चार सहस्र हाथी और दो सहस्र गाड़ियां थीं।

महान् सिकन्दर-का आक्रमण।

जिस समय हिन्दू-सभ्यता अपने उच्च शिखरपर थी और उसमें महात्मा बुद्धने एक प्रकारका युगान्तर उत्पन्न कर दिया था उसी समयमें यूरोपके यूनानके द्वीपोंमें एक और सभ्यता भी उन्नतावस्थामें थी। इस सभ्यताने यूरोपको परास्त किया। इसकी छाप अबतक यूरोपीय सभ्यतापर लगी हुई है। यह वह सभ्यता है जिसको इतिहास-लेखक यूनानी सभ्यताका नाम देते हैं। यूनानी लोग भी उसी आर्य्य-जातिमेंसे थे जिसकी एक शाखा भारतमें और दूसरी ईरानमें बसती थी। हिन्दू आर्य्योंने जिस प्रकार प्रायः समस्त भारतको जीतकर एक बड़ी भारी राजनीतिक और धार्मिक पद्धतिकी नींव डाली, उसी प्रकार यूनानियोंने भी बहुत कुछ उन्नति की। ईरानका धर्म-प्रवर्त्तक ज़र्दुश्त भी उसी कालमें हुआ जबकि महात्मा बुद्ध भारतमें अपना प्रचार

* इन अवधियोंको इतिहासान्वेषी लोग बहुत संदेहकी दृष्टिसे देखते हैं।

कर रहे थे। ईरानके राजाओंने अपनी राजनीतिक शक्तिको इस अंशतक बढ़ाया कि फारसके साइरस और दारा नामक राजाओंके कालमें ईरानी राज्य सिन्ध नदीके किनारोंसे लेकर भूमध्य सागरके किनारोंतक फैला हुआ था और मिश्र भी इसी राज्यमें मिल चुका था। सीरिया भी उनके अधीन था और काकेशस पर्वतमाला तथा कस्पियनके प्रान्त भी उन्हींके राज्यमें मिले हुए थे। दाराके समयमें शाम (सीरिया)के वे सब नगर जिनमें यूनानी बसते थे ईरान-नरेशके अधीन थे। दाराकी सेनामें यूनानियोंकी एक बड़ी संख्या नौकर थी। दाराने थरेस और यूनानके दक्षिण-पूर्वी तटके अनेक द्वीपों और नगरोंको जीत लिया था।

ईसासे ४६० वर्ष पूर्व उसने ठेठ यूनानपर धावा किया। यूनानियों और ईरानियोंके बीच मेरोथोनका भारी युद्ध हुआ। इसमें यूनानियोंकी जीत हुई। इसके बाद दाराके पुत्र फेक्सुसरो (Xerxes) ने दरे दानियाल (डार्डनल्स) पर समुद्रको पार करके यूरोपपर चढ़ाई की। इस अभियानमें पहली लड़ाई थरमापुलीके क्षेत्रमें हुई। यूनानियोंने वीरताके अनेक स्मरणीय नमूने दिखलाये। स्पार्टन लोगोंका दल सारेका सारा खेत रहा। परन्तु थरमापुलीकी विजय ईरानियोंके हाथ रही। ईरानियोंने थरमापुलीके दर्रेसे लांघकर एथन्सकी ओर कूच किया। इसी बीचमें कई लड़ाइयां हुईं। एथन्सकी ओर कूच करते समय मार्गमें यूनानियोंके अनेक नगरोंने ईरानियोंकी अधीनता स्वीकार की। यूनानियोंने एथन्स खाली कर दिया और सीलासके स्थानपर वे ईरानियोंके साथ घोर युद्धमें भिड़ गये। इस युद्धमें ईरानियोंकी हार हुई, और उनकी समुद्री शक्तिको बहुत हानि पहुंची। राजा फेक्सुसरो (Xerxes) वापस आ गया। एक यूनानी सेना-नायक मारडवीसके नेतृत्वमें एक वर्षतक युद्ध

चलता रहा। अन्तको ईसाके ४७९ वर्ष पूर्व पलाटियाके स्थानपर ईरानियोंकी भारी हार हुई।

इन लड़ाइयोंके कुछ काल पश्चात् यूनानके भिन्न भिन्न स्वतंत्र नगरोंमें मैत्री रही। यह वह काल है जब कि एथन्सने साहित्य और कलामें खूब उन्नति की, और उसने उस सभ्यताको पूर्ण किया जिसपर बादके यूरोपीय लोगोंने अपनी सभ्यताका भवन खड़ा किया। अन्तको यूनानके भिन्न भिन्न नगरोंमें परस्पर ईर्ष्या और द्वेषकी लड़ाईका आरम्भ हुआ। इसका परिणाम यह हुआ कि थोड़े ही कालमें एथन्स और स्पार्टाकी शक्ति नष्ट होकर ईसाके पूर्व चौथी शताब्दीमें राज्य मकदूनिया-नरेश राजा फैलकूसके हाथमें चला गया। उसने कुछ कालके लिये सारे यूनानमें अपना सिक्का जमा लिया।

इस फैलकूसका बेटा महान् सिकन्दर था। वह संसारके उन थोड़ेसे महापुरुषोंमेंसे एक था जिन्होंने संसारके इतिहासपर अपनी छाप लगाई है। महान् सिकन्दरका साहस, संकल्प, और पराक्रम अपार था। उसकी इच्छा थी कि समस्त संसारको जीतकर अपने अधीन करे। इस भावसे प्रेरित होकर वह पश्चिमी एशियाको विजय करता हुआ सन् ३२७ ईसापूर्वमें हिन्दूकुश-तक पहुंचा। इस कालमें उसने सारे एशिया माइनर, सीलोनियां और ईरानको जीत लिया था। सन् ३२७ ईसा पूर्वमें सिकन्दरने हिन्दूकुशको पार किया और काबुल नदीकी घाटीको लांघता हुआ जून या जुलाई सन् ३२७ ईसापूर्वमें वह भारतके उत्तर-पश्चिमी किनारेकी सीमापर आ पहुंचा। उस समय भारतका वह समस्त उत्तर-पश्चिमी भाग जो रावलपिण्डीके उत्तर-पश्चिममें स्थित है, भिन्न भिन्न स्वाधीन जातियोंके अधिकारमें था। उस प्रान्तका सबसे प्रसिद्ध नगर तक्षशिला था जो विश्वविद्या-

लयका स्थान होनेके कारण बहुत प्रसिद्ध और जनाकीर्ण था। ऐसा प्रतीत होता है कि तक्षशिलातक पहुंचनेके पूर्व ही तक्षशिला-नरेश* सिकन्दरसे आ मिला। उसने सिकन्दरको उस प्रान्तकी स्वाधीन जातियोंको परास्त करनेमें बहुत सहायता दी। अगस्त सन् ३२७ ईसापूर्वमें सिकन्दरने उस समस्त प्रान्तको अधीन कर लिया जो अटक और जेहलमके बीच स्थित है। कोनार और बाजौरकी घाटियोंमेंसे लांघता हुआ सिकन्दर 'निसा' पहुंचा। यहांकी प्रचलित सभ्यताको उसने बहुत कुछ यूनानकी सभ्यताके अनुसार पाया। अस्पिया जातिको पराजित करके सिकन्दरने चालीस सहस्र कैदी और दो लाख तीस हजार बैल लूटमें प्राप्त किये। इतिहासकार लिखता है कि इस लूटके पशुओंमेंसे अत्युत्तम और सुन्दर छांटकर मकदूनिया भेज दिये गये। इससे यह विदित होता है कि उस कालमें भी भारतके गाय बैल यूरोपीय गाय बैलोंसे बहुत सुन्दर, डीलडौलवाले और मज़बूत थे।

सिकन्दरके इस अभियानमें अन्य स्मरणीय लड़ाइयोंमेंसे एक लड़ाई मसागा नामक स्थानपर हुई। मसागावालोंने बीस सहस्र सवार और तीन सहस्र सिपाहियोंसे वीरतापूर्वक सामना किया, परन्तु अन्तको हार खाई। मसागामें घिरे हुए सिपाहियोंमेंसे सात सहस्र ऐसे सिपाही थे जो भारतके मैदानोंसे आये हुए थे। कहा जाता है कि उन्होंने सिकन्दरकी सेनामें पहले

* कहते हैं, उस समय तक्षशिलामें स्त्रियोंके विक्रयके लिये एक मण्डी हुआ करती थी, जिसमें स्त्रियां अपने सौन्दर्यका प्रदर्शन करती थीं। यह प्रथा आर्य सभ्यताके भावसे ऐसी विरुद्ध है कि इसकी सत्यतामें सन्देह किया जा सकता है। अथवा यह कहा जा सकता है कि यह प्रथा उत्तर-पश्चिमकी तातारी जातियोंने प्रचलित की होगी। ये जातियां उस समय भारतके उत्तर-पश्चिममें प्रायः आती जाती थीं और बसती भी थीं।

प्रविष्ट होनेका वचन दिया और फिर इन्कार कर दिया। इस प्रतिज्ञा और इन्कारकी गवाही यूनानी इतिहासकार आरियनने दी है। परन्तु इस बातको सब कोई मानते हैं कि सिकन्दरने उनको दुर्गमेंसे निकालकर एक पहाड़ीपर अपने शिविरसे नौ मीलके अन्तरपर डेरा डालनेकी आज्ञा दी, और फिर जब उन्होंने सिकन्दरके साथ मिलकर अपने देशबन्धुओंके विरुद्ध लड़नेसे इन्कार किया तो सिकन्दरने ऐसे समयमें जब कि वे अपने आपको सुरक्षित समझकर सो रहे थे सहसा धावा कर दिया। जब उनको होश आया तो उन्होंने एक चक्र बनाया और उस चक्रमें अपने बच्चों और स्त्रियोंको रखकर अतीव वीरतासे सामना किया। इस युद्धमें स्त्रियोंने भी योग दिया। ये सात हजारके सात हज़ार उसी स्थानपर खेत रहे। केवल उनकी स्त्रियाँ और शस्त्रहीन मनुष्य ही बचे। बहुतसे प्राचीन और आधुनिक इतिहास-लेखक सिकन्दरके इस विश्वासघातकी घोर निन्दा करते हैं। परन्तु एङ्गलो-इण्डियन इतिहास लेखक इस विश्वास-घात और कपटको नीतिसंगत ठहराते हैं। इससे पहले भी एक अवसरपर जब सिकन्दर एक पहाड़ीमें लड़ रहा था तो उसके कंधेपर एक तीर लग जानेके कारण यूनानियोंने सब कैदियोंका वध कर डाला और नगरका नगर भूतलके साथ मिला दिया। आजकल भी सीमा प्रदेशकी लड़ाईमें अनेक बार ऐसा हुआ है कि यूरोपियन लोगोंने देहातके देहात जला दिये हैं।

जनवरी सन् ३२६ ईसापूर्वमें सिकन्दर अपनी सेना सहित अटकसे सोलह मील ऊपर रोहना नामक स्थानपर पहुंच गया। वहां उसने नावोंका पुल बनाया। यहीं उसे तक्षशिला-नरेशके पुत्रके दूत मिले। यह राजा पहले ही गतवर्षमें सिकन्दरकी अधीनता स्वीकार कर चुका था। इस दूतसमूहने सिकन्दरको

सात सौ सवार, तीन सहस्र घोड़े, आठ सहस्र बैल, दस सहस्र भेड़ और एक चांदी की बहुत बड़ी राशि भेंट की। तक्षशिलाके राजाका उस समय पहाडी राजा अभिसार और जेहलम (झेलम) प्रान्तके राजा पोरस दोनोंके साथ मनोमालिन्य था। फरवरी सन् ३२६ ईसापूर्वमें सिकन्दरने तक्षशिला-नरेशकी सहायतासे अटक नदीको पार करके भारतकी पवित्र भूमिपर पैर रखा। तक्षशिला-नरेशका उदाहरण देखकर राजा अभिसार भी अधीन हो गया। परन्तु महाराजा पोरसने अधीनतासे इन्कार कर दिया और सिकन्दरको सूचित कर दिया कि मैं जेहलमके तटपर तुम्हारा सामना करूंगा। सिकन्दर मई सन् ३२६ ईसापूर्वमें जेहलमके किनारे पहुंचा। पोरसने तुमुल युद्ध किया और बड़ी वीरतासे लड़ता रहा। परन्तु सिकन्दरके भाग्यके सामने उसकी पेश न चली। ऐतिहासिक लोग इस युद्धकी आलोचना करते हुए कहते हैं कि भारतीयोंके हारनेका कारण यह था कि उनकी सेना अतीव भारी शस्त्रोंसे सज्जित थी; जिससे वह सुगमतासे इधर उधर न जा सकती थी। भारतीयोंका अधिकतर भरोसा हाथियोंपर था जिन्होंने सदा धोखा दिया। पोरस बड़ा बलिष्ट और लम्बे डीलका मनुष्य था। वह नौ घाव खाकर पकड़ा गया। जब वह अचेत पड़ा था तो उसे पूछा गया कि उसके साथ कैसा बर्ताव किया जाय। उसने उत्तर दिया "जैसा राजा लोग राजाओंके साथ करते हैं।" यह उत्तर प्राचीन हिन्दू आर्य्योंकी सभ्यता और रीतिके अनुकूल था। हिन्दू आर्य्य किसी पराजित राजाका वध न करते थे वरन् उसको जीतकर उसका प्रदेश उसे लौटा देते थे।

जुलाई सन् ३२६ ई० पू०में सिकन्दरने चनाबको पार किया और उसके थोड़ीही देर बाद रावीके पार पहुंच गया। इस

प्रदेशमें इस समय कतिपय प्रबल जातियां बसती थीं। उन्होंने, सिकन्दरकी सेनाके दांत खट्टे किये। उनसे तङ्ग आकर उसकी सेनाने आगे जानेसे इन्कार कर दिया। व्यासके किनारेतक पहुंचते पहुंचते उसकी सेनामें विद्रोहका भाव बहुत बढ़ गया। सिकन्दरने एक प्रबल भाषणद्वारा अपने सिपाहियोंको आगे बढ़नेकी प्रेरणा की। इसका उत्तर एक रिसालदारने बड़े साहसके साथ देते हुए आगे बढ़नेसे इन्कार कर दिया। अन्तको यहांसे सिकन्दरको वापस जाना पड़ा। रावी और चनावको दुबारा पार करके सिकन्दर जेहलमके किनारेपर आकर ठहरा। और अक्तूबर सन् ३२६ ईसापूर्वमें अपने समस्त आयोजनोंको पूर्ण और राजा पोरस तथा तक्षशिला-नरेशको अपना प्रतिनिधि नियत करके वह जेहलम नदीके मार्गसे वापस हुआ। मार्गमें अनेक स्थानोंपर उसे स्थानीय जातियोंसे लड़ना पड़ा। एक स्थानपर वह घोर रूपसे आहत हो गया। अक्तूबर सन् ३२५ ईसापूर्वमें दस मासकी यात्राके बाद, सिकन्दर फारसकी खाड़ीके किनारेपर पहुंचा। उसने अपनी सेनाका एक दल न्यारकसके अधीन अलग भेजा था। वह उसे इस स्थानके निकट आ मिला।

सिकन्दर अभी किरमानियामें ही था कि उसे पञ्जाबवालोंके विद्रोह कर देनेका कुसमाचार प्राप्त हुआ। परन्तु उस समय वह और उसकी सेना ऐसी हैरान हो चुकी थी कि उसके लिये वापस जाना कठिन था। जून सन् ३२३ ई० पू० में बेबीलोनमें सिकन्दरका देहान्त हो गया और उसके साथ ही भारतपर उसके प्रभुत्वकी भी समाप्ति हो गई।

सन् ३२१ ईसापूर्वमें जब यूनानी राज्यकी दुबारा बांट हुई, तब मकदूनियाके सर्वोच्च अधिकारी एण्टी-पेटरने भारतीय प्रान्तोंकी स्वाधीनताको स्वीकार कर लिया। सिकन्दरका भार-

तीय अभियान मई सन् ३२७ ई० पू० में आरम्भ होकर मई सन् ३२४ ई० पू० में जब उसने सूसामें प्रवेश किया, समाप्त हुआ। इस अवधिमेंसे केवल उन्नीस मास सिकन्दरने सिन्धु नदीके पूर्वमें बिताये अर्थात् फरवरी या मार्च सन् ३२६ ई० पू० से लेकर सितम्बर अक्तोबर सन् ३२५ ई० पू० तक।

सभी इतिहास-लेखकोंका इस बातपर एकमत है कि सिकन्दरके उस बड़े धावेका कोई स्थायी प्रभाव भारतके इतिहास और भारतकी सभ्यतापर नहीं हुआ। यहांतक कि कुछ ऐतिहासिक उसके भारतीय आक्रमणकी उपमा उन डाकुओंकी लूट खसोटसे देते हैं जो सीमा प्रदेशपर सीमा प्रदेशकी जातियोंकी ओरसे आये दिन होती रहती है। किसी भारतीय इतिहास-लेखकने, चाहे वह हिंदू हो, या बौद्ध, या जैन, सिकन्दर या उसके आक्रमणका तनिक भी उल्लेख अपनी पुस्तकमें नहीं किया। इसका कारण यही है कि सिकन्दर भारतके किनारेसे ही लौट गया और वास्तविक भारतमें प्रवेश करने ही न पाया। उस समयके भारतका राजनीतिक और धार्मिक केन्द्र मगध प्रांत था, जहां कि नन्द वंशके राजा राज्य करते थे।

दूसरा परिच्छेद।

मौर्य वंश-सम्राट चन्द्रगुप्त।

अब भारतके राजनीतिक रङ्गमञ्चपर एक ऐसा प्रतिष्ठित नाम आता है जो संसारके सम्राटोंकी प्रथम श्रेणीमें लिखनेके योग्य है, जिसने अपनी वीरता, योग्यता और व्यवस्थासे समस्त उत्तरी भारतको विजय करके एक विशाल केन्द्रिक राज्यके अधीन

किया। "चरित्रकी दृष्टिसे चन्द्रगुप्त राजा अशोकको नहीं पहुंचता। परन्तु योग्यता, व्यवस्था, वीरता और सैन्य-संचालनमें चन्द्रगुप्त न केवल अपने समयमें अद्वितीय था, वरन संसारके इतिहासमें बहुत थोड़े ऐसे शासक हुए हैं जिनको उसके बराबर कहा जा सकता है। पिताकी ओरसे चन्द्रगुप्त नन्द वंशका राजकुमार था परन्तु उसकी माता एक नीच वर्णकी स्त्री थी। हैवल लिखता है कि उसकी मा राजाके मोरोंके रखवालेकी बेटी थी। इसीलिये वंशका नाम मौर्य हुआ। विंसेण्ट स्मिथ लिखता है कि उसकी माता, या दादी, या नानीका नाम मुरा था, इसीसे वंशका नाम मौर्य हुआ।

नन्द वंश भी क्षत्रिय वंश न था। अन्तिम नन्द राजा, दूसरी पीढ़ीमें, एक नाईकी सन्तान बताया जाता है। उस नाईने तत्कालीन रानीसे अनुचित सम्बन्ध उत्पन्न करके राज सिंहासन पर अधिकार कर लिया था। अस्तु, यह कथा वास्तवमें चाहे कुछ ही हो, पर यह प्रकट है कि तत्कालीन भारतके शासनमें केवल क्षत्रियों और ब्राह्मणोंकी ही विशेषता न थी। कहते हैं अन्तिम नंदने चन्द्रगुप्तके वधकी आज्ञा दी थी और चन्द्रगुप्तने भागकर तक्षशिला राज्यमें शरण ली थी। जब सिकन्दर तक्षशिला पहुंचा तब चन्द्रगुप्त वहां था। कहा जाता है कि उसने सिकन्दरको मगध राज्यकी विजय करनेमें सहायता देनेका वचन दिया था। परन्तु यह कथन स्पष्टतया असत्य है, क्योंकि तक्षशिलासे चलकर व्यासतक पहुंचनेके इतिहासमें चन्द्रगुप्तका नाम कहीं नहीं आता। सिकन्दर जैसे बुद्धिमान, निपुण और विश्व-विजयी व्यक्तिके लिये चन्द्रगुप्तकी सहायता गनीमत थी, और यदि चन्द्रगुप्त, वास्तवमें, सहायता देनेपर उद्यत होता तो सिकंदर उसको अपने साथ लेता।

सिकन्दर जून सन् ३२३ ई० पू० में बेबीलोनियामें मरा। उसकी मृत्युके पहले उसको अपने राज प्रतिनिधि फिलेपसके वधका समाचार पहुंच चुका था। सिकंदरने फिलेपसके स्थानमें अपनी यूनानी सेनाके सेनापति योडीमोसको नियत किया। योडीमोस सिन्ध नदीकी उपत्यकामें सन् ३१७ ई० पू० तक रहा, और तत्पश्चात् १२० हाथी (जो उसने मित्र राजा पोरसका छलसे वधकरके प्राप्त किये थे) लेकर चल दिया। पञ्जाबके उत्तर पश्चिममें यूनानी प्रभुत्वका यह अन्तिम चिह्न था। यद्यपि इस बातका हमारे पास कोई प्रमाण नहीं, कि सन् ३२३ ई० पू० से लेकर सन् ३१७ ई० पू० तक योडीमोसने किस प्रकारके अधिकारोंका पञ्जावमें उपयोग किया।

सिकन्दर चलते समय सिन्ध प्रान्त अपने राज प्रतिनिधि पाई हतोनके सिपुर्द कर गया था, परन्तु जब सन् ३२१ ई० पू० में यूनान राज्यकी बांट हुई तब एण्टी पेटरने सिन्धको यूनानके अधिकृत देशोंमें नहीं गिना। वास्तवमें सिन्धुके दोनों किनारों पर यूनानी शासनकी समाप्ति सन् ३२२ ई० पू० में ही हो गई थी। यूनानी शासनके उन्मूलनमें चन्द्रगुप्तने अपने मन्त्री चाणिक्यके परामर्शसे बहुत काम किया। उसने अन्तिम नन्दको गद्दीसे उतार दिया और आप उसके स्थानमें सिंहासनपर बैठ गया। चन्द्रगुप्तने उत्तर और दक्षिणकी ओर हिमालयसे लेकर नर्मदा तक और पूर्व और पश्चिमकी ओर बङ्गालकी खाड़ीसे लेकर अरब सागर तक समस्त आर्यावर्तको जीत लिया। ऐतिहासिक कालमें चन्द्रगुप्त पहला हिन्दू राजा है जिसने इतने बड़े प्रदेशको अपने राज्यमें मिलाया।

इस बीचमें, जब कि चन्द्रगुप्त देशोंको जीतनेमें निरत था, सीरियाका यूनानी राजा सेलूकस सन् ३०५ ई० पू० में भूतपूर्व

यूनानी अधिकृत प्रान्तोंको पुनः जीतनेके लिये सिन्धुके पार उतरा। चन्द्रगुप्तने मोर्चा लिया और सेलूकसकी ऐसी हार हुई कि उसको सन्धि करनी पड़ी।

इस सन्धिके द्वारा उसने एक तो भारतमें भूतपूर्व यूनानके अधिकृत प्रान्तों परसे अपना अधिकार उठा लिया, दूसरी ओर सिन्धुका निकटवर्ती बहुत सा प्रदेश, और काबुल, हरात और कन्धारका समस्त देश चन्द्रगुप्तके सिपुर्द कर दिया। उसने अपनी पुत्रीका विवाह भी चन्द्रगुप्तके साथ कर दिया। चन्द्र गुप्तने केवल ५०० हाथी बदलेमें दिये।

सेलूकस और चन्द्रगुप्तके प्रदेशोंको हिन्दुकुशकी गिरिमाला एक दूसरेसे अलग करती थी। यह सन्धि सन् ३०३ ई० पू० में हुई और चन्द्रगुप्तका देहान्त सन् २९८ ई० पू० में हुआ। अर्थात् २४ वर्षसे भी कम कालमें चन्द्रगुप्तने एक अप्रसिद्ध स्थितिसे उन्नति करते करते अपने आपको भारतका पहला ऐतिहासिक सम्राट् बनाया। उसके राज्यमें लगभग सारा अफगानिस्तान और बलूचिस्तान मिला हुआ था।

मगस्थनीजका साक्ष्य। सन् ३०३ ई० पू० की सन्धिके पश्चात् सेलूकसने अपना एक दूत, मगस्थनीज़, चन्द्रगुप्तकी राजसभामें नियुक्त किया था। यह मनुष्य विद्याव्यसनी था। उसने उस समयके वृत्तान्तोंको ऐसी स्पष्ट रीतिसे लिखा है कि उसका भ्रमण वृत्तान्त तत्कालीन भारतकी सभ्यताका सर्वोत्तम साक्ष्य गिना जाता है। प्रायः इतिहास-लेखक मगस्थनीज़के कथनोंको विश्वास्य और सच्चा मानते हैं।

पाटलिपुत्र। मगध राज्यकी राजधानी पाटलिपुत्र ईसाके पूर्व पांचवीं शताब्दीमें बनाई गई। इस स्थानपर सोन नदी गङ्गामें मिलती थी। पाटलिपुत्रके स्थानपर अब पटना नगर बसा है,

यद्यपि नदियोंके हेर-फेरसे अब इन नदियोंका संगम दानापुरकी छावनीके निकट पटनासे १२ मील ऊपर होता है। वास्तविक नगर ६ मील लम्बाईमें और १॥ मील चौड़ाईमें था। उसके गिर्द लकड़ीकी एक अतीव सुदृढ़ दीवार थी। इसमें ६४ द्वार थे। उनपर ५७० बुर्ज बने हुए थे। दीवारके गिर्द एक चौड़ी और गहरी खाई थी। यह सोन नदीके जलसे भरी जाती थी।

राज प्रासाद भी अधिकांश लकड़ीका बना था। वह अपनी सजावट और सज-धजमें यूनान और एशिया कोचकके सर्वोत्तम राजभवनोंसे टक्कर लेता था। उसके सभी खम्भोंपर सोनेका गिलट किया हुआ था और उसमें सोने-चांदीके बेल-बूटे और चित्र बने हुए थे। सभी भवन एक विस्तृत उद्यानमें पड़े थे, जिसमें नाना प्रकारके सरोवर थे और नहरें चलती थीं। सोनेके कुछ बड़बड़े और बर्तन छः छः फुट चौड़े थे। तांबेके पात्रों-पर रत्नोंका जड़ाऊ काम था। सारांश यह कि सब वस्तुएं सोने चांदीसे जगमगा रही थीं। राजाकी सवारी सोनेकी पालकीमें निकला करती थी। पालकीमें सोनेके गुच्छे लटकते थे। राजकीय परिच्छद बारीक मलमलका होता था। उसमें सोने और चांदीका बहुमूल्य काम किया होता था।

इसी प्रकार मगस्थनीज़ राजकीय हाथियों और घोड़ोंका भी वर्णन करता है। वह कहता है कि राजा प्रायः जन्तुओंकी लड़ाई देखा करता था। गाड़ियोंकी दौड़ एक प्रसिद्ध खेल था। इसमें घोड़े और बैल दोनों जोते जाते थे। घोड़ा मध्यमें और बैल उसके दोनों ओर। इन गाड़ियोंकी गाड़ीवान युवती लड़-कियां होती थीं। जब राजा शिकारको जाते थे तो उनकी शरीर-रक्षिका स्त्रियां होती थीं। ये स्त्रियां भिन्न भिन्न देशोंसे खरीदकर लाई जाती थीं। विंसेंट स्मिथकी सम्मतिमें प्राचीन

भारतके राजदरबारोंमें यह प्रथा आम थी। राजाका शरीर-रक्षक प्रायः सशस्त्र स्त्रियोंका दल होता था।

सेना। महापद्म नन्दकी सेनामें दो लाख पादगामी, अस्सी सहस्र अश्वारोही, आठ सहस्र गाड़ियां और छः सहस्र हाथी थे। परन्तु चन्द्रगुप्तकी सेनामें छः लाख पैदल, तीस हजार सवार, नौ हजार हाथी, और बहुत सी गाड़ियां थीं। प्रत्येक गाड़ीके साथ तीन और प्रत्येक हाथीके साथ चार सिपाही होते थे। इस सारी सेनाको नगद वेतन मिलता था।

सैनिक-व्यवस्था। चन्द्रगुप्तका सेना-विभाग अतीव पूर्ण था। छः समितियां (बोर्ड) थीं और प्रत्येक समितिमें पांच सदस्य थे। समिति संख्या १ समुद्री थी। समिति सं० २ के अधीन कमसरियट, भारबरदारी और शागिर्द-पेशा अर्थात् साईस, लोहार और घसियारे आदि थे। समिति सं० ३ पलटनोंका प्रबन्ध करती थी ; समिति सं० ४ रिसालोंका ; समिति सं० ५ लड़ाईकी गाड़ियोंका और समिति सं० ६ हाथियोंका।

पाटलीपुत्र नगरका प्रबन्ध। पाटलीपुत्र नगरका भीतरी प्रबन्ध ३० म्युनिसिपल कमिश्नरोंके हाथमें था। उनकी छः समितियां या बोर्ड थे। समिति संख्या १ का काम कला-कौशल और उद्योगधंधेका निरीक्षण करना था। सर्व औद्योगिक झगड़ोंका निपटारा यह समिति करती थी। यह कारीगरोंके वेतनकी दर नियत करती और उनसे पूरा काम लेती थी। शिल्पमें मिलावट या खोटा काम मिलने नहीं देती थी। कारीगरों और शिल्पियोंका स्थान बहुत ऊंचा था। जो मनुष्य किसी कारीगर या शिल्पीको ऐसी हानि पहुंचाता था जिससे उसकी कारीगरीमें फर्क आये उसको घोर दण्ड दिया जाता था।

दूसरी समितिका काम था कि सब परदेशीय व्यक्तियोंकी

निगरानी रक्खे और उनकी सेवा और सम्मान करे। इस परिषद्‌के कर्मचारी समस्त परदेसी यात्रियोंके सुख और सुभीतेके उत्तरदाता थे। वे उनके दवा-दारू और चिकित्साका भी प्रबन्ध करते थे। जो यात्री मर जाता था उसका बड़े सम्मानके साथ अन्त्येष्टि कर्म किया जाता था; और उसके मालको रक्षामें लेकर उसके उत्तराधिकारियोंके पास पहुंचा दिया जाता था। इससे सिद्ध होता है कि मौर्य वंशके राजाओंके शासन-कालमें विदेशोंके साथ भारतीयोंके घनिष्ठ सम्बन्ध थे और प्रायः लोग विदेशोंसे इस देशमें आते थे।

तीसरी समितिके अधीन जन्म और मरणका विभाग था। चन्द्रगुप्त जन्मों और मृत्युओंके ठीक ठीक व्योरोंपर बहुत बल देता था। उसके समयमें मनुष्यगणनाके रजिस्टर बहुत पूर्ण रहते थे। यूरोपियन इतिहास-लेखक इसका कारण यह बताते हैं कि चन्द्रगुप्तके समयमें प्रति व्यक्तिके हिसाबसे कर लिया जाता था। कदाचित् यह भी कारण दुरुस्त हो। परन्तु यूरोपियन इतिहास-लेखकोंको तो इस सत्य घटनासे कि प्राचीन भारतका एक राजा जन्म और मरणके ठीक ठीक व्योरे तैयार कराता था, इसलिये आश्चर्य होता है कि उनकी सम्मतिमें यह विभाग आधुनिक सभ्यताका आविष्कार है। परन्तु प्राचीन आर्य्य-सभ्यता और भी कई बातोंमें आधुनिक सभ्यतासे अच्छी थी। इसलिये यह बात कोई आश्चर्यका हेतु नहीं होना चाहिये।

चौथी समितिके अधीन वाणिज्य था। यह समिति माप और वज़नके सभी यन्त्रोंपर अपनी छाप लगाती और सब सौदोंका निरीक्षण करती थी। सब व्यापारी एक प्रकारका लायसेंस टैक्स देते थे।

पांचवीं समिति कारखानोंका निरीक्षण करती थी। यह बात ध्यान देने योग्य है कि शिल्प और कलाका विभाग कारखानोंसे जुदा था।

छठी समिति चुङ्गीकी देखभाल करती थी। सब बेची हुई वस्तुओंपर कर लिया जाता था। इस करसे बचनेका यत्न करनेवाला मृत्यु-दण्डका भागी होता था।

सामूहिक रूपसे सारी समिति नगरके साधारण प्रबन्धकी जिम्मेदार थी। मण्डियों, मन्दिरों, बन्दरगाहों, सरकारी भवनोंकी स्वच्छता और निरीक्षण उनका विशेष कर्त्तव्य था।

[इस प्रबन्धकी तुलना यदि नूतन कालकी म्यूनिसिपल कमेटियोंसे की जाय तो प्राचीन प्रबन्ध कई बातोंमें अच्छा मालूम देगा।] यह तो थी नगरोंके प्रबन्धकी पद्धति। इसी प्रकार प्रान्त भिन्न भिन्न गवर्नरोंके अधीन थे और उनमें भी ऐसा ही प्रबन्ध था। प्रान्तिक अधिकारियोंके भी छः विभाग थे :—

पहला—कृषि, वन और सिंचाईका विभाग।

दूसरा—माप और भूमियां आदि।

तीसरा—हिंसक जीवोंको नष्ट करनेका विभाग, इसमें शिकारियोंको पारितोषिक आदि दिये जाते थे।

चौथा—राजस्वकी प्राप्ति।

पांचवां—शिल्प।

छठा—भवन-निर्माण।

सेना भी छः भागोंमें विभक्त थी, और प्रत्येक भाग अधिकारियोंके एक अलग दलके अधीन था।

पहला—समुद्री बेड़ा।

दूसरा—बैलगाड़ियां,जो सैनिक यन्त्रोंके लेजानेके काम आती थीं।

तीसरा—पादचारी सेनाको पलटनें।

चौथा—अश्वारोही।
पांचवाँ—सैनिकरथ।
छठा—हाथी।

हिन्दुओंके धार्मिक, सामाजिक और साधारण वृत्तोंके विषयमें यूनानी दूतोंकी सम्मति।

मगस्थनीज लिखता है कि साधारणतया देश उस समय वैभवसम्पन्न था। उपजकी प्रचुरता थी। भूमिका अधिकांश जलसे सींचा जाता था। अनाज और फलोंकी इतनी बहुतायत थी कि उस समय सर्वसाधारणका यह विचार था कि "आर्य्यावर्तमें कभी अकाल नहीं हुआ और भोजनके प्राप्त करनेमें कभी सामान्य तङ्गी नहीं हुई।" यूनानी दूतकी दृष्टिमें अकाल न होनेका एक कारण यह था कि हिन्दुओंमें यह सामान्य प्रथा थी कि वे किसानोंकी रक्षा करना एक विशेष कर्त्तव्य समझते थे। यद्यपि युद्ध और लड़ाइयां अधिक होती थीं परन्तु खेतीकी हानि कभी न होने पाती थी। लड़ाईमें खेती और किसानोंके साथ कोई हस्तक्षेप न होता था। यहांतक कि शत्रुके वृक्ष काटनेका भी निषेध था।

शिल्प और कला-कौशलमें भी तत्कालीन भारतीय बड़े निपुण थे। विशेषतः सोने, चांदी और अन्य प्रकारके जवाहरातके आभूषण बनानेमें देशमें सोने, चांदी, तांबे, लोहे, रांग और अन्य प्रकारकी धातोंकी खानें थीं। ये धातें न केवल नाना प्रकारके अलङ्कारोंकी चीजें बनानेके काम आती थीं वरन् इनसे शस्त्र और युद्धकी अन्य आवश्यक वस्तुयें भी तैयार की जाती थीं। एक स्थानपर मगस्थनीज लिखता है कि "भारतीय यद्यपि सरलस्वभाव हैं और सादगीको बहुत पसन्द करते हैं, परन्तु रत्नों, अलङ्कारों और परिच्छदोंका उनको खास शौक है।

परिच्छदोंपर सुनहला और रुपहला काम कराते हैं। वे निहायत बारीकसे बारीक मलमलपर फूलदार कामकी बनी हुई पोशाकें पहनते हैं। उनके ऊपर छतरियां लगाते हैं, क्योंकि भारतीयोंको सौन्दर्यका बहुत ध्यान है।"

यूनानी इतिहास-लेखक यह भी लिखते हैं कि उस समय हिन्दू पर्वोंके अवसरोंपर बहुत धूम-धाम करते थे, समारोहपूर्वक बड़े बड़े जुलूस निकालते थे, जिनमें सोने और चांदीके गहनोंसे सजे हुए विशालकाय हाथी सम्मिलित होते थे। चार चार घोड़ों और बहुतसे बैलोंकी जोड़ियोंवाली गाड़ियां और बल्लमबरदार होते थे। जुलूसमें अतीव बहुमूल्य सोने चांदी और जवाहरातके कामके बर्तन और प्याले आदि साथ जाते थे। उत्तमोत्तम मेज, कुरसियां और अन्य सजावटकी सामग्री साथ होती थीं। सुनहले तारोंसे काढ़ी हुई नफीस पोशाकें, जङ्गली जन्तु, बैल, भैंसे, चीते, पालतू सिंह, सुन्दर और सुरीले कण्ठवाले पक्षी भी साथ चलते थे। मगस्थनीज लिखता है कि "उस समयके हिन्दू सात श्रेणियोंमें विभक्त थे। पहली दार्शनिक, दूसरी मन्त्री या सलाहकार, तीसरी सिपाही, चौथी परिदर्शक (यहां अभिप्राय समाचार पहुंचानेवाले विभागके अधिकारियोंसे है), पांचवीं कृषिकार, छठी शिल्पी, सातवीं गड़रिये।

दार्शनिकों और मन्त्रियोंकी श्रेणीसे अभिप्राय ब्राह्मणोंसे है। दार्शनिक वे थे जो धार्म्मिक कृत्य कराते थे और नौकरी न करते थे। मन्त्री वे थे जो राजाकी नौकरी करते थे। फिर दार्शनिकोंको भी दो दो भागोंमें विभक्त किया गया है। एक वे जो ३७ वर्षतक घोर परिश्रमसे विद्योपार्जन करके गृहस्थ बनते थे। दूसरे वे जो विवाह नहीं करते थे और सदा वनोंमें निवास करते थे।

मगस्थनीज लिखता है* कि उस कालके हिन्दू प्रायः सत्यवादी और शुद्धाचारी थे, झूठ न बोलते थे और मदिरापान न करते थे उनको एक दूसरेकी सचाई और पुण्यशीलतापर यहांतक भरोसा और विश्वास था कि सभी प्रतिज्ञायें मौखिक होती थीं। लिखनेकी आवश्यकता न थी। मुकद्दमाबाज भी न थे। लोग व्यवहारके दुरुस्त और मामलेके साफ थे। वे आपसमें एक दूसरेपर पूर्ण विश्वास रखते थे। देशमें चोरी बहुत कम थी। घर-बार और माल-असबाबकी रक्षाकी कुछ आवश्यकता न थी। स्त्रियां उनकी बहुत पतिव्रता थीं। दासताका नाम निशान भी न था। पराक्रम और वीरतामें समस्त एशियाई जातियोंसे बढ़कर थे। स्वतन्त्रताप्रिय थे और उस समयतक ईरानियों † और मकदूनियावालोंके दो हलकेसे आक्रमणोंके सिवा उनपर बाहरसे कोई आक्रमण न हुआ था। और न उन्होंने कभी किसीके विरुद्ध कोई चढ़ाई की थी।

वह यह भी लिखता है कि उस समयमें भारतमें नगरोंकी संख्या बहुत अधिक थी, यहांतक कि उनकी गिनती करना कठिन था। मगस्थनीज लिखता है कि जितने समयतक वह चन्द्रगुप्तकी सेनामें रहा उस समयमें चार लाख मनुष्योंके समूहमें कभी किसी एक दिनमें १२०) रुपयेसे अधिकके मूल्यकी चोरी नहीं हुई।

चन्द्रगुप्तका फौजदारी कानून बहुत कठोर और पाशविक था। छोटे छोटे अपराधोंके लिये हाथ-पैर काट दिये जाते थे। और मृत्युदंड दिया जाता था। कुछ अपराधोंके लिये सिर मूंड़ दिया जाता था जिसको लोग अतीव अपमानजनक समझते थे।

---

* मकरण्डल पृष्ठ ६७ से ७२ तक।

† मकरण्डल पृष्ठ १००

विंसेंट स्मिथ लिखता है कि भूमिकी उपजका .२५ भाग राजाको दिया जाता था। परन्तु उसका यह कथन सत्य नहीं है। कि हिन्दू-कालमें भूमिका स्वामी सदा राजाको समझा जाता था। वास्तवमें बात यह है कि प्राचीनकालमें भारतमें भूमिका स्वामित्व न राजाका था न किसी एक कृषिकारका, वरन् भूमि गांवकी शामलात होती थी। उपजका अंश .१ से लेकर .१६ तक लिखा है, राजाका स्वत्व समझा जाता था।

सिंचाई विभाग। चन्द्रगुप्तके समयमें जलप्रदानका एक नियमबद्ध विभाग था। नहरें बनी हुई थीं और प्रत्येक व्यक्तिको बारी बारीसे जल मिलता था। खेतीकी भूमिका पूरा और ठीक ठीक माप रखा जाता था।

उस समयका शासन जलप्रदानके लिये नहरोंके अतिरिक्त बड़े बड़े तालाब भी बनवाया करता था। देखिये चन्द्रगुप्तके एक अधीनस्थ कर्मचारी पुष्पगुप्तने (जिसको वैश्य जातिसे लिखा है) एक छोटी नदीपर बांध लगाकर जलप्रदानके लिये गिरिनारके समीप पानीका एक जलाशय तैयार कराया और उसका नाम सुदर्शन सरोवर रखखा था। इस सरोवरके एक ओर दुर्ग था और दूसरी ओर शिला-लेखके लिये एक बड़ी चट्टान। परन्तु नालियाँ पूर्ण न होने पाई थीं कि पुष्पगुप्तका देहान्त हो गया। फिर उस अपूर्ण सरोवरको सम्राट अशोकके समयमें राजा तुशासयने पूरा किया। यह बांध चार सौ वर्षतक बना रहा और सन् १५० ई० में एक भारी तूफानमें टूट गया। फिर इस बांधको शक जातिके शासक रुद्रदमनने बनवाया। सन् ४५१ ई० में उसकी मरम्मत हुई, परन्तु उसके बाद वह कब टूट गया इसका पता नहीं।

चन्द्रगुप्तके समयमें सड़कोंका प्रबन्ध भी बहुत उत्तम था

और उनकी सदा मरम्मत होती रहती थी। प्रत्येक आध कोसके अन्तरपर एक पत्थर लगा हुआ था जिसपर दूरी लिखी रहती थी।

चन्द्रगुप्तने अपनी राजधानीसे उत्तर-पश्चिमी सीमातक एक राजमार्ग बनवाया। उसका मन्त्री चाणक्य भारतके माननीय विद्वानोंमें गिना जाता है। उसकी रची हुई पुस्तकोंमेंसे एक अर्थशास्त्र मिलता है। वह राजनीतिका एक बहुमूल्य ग्रन्थ है। इसे कौटिल्यका अर्थशास्त्र कहा जाता है। इस पुस्तकमें शासनके जो नियम और रीतियां बताई गई हैं उनका वर्णन एक अलग परिच्छेदमें किया जायगा।

कुछ इतिहास-लेखकोंका विचार है कि चन्द्रगुप्तने जैन-धर्म ग्रहण कर लिया था। और वह राजसिंहासन छोड़कर साधु हो गया और अन्तको शनैः शनैः उपवासोंकी घोर तपस्यासे उसका प्राणान्त हो गया। यह कथा जैन-धर्मकी पुस्तकोंमें आती है। विंसेंट स्मिथ पहले इसकी सत्यताको स्वीकार न करता था परन्तु अब वह इसे सत्य मानता है। हमारी सम्मति-में यद्यपि यह बहुत सम्भव है कि चन्द्रगुप्तने अन्तिम आयुमें जैन-धर्मकी ओर रुचि प्रकट की हो, परन्तु यह कदापि सम्भव नहीं कि वह राजगद्दी छोड़कर साधु हो गया हो।

चन्द्रगुप्त आयुपर्यन्त शिकार खेलता मांस खाता और निर्दयतापूर्वक दण्ड देता रहा। ये सब बात जैन-धर्मके सिद्धा-न्तोंके सर्वथा विपरीत हैं। यदि इन सबसे घृणा हो जानेके कारण वह अन्तिम दिनोंमें साधु हो गया होता तो हिन्दू-साहित्यमें उसका अवश्य उल्लेख मिलता और उसके पुत्र बिन्दुसारकी राजसभामें जो विदेशी दूत थे वे अवश्य अपने लेखोंमें इसका प्रमाण देते।

तीसरा परिच्छेद
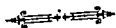
कौटिलयका अर्थशास्त्र।

सम्राट चन्द्रगुप्तके राजत्वकालकी बड़ी बड़ी घटनाओंका उल्लेख हमने पिछले परिच्छेदमें कर दिया है। ये घटनायें इतिहास-लेखकोंने अधिकतर मगास्थनीज़के अन्वेषणोंसे ली हैं। परन्तु यह स्मरण रखना चाहिये कि मगास्थनीज़की मूल पुस्तक नष्ट हो चुकी है। उसके कुछ भाग दूसरे यूनानी और रोमन लेखकोंके लेखोंमें उद्धृत किये हुए विद्यमान हैं। उन्हींका संग्रह करके वे वृत्तान्त स्थिर किये गये हैं जो चन्द्रगुप्तके विषयमें इस समय ज्ञात हैं। परन्तु चन्द्रगुप्तके समयका एक और प्रबल लेख विद्यमान है। इतिहासवेत्ताओं और विद्वानोंको इसका पता पिछले कुछ वर्षोंमें लगा है। इसका नाम कौटिलयका अर्थशास्त्र है। कौटिल्य भी चाणक्यका ही नाम है। उसे विष्णुगुप्त भी कहते हैं। इस पुस्तकमें वर्णित विषयोंसे तत्कालीन अवस्थाका ऐसा चित्र मिलता है कि उसने विद्याप्रेमी मनुष्योंके विचारोंमें प्राचीन आर्य्य लोगोंकी राजनीतिक व्यवस्थाके विषयमें एक भारी क्रान्ति उत्पन्न कर दी है।

साधारणतया इतिहास-लेखक ईसाके जन्मके पहले सात शताब्दियोंको बौद्धकाल समझते हैं। पर अब कुछ अंगरेज ऐतिहासिक, जिनमेंसे एक विंसेंट स्मिथ भी हैं, स्पष्टरूपसे स्वीकार करते हैं कि वास्तवमें भारतके इतिहासमें कोई ऐसा काल नहीं हुआ जिसको बौद्धकाल कहा जा सके। बौद्ध विचारोंका प्रचार और उनका प्रभाव भारतकी सामाजिक और धार्मिक

अवस्थाओंपर अवश्य पड़ा, और कुछ बातोंमें यह प्रभाव गहरा पड़ा, परन्तु ब्राह्मणोंकी शिक्षा और हिन्दू-शास्त्रोंकी आज्ञाओंका सामान्य प्रभाव कभी नष्ट नहीं हुआ। यहांतक कि जो शासक बौद्ध और जैन धर्मको मानते थे वे भी ब्राह्मण पण्डितोंका बहुत सम्मान करते थे, और हर प्रकारसे उनकी सहायतापर भरोसा रखते थे। ऐतिहासिक कालकी पहली चार पांच शताब्दियोंके वृत्तान्त तीन चार भिन्न भिन्न स्रोतोंसे मालूम होते हैं।

(क) बौद्ध और जैन ग्रन्थोंसे इनका पर्याप्त भाण्डार मौजूद है और इनका क्रमशः अनुवाद किया जा रहा है।

(ख) हिन्दू धर्म्म-शास्त्रोंसे।

(ग) यूनानी पर्यटकों और दूतोंके लिखे हुए वृत्तान्तोंसे।

(घ) कौटिल्य ऋषिके अर्थ-शास्त्रसे।

इनके अतिरिक्त असंख्य सिक्कों और पत्थरों तथा पहाड़ोंपर पाये जानेवाले लेखोंसे बहुतसे वृत्तान्त मालूम होते हैं।

स्रोत संख्या (क) से जो वृत्तान्त मालूम होते हैं उनको अध्यापक हाईस डेविड्जने अपने 'बुधिस्ट इण्डिया' नामके ग्रंथमें एकत्र किया है। उनका अनुमोदन अब प्रायः पूर्णरूपसे दूसरे स्रोतोंसे हो रहा है। ये वृत्तान्त, बहुत सम्भव है, उस कालके हैं जो चन्द्रगुप्तसे तीन या चार शताब्दी पहलेतकका है। चन्द्रगुप्तके समयके वृत्तान्तोंपर अधिक प्रकाश कौटिल्यके अर्थशास्त्र और तत्कालीन तथा उसके पीछेकी अन्य घटनाओंसे पड़ता है। भिन्न भिन्न यूरोपियन लेखकोंने भिन्न भिन्न रीतिसे इस सामग्रीका उपयोग किया है औरअपनी अपनी रुचिके अनुसार उससे परिणाम निकाले हैं। उदाहरणार्थ, जो परिणाम हैवलने निकाले हैं वे कई महत्त्वपूर्ण विषयोंमें विंसेंटके परि-

णामोंसे भिन्न हैं। विंसेंट स्मिथ यद्यपि चन्द्रगुप्त और उसके मन्त्री चाणक्यकी योग्यता और उनके महत्त्वको स्वीकार करता है, और यह भी मानता है कि चन्द्रगुप्तका राज्य-प्रबन्ध ऐसा पूर्ण था कि उसकी उपमा प्राचीन संसारके किसी दूसरे देशमें पाई नहीं जाती, यहांतक कि वह इसको यूनानियोंके प्रबन्धसे और अकबरके प्रबन्धसे भी अधिक पूर्ण पाता है, परन्तु कुछ अंगोंमें वह चन्द्रगुप्त और हिन्दुओंके तत्कालीन राजनीतिक शीलके विरुद्ध, पक्षपातसे, अनुचित टिप्पणी करता है। बात वास्तवमें यह है कि दो एक बातोंको छोड़कर चन्द्रगुप्तके समय-का राजनीतिक शील और राजनीतिक पद्धति वर्त्तमान कालसे किसी बातमें कम न थी, वरन् कुछ अङ्गोंमें इससे उत्तम और अधिक पूर्ण थी। . .

यह समझ लेना चाहिये कि कौटिल्यका अर्थ-शास्त्र केवल उन छोटे राज्योंके प्रबन्धके लिये विशेष रूपसे नियत था जिनके इर्द गिर्द और छोटे राज्य हों। न तो वह किसी साम्राज्यके प्रबन्धके लिये और न ऐसे राज्योंके लिये विशेषरूपसे नियत था जो प्रजातन्त्र सिद्धान्तपर हों। कुछ आश्चर्य नहीं कि कौटिल्यने यह शास्त्र उस समय बनाया हो जब वह स्वयं शिक्षार्थी था और उसे यह स्वप्नतक भी न था कि चन्द्रगुप्त एक ऐसे विशाल साम्राज्यको प्राप्त करके कौटिल्यको अपना मन्त्री बनायेगा। हिन्दुओंके राजनीतिक शीलके विषयमें महाभारतके शान्तिपर्व-की शिक्षा और हिन्दू धर्म-शास्त्रको आज्ञायें ऐसी ही बहुमूल्य हैं जैसे कि शुद्ध राजनीति शास्त्रके ग्रंथ, विशेषतः जबकि उनकी पुष्टि ऐसी घटनाओंसे होती है जिनका उल्लेख बौद्धों और जैनोंकी पुस्तकों तथा हिन्दू-साहित्यकी भिन्न भिन्न शाखा-ओंमें है।

कौटिल्य और मेकावलीकी तुलना। विंसेंट स्मिथ कौटिल्यके अर्थ-शास्त्रको इटलीके प्रसिद्ध राजनीतिक तत्वज्ञानी मेकावलीकी जगत्प्रसिद्ध पुस्तक, "प्रिंस", के साथ तुलना करता है। यह शेषोक्त पुस्तक शासन-कलापर एक प्रबल टीका है। यद्यपि बहुतसे यूरोपीय राजनीतिक तत्ववेत्ता मेकावलीके राजनीतिक शीलकी हँसी उड़ाते हैं और उसको बहुत तुच्छ समझते हैं, परन्तु यूरोपका क्रियात्मक राजनीतिक शील किसी बातमें भी मेकावलीकी शिक्षासे उच्चतर नहीं है। उदाहरणार्थ, विंसेंट स्मिथ कौटिल्यकी इस प्रकारकी हंसी उड़ाता है कि राजाओंका शील प्रजाके शीलसे भिन्न होना चाहिये, जो बातें प्रजाके लिये अर्थात् किसी समाजके अकेले सदस्योंके लिये अनुचित हैं और अपराधकी सीमातक पहुंचाती हैं वे राजाओंके लिये उचित और शासनके लिये अच्छी और प्रशंसनीय होती हैं। साधारण प्रजाके लिये किसी दूसरेके मालकी चोरी करना अथवा छल, कपट या डाकासे किसीकी सम्पत्तिपर अधिकार करना अति कुत्सित कर्म है, परन्तु राज्यके प्रयोजनोंके लिये ये सब चीजें उचित हैं। जहां निजू व्यक्तिके लिये प्रतिज्ञाका भङ्ग करना बहुत बुरा और जघन्य समझा जाता है वहां राज्योंके लिये यह उचित और आवश्यक ठहराया गया है। राज्यके लिये हर प्रकारका धोखा, छल, घूस देना, और घूस लेना उचित समझा जाता है। शत्रुके मित्रोंको बहकाना उनको घूस देकर अपनी ओर कर लेना, उसकी प्रजामें विद्रोह फैला देना, उसके अफसरोंको राजद्रोही बना देना, यह राज्योंके लिये उचित है*। और यूरोपके गत तीन

---

* यह मेरी सम्मति नहीं है। मैं मेकावली और कौटिल्यकी सम्मति बता रहा हूं। मेरी सम्मतिमें ये सब बातें अनुचित हैं।

सौ वर्षके इतिहासमें कोई ऐसी जाति नहीं जिसने यह न किया हो। गत महायुद्धमें जर्मनीने रूस और इंग्लैण्डकी प्रजामें विद्रोह फैलानेमें कोई कसर नहीं उठा रखखी। और इंग्लैण्ड तथा फ्रांसने जर्मनी आस्टरिया और रूमकी भिन्न भिन्न वस्तियोंके साथ वैसा ही किया। छल और कपटका कोई भी साधन दोनों पक्षोंने शेष नहीं रखखा। विंसेंट स्मिथका कौटिल्यकी शिक्षापर हंसी उड़ाना इसी लोकोक्तिको चरितार्थ करता है कि जहां मनुष्य अपनी आंखका तिल नहीं देख सकता वहां उसको दूसरोंकी आंखका तिल भी पहाड़ देख पड़ता है। यूरोपीय शक्तियोंने कौन सा काम नहीं किया जिसको कौटिल्यकी शिक्षामें विंसेंट स्मिथ आपत्तिजनक समझता है। परन्तु केवल कौटिल्यकी इस शिक्षापर टिप्पणी करता हुआ उसका शुक्ल पक्ष भी उपस्थित करता है।

भेदिया अर्थात् सी० आई० डी० विभाग।

कौटिल्यकी शिक्षामें एक और बात भी है जिसपर विंसेंट स्मिथ बार बार बड़ी घृणासे टिप्पणी करता है। वह उसका भेदिया विभाग है। कौटिल्यने गुप्तचरोंपर बहुत बल दिया है। परन्तु उस समयके सामान्य शील और सत्यप्रियताके स्वभावोंको देखते हुए और इस बातको ध्यानमें रखते हुए कि गुप्तचरोंके दिये हुए समाचारोंकी जांच पड़तालके लिये पांच भिन्न भिन्न विभाग नियत थे, यह कहा जा सकता है कि चन्द्रगुप्तका सी० आई० डी० (गुप्तचर) विभाग ऐसा झूठा न था जैसा आजकल ब्रिटिश भारतमें भारतीय सरकारका सी० आई० डी० विभाग समझा जाता है। वर्तानिया द्वीप-समूहको शासन-प्रणाली भी गुप्तचर विभागसे शून्य नहीं है। यद्यपि वहांकी पुलीसकी भद्रता और सत्यपरायणता स्वीकार

की जा सकती है, परन्तु गुप्तचर विभागकी सूचनायें सदा सन्देहकी दृष्टिसे देखी जाती हैं। इसमें सन्देह नहीं कि जैसा सर्वाङ्गपूर्ण गुप्तचर-विभाग जर्मनीने स्थापित किया था, वैसा शायद आजतक संसारमें किसी दूसरे राज्यने नहीं किया। परन्तु चन्द्रगुप्तका गुप्तचर-विभाग ब्रिटिश-भारतके गुप्तचर विभाग या पुलिससे किसी अंगमें अधिक बुरा और आपत्ति-जनक न था। कहा जाता है कि चन्द्रगुप्तने कोई विभाग ऐसा नहीं छोड़ा जिसमें गुप्तचर न हों। दुर्भाग्यसे वर्त्तमान ब्रिटिश सरकारने भी भारतमें जीवनका कोई विभाग ऐसा नहीं छोड़ा जिसमें उसने गुप्तचर न छोड़ रक्खे हों। यह विश्वास करना तनिक कठिन है कि चन्द्रगुप्तके समयमें अध्यापकों और विद्यार्थियोंसे गुप्तचरोंका काम लिया जाता था, अथवा लड़कोंको माता-पितापर और माता-पिताको लड़कोंपर जासूसी करनेकी प्रेरणा या आज्ञा दी जाती थी। वास्तवमें थोड़ा बहुत गुप्तचर विभाग तो प्रत्येक शासन-प्रणालीके लिये अनिवार्य है, परन्तु प्रजातन्त्र राज्यमें उसके दोष और त्रुटियां ऐसी स्पष्ट दिखाई नहीं देतीं जैसी कि निरङ्कुश अधिराजक शासनमें।

चन्द्रगुप्तका फौजदारी कानून। चन्द्रगुप्तके राजप्रबन्धपर जो तीसरी आपत्ति की जाती है वह यह है कि इसका फौजदारी कानून अतीव नृशंस था। यह आपत्ति सर्वथा उचित है। आधुनिक कालने इस विषयमें बहुत कुछ सुधार किया है, और यूरोप और अमरीकामें दण्डका वह आदर्श नहीं रहा जो प्राचीन योरुप और प्राचीन भारतमें था। अभी दो तीन सौ वर्ष नहीं हुए कि यूरोपीय देशोंके फौजदारी कानून लगभग चन्द्रगुप्तके फौजदारी कानूनके समान हो, वरन् उससे भी अधिक कठोर और नृशंस थे। अभी बहुत

समय नहीं योता कि इंग्लैण्डमें जादूगरीका दण्ड मृत्यु थी, इत्यादि। मृत्यु-दण्ड अब बहुत थोड़े अपराधोंमें दिया जाता है। परन्तु नैपोलियनके समयके पहले बहुतसे अपराधोंके लिये मृत्यु दण्ड दिया जाता था। इस सम्बन्धमें स्पेनमें जो दण्ड रोमन कैथोलिक पादरियोंने अपने विरोधियोंको दिये थे भी स्मरण रहने चाहिये। फिर भी कौटिल्यके अर्थ-शास्त्रपर यह दोष आरोपित नहीं किया जा सकता कि उसने ब्राह्मणोंके साथ बहुत अधिक रियायत की। ब्राह्मणको पानीमें डवोकर मृत्यु-दण्ड दिया जाता था। दूसरे अपराधियोंको, कहते हैं, आगमें जला दिया जाता था। कुछ अपराधोंके लिये ब्राह्मणको भी खानें खोदने भेज दिया जाता था। यही बर्ताव आधुनिक समयमें कई यूरोपीय राज्य राजनीतिक अपराधियोंके साथ करते रहे हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि कौटिल्य अपराधोंके प्रमाणके लिये नाना प्रकारके कष्ट देनेको भी उचित समझता था। यह रीति भी यूरोपके राज्योंमें आधुनिक कालके कुछ समय पहलेतक प्रचलित थी, और दुर्भाग्यसे भारतमें अब भी प्रचलित है।

अर्थ-शास्त्रके सिद्धान्त, राजसत्ताका स्वरूप। अब कौटिल्यके अर्थ शास्त्रकी मोटी मोटी आज्ञायें उस क्रममें लिखी जाती हैं जिसमें कि उनको यूरोपियन इतिहास-लेखकोंने वर्णन किया है।

सबसे पहले यह स्मरण रखना चाहिये कि यद्यपि राजा, देखनेमें, निरङ्कुश था परन्तु उसके अधिकारोंपर ऐसे बन्धन लगाये हुए थे जिनसे उसकी निरङ्कुशता दूर हो जाती थी। राज्याभिषेकके समय राजाको यह शपथ लेनी पड़ती थी कि प्रजा-रक्षण* उसका परम धर्म्म होगा, और यह रक्षा वह धर्म्म

* डाक्टर थैनरजीने यह सम्मति प्रकट की है कि चन्द्रगुप्तका शासन एक प्रका

के नियमके अनुसार करेगा। राजाका यह धर्म्म था कि वह सदा प्रजाकी शिकायतोंको सुननेके लिये तैयार रहे। इसके अतिरिक्त प्रिवी कौंसिल या कौंसिल आव स्टेटका यह काम था कि वह राजाको निरङ्कुशतासे रोके। इस प्रिवी कौंसिलमें साधारणतया बारह या सोलह सदस्य होते थे, परन्तु कौटिल्यने इनकी संख्या नियत नहीं की। उस कौंसिलके प्रत्येक सदस्यके अधीन एक एक विभाग होता था। यह कौंसिल आजकलके यूरोपीय देशोंके केबीनट (मंत्रिमण्डल) के समान थी। वह सब अंगोंमें साम्राज्यके शासनकी जिम्मेदार थी और सर्व अधीनस्थ प्रान्तोंके शासक नियुक्त करती थी। मगस्थनीज़ने चन्द्रगुप्तके मंत्रियोंकी सच्चरित्रता और बुद्धिमत्ताकी बड़ी प्रशंसा की है।

राजाके कर्त्तव्य और समय–विभाग। कौटिल्यने राजाके कर्त्तव्योंका वर्णन करते हुए चौबीस घंटोंको सोलह भागोंमें बांटा है। इनमेंसे पहले भागमें राजाका यह काम था कि वह अपने राज्यकी आर्थिक अवस्था और राष्ट्रीय रक्षाके विषयोंपर विचार करे। दूसरे भागमें राजा अपनी प्रजाके आवेदन सुनता और अभियोगोंका निर्णय करता था। तीसरा भाग स्नान-ध्यान और खान-पानका था। चौथे भागमें वह भेंटें लेता और कर्मचारियोंकी नियुक्ति करता था। पांचवां भाग कौंसिलसे मन्त्रणा करने और पुलिस विभागकी रिपोर्टें सुननेके लिये नियत था। छठेमें राजा विश्राम और चिन्तन करता था। सातवें और आठवेंमें सैनिक विषयोंपर योग देता था। इस प्रकार दिन व्यतीत हो जाता था।

रातके पहले भागमें वह फिर अपने गुप्तचर विभागके अधि-

रको मर्यादित या विधिबद्ध राजसत्ता (Limited or constitutional Moarchy) ही।

कारियोंकी रीपोर्टें सुनता था। दूसरे भागमें वह स्नान, संध्या करके खाना खाता था। फिर तीसरे, चौथे और पांचवें भागमें सोता था, छठे भागमें उठकर फिर चिन्तन करता था। सातवें भागमें सरकारी कागजोंको पढ़ता और अपने गुप्त कर्मचारियोंके नाम आज्ञायें निकालता था। इसके पश्चात् आठवें भागमें प्रातःकाल उठकर विशेष राजसभा (दीवान खास) में जाता था। वहां वह अपने गुरु, राजसभाके ब्राह्मण, कौंसिलके सदस्यों और राजकुमारोंसे मिलता था। फिर कुछ धार्मिक अनुष्ठान करता था।

यह विश्वास करना कठिन है कि प्रत्येक हिन्दू नृपति इन आज्ञाओंका पूर्णरूपसे पालन करता था। परन्तु शास्त्रकारने उनके लिये यह आदर्श नियत किया था; और यह माननेके लिये हेतु है कि चन्द्रगुप्त दिनमें बिलकुल न सोता था और रात दिन राज्यके काम काजमें मग्न रहता था। अन्यथा चौबीस वर्षके अल्पकालमें इतने देशोंको जीतना और राज्यकी व्यवस्था ऐसे दृढ़ आधारपर रख देना उसके लिये असम्भव था।

शास्त्रकार यह भी लिखता है कि पुलिस-विभागका यह भी कर्त्तव्य था कि वह राजाको लोकमतकी सूचना और भिन्न भिन्न विभागोंकी कार्यवाहीका समाचार देता रहे। राजाको अपने विषयमें टीका-टिप्पणी सुननेका अवसर भी इन रिपोर्टोंसे मिलता था, क्योंकि उस कालमें नियमपूर्वक समाचार-पत्र न थे।

विभागों और सरकारी कर्मचारियोंके वेतन।

अर्थ-शास्त्रमें अठारह सरकारी विभागोंका वर्णन है; और बड़े बड़े कर्मचारियोंकी लम्बी लम्बी सूचियां दी गई हैं। इनमें कंचुकी अर्थात् अंतःपुरका अध्यक्ष (चेम्बरलेन), कलेक्टर, जनरल, अकौंटेण्ट जन-

रत्न, कृषिका अध्यक्ष और कारखानोंका अध्यक्ष इत्यादि सब थे। इन कर्मचारियोंके वेतन भी इस पुस्तकमें लिखे हुए हैं। विंसेंट स्मिथके कथनानुसार, बड़ेसे बड़ा वेतन जो युवराज और अन्य मन्त्रियोंको दिया जाता था, छत्तीस सहस्र रुपया वार्षिकसे अधिक न था। (उस समयकी मुद्रामें यह वेतन चांदीके अड़तालीस सहस्र पण था और विंसेंट स्मिथकी सम्मतिमें एक पण एक शिलिङ्ग अर्थात् बारह आनेके बराबर समझना चाहिये)। परन्तु वेतनोंके अधिक या थोड़ा होनेका अनुमान आवश्यक पदार्थोंके मूल्यपर होता है, और यह मालूम नहीं कि चन्द्रगुप्तके समयमें जीवनके आवश्यक पदार्थोंका मूल्य क्या क्या था।

राजस्व और कर-विभाग।

अर्थ-शास्त्रमें राजस्व विभागके प्रबन्धपर बहुत बल दिया गया है। उसमें राजस्व और करोंके वसूल करने और खर्चोंका सविस्तार वर्णन है। विंसेण्ट स्मिथ लिखता है कि चन्द्रगुप्त उपजका चौथा भाग लेता था और सिंचाईके कर और ऐश्वर्यकी अवस्थामें .२ से .३ तक वसूल करता था।

हेवलकी सम्मतिमें राजस्व आयका .१६ भाग था। इसके अतिरिक्त खानोंका किराया वसूल होता था। पशुओं, मोतियों और नमकपर भी कर था। सरकारी जहाज़ोंका किराया था। सौदागरीपर चुङ्गीका महसूल था। मदिरा और द्यूत गृहोंपर टेक्स था। अनुज्ञापत्र (पासपोर्ट) की फीस भी ली जाती थी।

कौटिल्यने यह भी लिखा है कि राजा आवश्यकताके समय धनाढ्य लोगोंपर विशेष कर भी लगाता था। उपाधि आदि देनेके लिये भी भारी भारी रकमें प्राप्त करता था। यह प्रथा इस समय भी यूरोपीय देशोंमें और भारतमें प्रचलित है। हेवल लिखता है कि कुछ वस्तुओंपर कोई कर न था, जैसा कि शस्त्रों-

पर, कवचपर, सोने-चांदीपर, गाड़ियोंपर, अन्नपर, रत्नोंपर, इनके अतिरिक्त उन पदार्थों पर भी कोई टैक्स न था जो धार्मिक प्रयोजनोंके लिये, विवाहके लिये, राजाकी भेंटके लिये, अथवा प्रसवके समय माताके उपयोगके लिये लाये जायं। जो व्यापारी अभयपत्र (पास) के विना प्रवेश कर आता था उसको दुगना कर देना पड़ता था। महसूल उस समय लिया जाता था जब वस्तुतः क्रय और विक्रय होता था। क्रय और विक्रय केवल मण्डियोंमें होता था। ये मण्डियां नगरके बाहर थीं। विंसेण्ट स्मिथने विदेशसे आई हुई वस्तुओंपरके सब करोंको इकट्ठा करके बीस प्रति शतकी औसत निकाली है और शेष वस्तुओंके करोंकी दर भिन्न भिन्न बताई गई है।

विदेशसे आई हुई मदिरापर विशेष प्रकारका कर था। जिन दूकानोंपर मदिरा बिकती थी उनके सम्बन्धमें वर्त्तमान यूरोपीय देशोंके सदृश, विशेष नियम और व्यवस्था थी और उनमें लोगोंके सुभीतेके लिये भिन्न भिन्न प्रकारकी सुख-सामग्री उपस्थित करनेकी आज्ञा थी। ग्रामोंमें मदिरा बेचनेकी दूकानें नहीं थीं और नगरोंमें उन दूकानोंपर विशेष कर्म्मचारियोंका पहरा रहता था। वे पीनेवालोंके मालकी रक्षा करते थे क्योंकि चोरीकी अवस्थामें दूकानदारको नुकसान पूरा करना पड़ता था। इस प्रकार द्यूतशालाओंका प्रबन्ध था। ऐसा जान पड़ता है कि प्राचीन भारतवर्षमें जुआ खेलनेका रोग बहुत था। चन्द्रगुप्तकी राज्यसंस्थाने द्यूतकर्म सर्वथा बन्दकर दिया और नगरोंमें उसके लिये लायसेंस नियत कर दिये थे।

जल-सिंचाई। जैसा कि मगस्थनीज़ने लिखा है, चंद्रगुप्तकी राज्यसंस्था जलको सिंचाईके साधन अपनी प्रजाके लिये उपस्थित करती थी।

जहाजोंका चलाना और नदियोंकी यात्रा।

चन्द्रगुप्तके राजत्व कालमें भारतमें समुद्र और नदियोंके द्वारा यात्रा करनेकी बहुत प्रथा थी। यहांतक कि इस यात्राके लिये राजकीय पोत और नावें रक्खी जाती थीं। इनका विभाग सर्वथा अलग था। कौटिल्य समुद्री पोतोंका भी उल्लेख करता है। ये ब्रम्हा और चीनतक पूर्वमें और अरब तथा ईरानकी बन्दरगाहोंमें पश्चिमको ओर जाते थे। नदियों-पर सरकारी पुल थे। और नदियोंकी यात्राके सम्बन्धमें विशेष नियम थे। ये पुल लकड़ीके और ईंट तथा पत्थरके बने हुए थे। कई जगहोंपर नावोंके भी पुल थे अथवा अस्थायी रूपसे हाथियोंकी पीठपर बनाये जाते थे।

पब्लिक वर्क्सका विभाग।

इसी प्रकार साधारण सड़कोंके विषयमें भी एक नियमपूर्वक संहिता थी। नगरोंमें जो सड़कें गाड़ियोंके लिये बनाई जाती थीं उनके लिये पत्थर या साधारण काठका फर्श तैयार किया जाता था। बोझ ढोने और पैदल चलनेके लिये अलग सड़कें थीं और श्मशान-भूमिको जानेके लिये अलग। प्रत्येक सड़ककी चौड़ाई नियमानुसार नियत की जाती थी। पैदल पथिकोंकी सड़क चार फुट, दूसरी सड़कें बत्तीस फुटतक, राजकीय मार्ग और बड़े बड़े व्यापारिक पथ उनसे दुगुने चौड़े होते थे। ज़िलोंमें बहुत सी सड़कें बनाई जाती थीं। ये राजधानीको बड़े बड़े नगरों, बड़े बड़े गांवों, बड़ी बड़ी खानों, गोचरभूमियों, उद्यानों और बनों आदिसे मिलाती थीं।

संभूय समुत्थायी सभायें।

ऐसा प्रतीत होता है कि चन्द्रगुप्तके समय-में सहकारी रीति भी प्रचलित थी। सम्भूय समुत्थायी सभायें कृषि, व्यापार, शिल्प

कला-कौशलके प्रयोजनोंके लिये बनाई जाती थीं। व्यवसायियों और औद्योगिक लोगोंकी सभायें अलग थीं।

नागरिक प्रबंध

नगरके प्रबन्धके विषयमें भी इस अर्थ-शास्त्रमें बहुत विस्तारके साथ आदेश लिखे हैं। नगरके मध्यमें राजभवन होता था। इस प्रासादके उत्तरमें राज परिवारका देवालय, उत्तर भागमें ब्राह्मण और उच्च कक्षाके शिल्पी, जैसे कि शस्त्र बनानेवाले लोहार और बहुमूल्य पत्थरोंके कारीगर रहते थे। उत्तर-पश्चिम भागमें बाजार और अस्पताल थे। अस्पतालोंमें औषधियां सरकारी भाण्डारोंसे दी जाती थीं। नगरका पूर्वी भाग क्षत्रियों, वैश्यों और अन्य कारीगरोंके लिये विशेषरूपसे नियत था। पश्चिमी भाग शूद्रोंके लिये होता था। इस भागमें रूई और ऊनके कातनेवाले, चटाई बनानेवाले और चमड़ेके कारीगर ही रहते थे। नगरके भिन्न भिन्न कोनेमें व्यवसायी सभाओं और सहकारी समाजोंके प्रधान कार्यालय थे। नगरोंके नियममें स्वच्छतापर, जल पहुंचानेपर, फल और फूलोंके उद्यानोंपर, और सरकारी भवनोंकी रक्षापर विशेष ध्यान दिया जाता था। जो लोग जलाशयको या सार्वजनिक मार्गोंको मैला करते थे, अथवा मृत जन्तुओं या मानुषी शवोंको पड़ा रहने देते थे उनको दण्ड दिया जाता था। कब्रें और श्मशान-भूमियां भी सरकारी थीं। पाटीलपुत्रमें प्रत्येक दस घरके लिये एक कुआं था। नगरमें छप्पर बनानेकी आज्ञा न थी। बड़ी बड़ी सड़कोंके रास्तोंपर और साधारण चौकोंपर और राजभवनोंके सामने बड़े बड़े बर्तन पानीके भरे हुए रक्खे रहते थे। और प्रत्येक गृहस्थका कर्त्तव्य था कि वह अपने घरमें आग बुझानेके लिये सीढ़ियां, कुल्हाड़ियां, कुण्डे, रस्सियां, टोकरियां, और चमड़ेके डोले रक्खे, और आग लग जानेकी द[शा]में पड़ोसियोंको पूरी सहायता दे।

पशुओंकी रक्षा। कौटिल्यके अर्थ-शास्त्रमें पशुओंके भोजन, गौओंके दोहने और दूध-मक्खन आदिकी स्वच्छताके सम्बन्धमें नियम दिये गये हैं। उसमें यह भी लिखा हुआ है कि सांड़ों और हाथियोंको किस प्रकार पाला जाय, और चरवाहोंको वेतनपर नियुक्त किया जाय या आयमें भाग देकर। इसी प्रकार राजकीय अश्वशालाओंका प्रबन्ध भी नियम पूर्वक था। पशुओंको निर्दयता और चोरोंसे बचानेके नियम सविस्तर दिये गये हैं।

न्याय-प्रबन्ध। गांवोंमें न्याय (अदालत) का कारबार गांवके नम्बरदार और स्थानीय पञ्चायतें करती थीं। ये छोटे छोटे अभियोगोंका निर्णय करती थीं। इनके अतिरिक्त न्यायालय दो प्रकारके होते थे—ऊंचे और नीचे। प्रत्येक न्यायालयमें छः जज होते थे—तीन ऐसे जो धर्म-शास्त्र और नीति-शास्त्रका पूरा पूरा ज्ञान रखते हों। और तीन ऐसे जो स्थानीय प्रथाओं और क्रियात्मक व्यवहारोंमें निपुण हों। इन ऊंचे और नीचे न्यायालयोंके अभियोगोंकी सूचियां लिखी हुई हैं। इन सब न्यायालयोंकी अन्तिम अपील राजाकी प्रिवी कौंसिलमें होती थी।

दुर्भिक्षमें सहायता। यही उच्च न्यायालय दुर्भिक्षका प्रबन्ध करते थे। जो अन्न सरकारी भाण्डारोंमें आता था उसका आधा भाग दुर्भिक्षके दिनोंके लिये सुरक्षित रक्खा जाता था और अकाल पड़नेपर इस भाण्डारमेंसे अन्न बांटा जाता था। अगली फसलके बीजके लिये भी यहींसे दिया जाता था। लोगोंको आजीविकाके साधन उपस्थित करनेके लिये बड़ी बड़ी इमारतें बनाना आरम्भ कर दिया जाता था। धना-ढ्योंसे सदा चन्दा लेकर निर्धनोंकी सहायता की जाती थी, और

जहां सम्भव होता था वहां दुर्भिक्ष प्रजाको नदियों, झीलों और समुद्रके तटपर पहुंचा दिया जाता था, या ऐसे स्थानोंपर भेज दिया जाता था जहां भोजन मिल सके। यह संक्षिप्त वर्णन (जिसमें हमने सैनिक प्रबन्धका उल्लेख नहीं किया) उस राज्य-पद्धतिका है जिसका वर्णन कौटिल्यने अपने अर्थ-शास्त्रमें किया है और जिसके विषयमें इतिहास-लेखकोंका विश्वास है कि चन्द्रगुप्तके राज्यमें उसके अनुसार एक बहुत अंशतक कार्य होता था। इस मतकी बहुत कुछ पुष्टि यूनानी पर्यटकोंके भ्रमण-वृत्तान्तोंसे होती है। और यह चित्र है उस सभ्यताका जो आजसे बाईस सौ वर्ष पहले भारतमें फैली हुई थी।

चौथा परिच्छेद

महाराजा बिन्दुसार और महाराजा अशोकका राजत्वकाल।

चन्द्रगुप्तका देहान्त ईसाके २९८ वर्ष पहले हुआ* और उसकी गद्दीपर उसका पुत्र बिन्दुसार बैठा। बिन्दुसारने अपने शासन-कालमें दक्खिनको अपने पिताके साम्राज्यमें मिलानेके सिवा और कोई ऐसे काम नहीं किये जो उसके गौरवको बढ़ानेवाले हों। परन्तु यह भी निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि दक्खिनको चन्द्रगुप्तने अपनी मृत्युसे पहले विजय कर लिया था या बिन्दुसारने उसके देहान्तके पीछे किया। यदि

* देखा पृष्ठ २६६

बिन्दुसारने दक्खिनको स्वयं जीता तो यह बात बहुत अंशतक उसके गौरवको बढ़ानेवाली है; क्योंकि उस समयतक दक्खिन पूर्णरूपसे आर्य्य राजाओंके अधिकारमें नहीं आया था। यह बात मानी हुई है कि पश्चिममें दक्खिन मैसूरकी सीमातक महाराज अशोकके राज्यमें मिला हुआ था। और यह बात भी मानी हुई है कि अशोकने अपने राजत्वकालमें केवल कलिङ्गको ही विजय किया। कलिङ्ग पूर्वमें बङ्गालकी खाड़ीके तटपर एक प्रान्तका नाम था। यह नर्मदा और महानदीके बीच स्थित था। अतएव यह स्पष्ट है कि दक्खिनका अवशिष्ट भाग या तो चन्द्र-गुप्तने जीतकर अपने राज्यमें मिलाया या बिन्दुसारने।

पश्चिमी राजाओंके दूत। बिन्दुसारके समयमें पाश्चात्य राजाओंके अनेक दूत उसके दरबारमें आये। मगस्थनीजके चले जानेके बाद सिल्यूकसके पुत्र ऐण्टिओकसने नया दूत-समूह भेजा। फिर मिस्र-नरेश टोलमी फी डोलफसने भी डेमोनी सेऊसकी अध्यक्षतामें एक दूत-समूह भेजा। इससे विदित होता है कि उस समय पाश्चात्य जगत्के साथ भारतके सम्बन्ध बहुत विस्तृत थे। व्यापारके अनेक मार्ग खुले थे और आपसमें दूतोंका अदल बदल होता था। बिन्दुसारके शासनकालकी एक कथा प्रसिद्ध है कि उसने यूनान नरेश ऐण्टिओकससे एक उच्च कोटि-का दार्शनिक मांगा और उसके बदलेमें अतीव मूल्यवान वस्तुयें भेंट देनेका वचन दिया। परन्तु ऐण्टिओकसने हंसीमें यह उत्तर देकर टाल दिया कि मेरी जातिके तत्त्वज्ञानी बिकते नहीं। इससे यह प्रकट होता है कि यद्यपि पूर्व और पश्चिमके बीच आना जाना जारी था, व्यापारिक सम्बन्ध भी थे, और राजाओंके दूत भी आते जाते थे, परन्तु प्रथम श्रेणीके विद्वान न भारतसे यूनान जाते थे और न यूनानसे भारत आते थे।

अशोकका राजतिलक। बिन्दुसारने पचीस वर्षतक राज्य किया और वह सन् २७३ ईसा-पूर्वमें मर गया। परन्तु महाराजा अशोकका तिलकोत्सव सन् २६९ ई० पू० तक नहीं हुआ। इन बीचके चार वर्षोंके विषयमें ऐतिहासिकोंके अनुमान भिन्न भिन्न हैं। हैवल लिखता है कि बहुत सम्भव है कि उसका यह समय परीक्षामें बीता हो, क्योंकि प्राचीन आर्योंका तिलकोत्सव उस समयतक नहीं होता था जबतक कि प्रजा अपने नये राजाके गद्दीपर बैठनेको प्रसन्नतासे स्वीकार नहीं कर लेती थी। परन्तु यह भी सम्भव है कि यह समय अशोकको अपने बड़े भाईके साथ निपटारा करनेमें लगा हो।

युवराजके रूपमें अशोकका काम, तक्षशिला। अशोक अपने बापका ज्येष्ठ पुत्र न था, परन्तु बिन्दुसारने उसको सबसे योग्य समझकर युवराज बना दिया था। बिन्दुसारके जीवन-कालमें ही अशोकके सुप्रबन्ध और योग्यताका सिक्का जम चुका था। अशोक अपने पिताके समयमें पहले तक्षशिलाका राजप्रतिनिधि रहा। तक्षशिलाके राज्यमें उस समय काश्मीर प्रान्त, नैपाल, हिन्दूकुश पर्वततक सारा अफ़गानिस्तान, बलोचिस्तान और पञ्जाब मिले हुए थे। तक्षशिलाका विश्वविद्यालय आयुर्वेदकी शिक्षाके लिये विशेष रूपसे जगत्प्रसिद्ध था। उसकी प्रसिद्धिमें अशोकके समयमें भी किसी प्रकारकी कमी नहीं हुई थी। भारतके धनी मानी लोगोंके लड़के और विद्याप्रेमी लोग विद्याकी प्राप्तिके लिये तक्षशिला जाते थे।

उज्जैन। भारतमें विद्या और कलाओंका दूसरा केन्द्र (इसका यह अर्थ नहीं कि और केन्द्र नहीं थे) उज्जैन नगर था। यह पश्चिमी भारतका द्वार और बड़ा

नगर गिना जाता था। उज्जैन भारतका ग्रीनिच था। यहांका विश्वविद्यालय गणित और ज्योतिषके लिये विशेषरूपसे प्रसिद्ध था। वहां प्राचीन आर्य्य स्थिर और गतिमान नक्षत्रों और लोकोंका अवलोकन करते थे। ऐसा जान पड़ता है कि उन दोनों प्रान्तोंके प्रबन्धमें अशोकने इतनी योग्यताका परिचय दिया और ऐसा नाम पाया कि उसके पिताने अपने ज्येष्ठ पुत्रको अलग करके अशोकवर्धनको अपना युवराज बनाया।

भाई बहनोंके वध-की झूठी कथा। अशोकके विषयमें एक यह कथा प्रसिद्ध है कि उसने अपने निन्नानवे बहन-भाइयोंका वध किया। विंसेंट स्मिथ इस कथाको सर्वथा असत्य और कल्पित बताता है। दूसरे किसी इतिहास-लेखकने भी इसपर विश्वास नहीं किया। वरन् इस बातका प्रमाण मौजूद है कि उसके राजत्वकालके सत्रहवें या अठारहवें वर्षमें उसके भाई बहन जीवित थे। अपने परिवारोंकी यह विशेष रूपसे सेवा और सम्मान करता था। उसके कई भाइयों और बहनोंने प्रचारके काममें भाग लिया।

अशोककी सैनिक जीतें, कलिङ्ग-विजय। अशोकने अपने शासनकालमें केवल एक ही चढ़ाई की, अर्थात उसने कलिङ्ग देशको जीतकर अपने राज्यमें मिला लिया। इस अभियानमें मृत्यु और विपत्तिके जो दृश्य उसने देखे, उन्होंने उसके हृदयके भीतरी भावोंपर ऐसा प्रभाव डाला कि उसने भविष्यमें धावा करनेके विरुद्ध शपथ ले ली। कहा जाता है कि कलिङ्गकी चढ़ाईमें एक लाख मनुष्य मारे गये, डेढ़ लाख पकड़े गये और इनसे कई गुना दुर्भिक्ष और महामारीके शिकार हुए। यह दृश्य देखकर और उसके वृत्तान्त सुनकर अशोकके हृदयपर भारी चोट लगी, और उसने अपनी शेष सारी आयुको

पश्चात्ताप तथा धर्म-प्रचारमें व्यतीत किया। उसने अपने कर्मचारियोंके नाम जो आज्ञायें कलिङ्गकी प्रजापर प्रेम और कोमलतासे शासन करनेके सम्बन्धमें निकालीं वे भी उसके हार्दिक भावोंका प्रकाश करती हैं।

अशोक और अकबर। महाराजा अशोकके टक्करका कोई दूसरा राजा संसारके इतिहासमें नहीं हुआ। कुछ ऐतिहासिक उसकी तुलना अकबर, शार्लेमेन और सीज़रसे करते हैं। परन्तु यह तुलना ठीक नहीं। शायद संसारके इतिहासमें कोई दूसरा ऐसा शासक नहीं हुआ जिसने अपने शासनमें ऐसे उत्तम नियमोंके अनुसार कार्य किया हो जैसे कि अशोकने किया। जिस प्रकार महात्मा बुद्ध संसारके महात्माओंमें अद्वितीय हैं वैसे ही महाराज अशोक संसारके शासकोंमें अनुपम हैं।

बौद्ध-धर्मकी दीक्षा। ऐसा प्रतीत होता है कि सिंहासनपर बैठनेके समय अशोक बौद्ध-धर्मका अनुयायी न था और उस समय बुद्ध-धर्म भारतमें भली भांति प्रतिष्ठित भी नहीं हुआ था। इसमें सन्देह नहीं कि बौद्ध और जैन प्रचारकोंने ब्राह्मणोंकी शिक्षाके विरुद्ध बहुत कुछ अप्रसन्नता फैल दी थी। परन्तु सर्वसाधारणमें अभी इन धर्मोंकी जड़ पक्की न हुई थी। महाराज अशोकने अपनी सारी शक्ति और प्रभाव बौद्ध-धर्मके प्रचारमें लगाया। इसका फल यह हुआ कि पश्चिमी एशियाके कुछ भागको छोड़कर शेष सारे एशियामें बुद्ध-धर्म फैल गया।

शासनके विषयों-की घोषणा। अपने शासनके सत्रहवें या अठारहवें वर्षमें उसने अपनी शासन-प्रणालीकी घोषणा की और अपने कर्मचारियों और अधीनस्थोंके

लिये भी सविस्तर आदेश जारी किये। अशोकका नाम उन शिलालेखोंके लिये विशेषरूपसे प्रसिद्ध है जो उसने अपने राज्यके प्रत्येक कोनेमें फैलाये और जो कई जगह चटानोंपर और कई जगह स्तम्भोंपर लिखे हुए मौजूद हैं। उनमेंसे एक शिलालेखमें यह लिखा है:—

वास्तविक विजय। "वास्तविक विजय यह है जो मनुष्य अपने ऊपर धर्म्म-बलसे प्राप्त करता है।" उसने अपने उत्तराधिकारियोंको आदेश दिया कि वे खड्गके बलसे देशोंको जीतनेका विचार छोड़ दें और यह न समझें कि खड्गके बलसे विजय प्राप्त करना राजाओंका धर्म है। परन्तु यदि उन्हें विवश होकर युद्ध करना पड़े तो भी वे धैर्य्य और सहिष्णुताको हाथसे न दें और यह स्मरण रखें कि वास्तविक विजय वही है जो धर्मसे की जाती है।

महाराज अशोकके शिला-लेख। महाराज अशोकके शिलालेख आठ प्रकारके हैं:—

१—चट्टानोंके छोटे शिला-लेख जो अधिक सम्भव है कि सन् २५७ ई० पू० से आरम्भ हुए। इनकी संख्या दो है।

२—भाब्रूका शिलालेख। यह लगभग उसी वर्षका है जिसका कि संख्या पहलीका।

३—चौदह पहाड़ी शिला-लेख। इसके सात भिन्न भिन्न पाठ हैं और ये सम्राटके समयके तेरहवें या चौदहवें वर्षके हैं।

४—कलिङ्गके दो शिलालेख। जो लगभग सन २५६ ई० पू० में अङ्कित कराये गये। ये विजित प्रान्तके सम्बन्धमें हैं।

५—गयाके निकट बराबरके स्थानपर तीन गुफाओंके शिलालेख।

६—दो तराईके शिलालेख। इनका काल सन् २४६ई०पू० है।

७—सात स्तम्भोंके लेख। ये छः पाठोंमें हैं और ईसाके पूर्व सन् २४३ और २४२ के हैं।

८—छोटे स्तम्भोंके शिलालेख। ये ई० पू० सन् २४० या उसके बादके हैं।

अशोक स्वयं भिक्षु रहा।

ऐसा प्रतीत होता है कि बौद्ध-धर्मकी दीक्षा लेनेके पश्चात् ढाई वर्षतक अशोक स्वयं भिक्षु रहा। यह स्मरण रखना चाहिये कि बौद्ध-धर्ममें इस बातकी आज्ञा है कि भिक्षु जिस समय चाहे फिर गृहस्थ बन सकता है। ब्रह्मामें इस समयतक यह रीति है कि प्रत्येक ब्रह्मी कुछ कालके लिये विहार (भिक्षु-आश्रम) में जाकर भिक्षुका जीवन व्यतीत करता है और वहांसे धर्म-शिक्षा ग्रहणकर फिर गृहस्थके काम काजमें लग जाता है।

बौद्ध धर्म-स्थानों की यात्रा।

सन् २४६ ई० पू० में जब अशोकको गद्दी-पर बैठे चौबीस वर्ष हो गये थे तब उसने बौद्ध तीर्थ-स्थानोंकी यात्रा की। वह राजधानी पाटलीपुत्रसे चलकर उत्तरकी ओर नैपालतक पहुंचा। मार्गमें उसने वर्त्तमान मुजफ्फरपुर और चम्पारनके जिलोंमें पांच बड़े बड़े स्तम्भ खड़े कराये। वहांसे पश्चिमकी ओर चलकर पहले उसने लुम्बिनी काननकी यात्रा की, जहां कहते हैं, महात्मा बुद्ध-का जन्म हुआ था। कथा यों है कि इस काननमें उनकी माता मायादेवीको प्रसव-वेदना हुई और यहीं वृक्षके नीचे बच्चा उत्पन्न हुआ। उस स्थानपर अशोकने एक स्तम्भ निर्माण कराया जो इस समयतक विद्यमान है।

इसके पश्चात् महाराजा अशोकने कपिलवस्तुकी यात्रा की जहां महात्मा बुद्धने अपना बाल्यकाल व्यतीत किया था। इसके

बाद वह सारनाथ,* श्रावस्ती और गयाको गया। और अन्तको कुशिनगरमें आकर उसकी यात्रा समाप्त हो गई। यहां भगवान् बुद्ध पञ्चत्वको प्राप्त हुए थे। इन सब स्थानोंमें अशोकने अपनी यात्राके स्मारक प्रतिष्ठित किये। ये स्मारक चिरकालके पीछे अब प्रगट हुए हैं। इन स्थानोंमें उसने दरिद्रों और ब्राह्मणोंमें बहुतसा धन बांटा। कई स्थानोंको सदाके लिये राजस्व मोचन कर दिया। बुद्धके शिष्योंके समाधि-मन्दिरोंके भी उसने दर्शन किये। सन् २४३ ई० पू० में या इसके लगभग जब अशोकको शासन करते तीस वर्ष हो चुके थे, उसने सात स्तम्भ लेखोंके लिये खड़े कराये। इनपर उसने अपनी पूर्व-शिक्षाकी पुनरावृत्तिकी और वे सब आज्ञायें लिखीं जो उसने धर्म और शीलके सुधारके लिये निकाली थीं। इन स्तम्भ-लेखोंमें संक्षेपसे वे नियम भी दिये हुए हैं जो पशु-वध या हिंसाका निषेध करते हैं।

अशोकके साम्राज्य-की सीमाएँ। अशोकका राज्य उत्तरमें हिमालय और हिन्दूकुश पर्वततक पहुंचता था। सारा अफगानिस्तान, बलोचिस्तान और सिन्ध उसके अधीन था। सवात और बाजौरके प्रान्त और काश्मीर तथा नैपाल भी इसके राज्यमें मिले हुए थे। काश्मीरमें उसने एक नयी राजधानी बसाई। इसका नाम श्रीनगर रक्खा। नैपालमें भी उसने पुरानी राजधानीके स्थान ललितपाटन या ललितपुर नामकी एक नवीन राजधानी बनाई। यह पटमण्डूसे ढाई मील दक्षिण-पूर्वको है। जब वह नैपाल गया तब उसके साथ उसकी पुत्री चारुमती भी थी। यह भिक्षुणी बन गई और नैपालमें रहकर धर्म-प्रचार करती रही। उसने अपने पति देवपालके

* सारनाथ (काशी) में बुद्धने पहला उपदेश किया था। श्रावस्तीमें वे बहुत दिन रहे थे और गयामें बोधिद्रुमके नीचे उन्हें पूर्ण ज्ञान प्राप्त हुआ था।

स्मारकके रूपमें देवपाटन नामका एक नगर बसाया और एक विहारकी प्रतिष्ठा की। वह अबतक उसके नामसे प्रसिद्ध है और पशुपतिनाथके उत्तरमें स्थित है। अशोक ललितपाटनको बहुत पवित्र स्थान मानता था। यहां उसने पांच बड़े बड़े स्तूप बनाये, एक नगरके मध्यमें और चार चारों किनारोंपर। ये सब भवन अबतक मौजूद हैं।

पूर्वकी ओर इसके राज्यमें सारा बङ्गाल मिला हुआ था। दक्षिणमें कलिङ्ग, आन्ध्र और शेष सारा दक्खिन, जो पूर्वी किनारेपर स्थित था, नेलोर प्रदेशसे लेकर पश्चिमी किनारेतक, कल्याणपुरी नदीतक पहुंचता था। इसके दक्षिणमें जो पाण्डय केरलपुत्र और सतियपुत्र तामिल राज्य थे वे स्वतन्त्र और स्वाधीन थे।

साम्राज्यका विभाग। उस सारे साम्राज्यको अशोकने कई भागों में विभक्त कर रक्खा था। इनमें मध्यवर्ती भागको छोड़कर चार राजप्रतिनिधि राज्य करते थे। एक राजप्रतिनिधि तक्षशिलामें रहता था दूसरा कलिङ्गके अन्तर्गत तोसलीमें, तीसरा उज्जैनमें, जिसके अधीन मालवा काठियावाड़, और गुजरात थे, और चौथेके अधीन वह सारा दक्षिणी देश था जो नर्म्मदाके दक्षिणमें है।

अशोकके भवन और उनका राजप्रासाद। अशोक संसारके उन महाराजोंमेंसे था जिन्होंने बड़े बड़े विशाल भवन बनवाये। ईसाकी पांचवीं शताब्दीके आरम्भमें जब पहला चीनी यात्री फाहियान पाटलीपुत्रमें आया तो अशोकका राजप्रासाद अभी खड़ा था। उसे देखकर फाहियानने यह मत प्रकट किया था कि उसको देवों और जिन्नोंने बनाया होगा। यह राजभवन ऐसा विशाल था

और उसके अन्दर मीनाकारी और पत्थरका काम ऐसा अद्भुत बना हुआ था कि कोई व्यक्ति यह नहीं कह सकता था कि इस कामके करनेवाले मनुष्य थ। ये सब भवन गङ्गा और सोन नदीके बीचके प्रदेशमे दबे पड़े हैं। अब उनका कोई नाम-निशान नहीं, परन्तु हालमें उनके कुछ कुछ खंडहर पृथ्वीमेंसे खोदे जा रहे हैं।

बौद्ध धर्म्मके विहार और मन्दिर। इसी प्रकार अशोकने बहुतसे विशाल बौद्ध मन्दिर और विहार बनाये। इनमें भिक्षु और भिक्षुणियोंकी एक बहुत बड़ी संख्या रहती थी। ये सब भवन नष्ट हो चुके हैं या कमसे कम इस समय प्रस्तुत नहीं। फिर भी उसके भवनोंमेंसे साँचीके स्तूप तथा दूसरे स्तम्भ और गुफाओंके भवन आदि जो कुछ भी मौजूद हैं वे अशोकके समयकी वास्तु-विद्या और उसके विचारोंकी उच्चताको प्रकट करनेके लिये पर्याप्त हैं। चूनेके जो स्तम्भ अशोकके समयमें बने उनमेंसे कुछकी ऊंचाई पचास फुट और वजन लगभग पचास टन है। गयाके निकट आजीविक सम्प्रदायके साधुओंके लिये जो गुफायें अशोकने बनाईं वे भी अद्भुत हैं। परन्तु सबसे अधिक मनोरञ्जक और सार्थक उसके वे लेख हैं जो उसने पर्वतों, चट्टानों और स्तम्भोंपर खुदवाये और जिनमें उसके जीवन तथा राजत्वकालकी घटनाओंका उल्लेख है। ये शिलालेख और स्तम्भलेख उत्तर और दक्षिणमें हिमालयसे आरम्भ होकर और पूर्व तथा पश्चिममें बङ्गालकी खाड़ीसे लेकर अरब सागरतक मिलते हैं। ये प्राकृत भाषाके भिन्न भिन्न रूपोंमें लिखे हुए हैं। केवल उत्तर-पश्चिमी सीमाके दो पहाड़ी शिलालेख खरोष्टी लिपिमें हैं। अनुमान किया जाता है कि यह लिपि पाचवीं छठी शताब्दी ईसापूर्व फारससे भारतमें लाई गई थी। यह लिपि फारसी अक्षरोंके सदृश दायेंसे बायें लिखी जाती है

शेष सब लेख प्रारम्भिक ब्राह्मी अक्षरोंमें हैं। इन्हीं अक्षरोंसे बादमें देवनागरी तथा अन्य भारतीय भाषाओंके अक्षर, जो बायेंसे दायेंको लिखे जाते हैं, निकले।

अशोककी शिक्षा। अशोकके लेखों और नियमोंका सविस्तर वर्णन करना यहां सम्भव नहीं। परन्तु उसकी शिक्षायें अधिक बल, अहिंसा और आवागवनपर है। अशोक बार बार धर्म्मकी और पवित्र जीवनकी महिमा वर्णन करता है। माता-पिता, वृद्धों और गुरुजनोंके सम्मानकी शिक्षा देता है।

अहिंसा और जीव-रक्षा। पहली आयुमें अशोक शैव धर्मका अनुयायी था। उसकी पाकशालाके लिये सहस्रों जीव मारे जाते थे। बौद्ध-धर्म्म ग्रहण करनेके पश्चात् कुछ कालतक उसके भोजनके लिये दो मोर और एक हिरण मारा जाता रहा। परन्तु सन् २५७ ई० पू० में उसने एक-दम आज्ञा दे दी कि राजकीय पाकशालाके लिये भविष्यमें कोई जीव न मारा जाय। इसके दो वर्ष पहले उसने राजकीय आखेट-का विभाग भी बन्द कर दिया था। सन् २४३ ई० पू० में उसने एक नियम प्रचलित किया, जिसके द्वारा बहुतसे जीवोंका वध करना सर्वथा बन्द कर दिया गया। जो जीव भोजनके लिये मारे जाते थे उनके सम्बन्धमें भी बहुत कुछ सीमाबन्धन लगा दिये। वर्षमें ५६ दिन किसी जीवको किसी भी कारणसे और किसी भी अवस्थामें मारनेकी आज्ञा न थी।

बड़ोंका सम्मान और छोटोंपर दया। इस नियमके द्वारा उसने प्रत्येक व्यक्तिका यह कर्त्तव्य ठहराया कि वह अपने माता-पिता और अन्य वृद्धों तथा गुरुजनोंका सम्मान करे। प्रत्येक व्यक्तिको ताकीद थी कि वह अपने अधीनस्थ लोगों, भृत्यों, दासों और अन्य जीवधारियोंके

साथ दया और अनुकंपाका व्यवहार करे। उसने लोगोंको अपने सम्बन्धियों, साधुओं और ब्राह्मणोंकी सेवाका उपदेश दिया और मित्रों और परिचितोंको उदारतापूर्वक सहायता करना उनका कर्त्तव्य ठहराया।

सत्य-प्रेम और दूसरे धर्म्मोका सम्मान। उसकी शिक्षाका तीसरा अङ्ग सच बोलना था। ये तीन प्रथम श्रेणीके धर्म्म गिने जाते हैं। उसने प्रत्येक व्यक्तिका यह भी कर्त्तव्य ठहराया कि वह दूसरोंके धर्म्म, विश्वास और उपासनाकी रीतिमें बाधक न हो और प्रत्येकके साथ सहानुभूति और प्रेमका व्यवहार करे। प्रत्येक व्यक्तिके लिये दूसरोंके धर्म्म या विश्वासके विषयमें कठोर शब्दोंके व्यवहार करनेका कड़ा निषेध था, क्योंकि उसकी सम्मतिमें सब धर्म्मोंकी शिक्षा जीवनकी आवश्यकताओंकी पवित्रता और इन्द्रियोंके दमनकी ओर ले जाती है। अशोक अपने जीवनमें सभी धर्म्मोंको सम्मानकी दृष्टिसे देखता और उनके उपदेशकों और प्रचारकोंकी सेवा करता रहा।

दान-पुण्य। अशोकने दानकी बहुत महिमा की है परन्तु सबसे बड़ा दान धर्म्मका दान बतलाया है। एक चिट्ठीमें उसने लिखा है कि अस्पताल मनुष्योंकी शरीर-रक्षाके लिये है, और मन्दिर पुण्यके लिये बनाये जाते हैं, परन्तु वास्तविक धर्म्मात्मा वे हैं जो मनुष्योंको आध्यात्मिक भोजन देते हैं।

रीतियां। अशोक अनुष्ठानोंकी परवाह न करता था। वह जीवनकी पवित्रता और दूसरोंके साथ आदर, प्रेम और उदारताके व्यवहारको ही महापदवी देता था। उसने एक स्थानपर यह भी लिखा है कि धर्म्मात्मा बननेका वास्तविक

साधन ध्यान है। मैंने बड़े बड़े नियम बना दिये हैं, परन्तु जब-तक लोग अपने मन और मस्तिष्कको वशमें करके उनके अनुसार आचरण न करें उन नियमोंसे कुछ लाभ नहीं। फिर भी उसने अपने सारे कर्मचारियों, अफसरों, कमिश्नरों और जिलेके मजिस्ट्रेटोंका यह कर्त्तव्य ठहराया था कि वे अपने दौरोंमें कभी कभी भिन्न भिन्न स्थानोंपर सभायें करके सच्चे धर्मकी शिक्षा दें। वर्षमें कुछ दिन इस कामके लिये विशेषरूपसे नियत थे।

नीतिशास्ता या सेंसर। नीतिशास्ताओंका भी एक दल उसने नियत किया था। उनके लिये विशेषरूपसे यह कर्त्तव्य ठहराया गया था कि वे जीवोंकी रक्षाके लिये कानून बनायें और गुरुजनोंके सम्मान और पूजनके लिये जो नियम बनाये गये हैं उनके अनुसार आचरण करानेमें विशेष यत्न करें। उन अफसरोंको आज्ञा थी कि सभी लोगोंपर और सभी सम्प्रदायोंपर, यहांतक कि राजपरिवारपर भी निगरानी रक्खें। स्त्रियोंपर स्त्रियां नीतिशास्ता (सेंसर) नियत की जाती थीं। निर्धन परिवारोंके पालन-पोषणका विशेष प्रबन्ध था। विधवाओं और अनाथोंके पालनके लिये भी राजकीय कोशसे सहायता मिलती थी।

पथिकोंके विश्राम और सुखका प्रबन्ध। अशोकके समयमें पथिकोंकी आवश्यकताओंका विशेष ध्यान रक्खा जाता था। उदाहरणार्थ, एक स्थानपर उसने स्वयं लिखा है कि सड़कोंपर मैंने मनुष्यों और पशुओंको शरण देनेके लिये पीपलके पेड़ लगाये हैं, जगह जगह आमोंके उपवन रोपे हैं, प्रत्येक आध कोसपर कुवें खुदवाये हैं, धर्मशालायें और सरायें बनवाई हैं और मनुष्य तथा पशुओंकी आवश्यकताके लिये असंख्य स्थानोंपर जलका प्रबन्ध किया है।

मनुष्यों और जन्तुओंके अस्पताल ।

अशोक शायद भूमण्डलमें सबसे पहला राजा हुआ है जिसने सरकारी व्ययपर न केवल अपने अधिकृत देशमें वरन् दक्षिण भारत और यूनानी एशियाके प्रान्तमें भी उदारताका नद बहाया और दूसरे देशोंमें मेडिकल मिशन भेजे।

बौद्ध-धर्म्मका प्रचार ।

महाराजा अशोकके जीवनका महान् कार्य बुद्ध धर्म्मका प्रचार था। उसने न केवल भारत-वर्षमें ही बुद्ध-धर्म्मको फैलाया वरन् पश्चिमी देशोंमें भी प्रचारक भेजे। संसारके समस्त धर्म्मोंमें बुद्ध-धर्म्म सबसे पहला मिश्नरी धर्म्म हुआ और महाराजा अशोक सबसे पहला शासक था जिसने अपनी राजकीय सम्पत्ति और प्रति-पत्तिको धर्म्म-प्रचारमें लगाया, और जिसने इस धर्म्मके प्रचारसे अपने लिये और अपने उत्तराधिकारियों और अपनी जातिके लिये किसी प्रकारका लाभ प्राप्त नहीं किया। संसारके इति-हासमें धर्म्म-प्रचारका यह उदाहरण अद्वितीय और अनुपम है। दूसरे धर्म्मोंमें धर्म्म-प्रचारके साथ देशोंको लिया गया, दूसरे धर्म्मोंके उपासना-मन्दिरोंको गिराया और लूटा गया और उनके देशोंको अपने अधिकारमें किया गया। जैसा कि अब भी लोगोंका विश्वास है कि अञ्जीलका प्रचार यूरोपीय जातियोंकी सेनाका अग्रगामी होता है। बहुधा इतिहास-लेखक अशोककी तुलना ईसाई राजा कांस्टएटाइनसे करते हैं। परन्तु कांस्टएटा-इन और अशोकके चरित्र और प्रचारकी रीतिमें बहुत अन्तर है। न्याय यह चाहता है कि अशोकको अपने ढगका एक अकेला शासक समझा जाय जिसके समान दूसरा आजतक मनुष्य-जातिने उत्पन्न नहीं किया। कांस्टएटाइनके समयमें ईसाई-धर्म्म प्रायः फैल चुका था।

वे देश जहां उसने धर्म-प्रचारक भेजे।

अशोकके बनवाये स्तम्भों आदिपर उन देशोंका उल्लेख है जहाँ महाराज अशोकने अपने धर्म-प्रचारक भेजे। अपने अधिकृत देशों तथा अपने राज्यकी सीमापर बसनेवाली जातियोंके अतिरिक्त उसने अपने धर्म-प्रचारक दक्षिणी भारतके स्वतन्त्र राज्योंमें और लङ्कामें भेजे। मिस्र, शाम, सायरीन, मकदूनिया और एप्रैसके राज्योंमें भी उसके प्रचारक पहुंचे। अर्थात् उसके धर्म-प्रचारके कामका विस्तार एशिया, अफ्रीका, और यूरोप तीनों महादेशोंमें हुआ। अधिकृत और आश्रित प्रान्तों और जातियोंमें उसने तिब्बत और हिन्दूकुशके निवासियों, हिमालयकी भिन्न भिन्न जातियों, और काबुलकी उपत्यका गान्धार और यवन आदि लोगोंमें बुद्ध-धर्मका प्रचार किया। उसने विन्ध्याचल और पश्चिमीघाटकी जंगली जातियोंमें भी इस धर्मको फैलाया। लङ्काका वृत्तान्त लिखता हुआ एक लेखक कहता है कि संसारमें सभ्यता और धर्म-प्रचारके काममें अशोकके उद्योग बहुत उच्च-कोटिके गिने जाने चाहियें। कुछ मुसलमान इतिहास-लेखक, जिनमें अलबेरूनीका नाम विशेषरूपसे उल्लेखनीय है, कहते हैं कि इसलामके आरम्भके समय सारे मध्य एशियामें बौद्ध-धर्म फैला हुआ था और ईरान, इराक अजम, रूम और शाममें बौद्ध तत्वज्ञान और बौद्ध-धर्मका गहरा प्रभाव था। ईसाई-धर्मकी शिक्षा और रीति-नीतिपर बुद्ध-धर्मका बहुत कुछ प्रभाव पड़ा। इस बातको निष्पक्ष ईसाई विद्वान् भी मानते हैं।

सिंहलमें बुद्ध-धर्मका प्रचार।

लङ्कामें उसका भाई महेन्द्र गया। उसने वहाँ जाकर वहांके राजा तिस्साको बुद्ध-धर्मकी दीक्षा दी और बुद्ध-धर्मको सारे

द्वीपमें फैला दिया। कुछ समयके पश्चात् महेन्द्रकी बहिन गयासे बड़के वृक्षकी एक शाखा ले गईं और उसको वहां स्थापित किया गया। यह वृक्ष अबतक खड़ा है। सिंहल उस समयसे अबतक बुद्ध-धर्मका अनुयायी है।

दक्खिनके राज्य। अशोकके समयमें दक्खिनमें चार राज्य थे—अर्थात् चोल, पाण्डय, केरलपुत्र, और सतियपुत्र। चोल राज्यकी राजधानी उरईयूर या पुरानी तृचनापली थी। पाण्डय राज्यकी कुलकाई थी जो अब टिनावलीके जिलेके अन्तर्गत है। केरलपुत्रके राज्यमें मालाबारका वह प्रान्त मिला हुआ था जो तुलुव देशके दक्षिणमें है। इसके अतिरिक्त चेरा राज्य भी इसीमें था। सतियपुत्र राज्यका वह प्रदेश था जिसका मध्यवर्ती स्थान मङ्गलोर नगर है। इन सब राज्योंके साथ अशोकको मित्रता थी और इन सबमें उसने भिन्न भिन्न विहार और मन्दिर बनाये थे।

ऊपर लिखा जा चुका है कि उसने अपने भाई महेन्द्रको लङ्का भेजा जिसने अपना शेष जीवन उस द्वीपमें धर्म-प्रचारमें व्यतीत किया। वहाँ अबतक उसकी पूजा होती है। महेन्द्रकी राखपर लङ्का द्वीपमें एक बड़ा अद्भुत स्तूप बना हुआ है। वह उन स्मारकोंमेंसे एक है जो लङ्काकी शोभा समझे जाते हैं*।

महावंशमें लिखा है कि महाराज अशोकने अपने प्रचारक पेगूको भी भेजे जिसका नाम उस समय स्वर्ण-भूमि था। उसने यूनानी देशोंमें बौद्ध धर्मका प्रचार किया। इसमें कुछ सन्देह

* लङ्काका दबा हुआ नगर अनुराधापुर संसारमें बुद्ध धर्मका एक उज्ज्वल स्मारक है। इसके सामने एक अङ्गरेज लेखकके शब्दोंमें रोम और यूनान बहुत तुच्छ दिख पड़ते हैं। अब भूमिको खोदकर इस नगरके विशाल भवनों आदिको प्रकाशमें लाया जा रहा है। मैंने इन खण्डहरोंको स्वयं देखा है।

नहीं कि बौद्ध-धर्म और बौद्ध रीति-नीतिका गहरा असर यूनानी तत्वज्ञानपर और ईसाई-धर्मकी शिक्षा और रीति-नीतिपर पड़ा। सभी इतिहास-लेखक इस बातपर एकमत हैं कि अशोक बड़ा धर्मात्मा और विद्वान् था और उसके वचन और कर्ममें एकता थी। उसके नामसे जो लेख प्रसिद्ध हैं वे सब उसकी लेखनीसे हैं, और वे उसके धर्म तथा पवित्रताके भावसे मुँहामुँह भरे पड़े हैं। इससे यह प्रकट होता है कि अशोक कितना परिश्रमी और उद्योगी था और किस प्रकार उसने अपना सिक्का जनताके हृदयपर बैठाया था।

कहते हैं कि अशोककी अनेक स्त्रियां थीं; परन्तु केवल दोको राजरानीका पद प्राप्त था। इनमेंसे एक चारुवाकी बड़ी धर्मात्मा थी और अशोककी आज्ञाओंमें उसकी उदारता तथा दान-पुण्यका वर्णन है।

बुढ़ापेकी अवस्थामें उसकी प्रिय रानी असंधिमित्राका देहांत हो गया। इसके पश्चात् उसने एक मानिनी युवतीसे विवाह किया। उसने राजाको धर्मके कार्यों से हटानेका बहुत व्यर्थ यत्न किया और जादू-टोने भी कराये। इस स्त्रीके विषयमें कहा जाता है कि वह अपनी सौतके पुत्र कुनालपर आसक्त हो गई। जब उस धर्मात्मा राजकुमारने उसकी बात माननेसे इन्कार कर दिया तब रानीने षड्यन्त्र रचकर तक्षशिलामें कुनालकी आंखें निकलवा दीं। जब अशोकको यह वृत्तान्त ज्ञात हुआ तब उसने न केवल भर्त्सना की वरन् रानीको जीतेजी आगमें जलवा दिया और मूल अपराधियोंको घोर दण्ड दिया।

विंसेंट स्मिथ इन दोनों ऐतिह्योंको ऐतिहासिक घटनाओंके सदृश विश्वसनीय नहीं समझता। परन्तु अशोकके उज्ज्वल नामपर एक बड़ा धब्बा है और वह यह कि उसका फौजदारी

कानून अतीव निर्दय था। मृत्यु-दण्ड भी दिया जाता था। यदि उसने अपनी रानीको जीती जलवाया तो यह बड़ा ही पाशविक कर्म्म था जो उसको शोभा नहीं देता।

ऐसा जान पड़ता है कि अशोकके समयमें शिक्षाका सर्व-साधारणमें खूब प्रचार था। क्या यह बात आश्चर्य्य और गौरव-के योग्य नहीं है कि अशोकके इकतालिस वर्षके शासन-कालमें एक भी विद्रोह नहीं हुआ। इतने बड़े विशाल साम्राज्यका इतने दीर्घकालतक बिना किसी विद्रोहके रहना इस बातका पर्याप्त प्रमाण है कि अशोकके समयमें सारी प्रजा बहुत सुखी और समृद्धिशाली थी।

धर्म्मलिपियों, प्रशस्तिओं, आज्ञाओं कानूनों और संहिताके रूपमें अशोक बहुत बड़ा साहित्य छोड़ गया है। इस साहित्यके तीन भाग किये जा सकते हैं। पहला वह जिसमें उसने राजाके धर्म्म बतलाये और अपने लिये नियम नियत किये हैं। दूसरा वह जो उसने अपने कर्म्मचारियों और आधीनस्थोंके लिये बनाये हैं। तीसरा वह जो उसने प्रजाके लिये बनाया है। परन्तु यह बात विचारणीय है कि इस सारे साहित्यमे उसने कहीं भी सामयिक राजाके प्रति प्रजाको राजभक्तिका उपदेश नही किया। उसकी सारी प्रशस्तियों और धर्म्मलिपियोंमें कही यह उल्लेख नहीं मिलता कि प्रजाको सामयिक राजाके प्रति किसी प्रकारकी भक्ति और आज्ञानुवर्तिताका प्रकाश करना चाहिये। क्या उसको कभी इस बातकी आवश्यकताका अनुभव नहीं हुआ? या वह यह समझता था कि जो राजा विशेषरूपसे अपनी राज-भक्तिका कानून बनाये वह राजा राज्य करनेके योग्य ही नहीं? कुछ भी हो, यह पहेली ऐसी है जिसका कोई स्पष्ट उत्तर हमारे पास नहीं।

अशोकके समयके साहित्य और कलापर एक अलग परिच्छेदमें विचार प्रकट किये जायँगे।

अशोकके उत्तराधिकारी। अशोकके पश्चात् उसका पुत्र दशरथ और उसके पश्चात् उसका पोता सम्प्रति और फिर इस वंशके चार और उत्तराधिकारी मगधकी राजगद्दीपर बैठे। परन्तु उनके शासन-कालमें कोई स्मरणीय घटना नहीं हुई, वरन् वंशका अधःपात हुआ।

पुराणोंके अनुसार मौर्यवंशने १३७ वर्ष राज्य किया और सन् १८५ ई०पू० में उसका अन्त हो गया।

कहा जाता है कि मौर्यवंशके स्थानीय राजा बहुत शताब्दियोंतक अधीनस्थ स्थितिमें मगधमें राज्य करते रहे। इसी वंशका एक छोटा राजा चीनी पर्यटक ह्यूनथ्साङ्गके भारतमें आनेके समय ईसाकी सातवीं शताब्दीमें जीवित था। इसी वंशके कुछ छोटे छोटे राजा ईसाकी छठी, सातवीं और आठवीं शताब्दीमें पश्चिमी प्रदेश कोंकणमें राज्य करते थे।

इसका वध करके मगधके सिंहासनको संभाला और एक नया वंश चलाया।

नवीन वंश किस प्रकार प्रतिष्ठित होते थे।

यूरोपीय इतिहास-लेखक एशियाका इतिहास लिखते समय अनेक बार घृणा और पक्षपातसे यह प्रकट करनेका यत्न करते हैं कि एशियामें नवीन वंशोंकी प्रतिष्ठा प्रायः प्रस्तुत राजाके वधसे हुआ करती है। परन्तु यह याद रखना चाहिये कि राज्य-क्रांतिकी यह रीति केवल एशियातक ही परिमित नहीं है। जब कोई राजा अन्यायपर कमर बाँध ले या प्रबन्धमें उपेक्षा दिखलाये या विलासितामें पड़ जाय तो उसका अवश्य स्वाभी परिणाम प्रजामें अशान्ति और व्याकुलता होती है। इ अशान्ति और व्याकुलतासे लाभ उठाकर कोई प्रबल सत्ता मैदान में आ जाती है और जैसा कि हेवल लिखता है, प्रायः कौंसि आव स्टेट (राजसभा) या प्रजाकी स्वीकृति या परामर्श शासनकी बागडोर अपने हाथमें लेती है। पश्चिममें भी ऐ ही होता रहा और पूर्वमें भी। वर्त्तमानकालमें जिन देशोंमें पार्ल मेंटके ढङ्गपर शासन है और जहां राजा कांस्टीट्यूशनल (वि विहित) ढंगसे शासन करते हैं जिनको प्रजाके साथ प्रत रूपसे कोई वास्ता नहीं पड़ता, वहां ऐसा नहीं हो सक हेवलके मतानुसार हिन्दू राजे महाराजे सदा प्रजाकी स्वीकृ शासन करते थे। चाहे क्रियात्मक रूपसे वे निरङ्कुश ही र जाते थे। जब कोई राजा या महाराजा अपनी निरंकुश सीमाका उल्लङ्घन कर जाता था तो प्रजा किसी प्रबल प धारी या सेनापतिको खड़ा करके राज्यक्रान्ति उत्पन्न कर थी। इस क्रांतिमें यदि राजा स्वयं सिंहासनको छोड़ना कार नहीं करता था तो वह मारा जाता था। हेवलके वि

मौर्यवंशका अन्तिम शासक भी इसी प्रकार मारा गया और पुष्यमित्रने एक नवीन वंशकी नींव डाली।*

पुष्यमित्र। इस वंशका नाम शुङ्ग था। शुङ्गवंशके राज्यके अन्तर्गत वह सारा साम्राज्य नहीं था जो महाराजा अशोकने बनाया था।

मिनैण्डरका आक्रमण। इस शासन-कालकी प्रसिद्ध घटनायें दो हैं। एक यह कि सन १५५ ई० पू० से सन् १५३ ई० पू० तकके बीच बाखतरके राजाके एक सम्बन्धी मिनैण्डरने जो मौर्यवंशकी समाप्तिपर काबुल और पञ्जाबको दबा बैठा था भारतपर आक्रमण किया। उसने काठियावाड़ और मथुरापर अधिकार करके राजपूतानेमें मध्यमिकापर चढ़ाई की और वह पाटलीपुत्रके समीप आ पहुंचा। पुष्यमित्रने उसका सामना करके उसको भगा दिया। विंसेंट स्मिथकी सम्मतिमें किसी यूरोपीय सेनापतिकी ओरसे भारतको जीतनेका यह दूसरा उद्योग था। परन्तु इसमें सफलता न हुई इसके पश्चात् सोलहवीं शताब्दीतक फिर किसी यूरोपीय शक्तिने भारतकी ओर मुंह नहीं किया।†

पुष्यमित्रके राज्यत्वकालकी दूसरी घटना उसका अश्वमेध यज्ञ है।

अश्वमेध यज्ञ। प्राचीन कालमें अश्वमेध यज्ञ करनेका अधिकार केवल चक्रवर्ती राजाओंको ही था। जो राजा बहुतसे राजाओंको अपने अधीन करके महाराजाधिराज बननेकी प्रतिज्ञा करता था वह एक सफेद घोड़ा छोड़ता

* हम वधको किसी अवस्थामें भी अच्छा नहीं समझते। परन्तु हम यह माननेके लिये तैयार नहीं कि यह विराट एशियाके देशोंका विशेष गुण हो।

† इसका सङ्केत मालकोटे नामके अभियानकी ओर है।

था। उस घोड़ेके साथ कुछ और घोड़े छोड़े जाते थे और कुछ सेना भी साथ रहती थी। जिस प्रदेशमें वह घोड़ा चला जाता था वहांके राजाको या तो लड़ना पड़ता था या अधीनता स्वीकार करनी पड़ती थी। दोनों अवस्थाओंमें राजा घोड़ेके पीछे पीछे हो लेता था। इस प्रकार जब घोड़ा और घोड़ेके साथ सेना उन प्रदेशोंमेंसे लांघकर आ जाती थी जिनको अधीन करना अभीष्ट होता था। तब घोड़ा छोड़नेवाले राजाको यह अधिकार हो जाता कि वह अश्वमेध यज्ञ करे। जितने कालतक घोड़ा फिरता रहता था ब्राह्मण लोग राजधानीमें भिन्न २ अनुष्ठान करते रहते थे। पुष्पमित्रने इसी मर्यादाके अनुसार यज्ञ किया था।

पुष्पमित्रका धर्म। अश्वमेध यज्ञ ब्राह्मणोंका चलाया हुआ अनुष्ठान है। इस कारण तथा और भी अनेक प्रमाणोंके आधारपर इतिहास-लेखकोंका यह विचार है कि पुष्पमित्रके समयमें बुद्ध-धर्मके साथ बहुत कुछ कठोरता हुई। कहा जाता है कि पुष्पमित्रने बहुतसे बौद्ध-विहार और मन्दिर जला दिये परन्तु हेवल और हाइस डेविड्ज़ दोनों इस कहानीको विश्वास्य नहीं समझते।*

पतञ्जलिका काल। भारतका प्रसिद्ध भाष्यकार पतञ्जलि जो योग-सूत्रोंका प्रणेता माना जाता है उसी समयमें हुआ है। यह वंश ११२ वर्षतक मगधमें शासन करता रहा। इसका अन्तिम राजा देवभूति जो बड़ा विलासी और दुराचारी था, दुराचारके एक षड्यन्त्रमें मारा गया।

*—हाइस डेविड्ज़ इस बातसे इनकार करता है कि भारतमें कभी बौद्धोंके विरुद्ध सकल अत्याचार किये गये। परन्तु विंसेंट स्मिथ मानता है कि थोड़ा बहुत अत्याचार अवश्य हुआ, यद्यपि भारतसे बौद्ध धर्मके उखड़ जानेका यह कारण न था।

काण्व वंश। शुङ्गवंशके पश्चात् सन् ७२ ई० पू० में वसुदेव काण्वने एक नये वंशकी नींव डाली। इस वंशने केवल ४५ वर्ष राज्य किया। इसके चार राजा हुए परन्तु उनके समयमें कोई विशेष उल्लेखनीय घटना नहीं हुई।

आन्ध्रवंश। ऐसा जान पड़ता है कि आन्ध्र राज्य यद्यपि अशोकके समयमें उसके अधीन था परन्तु उसके मरते ही वह स्वाधीन हो गया। इस राज्यका आरम्भ ईसाके ३०० वर्ष पहलेसे भी कुछ पीछे हुआ। चन्द्रगुप्तके समयमें तीस बड़े बड़े प्राचीरवाले नगर इसके अन्तर्गत थे। (इनके अतिरिक्त असंख्य गांव थे।) आन्ध्रोंकी सेनामें एक लाख प्यादे दो हज़ार सवार और एक हज़ार हाथी थे। अशोकके मरते ही इन लोगोंने अपने अधिकृत देशोंको बढ़ाना आरम्भ कर दिया और सन् २४० या २३० ई० पू०के लगभग पश्चिमी घाटपर गोदावरीके उद्‌भवके समीप नासिक नगर जो हिन्दुओंका एक बड़ा तीर्थ गिना जाता है, उनके राज्यमें मिला हुआ था।

राजा हाल। इस वंशका हाल नामक एक राजा कवि हो गया है। इस वंशका दूसरा नाम शातवाहन या शालिवाहन भी था यह वंश प्राकृत भाषाका बड़ा आश्रयदाता था।*

आन्ध्रवंशका सारा राजत्वकाल ४५६ या ४६० वर्ष वतलाया जाता है। इतने कालमें उनके तीस राजे हुए। उनका शासन सन् २२५ ई० में समाप्त हुआ। यह काल इस वंशकी नीवके आरम्भसे—जिसका समय लगभग ३०० वर्ष ई० पू० गिना जाता है। शुरू होता है। इस वंशके राजत्वकालके आरम्भके ठीक

* वर्तमान आन्ध्रदेशमें प्राकृत नहीं बोली जाती वरन् वहांकी भाषा तेलगू है।

वर्षका पता लगाना कठिन है। इस वंशने पहले पहल दक्षिणमें हिन्दू-सभ्यताको फैलाया और हिन्दू-धर्मकी रक्षा की।

दूसरा परिच्छेद

भारतकी उत्तर-पश्चिमी सीमापर इण्डोबाखतरीय और इण्डोपार्थियन राज्य।

पिछले परिच्छेदमें लिखा जा चुका है कि एशियामें यूनानी उन चार सौ वर्षोंमें जो अशोककी मृत्युसे लेकर सत्ताके अन्तिम ईसाकी तीसरी शताब्दीके आरम्भिक कालतक दिन। गिनने चाहियें भारतवर्षपर अ-भारतीय जातियोंकी ओरसे कई आक्रमण हुए। इन आक्रमणकारियोंमेंसे केवल एक, अर्थात् मिनेण्डर ही यूरोपीय वंशका सेनापति था। इसका वर्णन पिछले परिच्छेदमें किया जा चुका है।

यह भी पहले कहा जा चुका है कि सिकन्दरकी मृत्युके पश्चात् उसके अधिकृत देशोंको उसके सेनापतियोंने आपसमें बांट लिया। उसके जो अधिकृत देश एशियामें थे वे सिल्यूकस निकटोरके हिस्सेमें आये। सिल्यूकस इतिहासमें शाम-नरेशके नामसे प्रसिद्ध हुआ। यह वही मनुष्य था जिसको चन्द्रगुप्तने हराकर उसकी पुत्रीसे विवाह किया था। सन् २६२ या सन् २६१ ई० पू० में इसका पोता एण्टिओकस इसकी गद्दीपर बैठा। यह परले दरजेका व्यभिचारी, विलासी और मद्यप था। यद्यपि इसके जीवन-कालमें इसकी प्रजा परमेश्वरके सदृश इसकी पूजा

करती रही। एण्टिओकसके राजत्वकालके अन्तिम भागमें इस राज्यके दो प्रान्त—बाखतर और पार्थिया—स्वतन्त्र हो गये। ये दोनों जातियां ईसासे कोई २५० वर्ष पूर्व स्वतन्त्र हुईं।

बाखतर एशियाके उस भागका नाम है जो हिन्दूकुशके उत्तरमें स्थित है, और जिसको पर्वतोंसे निकलते हो आमू नदी उपजाऊ बनाती है। यह प्रदेश अति प्राचीन कालसे सभ्य गिना जाता था, और इसमें एक सहस्र नगर बतलाये जाते थे। यह क्षेत्र विशेष रूपसे सिकन्दरको प्रिय था। सिकन्दरने बाखतर-वालोंपर असीम दया की और उन्होंने इसके बदलेमें यूनानी सभ्यताको ग्रहण किया। इसके विपरीत पार्थिया उस प्रदेशका नाम था जो ईरानके वनोंके उत्तरमें कस्पियन समुद्रके दक्षिण-उत्तरमें स्थित है। यह प्रान्त ख़ौरज़्मरिज़्म, समरकन्द और हरात सम्राट् दाराके सोलहवें प्रान्तके अन्तर्गत था। पार्थिया-वालोंने कभी यूनानी संस्कृतिको ग्रहण नहीं किया। वे पूर्ववत् अपने जङ्गली स्वभावोंपर दृढ़ रहे। ये लोग धनुष-बाणके उपयोग और घोड़ेकी सवारीमें विशेष प्रसिद्धि रखते थे।

पार्थिया और बाखतरका विद्रोह।

बाखतर-विद्रोह इस प्रकार हुआ कि प्रांतके शासक डायोडोटसने अपनी स्वतन्त्रताकी घोषणा कर दी। पार्थियाके विद्रोहको विंसेण्ट स्मिथ राष्ट्रीय आन्दोलनका नाम देता है। इस आन्दोलनका अग्रणी एक ऐसा व्यक्ति था जिसके मूलका कुछ पता नहीं और जिसने अपनी अनुपम वीरतासे एक शासक वंशकी नींव रक्खी। यह वंश लगभग ५०० वर्षतक ईरानमें राज्य करता रहा।

भारतीय इतिहासका इन दोनों वंशोंके साथ केवल इतना ही सम्बन्ध है कि ये एक दूसरेके पीछे उत्तर-पश्चिमी भारतके

सीमा प्रान्तपर राज्य करते हुए और कुछ समयतक काबुल और यमुना नदीतक पञ्जाब उनके अधिकारमें रहा। दक्षिण-पश्चिममें भी उनके राजप्रतिनिधियोंने पश्चिम किनारेपर उज्जैनकी सीमातक अधिकार रक्खा। इनमेंसे कुछ गवर्नर केवल नाममात्र ही बाख्तर और पार्थियाके अधीन थे, और क्रियात्मक रूपसे स्वतन्त्र थे। इनमेंसे बहुतोंने बौद्ध-धर्म या हिन्दू-धर्मको ग्रहण किया और भारतीय सभ्यताके सामने सिर झुकाया। मिनैण्डरके विषयमें बौद्ध-साहित्यमें एक प्रसिद्ध पुस्तक है। उसका नाम "मिलिन्दके प्रश्न" है। बौद्धोंने मिनैंडरको मिलिन्द लिखा है।

यूनानी सभ्यताका भारतपर कुछ प्रभाव नहीं हुआ।

विंसेंट स्मिथ और हैवल दोनों इस बातमें एक मत हैं कि यद्यपि एशियामें* यूनानियोंका चिरकालतक भारतकी उत्तर-पश्चिमी सीमापर अधिकार रहा और कुछ कालतक उनका राजनीतिक प्रभाव उत्तर भारतमें मथुराकी सीमातक और दक्षिण-पश्चिमी भारतमें उज्जैनकी सीमातक विस्तृत हो गया, तथापि यूनानी सभ्यताका कोई प्रभाव भारतीय सभ्यतापर नहीं हुआ। भारतीयोंने न यूनानकी सभ्यता सीखी, न उनकी राजनीतिक संस्थायें ग्रहण कीं, और न उनकी कलाओंका प्रचार किया।

भारतीय सभ्यतामें यूनानी सभ्यतासे कोई चिह्न नहीं है। वास्तुविद्यापर यूनानी सभ्यताका जो हलका सा असर ऐतिहासिक मानते हैं, वह भी उत्तर-पश्चिमी सीमातक ही परि-

* अर्थात् बाख्तरके लोग। इन लोगोंको तत्कालीन इतिहासमें यूनानी व एशियाके यूनानी कहा गया है, जैसे आजकल भारतीयोंको ब्रिटिश या ब्रिटिश इण्डियन कहा जाता है।

मित रहा। वास्तविक भारतमें इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। इसके विपरीत इस बातके असंख्य प्रमाण मौजूद हैं कि बौद्ध धर्मका चिरस्थायी प्रभाव सारे पश्चिमी एशिया तथा मिस्रपर हुआ। ईरान, तूरान, रूम, शाम, अजम और मिस्र, यहांतक कि यूनानतक यह प्रभाव पहुंचा, और जैसा कि पहले लिखा जा चुका है। ईसाई-धर्मकी रीति नीतिपर भी इसका यथेष्ट असर पड़ा।

यूनानी और भारतीय तत्त्वज्ञानके कुछ सिद्धान्त सामान्य हैं और बौद्ध तथा ईसाई रीति-नीतिमें भी किसी कदर सादृश्य है, इससे कुछ यूरोपीय लेखक अति शीघ्रतासे यह परिणाम निकालते हैं कि इन सिद्धान्तोंको भारतने यूनानसे सीखा और बौद्ध-धर्मने इस रीति-नीतिको ईसाई-धर्मसे ग्रहण किया। परन्तु सत्य बात तो यह है कि भारतका तत्त्वज्ञान यूनानमें अधिक प्राचीन है और बौद्ध-धर्म उस समय अपनी उन्नतिके उच्चतम शिखरतक पहुंच चुका था जब कि ईसाई-धर्मने जन्म लिया।

कुछ लोगोंकी यह धारणा है कि ईसाई धर्म प्रचारक सेण्ट टामस उस समय भारतमें आया और राजा गोण्डोफेनसके शासन-कालमें—जो सन् २० ई० से सन् ८४ ई० तक कन्धार, काबुल और तक्षशिलामें राज्य करता था—उसके देशमें उपदेश करता रहा और वहीं वीरगतिको प्राप्त हुआ। परन्तु यह कथा विश्वास्य नहीं समझी जाती क्योंकि अधिकतर विश्वास्य वृत्तांत यह है कि सेण्ट टामस पहले पहल दक्षिणमें आये और वहींपर उन्होंने ईसाई-धर्मका प्रचार किया। यह बात भी विश्वास्यरूपसे प्रमाणित नहीं समझी जाती कि सेण्ट टामस शहीद हुए थे।

तीसरा परिच्छेद
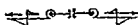
शक और यूएची जातियोंके आक्रमण।

शक। ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ तातारी जातियाँ जो इतिहासमें शक और यूएचीके नामसे प्रसिद्ध हैं, ईसाके पूर्व दूसरी शताब्दीके लगभग चीनके उत्तर-पश्चिमी भागसे उठकर दक्षिणमें फैल गयीं।

शक पहले आकर जेहूं नदीके समीप और तिब्बतमें बसे। उन्होंने बाखतर राज्यको नष्ट कर डाला। इनके पीछे ईसाके पूर्व सन् १७४ या सन् १६० के लगभग यूएची चीनके उत्तर-पश्चिमसे निकले और उन्होंने शकोंसे उनके अधिकृत देश छीन लिये। ये शक लोग काबुलमें और भारतकी सीमापर आकर बस गये। फिर कुछ काल पीछे कुछ और असिरवासी जातियां निकलीं और उन्होंने यूएची लोगोंको उनके अधिकृत देशोंसे भगाकर आप बाखतरकी भूमियोंपर अधिकार कर लिया।

यूएची लोगोंका प्रथम राजा। ईसाकी पहली शताब्दीके लगभग सन् १५ ई० में यूएची लोगोंने अपने अधिकृत देशोंको इकठ्ठा करके एक राज्यकी स्थापना की। उनके पहले राजाका नाम केडफेसस प्रथम था। कहते हैं उसका राजतिलक सन् १५ ई० में हुआ था। इस राजाने काश्मीर और काबुलपर अधिकार किया और पश्चिममें पार्थियोंको परास्त करके एक राज्यकी स्थापना की जो ईरानकी सीमासे लेकर सिन्धु

नदीतक फैला हुआ था और जिसके अन्तर्गत अफगानिस्तान और बुखारा थे। इस जातिने अन्तको पंजाबमें और सिन्धु नदीकी उपत्यकामें इण्डो-पार्थियन सत्ताकी समाप्ति कर दी।

दूसरा राजा। इस वंशका दूसरा राजा सन् ४५ ई० में राजगद्दीपर बैठा। इसका नाम कैडफेसस द्वितीय था। यह सम्भव है कि उसने पञ्जावको जीता हो और वह बनारसतक पहुंच गया हो। उसके राजत्वकालमें चीन साम्राज्यने रोमन साम्राज्यकी सीमातक समस्त प्रदेशको जीतकर अपने राज्यमें मिलाया था।

तीसरा राजा कनिष्क। दूसरे कैडफेससने सन् ७८ ई० तक राज्य किया। उसके मरनेपर उसका पुत्र कनिष्क गद्दीपर बैठा। तत्कालीन इतिहासमें यह एक नामी शासक हुआ है। कहते हैं सन् ९० ई० में कनिष्कने चीन सम्राटसे एक राजकुमारी मांगी। इसको चीनके सेनापति पांचाऊने एक धृष्टताका कर्म समझकर कनिष्कको बड़ी भारी हार दी और उसे चीन-राज्यको कर देनेपर विवश किया।

बौद्ध धर्मके प्रचारके लिये कनिष्कके उद्योग। बौद्ध धर्मके प्रचारमें कनिष्कके उद्योग अशोककी टक्करके समझे जाते हैं और उसका नाम तिब्बत, चीन और मङ्गोलियामें सर्वसाधारणकी जिह्वापर है। भारतमें कनिष्क का राज्य मथुरातक फैला हुआ था। उत्तरमें काश्मीर भी इसीके अधीन था। इसके सिक्के अफगानिस्तान, पञ्जाब और सीमान्त प्रदेशमें बड़ी प्रचुरतासे मिलते हैं। कनिष्ककी राजधानी पुरुषपुर थी जिसको अब पेशावर कहते हैं। यहाँ उसने बुद्ध-धर्म ग्रहण करनेके पश्चात् महात्मा बुद्धकी स्मृतिमें एक बड़ी लाट बनाई। इसमें लकड़ीकी ऊपरी इमारत तीन मंजिलोंमें

चार सौ फुटतक थी। उसके ऊपर लोहेका एक बड़ा शिखर लगा हुआ था। कनिष्कने ताशकन्द, यारकन्द और खुतनको जीता। इन विजयोंके द्वारा चीनको कर देनेसे उसे छुटकारा मिला। कनिष्कके राजत्वकालकी बड़ी प्रसिद्ध घटना बुद्ध-धर्मकी दूसरी सभा है। इस सभाने स्थायीरूपसे बौद्धोंके दो सम्प्रदाय कर दिये। यह सभा काश्मीरमें हुई। उन दो सम्प्रदायोंके नाम हीनयान और महायान थे।

बुद्ध-धर्मकी दो सम्प्रदायोंमें बांट।

बुद्ध-धर्म वास्तवमें वैदिक-धर्मकी सन्तान था। यद्यपि महात्मा बुद्धने ईश्वरके विषयमें कोई शिक्षा नहीं दी और वेदोंका भगवद्वाणी होना स्वीकार नहीं किया, परन्तु अपनी शिक्षाके शेष सब सिद्धान्तोंमें उसने प्राचीन वैदिक ऋषियोंकी शिक्षाको ही पुनर्जीवित किया। यही उनकी प्रतिज्ञा थी। इसी प्रतिज्ञाको महाराज अशोकने अपने लेखोंमें दुहराया है।

बुद्ध-धर्मकी शिक्षाका सारांश कर्म्म, आवागवन और निर्वाणकी शिक्षा थी। महात्मा बुद्ध अनुष्ठानोंके मुकाबलेमें शुभ विचारपर जोर देते थे और इससे मनुष्यका कल्याण मानते थे। बुद्धके कालमें वैदिक धर्म्ममें मूर्त्तिपूजा नहीं मिली थी। हां, कर्म्म-काण्ड बहुत बढ़ गया था। यह विश्वास करनेके लिये कारण है कि प्रकृतिकी शक्तिके नाना रूपोंको आर्य्य लोग देवी देवताके रूपमें मानते थे। कुछ आर्य्य-पुस्तकोंमें यह लिखा है कि स्वयं देवता लोग यज्ञके समय यज्ञासनपर आकर विराजमान होते थे और यज्ञोंमें सम्मिलित होते थे। सम्भव है यह कथन अलङ्कार-रूपमें हो। महात्मा बुद्धके समयमें ब्रह्मा, विष्णु और शिवकी पूजा जारी हो चुकी थी। यह पूजा अधिकतर मानसिक थी, क्योंकि न मन्दिर थे और न मूर्त्तियां थीं।

महाराज अशोकके समयतक बुद्ध-धर्मकी शिक्षा किसी अंशतक शुद्ध रही। परन्तु मिलावट तो इसमें महात्मा बुद्धकी मृत्युके पश्चात् ही आरम्भ हो गई थी। महात्मा बुद्धने युक्ति और तर्कसे अपने सिद्धान्तोंको सिद्ध किया। परन्तु उनकी मृत्युके पश्चात् उनके अनुयायियोंने तर्क और युक्तिका परित्याग करके केवल महात्माजीका शब्द प्रमाण ही पर्याप्त समझा। अशोकके समयतक बौद्ध लोगोंमें इतने मत-भेद हो गये थे कि महाराजा अशोकको बौद्ध भिक्षुओंकी एक सभा करके मत-भेदोंको दूर करनेकी आवश्यकताका अनुभव हुआ। अशोकके समयके जो बौद्ध-मन्दिर, मठ, विहार, स्तम्भ और स्तूप बने हुए हैं उनमें कहीं बुद्धकी मूर्त्ति नहीं है। हाँ, दरवाजों, दीवारों और स्तम्भों-पर हिन्दू देवी-देवताओंकी मूर्त्तियाँ अवश्य बनी हुई हैं। इनको बौद्ध लोगोंने लगभग पूर्णतया मौलिक या परिवर्तित नामोंसे अपने धर्ममें ले लिया था। उस समयतक न तो आर्योंने परमात्माकी और न बौद्धोंने भगवान् बुद्धकी कोई मूर्त्ति बनाई थी।

ईसासे एक सौ वर्षके लगभग गान्धारके समीप जो बौद्ध-मठ बनाये गये उनमें पत्थरकी बनी हुई बुद्धकी मूर्त्ति रक्खी गई। कनिष्कके समयतक बौद्ध-धर्म एशियाकी पश्चिमी सीमाको पार करके मिस्र और दक्षिण यूनानतक पहुंच गया था, और समस्त मध्य और पश्चिमी एशियामें प्रचलित था। एशियाका पश्चिमी प्रदेश रोमन साम्राज्यमें मिला हुआ था। प्राचीन यूनानी और प्राचीन रोमवाले सब मूर्त्तिपूजक थे। वे देवी-देवताओंको भी मानते थे। यूनान, रोमन साम्राज्य और मिस्रमें देवताओंके बड़े विशाल मन्दिर थे। मूर्त्तियोंके बनाने, प्रतिमाओंके गढ़ने और मन्दिरोंके निर्माणमें यूनानी शिल्पी जगत्-प्रसिद्ध थे। बाखतरमें यूनानी सभ्यताका राज्य था। जब यहांके राजा-

ओंने काबुल, काश्मीर और पञ्जाबको अपने अधिकारमें किया तो उनके साथ साथ बाख़तरके कारीगर भी अवश्य इस सारे प्रदेशके बड़े बड़े नगरोंमें आये। उन्होंने हिन्दू-तत्त्वज्ञानको अपने यूनानी विचारोंका वेष पहना दिया; और महात्मा बुद्धकी मूर्त्तियां योग-समाधिकी अवस्थामें या खड़े होकर प्रचार करनेकी अवस्थामें बनाकर प्रचारित कर दीं।

हेवलकी सम्मति है कि भारतीय कारीगरोंने यूनानियोंसे कोई नयी कला नहीं सीखी, वरन् यूनानी कारीगरोंने अपने धार्मिक भावोंको भारतीय कलामें परिणत कर दिया।

हेवलका विचार है कि हिन्दू-देवताओंकी कल्पना भी उस समयमें पर्याप्तरूपसे बढ़ चुकी थी। इसका यथेष्ट प्रमाण हिन्दुओंकी वास्तुविद्यासे मिलता है। शिल्प-शास्त्रमें नगर और गांव बसानेके जो नियम दिये गये हैं उनमें प्रत्येक दिशाका जुदा देवता बतलाया गया है। जहां गांवके मध्यमें राजभवनके मैदानमें राजाके इष्ट देवताका मन्दिर बनाया जाता था, वहां गांवकी भिन्न भिन्न दिशाओंमें बाकी जातियोंके देवताओंके मन्दिर बनानेकी आज्ञा थी, चाहे ये सब देवी-देवता अद्वितीय परमेश्वरके भिन्न भिन्न रूप ही माने जाते थे, और उसी एकका भिन्न भिन्न रूपोंमें पूजन करना अभीष्ट था।

हेवल यह भी कहता है कि किस प्रकार आर्योंने एकमें तीनकी कल्पनाको भिन्न भिन्न रूपोंमें बढ़ाया, अर्थात् वे।

(क) तीन बार सन्ध्या करते थे।

(ख) वे तीन वेद मानते थे।

(ग) वे तीन लोक बतलाते थे।

(घ) तीन मार्ग ठहराते थे, अर्थात् ज्ञान-मार्ग, भक्ति-मार्ग और कर्म-मार्ग।

(ङ) सृष्टिकी तीन शक्तियाँ ब्रह्मा, विष्णु और शिव मानते थे।

(च) तीन गुण, अर्थात् सत्य, रज और तम कहते थे।

(छ) आत्माकी तीन अवस्थाएँ ठहराते थे, अर्थात् सत्, चित और आनन्द।

इसी प्रकार बौद्धोंने उसके मुकाबलेमें त्रिरत्न अर्थात् बुद्ध, संघ और धर्म्म बनाये और धीरे धीरे इन त्रिमूर्त्तिमें बुद्धको परमात्मा अर्थात् ब्रह्माका, संघको विष्णुका और धर्म्मको शिवका स्थान मिल गया।

चिरकालतक बौद्ध-धर्म्मके अनुयायी और दार्शनिक इस प्रकारके परिवर्त्तनका विरोध करते रहे परन्तु सर्वसाधारण बुद्धदेवकी उच्च नैतिक और आध्यात्मिक शिक्षापर अपना ध्यान एकाग्र करनेके अयोग्य थे। अतएव जिस प्रकार ब्राह्मणोंने परमात्माकी पूजाकी जगह सर्वसाधारणके लिये देवी देवताओंका प्रचार किया उसी प्रकार बौद्ध लोगोंने भी असंख्य देवी देवता बना लिये। जब बौद्ध-धर्म्म भारतसे बाहर फैला तो उन प्रदेशोंके कुछ धार्मिक देवी देवता भी बौद्ध-देवमालामें जोड़ दिये गये। इसको क्रियात्मक रूप देनेके लिये यूनानी और रोमन देवी देवताओंकी तरह बुद्धदेव तथा भिन्न भिन्न बोधिसत्वोंकी मूर्त्तियां बनने लगीं। मूर्त्तियां और मन्दिर बनानेका विचार पश्चिमसे और मूर्त्तियोंको समाधि अवस्थामें बैठानेका विचार हिन्दू योग-दर्शनसे लिया गया। इस प्रकार बौद्ध धर्म्मके दो सम्प्रदाय हो गये, अर्थात् एक हीनयान और दूसरा महायान। मूर्त्तिके विना पूजन करनेवाला मूल सम्प्रदाय हीनयान कहलाने लगा और दूसरा सम्प्रदाय जिसने मूर्त्तियां स्थापित की महायान कहलाया।

महाराजा अशोक हीनयानका आश्रयदाता था। महाराजा कनिष्क महायानका अनुयायी था। महायान-सिद्धान्तका बड़ा

प्रचारक नागार्जुन था जिसको बुद्ध-धर्मका ल्यूथर भी कहा जाता है, यद्यपि हमारी सम्मतिमें यह उपमा सर्वथा निरर्थक है। नागार्जुनने बौद्ध-धर्मको अपनी वास्तविकतासे गिराकर उसमें मूर्त्ति-पूजन घुसेड़ दिया। ल्यूथरने ईसाई-धर्ममेंसे प्रतिमा-पूजन निकाल दिया। दूसरी ओर यह युक्ति दी जाती है कि आरम्भमें बौद्ध-धर्म उन विशेष लोगोंके लिये था जो साधनोंसे ध्यान करनेकी शक्ति उत्पन्न कर लेते थे। परन्तु नागार्जुनने बौद्ध-धर्ममें भक्तिको मिलाकर उसको लोकप्रिय बनाया।

विंसेंट स्मिथकी सम्मतिमें बौद्धोंका महायान-सम्प्रदाय हिन्दू, बौद्ध, ईरानी, रोमन और यूनानी प्रभावोंको एक खिचड़ी थी। यह बात कनिष्कके सिक्कोंसे पाई जाती है। उनपर इन सब जातियोंके देवताओंकी मूर्त्तियां अङ्कित हैं। इन प्रभावोंने एक मृत गुरुको एक सजीव परित्राताके रूपमें परिणत कर दिया।

रोम और भारतका व्यापार। अति प्राचीनकालसे भारतका व्यापार पाश्चात्यजगत्‌के साथ था। स्मरण रहे कि उस समयका सभ्य पाश्चात्यजगत् एशियासे बाहर केवल मिस्र, यूनान और इटलीतक परिमित था। उस समयका (एशियासे बाहर) सारा ज्ञात संसार रोमन, साम्राज्यके अन्तर्गत था। अतएव रोमन, साम्राज्य और मिस्रके साथ व्यापार मानो समस्त जगत्‌के साथ व्यापार था। यह व्यापार अधिकांशमें दक्षिण भारतके साथ था। वहांसे रोमन लोगोंके लिये मिर्च मसाला, नाना प्रकारके बहुमूल्य पत्थर, उत्कृष्ट वस्त्र, हीरे और जवाहरात एक बहुत बड़ी राशिमें जाते थे। भारतकी कमख्वाब, जरबफ्त और मलमलोंकी यूरोपीय बाजारोंमें प्रचुर मांग थी और उनका मूल्य भी खूब मिलता था। भारतके इत्र भी यूरोपको प्रचुरतासे जाते थे। यूरोपके एक राजनीतिज्ञ

पिलनीने इस बातकी शिकायत की है कि रूम अपने व्यसनको पूरा करनेके लिये प्रति वर्ष प्रचुर धन भारतको भेजता है। इस व्यापारकी मालियत लगभग १५ करोड रुपयोंकी थी। विलासिताकी इस सामग्रीके अतिरिक्त भारतके सिंह, चीते और हाथी भी रूमके दरबारोंमें बहुत मूल्य पाते थे।

कनिष्क। कनिष्क विद्याव्यसनी था और उसने बहुतसी इमारतें बनवाईं। तक्षशिलाके निकट जो राजधानी उसने बनाई वह अभीतक सरसुख टीलाके नीचे दबी पड़ी है और धीरे धीरे निकल रही है। कनिष्कने यमुनाके किनारे मथुराके निकट भी बहुत सी इमारतें बनवाईं। मथुराके पास कनिष्ककी एक अतीव सुन्दर मूर्त्ति निकली है। इस मूर्त्तिका सिर नहीं है।

विंसेंट स्मिथकी सम्मतिमें उन कारणोंके होते हुए भी जो कुशन वंशके शासन-कालमें विद्यमान थे और जिनका उल्लेख ऊपर हो चुका है, भारतपर यूनानी या रोमन सभ्यताका प्रभाव बहुत ही थोड़ा या नाममात्र था। बौद्ध धर्म्मपर अवश्य कुछ प्रभाव हुआ परन्तु ब्राह्मणिक धर्म्म और जैन-धर्म्मपर उनका बिलकुल असर नहीं हुआ। यूनानी भाषा कभी भारतमें लोकप्रिय नहीं हुई। भारतकी स्थापत्य, आलेख्य और तक्षण विद्यापर भी यह प्रभाव बहुत ही परिमित था। भारतीयकला अपने नियमों और नीवोंमें भारतीय ही रही।

आयुर्वेदका प्रसिद्ध विद्वान् चरक भी कनिष्कके समयमें हुआ। वह कनिष्कका राज्य वैद्य था। साहित्यमें कनिष्कके नामके साथ अश्वघोष, नागार्जुन और वसुमित्रके नाम जुड़े हुए हैं।

बौद्धोंकी दूसरी महासभा।

यह सभा काश्मीरमें कुण्डलवन मठमें हुई। इस मठके निकट कनिष्क प्रायः अपनी राजसभा किया करता था। बौद्धोंकी इस दूसरी महासभामें पांच सौ भिक्षु सम्मिलित हुए। उन्होंने बौद्ध-धर्म और उसकी रीति-नीतिकी बहुत सी व्याख्यायें लिखीं। इनमेंसे सबसे प्रसिद्ध महा-विभाषा है। यह बौद्धोंके कानूनका एक अतीव प्रामाणिक भाण्डार समझा जाता है। सभाने सिद्धान्तोंके विषयमें जो व्यवस्थायें दीं वे तांबेके टुकड़ों पर अङ्कित करके एक बड़े भारी स्तूपके नीचे दबाई गईं। यह स्तूप कनिष्कने श्रीनगरके निकट बनाया था। परन्तु इसका अबतक पता नहीं चला।

तक्षशिला एक एशियाई विश्वविद्यालय।

कनिष्कके समयमें तक्षशिलामें भारी रौनक थी, क्योंकि लगभग सारे सभ्यसंसारके विद्यार्थी वहां बौद्ध-धर्मकी शिक्षाके लिये आते थे। पूर्वमें चीनसे और पश्चिममें एशियाई कोचकसे और तातार तथा तुर्किस्तानसे वहां विद्या-व्यसनी लोग आते थे।

कनिष्कके उत्तराधिकारी।

कनिष्कके तीन उत्तराधिकारी हुविष्क, वशिष्क और वसुदेव हुए। हुविष्कने काश्मीरमें बारामूलाके पास हुष्कपुर नामसे एक नयी राजधानी निर्माण की और उसके समीप कतिपय मठ बनाये जो चीनी पर्यटक ह्यू न-साङ्गके पर्यटनके समय मौजूद थे। कुछ लोगोंका विचार है कि हुविष्कने गयाके बोधि-वृक्षके सामने बनी हुई समाधिके स्थान एक नयी समाधि भी बनवाई। वसुदेव स्पष्टतया

आर्य्य नाम है, परन्तु इससे यह परिणाम नहीं निकाला जा सकता कि वसुदेव बौद्ध न थे *।

वसुदेवका लगभग सन् २२० ई० में देहान्त हुआ और उससे अगले वर्ष ईरानमें सासानी राज्यकी नींव पड़ी।

दाक्षिणके राज्य। इस बीचमें दक्षिणमें पाण्ड्य, चोल और केरलवंश बड़ी शानसे राज्य करते रहे, और वे बहुत धनाढ्य और समृद्धिशाली हो गये। पाण्ड्य राज्यमें वह प्रदेश था जो इस समय मदुरा और तिनेवलीमें है। केरल वह प्रदेश था जिसमें आजकल मालाबार, कोचीन और ट्रावङ्कोर हैं। चोल वंशका सारे कारोमण्डल तटपर अधिकार था।

* स्मिथकी रायमें वसुदेव हिन्दू हो गया था।

सातवां खराड ।
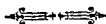
गुप्तवंशका शासन-काल

पहला परिच्छेद ।

गुप्त वंशका राज्य विस्तार ।

सन् २२० ई० या सन् २२५ ई० से लेकर सन् ३२० ई० तक जो शताब्दी बीती उसके विषयमें ऐतिहासिकोंको यथेष्ट ज्ञान नहीं। सम्भवतः इसका कारण यह प्रतीत होता है कि यह काल अपेक्षाकृत शान्तिका था। कुशन और आंध्रवंशोंके राज्योंके अतिरिक्त शेष भारत सम्भवतः छोटे छोटे राज्योंमें विभक्त हो चुका था। ये राज्य अपने अपने स्थानमें शान्तिपूर्वक रहते थे। इनमेंसे किसीको एक बड़ा साम्राज्य बनानेका विचार नहीं हुआ। परंतु सन् ३२० ई० में एक नवीन राजनीतिक शक्ति भारतमें प्रकट हुई, जिसने एक बार फिर समस्त भारतको एक पताकाके नीचे इकठ्ठा किया, और एक ऐसी केन्द्रिक राज्य-संस्थाकी स्थापना की जिसकी सत्ता अनेक शताब्दियोंतक बनी रही। उसके राजत्वकालमें भारतने न केवल उच्चकोटिकी, राजनीतिक प्रतिः

पत्ति और वैभव ही प्राप्त किया वरन् कला-कौशल और विद्यामें ऐसी उन्नति की जो आजतक हिन्दुओंके लिये गौरवका कारण है। इस कालका नाम गुप्तवंशका राजत्वकाल है। यह हिन्दू-इतिहासमें स्वर्णीय समय कहा जाता है।

गुप्तवंशका पहला राजा प्रथम चन्द्रगुप्त।

ऐसा प्रतीत होता है कि सन् ३०८ ई०के लगभग पाटलीपुत्र लिच्छवि जातिके अधीन था। यह जाति मौर्यवंशके उत्कर्षके पूर्व एक बड़ी प्रतिष्ठित जाति गिनी जाती थी। चन्द्रगुप्तने लिच्छवि वंशकी राजकुमारी कुमारदेवीसे विवाह करके पाटलीपुत्रपर अधिकार किया। इसके सिक्कोंमें उसका अपना चित्र है, कुमारदेवीका चित्र है और लिच्छवि जातिका भी उल्लेख है। यह राजा गुप्तवंशका प्रवर्तक हुआ। यह विवाह लगभग सन् ३०८ ई० में हुआ। इस राजाने अपना संवत् चलाया जो २६ फरवरी सन् ३२० ई० से आरम्भ होता है। सम्भवतः इस तिथिको चन्द्रगुप्तका राजतिलक हुआ। इस राजाका नाम पहला चन्द्रगुप्त रक्खा गया है। इसीने सबसे पहले गङ्गाकी उपत्यकाके प्रदेशको प्रयागतक अपने अधीन किया। दक्षिणविहार, अवध, तिर्हुत और उसके निकटवर्ती जिले उसके राज्यके अन्तर्भूत थे।

प्रथम चन्द्रगुप्तने अपने राजतिलकके अनन्तर दस या पन्द्रह वर्षतक राज्य किया और लिच्छवि रानीके पुत्र समुद्रगुप्तको अपना उत्तराधिकारी बनाया।

समुद्रगुप्त, हिन्दू-नेपोलियन।

हिन्दू राजाओंमें समुद्रगुप्त अतीव यशस्वी और बहुत योग्य शासक हुआ है। उसको यूरोपीय इतिहास-लेखक भारतीय नेपोलियनकी उपाधि देते हैं, क्योंकि इस राजाने

प्रायः समस्त भारतको नये सिरेसे विजय करके अपने राज्य-में मिलाया। ठेठ भारतको उसके पिताने विजय करना आरम्भ कर दिया था। समुद्रगुप्तने इन विजयोंको पूर्ण करके सारे प्रदेश-को केन्द्रिक राज्यके अधीन कर दिया और तत्पश्चात् वह दक्षिणकी ओर चला। निरन्तर युद्ध करके दो वर्षके भीतर उसने छोटा नागपुरसे होते हुए पहले महानदीको उपत्यकामें, दक्षिणी कोसला राज्यको विजय किया। तत्पश्चात् उसने जंगली प्रदेशके समस्त राज्योंको जो वर्त्तमानकालके उड़ीसा और मध्यप्रदेशमें स्थित हैं, जीता। इनमेंसे एकके राजाका नाम व्याघ्रराज था। इन विजयोंके पश्चात् और भी दक्षिणकी ओर बढ़कर उसने गोदावरीके प्रदेशमें कलिंगकी प्राचीन राजधानी पिष्टपुर, जिसको अब पठापुरम् कहते हैं, और महेन्द्रगिरि तथा कुट्टरके पार्वत्य प्रदेशोंको विजित किया। ये दुर्ग अब गञ्जम प्रदेशमें हैं। उसने कोलेरू झीलके प्रदेश और गोदावरी तथा कृष्णाके बीच वेङ्गी राज्यको परास्त किया। लगभग सारा दक्षिणी भारत उसने जीता। फिर वहांसे वह पश्चिमकी ओर मुड़ा और नेलोरके जिलेमें पालकनरेश उग्रसेनको हराकर दक्षिणके पश्चिमी भागोंमेंसे लाँघता और देवराष्ट्र तथा खान नरेशके प्रदेशोंको जीतता हुआ अपने घर वापस आ पहुंचा।

राज्यको सीमा। ऐसा प्रतीत होता है कि इन प्रदेशोंको उसने अपने राज्यमें नहीं मिलाया वरन् उन-को पराजित करके अपना करद बनाया। पूर्वकी ओर गङ्गा और ब्रह्मपुत्रका त्रिकोण द्वीप (जिसके अन्तर्गत वह स्थान था जहां अब कलकत्ता स्थित है) दवाक (जो अब बोगरा, दीनाज-पुर और राजशाहीके जिलोंमें बंटा हुआ है) और कामरूप अर्थात् आसाम केन्द्रिक शासनके अधीन थे। पश्चिममें नेपाल एक

करद राज्य था। पश्चिमी हिमालयमें कर्तृपुर (कमाऊँ, अलमोडा, गढवाल और कांगड़ेका प्रान्त), पञ्जाव, पूर्वी राजपूताना और मालवा सम्भवतः स्वतन्त्र राज्य थे, जैसी कि सिकन्दरके आक्रमणके समय दशा थी। इस आक्रमणके समय मेलोई और कथोई जातियोंका पञ्जावमें प्रजासत्तात्मक राज्य था। इसी प्रकार पश्चिमकी ओर गोयालम्प कैन्द्रिक साम्राज्यकी सीमा थी। पूर्वी राजपूताना और मालवामें अर्जुनाइन, मालवी, और आभीर स्वतन्त्र जातिया थीं।' इस ओर चंवल नदी कैन्द्रिक राज्यकी सीमा थी। नर्मदातकका प्रदेश दक्षिणी 'सीमा थी। अर्थात् चौथी शताब्दीके मध्यमें कैन्द्रिक साम्राज्यमें जो सीधे तौरपर चन्द्रगुप्तके अधीन था, उत्तरी भारतका सारा वसा हुआ और उपजाऊ प्रदेश मिला हुआ था। यह पूर्वमें हुगली नदीसे आरम्भ होकर पश्चिममें यमुना और चंवलतक फैला हुआ था। यह उत्तरमें हिमालयके अञ्चलसे लेकर दक्षिणमें नर्मदातक पहुंचता था। परन्तु वास्तविक साम्राज्य आसामसे लेकर पञ्जावकी पश्चिमी सीमातक और नैपालसे लेकर कुमारी अन्तरीपसे कुछ ऊपरतक जाता था। इन प्रदेशोंमें जो राजा राज्य करते थे अथवा जो स्वतन्त्र जातियाँ प्रजातन्त्र प्रबन्धके अधीन थीं वे समुद्रगुप्तकी अधीनता स्वीकार करती थीं और उनमेंसे बहुतसी कर देती थीं।

विदेशी राज्योंके साथ सम्बन्ध। भारतकी सीमाके बाहर समुद्रगुप्तके सम्बन्ध पश्चिममें गान्धार, काबुल, तातार और तुर्किस्तानके राजाओंके साथ और दक्षिणमें लंका तथा अन्य द्वीपोंके साथ थे।

लङ्कासे राजदूत। सन् ३६० ई० के लगभग बौद्ध राजा श्रीमेघवर्णने समुद्रगुप्तके दरबारमें एक दूतसमूह

भेजा। उसका उद्देश्य यह था कि लङ्काके बौद्ध-यात्रियोंके सुभीते तथा विश्रामके लिये बुद्ध-गयाके समीप उनको एक मठ बनानेकी आज्ञा दी जाय। इस आज्ञाके मिलनेपर लंका-नरेशने एक बहुत विशाल भवन तैयार कराया। यह ऊंचाईमें तीन मञ्जिला था। इसमें छः बड़े बड़े कमरे थे, और तीन बुर्ज थे। इसके आंगनकी दीवारें तीस या चालीस फुट ऊँची थीं। इस भवनकी सजावटमें बहुत परिश्रम और प्रचुर धन व्यय किया गया और बड़ा शिल्प-कौशल दिखलाया गया था। बुद्धकी मूर्ति सोने और चांदीमें ढालकर उसमें हीरे और जवाहरात जड़े गये। उसके समीप जो स्तूप बनाये गये उनमें महात्मा बुद्धके पवित्र स्मृतिचिह्न दबाये गये थे। वे भी बहुत शानदार थे। सातवीं शताब्दीमें जब चीनी पर्यटक ह्यूनसांग भारत आया तब इस विशाल भवनमें एक सहस्र भिक्षु रहते थे।

अश्वमेध यज्ञ। समुद्रगुप्तने अपनी महत्तायुक्त विजयोंकी स्मृतिमें अश्वमेध यज्ञ किया और एक नया सिक्का चलाया।

समुद्रगुप्तकी व्यक्तिगत योग्यतायें। समुद्रगुप्त न केवल एक बड़ा भारी सेनानी और सेनानायक था वरन् वह साहित्य और कलामें भी असाधारण योग्यता रखता था। उसका नाम भारतके कृतविद्य कवियोंमें गिना जाता है। इसके अतिरिक्त उसे संगीतविद्यापर बड़ा प्रेम था और वह वीणा बजानेमें विशेष रूपसे निपुण था।

समुद्रगुप्त अकबरके सदृश बड़ा विद्याव्यसनी था। यद्यपि वह आप पक्का हिन्दू था परन्तु अन्य धर्मोंके नेताओंके साथ बड़ी उदारता और विशालहृदयताका बर्ताव करता था। प्रसिद्ध

बौद्ध-ग्रन्थकार वसुबन्धुके साथ उसके सम्बन्ध बहुत ही अच्छे थे।

समुद्रगुप्तके देहान्तकी ठीक तिथि अभीतक निरूपित नहीं हुई। अनुमान किया जाता है कि उसने पचास वर्षतक राज्य किया।

द्वितीय चन्द्रगुप्त जिसको विक्रमादित्य भी कहते हैं।

भारतमें राजा विक्रमादित्यका नाम बड़े सम्मान और प्रेमसे लिया जाता है। विक्रमी सम्वत् उन्हींके नामसे प्रचलित है। दन्तकथा है कि विक्रमादित्य उज्जैनके राजा थे। उन्होंने शक लोगोंको हरा कर ईसासे ५७ वर्ष पूर्व अपना सम्वत् प्रचलित किया। जो इतिहास इस समयतक अंगरेज ऐतिहासिकोंने लिखा है उसमें विक्रमादित्यका उल्लेख नहीं परन्तु कुछ ऐतिह्य जो विक्रमादित्यके नामके साथ सम्बद्ध हैं वे गुप्तवंशके तीसरे राजा चन्द्रगुप्त विक्रमादित्यके राजत्वकालसे सम्बन्ध रखते हैं। उदाहरणार्थ, अकबरके सदृश विक्रमके दरबारके नवरत्न प्रसिद्ध हैं। अनुमान किया जाता है कि कालिदास भी इन नौ रत्नोंमेंसे था वह इसी राजाके कालमें हुआ।

चन्द्रगुप्त विक्रमादित्यकी जीतें।

चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य समुद्रगुप्तका ज्येष्ठ पुत्र न था। वह निर्वाचन द्वारा युवराज बनाया गया था। वह लगभग सन् ३७५ ई०में गद्दीपर बैठा। इस राजाने मालवा, गुजरात और काठियावाड़को जीतकर अपने राज्यमें मिला लिया। ये प्रदेश चिरकालसे शक जातिके सरदारोंके अधीन चले आते थे। उन्होंने ईसाकी पहली शताब्दीमें अपना अधिकार जमाया था। इन शक जातीय शासकोंको एक—

वार सन् १२६ ई० के लगभग आन्ध्रवंशके राजाओंने पराजित किया था, परन्तु बादमें वे फिर स्वतन्त्र हो गये थे।

रुद्रसिंहका वध

चन्द्रगुप्त द्वितीयने उनके अन्तिम शासक रुद्रसिंहका वध किया। उसके विषयमें लोककथा है कि वह परले दर्जेका दुराचारी था, और जिस समय उसका वध हुआ उस समय वह एक परपुरुषकी स्त्रीके लहँगेमें छिपा हुआ था। यह घटना सन् ३८८ ई० या सन् ३६५ ई० के लगभगकी बताई जाती है। चन्द्रगुप्त द्वितीयने सन् ४१३ ई० तक राज किया। इतिहास-लेखक उसकी योग्यता और शक्तिका साक्ष्य देते हैं।

पश्चिमके साथ व्यापार।

उज्जैन प्राचीन कालसे ही एक बड़ा व्यापारिक केन्द्र था। प्राचीन कालसे पश्चिम तटके अगणित बन्दरगाहोंके साथ उसका सम्बन्ध था। यहांका सारा सामुद्रिक व्यापार पश्चिमके साथ होता था। इसके अतिरिक्त उज्जैन कलाओं और विद्याओंका भी केन्द्र था। यहांसे घूमनेवाले नक्षत्रों तथा स्थिर तारोंकी परीक्षा होती थी। उज्जैनके चन्द्रगुप्तके राज्यमें सम्मिलित हो जानेसे उसका राज्य बहुत मालामाल हो गया।

पहला चीनी पर्यटक फाहियान।

पहला चीनी पर्यटक फाहियान चन्द्रगुप्त द्वितीयके शासनकालमें भारतमें आया और सन् ४०५ ई०से लेकर सन् ४११ ई० तक इस देशके भिन्न भिन्न भागोंमें फिरता रहा। इस पर्यटकको सारी यात्रामें पन्द्रह वर्ष लगे। उस समयके जो वृत्तान्त उसने लिखे हैं। उनसे गुप्त-कालके भारतका बहुत अच्छा चित्र मिलता है। फाहियानके समयमें राजधानी पाटलीपुत्रमें न थी, क्योंकि ... ने पाटलीपुत्रको छोड़कर अयोध्याको अपनी राजधानी

बनाया था। परन्तु फिर भी विक्रमादित्यके शासनकालमें पाटलीपुत्र अभी बहुत जनाकीर्ण और सुन्दर नगर था। जब फाहियानने पहली बार पाटलीपुत्रके दर्शन किये तो वह महाराज अशोकके राजभवनोंको देखकर ऐसा विस्मित हुआ कि उसके लिये यह विश्वास करना असम्भव हो गया कि ये राजप्रासाद मनुष्योंके बनाये हुए हैं। उस समय एक स्तूपके निकट दो मठ थे। इनमेंसे एकमें महायान सम्प्रदायके और दूसरेमें हीनयान सम्प्रदायके भिक्षु रहते थे। यह स्थान अपनी विद्या और गौरवके लिये ऐसा प्रसिद्ध था कि चारों ओरसे विद्यार्थी वहां आते थे। फाहियान पश्चिमी चीनसे होता हुआ गोबी मरुस्थलके दक्षिणसे लाँघकर खुतनके रास्तेसे भारतमें पहुंचा। खुतनकी प्रजा महायान सम्प्रदायके बौद्ध धर्मको मानती थी। पामीरके प्रदेशको बड़ी कठिनाइयोंसे पार करके वह सवातसे होता हुआ पेशावर और तक्षशिला पहुंचा। उसने पाटलीपुत्रमें तीन वर्ष व्यतीत किये और इसके बाद वह दो वर्ष बङ्गालके अन्तर्गत मिदनापुर जिलेके तमलूक नगरमें रहा। उन दिनों तमलूकका नाम ताम्रलिप्ति था और यह एक बड़ा बन्दरगाह था।

कहते हैं फाहियानने पुस्तकोंकी खोजके लिये यात्रा की थी। उसने अपनी पुस्तकमें राजनीतिक घटनाओंका बहुत थोड़ा उल्लेख किया है। फिर भी उसके भ्रमण वृत्तान्तमें तत्कालीन सभ्यताका जो कुछ वर्णन मिलता है उससे भारतकी पर्याप्त बातें मालूम हो जाती हैं। फाहियानके कथनोंसे प्रतीत होता है कि मगधमें बड़े बड़े नगर थे। लोग बड़े धनाढ्य और सुखी थे। दानशील संस्थायें अगणित थीं। पथिकोंके लिये सभी सड़कों-पर सरायें और धर्मशालायें बनी हुई थीं और पाटलीपुत्रमें एक

उस समयका राज्यप्रबन्ध।

उस समयके राज प्रबन्ध और शासन-पद्धतिके विषयमें भी फाहियानने अत्युत्तम सम्मति दी है। वह लिखता है कि राज्य जनताकी बातोंमें बहुत कम हस्तक्षेप करता है। जिसका जी चाहे आये, जिसका जो चाहे जाये, कोई रुकावट या निषेध नहीं है। [चन्द्रगुप्तके समयमें अनुज्ञापत्र (पासपोर्ट) का रिवाज था।] प्रायः अपराधोंके बदलेमें जुर्माना देना पड़ता है। मृत्युदण्ड किसीको नहीं दिया जाता और न किसी व्यक्तिको साक्ष्यके लिये या अपराध-प्रकाशनके लिये पीड़ित किया जाता है।

ऐसा प्रतीत होता है कि इस विषयमें गुप्तवंश पराकाष्ठाको पहुंच चुका था। जिस बातका धब्बा सम्राट् अशोक जैसे कोमल-हृदय, दयावान, और लोकप्रिय शासकपर रह गया था, उसको गुप्त राजाओंने दूर कर दिया। जो राज्य प्रजाकी बातोंमें बहुत अधिक हस्तक्षेप करता है वह कभी भी लोकप्रिय नहीं हो सकता। लोगोंको दीर्घ कालोंके लिये कैद करना और मृत्युदण्ड देना, यह भी सभ्यताका चिह्न नहीं। इस दृष्टिसे गुप्त राजाओंका शासन-काल भारतमें सबसे उत्तम और अनुकरणीय काल हो चुका है और इस कोमलताके होते हुए भी देशका प्रबन्ध अत्युत्तम था क्योंकि चीनी पर्यटक सड़कों और मार्गोंकी बड़ी प्रशंसा करता है। वह डाकुओं और लुटेरोंका उल्लेखतक नहीं करता। वह केवल एक ही ऐसे दण्डका उल्लेख करता है जो हमें पाशविक प्रतीत होता है, अर्थात् जो लोग बार बार राज-विद्रोह या लूट मारके अपराधी ठहराये जाते थे उनका दायां हाथ काट दिया जाता था। राजकीय आय अधिकतर सरकारी भूमियोंकी उपजसे होती थी और राजकर्मचारियोंको नियत वेतन मिलता था।

ऐसा अस्पताल था जहां न केवल चिकित्सा और औषध ही मुफ्त मिलती थी वरन् भोजन और अन्य आवश्यक वस्तुएं भी विना मूल्य दी जाती थीं*।

फाहियानने पाटलीपुत्रमें तीन वर्ष रहकर संस्कृत पढ़ी और बौद्ध-धर्मकी पुस्तकोंका अध्ययन किया। सिन्ध नदीसे लेकर मथुरा पर्यन्त वह स्थान स्थानपर बौद्ध मठोंको लाँघकर पाटलिपुत्र पहुंचा। इन मठोंमें सहस्रोंकी संख्यामें भिक्षु रहते थे। स्वयं मथुरामें बीस इस प्रकारकी संस्थायें थीं जिनमें तीन सहस्र भिक्षु रहते थे। फाहियान लिखता है कि "समस्त देशमें कोई मनुष्य किसी जीवको नहीं मारता। न कोई मदिरा पीता है, न प्यांज या लहसन खाता है, न सूअर या कुक्कुट रखता है। भारतके लोग पशु नहीं बेचते। न मण्डोके पास बूचड़ोंकी दूकानें हैं न शराब-खाने हैं। चाण्डाल लोग नगरसे बाहर रहते हैं। उनको नगरमें प्रवेश करते समय एक प्रकारसे सूचना देनी पड़ती है, ताकि लोग उनको छूकर अपवित्र न हो जायं†।"

---

* कहते हैं कि यूरोपका सबसे पुराना अस्पताल पेरिसमें था। वह सातवीं शताब्दीमें बना था। पर सर हेनरी ब्रडवुडकी सम्मति है कि कांस्टण्टाइनके शासनकाल तक यूरोपमें रोगियोंकी चिकित्साके लिये कोई प्रबन्ध न था। कांस्टण्टाइनका काल सन् ३०६ या सन् ३०७ ई० है।

† ऐसा प्रतीत होता है कि वर्तमान छुतछात पहले पहल इसी रीतिसे प्रचलित हुई। यद्यपि आर्य रीति-नीतिके अनुसार भी चाण्डाल लोग नगर और ग्रामसे बाहर रहा करते थे परंतु इसके पहले उल्लेख नहीं मिलता कि उनके स्पर्शसे लोग अपवित्र हो जाते थे। सम्भवतः बौद्ध-कालमें जब कि शिकारी, कसाई और चाण्डाल सबके सब एक ही दृष्टिसे देखे जाने लगे, यह प्रथा अधिक दृढ़ता-पूर्वक स्थापित हो गई और लोग इस प्रकारके लोगोंको अतीव घृणाकी दृष्टिसे देखने लगे। यहांतक कि जब वे नगरमें प्रवेश करते तो कदाचित् ढोल बजाकर लोगोंको सूचित किया जाता था।

उस समयका राज्यप्रबन्ध।

उस समयके राज-प्रबन्ध, और शासन-पद्धतिके विषयमें भी फाहियानने अत्युत्तम सम्मति दी है। वह लिखता है कि राज्य जनताकी बातोंमें बहुत कम हस्तक्षेप करता है। जिसका जी चाहे आये, जिसका जो चाहे जाये, कोई रुकावट या निषेध नहीं है। [चन्द्रगुप्तके समयमें अनुज्ञापत्र (पासपोर्ट) का रिवाज था।] प्रायः अपराधोंके बदलेमें जुर्माना देना पड़ता है। मृत्युदण्ड किसीको नहीं दिया जाता और न किसी व्यक्तिको साक्ष्यके लिये या अपराध-प्रकाशनके लिये पीड़ित किया जाता है।

ऐसा प्रतीत होता है कि इस विषयमें गुप्तवंश पराकाष्ठाको पहुंच चुका था। जिस बातका धब्बा सम्राट् अशोक जैसे कोमल-हृदय, दयावान, और लोकप्रिय शासकपर रह गया था, उसको गुप्त राजाओंने दूर कर दिया। जो राज्य प्रजाकी बातोंमें बहुत अधिक हस्तक्षेप करता है वह कभी भी लोकप्रिय नहीं हो सकता। लोगोंको दीर्घ कालोंके लिये कैद करना और मृत्युदण्ड देना, यह भी सभ्यताका चिह्न नहीं। इस दृष्टिसे गुप्त राजाओंका शासन-काल भारतमें सबसे उत्तम और अनुकरणीय काल हो चुका है और इस कोमलताके होते हुए भी देशका प्रबन्ध अत्युत्तम था क्योंकि चीनी पर्यटक सड़कों और मार्गोंकी बड़ी प्रशंसा करता है। वह डाकुओं और लुटेरोंका उल्लेख तक नहीं करता। वह केवल एक ही ऐसे दण्डका उल्लेख करता है जो हमें पाशविक प्रतीत होता है, अर्थात् जो लोग बार बार राज-विद्रोह या लूट मारके अपराधी ठहराये जाते थे उनका दायां हाथ काट दिया जाता था। राजकीय आय अधिकतर सरकारी भूमियोंकी उपजसे होती थी और राजकर्मचारियोंको नियत वेतन मिलता था।

एक बड़ा भारी मीनार* बनाया। उसके ऊपर विष्णुकी मूर्त्ति स्थापित की और अपनी चढ़ाईका वृत्तान्त अङ्कित कराया।

स्कन्दगुप्तने पश्चिमी प्रान्तोंका प्रबन्ध जिनमें काठियावाड़ भी था अपने एक राजप्रतिनिधिके सिपुर्द किया था।

विंसेंट स्मिथ लिखता है कि उसके समयमें गोरखपुर जिलेके पूर्व पटनेसे ६० मीलके अन्तरपर एक जैनने एक चित्रित स्तम्भ खड़ा किया और बुलन्दशहरके जिलेमें एक धर्मात्मा ब्राह्मणने गङ्गा और यमुनाके बीचके प्रदेशमें सूर्यका एक मन्दिर बनाया। इससे प्रतीत होता है कि स्कन्दगुप्तके समयमें राज्यकी सीमाओंमें कोई न्यूनता नहीं हुई। सन् ४०५ के लगभग गृहहीन घूमनेवाली हूण जातियोंका एक और ताजा दल अपने प्रदेशसे नीचे उतरा और उसने गान्धारपर अधिकार कर लिया। सन् ४०७ ई० के लगभग हूणोंने स्कन्दगुप्तपर आक्रमण किया। इस वार स्कन्दगुप्त उन्हें परास्त न कर सका। सन् ४८० ई० में स्कन्दगुप्तका भाई पुरुगुप्त राजगद्दीपर बैठा।

पुरुगुप्त। स्कन्दगुप्तके समयमें स्वर्णमुद्रामें जो मिलावट हो गई थी उसको पुरुगुप्तने निकलवाकर शुद्ध बना दिया।

सन् ४८५ ई०में उसका बेटा नरसिंहगुप्त बालादित्य गद्दीपर बैठा। इसने उत्तरभारतमें बौद्धोंके प्रसिद्ध विश्वविद्यालय नालन्दमें एक ईंटका मन्दिर बनवाया। यह तीन सौ फुट ऊंचा था और इसमें सोना, हीरे और जवाहरात प्रचुरतासे जड़े गये थे।

नरसिंहगुप्त बालादित्यके पश्चात् उसका पुत्र कुमारगुप्त

* यह स्तंभ गाजीपुरके जिलेमें अबतक खड़ा है, यद्यपि विष्णुकी मूर्ति अब मौजूद नहीं है।

फाहियानने किसी स्थलपर धार्मिक अत्याचारकी शिकायत नहीं की। गुप्तवंशके राजा प्रायः सबके सब हिन्दू-धर्म्मानुयायी थे। सम्भवतः पौराणिक हिन्दू-धर्म्म उनके समयमें अस्तित्वमें आया। परन्तु इतना होनेपर भी राज्य बौद्धों और जैनोंकी पूरी तरहसे रक्षा करता था। उनको न केवल अपने धर्मके प्रचारमें पूर्ण स्वतन्त्रता थी वरन् सरकारी सहायता भी मिलती थी। भिक्षुओंको मकान, चारपाइयां, बिछौने, भोजन और वस्त्र बहुतायतसे दिये जाते थे। इससे जान पड़ता है कि ये हिन्दू राजा पक्षपात और धर्मान्धतासे सर्वथा रहित थे।

फाहियान मूर्त्तियोंके उन बड़े बड़े जुलूसोंका बड़ी प्रशंसाके साथ वर्णन करता है जो दूसरे मासके आठवें दिन निकाले जाते थे और जिनके साथ गाने बजानेवाले होते थे। सम्भवतः ये मूर्त्तियां बौद्ध-धर्म्मकी थीं।

पहला कुमारगुप्त। सन् ४१३ ई०में विक्रमादित्यका पुत्र पहला कुमारगुप्त सिंहासनपर बैठा। इस राजाने भी अश्वमेधयज्ञ किया। इससे जान पड़ता है कि उसके राज्यके विस्तारमें कोई कमी नहीं हुई। कुमारगुप्त सन् ४५५ ई० में मर गया और उसके पीछे इस राज्यका अधः पतन आरम्भ हो गया।

स्कन्दगुप्त। जिस समय कुमारगुप्तका पुत्र स्कन्दगुप्त सन् ४५५ ई० में सिंहासनपर बैठा उस समय राज्य बहुतसी कठिनाइयोंमें फंसा हुआ था। यद्यपि वह पुष्यमित्रको पराजित कर चुका था परन्तु उत्तर पश्चिमी दर्रोंसे एक और शत्रु आ प्रकट हुआ। असभ्य हूण लोग मध्य एशियाके मैदानोंसे चलकर भारतमें लूट मार मचाने लगे। स्कन्दगुप्तने उनको एक भारी हार दी और अपनी विजयके स्मारकके रूपमें

एक बड़ा भारी मीनार* बनाया। उसके ऊपर विष्णुकी मूर्त्ति स्थापित की और अपनी चढ़ाईका वृत्तान्त अङ्कित कराया।

स्कन्दगुप्तने पश्चिमी प्रान्तोंका प्रबन्ध जिनमें काठियावाड़ भी था अपने एक राजप्रतिनिधिके सिपुर्द किया था।

विंसेंट स्मिथ लिखता है कि उसके समयमें गोरखपुर जिलेके पूर्व पटनेसे ६० मीलके अन्तरपर एक जैनने एक चित्रित स्तम्भ खड़ा किया और बुलन्दशहरके जिलेमें एक धर्मात्मा ब्राह्मणने गङ्गा और यमुनाके बीचके प्रदेशमें सूर्यका एक मन्दिर बनाया। इससे प्रतीत होता है कि स्कन्दगुप्तके समयमें राज्यकी सीमाओंमें कोई न्यूनता नहीं हुई। सन् ४०५ के लगभग गृहहीन घूमनेवाली हूण जातियोंका एक और ताजा दल अपने प्रदेशसे नीचे उतरा और उसने गान्धारपर अधिकार कर लिया। सन् ४०७ ई० के लगभग हूणोंने स्कन्दगुप्तपर आक्रमण किया। इस बार स्कन्दगुप्त उन्हें परास्त न कर सका। सन् ४८० ई० में स्कन्दगुप्तका भाई पुरुगुप्त राजगद्दीपर बैठा।

पुरुगुप्त। स्कन्दगुप्तके समयमें स्वर्णमुद्रामें जो मिलावट हो गई थी उसको पुरुगुप्तने निकलवाकर शुद्ध बना दिया।

सन् ४८५ ई०में उसका बेटा नरसिंहगुप्त बालादित्य गद्दीपर बैठा। इसने उत्तरभारतमें बौद्धोंके प्रसिद्ध विश्वविद्यालय नालन्दमें एक ईंटका मन्दिर बनवाया। यह तीन सौ फुट ऊंचा था और इसमें सोना, हीरे और जवाहरात प्रचुरतासे जड़े गये थे।

नरसिंहगुप्त बालादित्यके पश्चात् उसका पुत्र कुमारगुप्त

* यह स्तम्भ गाजीपुरके जिलेमें भितरी खड़ा है, यद्यपि विष्णुकी मूर्ति अब मौजूद नहीं है।

द्वितीय सिंहासनपर बैठा। इसके राजत्वकालका बहुत कम वृत्तान्त ज्ञात है। बालादित्य ५२५ ई०में सिंहासनपर बैठा और छठी शताब्दीके मध्यमें इस वंशके साम्राज्यका अन्त हो गया।

दूसरा परिच्छेद

गुप्त राजाओंके कालमें हिन्दू-साहित्य और कलाकी उन्नति।

यह बात मानी हुई है कि गुप्त राजाओंका शासनकाल भारतके इतिहासमें साहित्य, विज्ञान और कलाके लिये बहुत प्रसिद्ध हो गया है। एक विद्वान् यूरोपीय लेखक लिखता है कि हिन्दुओंके इतिहासमें यह काल यूनानके इतिहासमें पेरीक्लीज़के कालके समान था।

धर्म्म।

हम ऊपर कह आये हैं कि इस वंशके राजा ब्राह्मणोंके धर्म्मके अनुयायी थे, परन्तु बौद्ध-धर्म्मके साथ उनको कोई शत्रुता न थी। वे बौद्ध भिक्षुओंके साथ बहुत अच्छा बर्ताव करते थे। इस बीचमें बौद्ध-धर्म्ममें भी बहुतसे परिवर्त्तन उत्पन्न हो गये थे। ऐसा प्रतीत होता है कि ब्राह्मणोंने बौद्ध-धर्म्मके सभी लोकप्रिय सिद्धान्तोंको अपने धर्म्मका अङ्ग बना लिया था और बुद्धको विष्णुका अवतार मान लिया था। न तो बौद्धोंके समयमें हिन्दू या जैन-धर्म्मका नाश हुआ और न हिन्दू-धर्म्मके उत्कर्षपर हिन्दुओंने बौद्धोंके साथ कोई शत्रुता की। हिन्दू-धर्म्मको धीरे धीरे बौद्ध राजाओंने भी ग्रहण कर लिया। कुशान जातिके राजा द्वितीय कडफाइसेसने अपने सिक्कोंपर शिव और

न्द्रोकी मूर्त्ति अंकित कराई और महाराज कनिष्कके पोते वसु-
वने विधिपूर्वक विष्णु-पूजन ग्रहण किया। इसी प्रकार गुप्त
राजा भी वैष्णव थे।

शिव-पूजाके चिह्न अजन्ताके मन्दिरोंमें भी मिलते हैं। इसका
वर्णन आगे किया जायगा। परन्तु जिस रीतिसे ब्राह्मणोंने बौद्ध-
धर्म्मके सिद्धान्तोंको अपने धर्म्मका अङ्ग बना लिया उससे बौद्ध-
धर्म्मके अलग अस्तित्वका नष्ट हो जाना अवश्यम्भावी था।

संस्कृत-साहित्य। अतएव बौद्धधर्म्म जितना जितना नीचे गिरता गया और उसकी प्रतिपत्ति
कम होती गई उतना उतना ही पाली और प्राकृतिके स्थानमें
संस्कृतका उत्कर्ष होता गया, यहाँतक कि गुप्तकालमें
संस्कृत-भाषा ही धर्म्म और गद्य-पद्यकी भाषा हो गई। इसी
भाषामें कानूनकी पुस्तकें लिखी गईं। इसी भाषामें उपाख्यानों
और काव्योंकी रचना हुई और यही विद्वानोंकी भाषा हो गई।
गुप्तकालके सिक्के भी इसी भाषामें हैं।

कालिदास भारतका कविकुल-गुरु माना जाता है। उसका
पद अंगरेज कवि शेक्सपीयरसे कम नहीं। यह कालिदास भी
गुप्तकालमें हुआ। कालिदासकी रचनायें इस समय भी संस्कृतमें
अपनी सुन्दरता, उच्चविचार और मार्जित भाषाकी दृष्टिसे
अद्वितीय गिनी जाती हैं। शकुन्तला नाटकको पढ़कर जर्मनीका
प्रसिद्ध कवि गेटे आनन्दोन्मादमें विलीन हो गया था। उसने
इस नाटककी बड़ी प्रशंसा की है। कालिदासकी जन्म-भूमिके
विषयमें बड़ा विवाद चल रहा है। स्मिथ कहता है कि वह
मालवाके मन्दासूरका निवासी था। परन्तु अब बहुतसे बङ्गाली
विद्वान् उसका जन्म-स्थान बङ्गालमें बतलाते हैं। कालिदासकी
रचनाओंके अतिरिक्त मुद्राराक्षस और मृच्छकटिक भी उसी

नन्दीकी मूर्त्ति अंकित कराई और महाराज कनिष्कके पोते वसुदेवने विधिपूर्वक विष्णु-पूजन ग्रहण किया। इसी प्रकार गुप्त राजा भी वैष्णव थे।

शिव-पूजाके चिह्न अजन्ताके मन्दिरोंमें भी मिलते हैं। इसका वर्णन आगे किया जायगा। परन्तु जिस रीतिसे ब्राह्मणोंने बौद्ध-धर्मके सिद्धान्तोंको अपने धर्मका अङ्ग बना लिया उससे बौद्ध-धर्मके अलग अस्तित्वका नष्ट हो जाना अवश्यम्भावी था।

संस्कृत साहित्य।

अतएव बौद्धधर्म जितना जितना नीचे गिरता गया और उसकी प्रतिपत्ति कम होती गई उतना उतना ही पाली और प्राकृतिके स्थानमें संस्कृतका उत्कर्ष होता गया, यहाँतक कि गुप्तकालमें संस्कृत-भाषा ही धर्म और गद्य-पद्यकी भाषा हो गई। इसी भाषामें कानूनकी पुस्तकें लिखी गईं। इसी भाषामें उपाख्यानों और काव्योंकी रचना हुई और यही विद्वानोंकी भाषा हो गई। गुप्तकालके सिक्के भी इसी भाषामें हैं।

कालिदास भारतका कविकुल-गुरु माना जाता है। उसका पद अंगरेज कवि शेक्सपीयरसे कम नहीं। यह कालिदास भी गुप्तकालमें हुआ। कालिदासकी रचनायें इस समय भी संस्कृतमें अपनी सुन्दरता, उच्चविचार और मार्जित भाषाकी दृष्टिसे अद्वितीय गिनी जाती हैं। शकुन्तला नाटकको पढ़कर जर्मनीका प्रसिद्ध कवि गेटे आनन्दोन्मादमें विलीन हो गया था। उसने इस नाटककी बड़ी प्रशंसा की है। कालिदासकी जन्म-भूमिके विषयमें बड़ा विवाद चल रहा है। स्मिथ कहता है कि वह मालवाके मन्दासूरका निवासी था। परन्तु अब बहुतसे बङ्गाली विद्वान् उसका जन्म-स्थान बङ्गालमें बतलाते हैं। कालिदासकी रचनाओंके अतिरिक्त मुद्राराक्षस और मृच्छकटिक भी उसी

कालके समझे जाते हैं। वायु पुराण भी अपने वर्त्तमान रूपमें चौथी शताब्दीके पूर्वार्द्ध की ही रचना गिना जाता है।

दूसरी विद्यायें। गुप्तवंशके शासन-कालमें भारतमें गणित और ज्योतिषने बहुत उन्नति की। उस समयके तीन गणितज्ञ प्रसिद्ध हैं—एक आर्यभट्ट जो सन् ४७६में उत्पन्न हुआ, दूसरा वराहमिहिर जिसका समय सन् ५०५ ई०से सन् ५८७ तक गिना जाता है, और तीसरा ब्रह्मगुप्त जिसका जन्म सन् ५८८ ई० में हुआ।

संगीत, स्थापत्य, चित्र और आलेख्यकी विद्यायें भी इस कालमें बहुत उन्नत हुईं। उस समयके बहुतसे भवन मुसलमानी परिवर्त्तनोंमें नष्ट हो गये। पर जो विद्यमान हैं उनसे उस कालकी चरमोन्नतिका अनुमान हो सकता है। उनमेंसे झाँसीके ज़िलेमें देवगढ़के स्थानपर पत्थरका एक मन्दिर विद्यमान है। इसकी दीवारोंपर भारतीय चित्रकारीके कुछ अत्युत्तम नमूने हैं। कान-पुरके जिलेमें भी ईंटोंका बना हुआ एक मन्दिर है। परन्तु उस समयके अतीव सुन्दर चित्र और कलाके अन्य नमूने बनारसके समीप सारनाथमें मौजूद हैं। पत्थर और ईंटोंकी इमारतोंको छोड़कर उस समयके कारीगरोंने धातुओंके उपयोगमें भी खूब निपुणता प्राप्त की थी। दिल्लीका मीनार जो कुत्व साहबके समीप खड़ा है, संसारकी अद्भुत वस्तुओंमेंसे एक है। यह चन्द्रगुप्तके समयमें बनाया गया था। छठी शताब्दीके अन्तमें नालन्दमें महात्मा बुद्धकी एक तांबेकी ८० फुट ऊँची मूर्त्ति बनाई गई। सुलतानगंजकी मूर्त्ति, जो ऊँचाईमें ७॥ फुट है और अब बिर्मिङ्घमके अद्भुतालयकी शोभा बढ़ा रही है, द्वितीय चन्द्रगुप्तके समयकी है। पांचवीं शताब्दीमें द्वितीय चन्द्रगुप्त और उसके पुत्रके शासन-कालमें भारतीयोंने इन कलाओंमें निपुणताकी पराकाष्ठा दिख-

लाई। अजन्ताकी गुफाओंका आलेख्य और चित्रकारी इतनी उच्चकोटिकी है कि संसारके चित्रकार दूर दूरसे उनको देखनेके लिये आते और मुक्तकण्ठसे उनकी प्रशंसा करते हैं। अतएव इसमें कुछ भी सन्देह नहीं रह जाता कि ईसाकी पाँचवीं शताब्दीमें विशेषरूपसे और गुप्तवंशके राजत्वकालमें समान्यरूपसे ललित कलाओंने भारतमें उन्नतिकी चरमसीमा देखी।*

विदेशोंसे विचारोंका विनिमय, कुमारजीव, जावा और सुमात्रा-में हिन्दू-सभ्यता।

हिन्दू-इतिहासमें शायद यह पहला समय है जब कि भारतवर्ष और अन्य विदेशोंके बीच स्वतन्त्रतापूर्वक बड़े बड़े विद्वान् पर्यटकों द्वारा विचारोंका विनिमय हुआ। कहते हैं सन् ३५७ ई० और सन् ५७१ ई० के बीच भारतसे दस दूतसमूह चीनको भेजे गये। इनमेंसे बहुतसे व्यापारके प्रयोजनसे गये। बहुतसे चीनी पर्यटक भारतमें तीर्थ-यात्रा और बौद्ध-धर्मकी शिक्षाके लिये आये। बहुतसे भारतीय विद्वान् भी चीनको गये। इनमें सबसे प्रसिद्ध कुमारजीव है। वह सन् ३८३ ई० में चीनको गया। भारतके समुद्री किनारों और भारतीय महासागरके द्वीपोंके बीच लोगोंका आना जाना बहुत था। भारतीय सभ्यता जावा और सुमात्रातक फैल गई थी। वहांके अधिवासियोंने न केवल बौद्ध-धर्मको ग्रहण किया वरन् भारतीय कलाओंको भी बहुत अंशोंमें अपने देशमें प्रचलित किया। अजन्ताके चित्रोंमें यह लिखा है कि भारत और फारसके बीच रोमन सम्राटोंकी सेवामें दूत भेजे गये। हम ऊपर कह आये हैं कि रोमके साथ भारतका बहुत बड़ा व्यापार था। रोमके सोनेके सिक्के एक बड़ी संख्यामें

* भारतकी कलाके विषयमें हैवलने कई पुस्तकें लिखी हैं। वे इस विषयपर सर्वोत्तम प्रमाण हैं।

दक्खिनमें निकले हैं। हैवल लिखता है कि कुछ भारतीय राजाओंने रोमके साथ व्यापारको बढ़ानेके लिये रोमके सिक्कोंकी नकलें भारतमें भी ढालीं। तत्कालीन आलेख्य और चित्र-विद्याने यूनानी कलासे इस प्रकारका सादृश्य उत्पन्न किया कि कुछ लोग यह कहने लग जाते हैं कि हिन्दुओंने यूनान और रोमसे नकलें कीं। परन्तु विंसेंट स्मिथ और हैवल दोनों इस बातमें सहमत हैं कि भारतीयोंने नकल कभी नहीं की, वरन् भारतीय कारीगरों और विशेषज्ञोंने अपनी योग्यतासे शिल्पके पूर्वी और पश्चिमी ऐतिह्योंको इस प्रकार मिला दिया कि इनमें दोनों प्रकार की विशेषतायें पाई जाती हैं। परन्तु यह शिल्प विशुद्ध भारतीय है, किसीकी नकल नहीं।

इसी कालमें भारतकी दो और प्रसिद्ध पुस्तकें अपने अन्तिम रूपमें सम्पादित हुईं। कहते हैं महाभारतकी वर्तमान पुस्तक गुप्त राजाओंके कालमें तैयार की गई। इस पुस्तकमें अब एक लाखसे अधिक श्लोक हैं। वास्तवमें केवल आठ सहस्र श्लोक थे। भारतके समस्त बड़े बड़े ग्रन्थोंकी यह विशेषता है कि वे एकताकी शिक्षा देते हैं। सारे भिन्न भिन्न ऐतिह्यों और उपाख्यानोंको एक जगह इकट्ठा करके उनसे एक ही परिणाम निकालते हैं तत्त्वज्ञानके भिन्न भिन्न वादों और धर्मके भिन्न भिन्न सिद्धान्तोंसे भी एक ही परिणाम ग्रहण किया जाता है। प्राचीन भारतकी शिक्षामें यह विचार सर्वव्यापक है। वेद और उपनिषद्, दर्शन और पुराण, सूत्र और स्मृतियां, ये सब एक ही परमेश्वरकी शिक्षा देती हैं। ये सब एक ही धर्मकी पुस्तकें हैं और एक ही मातृभूमिकी उपासना और अर्चनाका प्रतिपादन करती हैं।

वेद चार हुए परन्तु उनकी शिक्षा एक है। वेदोंकी शाखायें

अगणित हुईं परन्तु सबका सिद्धान्त एक है। उपनिषद् इक्यावन हुए परन्तु सबकी शिक्षा एक है। दर्शन छः हुए परन्तु सबका तत्त्वज्ञान एक ही अद्वैतका प्रतिपादन करता है। इस एकताको महाभारतमें साधारणतया और गीतामें विशेषतया अतीव मनोहर रूप दिया गया है। यहांतक कि बौद्ध-धर्मको भी हिन्दू-धर्ममें अङ्गभूत कर लिया गया। इसका यह तात्पर्य नहीं कि भारतकी शिक्षामें कोई मत-भेद नहीं अथवा कहीं सिद्धान्तोंकी भिन्नता नहीं। वरन् इसका यह अर्थ है कि भारतीय अपनी सूक्ष्मदर्शिता और तर्कसे अपने सब मत-भेदोंको एक ही संयोजनापर लाकर इकट्ठा कर देते थे। हिन्दू-सभ्यताकी यह एक विशेषता है जिसकी उपमा संसारमें दूसरी नहीं पाई जाती। यही हिन्दू-धर्मकी निर्बलता और यही इसकी शक्ति है। अपने सब मत-भेदों और कहानियोंके होते हुए भी महाभारत स्वयं इस मिश्रित हिन्दू-धर्मका एक सर्वोत्तम चित्र है। इसमें सब ही हिन्दूवाद और सब ही हिन्दूसिद्धान्त हैं और श्रीमती निवेदिताके कथनानुसार, वे सब यह शिक्षा देते हैं कि भारत एक है।*

मनु-स्मृति।

इस समयकी दूसरी पुस्तक मनुसंहिता है। मनुका मूल कानून बहुत प्राचीन है। मानव धर्म-सूत्र बहुत पुराने सूत्रोंमेंसे है। परन्तु वर्त्तमान मनुस्मृति ऐसी पुरानी नहीं है, और अनुमान किया जाता है कि यह ईसवी शताब्दीके आरम्भिक संवत्का संग्रह है। इस धर्म-शास्त्रका भीतरी साक्ष्य भी इसी बातका समर्थन करता है। वैदिककालसे लेकर पौराणिक कालतक जितने परिवर्त्तन हिन्दू धर्म, हिन्दू रीति-नीति और हिन्दू राजनीतिक पद्धतिमें हुए उन सबको इस

* निवेदिता रचित फुट फाल्स आव इण्डियन हिस्टरी, पृ० १०८।

पुस्तकमें इकट्ठा करनेका यत्न किया गया है। यही कारण है कि इसके कुछ भागोंका परस्पर विरोध और भेद देख पड़ता है। उदाहरणार्थ यदि स्त्रियोंकी स्थिति या ब्राह्मणोंके अधिकारों अथवा जिम्मेदारियोंके विषयमें मनु-स्मृतिकी सब आज्ञाओंको इकट्ठा किया जाय तो उनसे विदित हो जाता है कि ये आज्ञायें न तो एक समयके क्रियात्मक जीवनको प्रकट करती हैं और न एक कालके विचारोंका परिणाम हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि जब यह संग्रह अन्तिम बार सम्पादित हुआ तब हिन्दुओंकी जाति-पांति बहुत अंशमें अपने वर्त्तमान रूपमें पूर्ण हो गई थी और हिन्दुओंमें भिन्न भिन्न जातियोंके विवाह और व्यवसायोंकी दृष्टिसे असंख्य जातियां अस्तित्वमें आ चुकी थीं। तीन उच्च वर्णोंको निचले वर्णकी स्त्रियोंके साथ विवाह करनेकी आज्ञा थी, परन्तु अपनेसे ऊपरके वर्णके साथ विवाह करनेकी आज्ञा न थी। निचले वर्णके पुरुषको किसी अवस्थामें भी उच्च वर्णकी स्त्रीके साथ विवाह करनेकी आज्ञा न थी। ब्राह्मणोंको विशेष रूपसे सतर्क किया गया था कि वे अपने वर्णसे बाहर विवाह न करें। और यही चेतावनी तीनों ऊंचे वर्णों को शूद्र-स्त्रियोंके साथ विवाह करनेके सम्बन्धमें थी।

इसी प्रकार खान-पान सम्बन्धी मनुकी आज्ञाओंमें भी किसी अंशमें परस्पर विरोध देख पड़ता है। साधारणतया मांस खानेका निषेध है परन्तु यज्ञमें मारे हुए पशुका मांस खानेकी आज्ञा है। मदिरापानका सर्वथा निषेध है और मदिरापानका दण्ड मृत्यु नियत किया गया है।

राजाओंके लिये जुआ खेलना और शिकार करना निषिद्ध ठहराया गया है। चाणक्य-नीतिमें यह आज्ञा है कि द्यूतगृहोंके लिये लायसेंस नियत किये जायँ। मनुस्मृतिमें आज्ञा है कि

द्यूतशालाओंको सर्वथा बन्द किया जाय और जुआ खेलनेवालों-को दण्ड दिया जाय।

राज्य करनेका अधिकार केवल क्षत्रियोंको ही दिया गया है। आर्य्य लोगोंको शूद्र राजाके राज्यसे अलग रहनेका उपदेश है। इसके अतिरिक्त उनको किसी ऐसे नगरमें भी रहनेकी आज्ञा नहीं जहां शूद्र, नास्तिक या पतित लोगोंकी संख्या अधिक हो।

मनुकी राजनीतिक शिक्षा।

मनुकी राजनीतिक शिक्षामें राजाको पूर्ण अधिकार दिये गये हैं। परन्तु साथ ही यह भी निश्चय किया गया है कि अत्याचारी, कपटी, व्यभिचारी और क्रोधके वशीभूत राजाको उसके दुष्कर्म ही नष्ट कर देंगे। राजाके लिये आवश्यक है कि सात आठ धर्मात्मा, वीर, रण विद्या विशारद विद्वानों और कुलीन पुरुषों की एक राजसभा (कौंसिल आव स्टेट) नियत करे और युद्ध सन्धि, सेना और समुद्रके प्रबन्ध, राजस्व और खर्चोंके सम्बन्धमें उनकी सम्मतिके अनुसार काम करे। राजाका कर्त्तव्य है कि प्रजाको अपनी सन्तान समझकर उससे न्याय और दयाका वर्त्ताव करे। अन्यथा मूर्खता और अत्याचारकी अवस्थामें यह आवश्यक है कि वह और उसका वंश न केवल राज्यसे वरन् प्राणोंसे भी वञ्चित किया जाय। भारतवर्षके इतिहासमें इस बातका यथेष्ट प्रमाण है कि इस शिक्षाके अनुसार कार्य होता रहा है।

सरकारी राजस्व।

धन धान्यकी प्रचुरताके समयमें राजा वैश्य लोगोंसे उनकी फसलका ०८३ भाग और उनके व्यक्तिगत लाभका ०२ भाग ले सकता है। परन्तु सार्व-जनिक आवश्यकताकी अवस्थामें उसको .१६ और कुछ दशाओंमें उपजका २५ भाग लेनेका अधिकार था। व्यापारपर आधकसे

अधिक कर लाभका केवल .०५ भाग था। विद्वान ब्राह्मण करसे मुक्त थे। छोटे छोटे दूकानदारोंसे बहुत ही अल्प कर लेनेकी आज्ञा थी। छोटे दर्जेके शिल्पियों और श्रमजीवी लोगोंसे मासमें एक दिन काम करानेका नियम नियत था।

मनुस्मृतिकी ये कतिपय आज्ञायें केवल इसलिये लिखी गई हैं ताकि मालूम हो सके कि जिस कालमें मनुस्मृति अन्तिम बार सम्पादित हुई उस समय आर्य्य-कानूनके विचार और आर्य्य-समाजके रिवाज क्या थे। सविस्तर आज्ञाओंको जाननेके लिये मनुस्मृतिका अध्ययन प्रत्येक भारतीयका कर्त्तव्य और उसके लिये आवश्यक है।

अन्य गुप्त राजा। द्वितीय कुमारगुप्तकी मृत्युके पश्चात् गुप्तवंशके साम्राज्यका तो अधःपात हो गया परन्तु उस वंशके छोटे छोटे राजा मगध देशके एक भागमें लगभग आठवीं शताब्दीतक राज्य करते रहे। इस प्रकारके ग्यारह राजाओंका वर्णन इतिहासमें मिलता है। मगध देशके दूसरे भागमें अन्य वंशोंका शासन रहा।

चीनका लिपाङ्ग वंश। चीनके लिपाङ्ग-वंशके राजा प्रथम वू-टीने मगध-नरेशके पास दूत भेजे कि मुझे बौद्धोंके महायान सम्प्रदायकी धर्म्म-पुस्तकें दी जायं और

किया गया और ७० वर्षकी आयुमें सन् ५६६ में चीनमें उसका देहान्त हो गया।

बोधि-धर्म। इसी सम्राट्के शासन-कालमें दक्षिण भारत बुद्ध-धर्मका एक और धर्मोपदेष्टा सन् ५२० ई० में चीन गया। यह एक राजाका पुत्र था और इसका नाम बोधि-धर्म्म था। यह मनुष्य भारतका २८ वाँ और चीनका पहला कुलपति गिना जाता है।

इस वंशके अन्तिम राजाने कन्नौज-पति हर्षकी मृत्युके पश्चात् अश्वमेध यज्ञ भी किया। इस वंशका अन्तिम राजा जीवितगुप्त आठवीं शताब्दीकी समाप्तिके निकट मरा। पीछेसे मगधका राज्य बंगालके पाल राजाओंके अधीन हो गया।

आठवां खण्ड
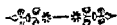
पहला परिच्छेद ।

हूण जातिके आक्रमण ।

गुप्त राजाओंके शासनकालके पश्चात् भारतके राजनीतिक रङ्गमञ्चपर, राजा हर्षके समयतक, कोई ऐसा शासक नहीं आया जिसने भारतकी समस्त शक्ति एकत्र करके समस्त भारतको राष्ट्रीयताके सूत्रमें ग्रथित किया हो। यह मध्यकाल अपेक्षाकृत उत्तर-पश्चिमी और पश्चिमी भारतमें एक नवीन वाह्य आक्रमणका समय रहा। एक सौ वर्षतक भारतीय इस वाहरके आक्रमणका सामना करनेमें लगे रहे।

श्वेत हूण। ईसाकी चौथी शताब्दीके लगभग मध्य एशियाकी गोचारण भूमियोंसे एक और नृशंस जाति उठकर यूरोप और एशियामें फैली। इस जातिकी पश्चिमी शाखाने वाल्गा नदीको पार करके प्रायः समस्त मध्यवर्ती, दक्षिणी और पूर्वी. यूरोपको लूट खसोट डाला। इधर पूर्वी भागमें जेहूं नदीसे उतरकर गान्धार, पेशावर, पञ्जाब, गुजरात और काठियावाड़को तहस नहस किया। यूरोपमें इस जातिका सबसे प्रबल परन्तु सबसे निर्दय और निष्ठुर सरदार एटिला था। उसकी निर्दयता और निष्ठुरताकी कहानियां और संकेत

यूरोपीय साहित्यमें प्रचुरतासे पाये जाते हैं। गत यूरोपीय महा-युद्धमें मित्र राष्ट्रोंकी प्रजा, उनके पत्र-सम्पादक और ग्रन्थकार जर्मन लोगोंको हूण और उनके सम्राटको एटिला कहा करते थे। इस स्थलपर हमारा सम्बन्ध उस जातिकी उस पूर्वी धारासे है जिसने उत्तर पश्चिमी दर्रोंसे घुसकर लगभग एक सौ वर्षतक भारतवर्षको लूटा खसोटा।

इस जातिका पहला आक्रमण, जैसा कि एक स्थलपर ऊपर उल्लेख किया जा चुका है, स्कन्दगुप्तके समयमें हुआ था। उस समय उनको हरा दिया गया था। इससे दस वर्ष पश्चात् फिर ये जातियाँ गान्धार राज्यपर अधिकार करके गङ्गाके प्रान्तोंतक पहुंच गयीं और उन्होंने गुप्त राज्यको परास्त कर लिया। इस समय उनका यह दल राजा फीरोज़का वध करके ईरानको अपने अधिकारमें कर चुका था। भारतपर होनेवाले आक्रमण-का मुखिया तोरमान था। इसने सन् ५०० में मध्य भारतमें अपने आपको मालवाका शासक बना लिया और महाराजा-धिराजकी पदवी धारण की।

सन् ५१० ई० में तोरमानका देहान्त हो गया। उसके स्थानपर उसका पुत्र मिहिरगुल* जिसको संस्कृतमें मिहिरकुल कहते हैं, राज्य करने लगा। इसने पञ्जाबमें सियालकोटको अपनी राजधानी बनाया। इसको साकल कहा है।

मिहिरगुलका शासन-काल।

मिहिरगुल वैसा ही प्रजापीड़क और निर्दय था जैसा कि उसका सजातीय एटिला। ये लोग अत्यन्त निर्दयतासे रक्तकी नदियां बहाते थे। निःसङ्कोच होकर प्रजाका वध करते थे। परले दर्जेके कुरूप और कुडौल थे। फसलें उजाड़

* मिहिरगुलके सिक्के गुजरांवाला और झङ्गके ज़िलेमें अब भी मिलते हैं।

देते थे, गांव जला देते थे। इनको देखकर लोगोंको भय होता था। जिस समय मिहिरगुल भारतमें शासन करता था उस समय एशियामें इस जातिका राज्य ईरानकी सीमासे आरम्भ होकर खुतनतक और चीनकी सीमातक पहुंचता था। मिहिरगुलके दरबारमें एक चीनी पर्यटक सुङ्ग्युन, आया था। अन्तको सन् ५२८ ई० में हिन्दू राजाओंने मगध-नरेश बालादित्य और मध्य भारतके राजा यशोधनमके नेतृत्वमें एकता करके मिहिरगुलको एक करारी पराजय दी और उसकी शक्तिको छिन्न भिन्न कर डाला। परन्तु बालादित्यने अपनी साधारण उदारता और आर्य्य-नीतिके अनुसार जो कुछ दशाओं-में मूर्खताकी सीमातक पहुंचती थी, मिहिरगुल जैसे मनुष्य-समाजके शत्रुको क्षमा कर दिया, और उसे बंधन-मुक्त करके अपने देशको वापस भेज दिया। इस समय मिहिरगुलका छोटा भाई साकलकी गद्दीको अपने अधिकारमें ला चुका था। उस-ने मिहिरगुलको शरण न दी। मिहिरगुल शरणकी तलाशमें काश्मीर पहुंचा। काश्मीर नरेशने एक छोटासा प्रदेश उसको जागीरमें दे दिया। परन्तु इस कपटी और बेईमानने थोड़े ही दिनोंमें शक्तिका संचय करके पहले अपने शरणदाताको ही सिंहासनच्युत करके उसके राज्यपर अधिकार कर लिया। फिर वहांसे गान्धारके राज्यपर आक्रमण किया। वहां भी उसने बड़ी ही नृशंस रीतिसे अपनी ही जातिके राजपरिवारको नष्ट करके अपना अधिकार किया। फिर वह सिंधु नदीतक वध करता चला गया। उसने असंख्य मन्दिरों, मठों और समाधि-भवनोंको भूतलशायी कर दिया और लूट लिया। अन्ततः सन् ५४० ई० के लगभग मृत्युने उसको आ घेरा। तब इस भूमिको उसके चङ्गुलसे छुटकारा मिला।

मिहिरगुलको परास्त करनेके सम्बन्धमें हिन्दू ऐतिहासिकोंमें मतभेद है। बौद्ध-धर्मके लेखक इस विजयका सेहरा मगध नरेश बालादित्यके सर बाँधते हैं। यशोधनकी सभाके कवियोंने इस विजयका श्रेय यशोधनको दिया है। जिसने इस विजयके स्मारकमें दो बड़े स्तम्भ खड़े किये और अपनी प्रशंसामें बहुतसे गीत बनाये। यह भी लिखा है कि इसका राज्य ब्रह्मपुत्रसे लेकर पश्चिमी सागरतक और हिमालयसे लेकर ट्रावङ्कोरमें महेन्द्र-गिरितक फैला हुआ था।

हूण जातियोंके भारतमें अवशेष।

यूरोपीय इतिहास-लेखक यह मत प्रकट करते हैं कि जिनको इस समयकी दस्तावेजोंमें गुर्जट लिखा है वे इसी हूण जातिमेंसे हैं। उनके मतानुसार राजपुतानेके बहुतसे राजपूत परिवार भी इसी जातिके अवशेष हैं। परन्तु यह भूल ज्ञात पड़ती है।

यह कहना कठिन है कि ये परिणाम कहाँतक ठीक हैं परन्तु यह बात मानी हुई है कि हूण जातिके बहुतसे लोग उसकी राजनीतिक शक्तिके नष्ट हो जानेके पश्चात् भी भारतमें रहे और उन्होंने हिन्दु-धर्म और हिन्दू-सभ्यताको ग्रहण किया। हूण लोगोंका सबसे शक्तिशाली राजा मिहिरगुल भी शिवका उपासक था, और कुछ आश्चर्य्य नहीं कि इस जातिके सरदारोंने बलात् या अन्य प्रकारसे हिंदू-स्त्रियोंसे विवाह करके अपने आपको उन वर्णोंमें प्रविष्ट कर लिया हो जिन वर्णोंसे उन्होंने ये स्त्रियाँ ली थीं।

कुछ भी हो, यह प्रकट है कि इस समयतक जो जातियाँ और समूह मध्य एशिया या उत्तरसे भारतमें प्रविष्ट हुए वे अपनी आर्थिक आवश्यकताओंको पूरी करनेके लिये आये। कुछ कालके

लिये उन्होंने राजनीतिक दौड़धूप भी की। परन्तु अन्तको स्थानीय धर्म और स्थानीय सभ्यताको ग्रहण करके यहाँकी जनतामें मिल गये। अब उनके दूसरी जातिके होनेका कोई प्रमाण नहीं है।

हिन्दू-धर्मका अपार सागर इतना गहरा और विशाल है कि इसमें सब जातियाँ, चाहे वे आरम्भमें कैसी ही म्लेच्छ या रक्त-पिपासु क्यों न हों, आत्मसात हो जाती हैं, पर शर्त यह है कि वे इस धर्मकी सामाजिक पद्धति और सभ्यताको ग्रहण कर लें।

इस कालके और हिन्दू-वंश।

इस कालमें भारतके भिन्न भिन्न भागोंमें भिन्न भिन्न वंश राज्य करते थे। उनका कुछ वर्णन चीनी पर्यटक ह्यूनसङ्गने किया है। इन वंशोंके राजत्वकालमें कोई विशेष स्मरणीय या उल्लेखनीय घटना नहीं घटी। हाँ, इतना मालूम होता है कि इनमेंसे कुछ राजा बौद्ध और जैन धर्मके अनुयायी थे।

नवां खण्ड

ईसाकी सातवीं शताब्दी।

पहला परिच्छेद

महाराजा हर्ष और चीनी पर्यटक ह्वनसाङ्ग।

ईसाकी सातवीं शताब्दीके आरम्भमें भारतका राजनीतिक मानचित्र फिर बदल जाता है और राजनीतिक शक्ति मगधसे स्थानान्तरित होकर उत्तर-पश्चिमी भारतमें स्थापित होती है। हिन्दू आर्योंके इतिहासमें थानेश्वर एक बड़ा पवित्र स्थान गिना जाता है। यह उस स्थानमें स्थित है जहां कौरवों और पाण्डवों-का महाभारत युद्ध हुआ था। इस प्रदेशको कुरुक्षेत्रकी भूमि कहते हैं। इसी क्षेत्रके आसपास हिन्दुओंकी पवित्र नदी सरस्वती बहती थी। यह वह प्रदेश है जिसे हिन्दू ब्रह्मर्षि-देश कहते हैं।

ईसाकी छठी शताब्दीके आरम्भमें थानेश्वरमें राजा प्रभाकर राज करते थे। ये वैश्य जातिके बताये जाते हैं। इस राजाने

हूण जातिके आक्रमणकारियोंका बड़ी वीरतासे सामना किया, इससे उसकी प्रसिद्धि बढ़ गई थी।

सन् ६०४ ई० में उसने अपने बड़े बेटे राज्यवर्धनको उत्तर-पश्चिमी सीमापर हूण जातिका सामना करनेके लिये भेजा और उसके साथ ही पीछे पीछे अपने छोटे बेटे हर्षको भेज दिया ताकि आवश्यकता पड़नेपर वह राज्यवर्धनकी सहायता कर सके। इन दोनों पुत्रोंके जानेके थोड़ी देर बाद स्वयम् महाराज बहुत बीमार हो गये। हर्ष जो निकट था वापस पहुंच गया, और राजाकी मृत्युके समय उसके पास था। थोड़े ही काल पश्चात् राज्यवर्धन भी आ पहुंचा और सन् ६०५ ई० में अपने पिताके सिंहासनपर बैठ गया। परन्तु वह अभी बैठा ही था कि उसे पूर्वसे समाचार मिला कि मालवाके राजाने उसकी बहिन राज्यश्रीके पतिका बध करके राज्यश्रीको कैद कर लिया है और उसके पैरोंमें बेड़ियां डाल दी हैं। राज्यवर्धन तुरन्त दस सहस्र सेना लेकर अपनी बहिनको छुड़ाने और उसके शत्रुओंको दण्डित करनेके लिये चला। उसने मालवा-नरेशको तो पराजित कर दिया परन्तु बङ्गालके राजा शशांकने जो मालवीय नरेशका मित्र था, राज्यवर्धनको एक सभामें बुलाकर धोखेसे मार डाला। इस बीचमें राज्यश्री अपने कारागारसे भाग निकली और विन्ध्याचलके जंगलोंमें जा छिपी। जब हर्षको यह समाचार पहुंचा तब वह अपनी बहिनको छुड़ाने और शशांकसे बदला लेनेके लिये एक बड़ी सेना लेकर चल पड़ा।

हर्षका राजतिलक। हर्षके राजतिलकके विषयमें ऐतिहासिकोंमें मतभेद है। ऐसा प्रतीत होता है कि राज्यवर्धनके एक या अनेक पुत्र थे। वे भी अल्पवयस्क थे। हर्ष भी पन्द्रह सोलह वर्षका था। क्योंकि उस समय देशमें अव्यवस्था

फैल रही थी, इसलिये प्रश्न यह था कि गद्दीपर किसको बैठाया जाय। कहते हैं कि भांडी नामक एक दरबारीके प्रस्तावपर राज्यके सरदारोंने हर्षको गद्दी पेश की और उसने बहुत संकोचके पश्चात् अक्तूबर सन् ६०६ ई० में राजा होना स्वीकार किया। हर्षका सम्वत् सन् ६०६ ई० से आरम्भ होता है। परन्तु ऐसा ज्ञान पड़ता है कि राज्याभिषेककी प्रक्रिया छः वर्षतक नहीं की गई। विंसेंट स्मिथ उस विलम्बका कारण बतलानेमें असमर्थ है। उसके मतानुसार यह सम्भव है कि स्वयं दरबारी लोग अभी पूर्णरूपसे हर्षके गद्दीपर बैठनेके पक्षमें न हुए थे। परन्तु हैवलकी सम्मतिमें प्राचीन आर्य्य रीति-नीतिके अनुसार गद्दीपर पुत्र या उसकी सन्तानका विशेष अधिकार न था। वरन् प्रजाका यह अधिकार समझा जाता था कि वह राजाकी मृत्युके पश्चात् राजाके उत्तराधिकारियोंमेंसे योग्यतम मनुष्यको गद्दीपर बैठाये। हिन्दू-इतिहासमें इस प्रकारके अनेक उदाहरण मिलते हैं कि राज्याभिषेककी प्रक्रिया गद्दीपर बैठनेके पश्चात् कुछ कालतक स्थगित रही और उस समयतक पूरी न की गई जबतक प्रजाको निर्वाचित राजाकी योग्यतापर पूरा भरोसा नहीं हो गया।

शशाङ्कके साथ हर्षका युद्ध। हम ऊपर कह आये हैं कि हर्षका पहला काम यह था कि अपनी बहिनकी तलाशमें जाय। ऐसा जान पड़ता है कि वह ठीक उस समय पहुंचा जबकि उसकी बहिन राज्यश्री बचावकी कोई आशा न देख अपनी अनुयायी स्त्रियों सहित जलकर मर जानेको तैयार थी। उसको छुड़ाकर हर्षने शशाङ्कको पराजय दी। फिर शेष भारतको विजय करनेके लिये उसने कमर बांधी। उस समय उसके पास पचास सहस्र प्यादे और बीस सहस्र सवार सेना

थी। पीछेसे उसने सेनाको बहुत अधिक बढ़ा लिया यहांतक कि उसकी सेनामें एक लाख सवार और साठ सहस्र हाथी हो गये। इस सेनाकी सहायतासे यह राजा साढ़े पांच वर्षतक लड़ता रहा। उसने समस्त उत्तर भारतको जीतकर अपने राज्यमें मिला लिया। फिर ३५ वर्षतक राज्य किया। उत्तर-भारतके अतिरिक्त पश्चिमी मालवा, कच्छ, सौराष्ट्र और आनन्दपुर भी उसके राज्यके अन्तर्गत थे।

एक ही पराजय। इस राजाको अपने शासन-कालमें एक पराजय हुई अर्थात् जबसे उसने नर्मदा पार करके दक्षिणको विजय करनेकी चेष्टा की तो चालुक्य वंशके सबसे प्रसिद्ध राजा पुलकेशिन द्वितीयने बड़ी सफलतापूर्वक उसको रोका और हर्षको पीछे हटना पड़ा। यह चढ़ाई सन् ६२० ई० में हुई।

हर्षका प्रबन्ध। हर्षका शासनकाल बहुत अंशोंमें अशोककी टक्करका माना जाता है, यद्यपि ऐसा प्रतीत होता है कि उसके समयमें फौजदारी कानून बहुत कड़ा था और सीमा प्रदेशमें सड़कें ऐसी सुरक्षित न थीं जैसी कि फाहियानके पर्यटनके समयमें थीं।

हर्षके समयमें बन्दियोंके साथ बहुत बुरा बर्ताव किया जाता था। घोर अपराधोंके बदलेमें नाक, हाथ और पैर काट दिये जाते थे। अन्वेषणमें भी भारी यातना दी जाती थी। उसके समयमें सरकारी दफ्तर अतीव पूर्ण थे और शिक्षा बहुत फैली हुई थी।

चीनी पर्यटक ह्यूनसांग लिखता है कि इस समय उत्तरी भारतमें जहां उसने पर्यटन किया, लगभग दो लाख भिक्षु थे। ये और इनके अतिरिक्त असंख्य ब्राह्मण शिक्षादानका काम करते

थे। बड़े बड़े मठ और विहार शिक्षाके केन्द्र थे। देशमें अगणित विश्वविद्यालय थे। मगधमें नालन्द विश्वविद्यालय 'महायान सम्प्रदायके बौद्धोंका आक्सफोर्ड बतलाया जाता है। बनारस ब्राह्मणोंकी विद्याका केन्द्र था। ये दोनों स्थान एक दूसरेके बराबरके प्रतियोगी गिने जाते थे।

नालन्द विश्वविद्यालय। नालन्द विश्वविद्यालय यद्यपि विशेषरूपसे बौद्ध धर्मकी शिक्षाके लिये प्रसिद्ध था। और हीनयानके अठारह सम्प्रदायोंके भिन्न २ शिक्षणालय वहां थे, परन्तु वहां वेद, शास्त्र, आयुर्वेद और गणितकी शिक्षा भी उच्चकोटिकी दी जाती थी। जो भिक्षु यहां शिक्षा देते थे उनका पद उनकी विशेषताके अनुसार था। ह्यूनसाङ्ग कहता है कि दस सहस्र भिक्षु उपाध्याय इस विश्वविद्यालयमें रहते थे। इनमेंसे एक सहस्र इस प्रकारके सूत्रों और शास्त्रोंके विद्वान समझे जाते थे। पांच सौने तीस प्रकारके सूत्रों और शास्त्रोंमें उपाधि पाई थी। केवल दस ऐसे थे जो पचास प्रकारके सूत्रों और शास्त्रोंके पारङ्गत गिने जाते थे। इनमेंसे एक ह्यूनसाङ्ग भी था। मठके प्रधानाचार्य शीलभद्रके विषयमें यह समझा जाता है कि वे धर्मकी प्रत्येक शाखाका पूर्ण ज्ञान रखते थे।

बच्चोंकी शिक्षाके विषयमें ह्यूनसाङ्ग बड़े विस्तारसे साक्ष्य देता और उन विद्याओंका वर्णन करता है जिनसे कि अध्यापक अपने शिष्योंको लाभान्वित करनेका यत्न करते थे। विद्वानों और पण्डितोंकी पदवी समाजमें राजा महाराजाओंसे भी बड़ी गिनी जाती थी। यह सामान्यरूपसे माना जाता था कि कोई विद्वान या धर्मात्मा पुरुष अपनी विद्या और धर्मको धनके बदलेमें न बेचता था।

थी। पीछेसे उसने सेनाको बहुत अधिक बढ़ा लिया यहांतक कि उसकी सेनामें एक लाख सवार और साठ सहस्र हाथी हो गये। इस सेनाकी सहायतासे यह राजा साढ़े पांच वर्षतक लड़ता रहा। उसने समस्त उत्तर भारतको जीतकर अपने राज्यमें मिला लिया। फिर ३५ वर्षतक राज्य किया। उत्तर-भारतके अतिरिक्त पश्चिमी मालवा, कच्छ, सौराष्ट्र और आनन्दपुर भी उसके राज्यके अन्तर्गत थे।

एक ही पराजय। इस राजाको अपने शासन-कालमें एक पराजय हुई अर्थात् जबसे उसने नर्मदा पार करके दक्षिणको विजय करनेकी चेष्टा की तो चालुक्य वंशके सबसे प्रसिद्ध राजा पुलकेशिन द्वितीयने बड़ी सफलतापूर्वक उसको रोका और हर्षको पीछे हटना पड़ा। यह चढ़ाई सन् ६२० ई० में हुई।

हर्षका प्रवन्ध। हर्षका शासनकाल बहुत अंशोंमें अशोककी टक्करका माना जाता है, यद्यपि ऐसा प्रतीत होता है कि उसके समयमें फौजदारी कानून बहुत कड़ा था और सीमा प्रदेशमें सड़कें ऐसी सुरक्षित न थीं जैसी कि फाहियानके पर्यटनके समयमें थीं।

हर्षके समयमें बन्दियोंके साथ बहुत बुरा बर्ताव किया जाता था। घोर अपराधोंके बदलेमें नाक, हाथ और पैर काट दिये जाते थे। अन्वेषणमें भी भारी यातना दी जाती थी। उसके समयमें सरकारी दफ्तर अतीव पूर्ण थे और शिक्षा बहुत फैली हुई थी।

चीनी पर्यटक ह्यूनसाङ्ग लिखता है कि इस समय उत्तरी भारतमें जहां उसने पर्यटन किया, लगभग दो लाख भिक्षु थे। ये और इनके अतिरिक्त असंख्य ब्राह्मण शिक्षादानका काम करते

थे। बड़े बड़े मठ और विहार शिक्षाके केन्द्र थे। देशमें अगणित विश्वविद्यालय थे। मगधमें नालन्द-विश्वविद्यालय महायान सम्प्रदायके बौद्धोंका आक्सफोर्ड बतलाया जाता है। बनारस ब्राह्मणोंकी विद्याका केन्द्र था। ये दोनों स्थान एक दूसरेके बराबरके प्रतियोगी गिने जाते थे।

नालन्द विश्वविद्यालय।

नालन्द-विश्वविद्यालय यद्यपि विशेषरूपसे बौद्ध-धर्मकी शिक्षाके लिये प्रसिद्ध था। और हीनयानके अठारह सम्प्रदायोंके भिन्न २ शिक्षणालय वहां थे, परन्तु वहां वेद, शास्त्र, आयुर्वेद और गणितकी शिक्षा भी उच्चकोटिकी दी जाती थी। जो भिक्षु यहां शिक्षा देते थे उनका पद उनकी विशेषताके अनुसार था। ह्यूनसाङ्ग कहता है कि दस सहस्र भिक्षु उपाध्याय इस विश्वविद्यालयमें रहते थे। इनमेंसे एक सहस्र इस प्रकारके सूत्रों और शास्त्रोंके विद्वान समझे जाते थे। पांच सौने तीस प्रकारके सूत्रों और शास्त्रोंमें उपाधि पाई थी। केवल दस ऐसे थे जो पचास प्रकारके सूत्रों और शास्त्रोंके पारङ्गत गिने जाते थे। इनमेंसे एक ह्यूनसाङ्ग भी था। मठके प्रधानाचार्य शीलभद्रके विषयमें यह समझा जाता है कि वे धर्मकी प्रत्येक शाखाका पूर्ण ज्ञान रखते थे।

बच्चोंकी शिक्षाके विषयमें ह्यूनसाङ्ग बड़े विस्तारसे साक्ष्य देता और उन विद्याओंका वर्णन करता है जिनसे कि अध्यापक अपने शिष्योंको लाभान्वित करनेका यत्न करते थे। विद्वानों और पण्डितोंकी पदवी समाजमें राजा महाराजाओंसे भी बड़ी गिनी जाती थी। यह सामान्यरूपसे माना जाता था कि कोई विद्वान या धर्मात्मा पुरुष अपनी विद्या और धर्मको धनके बदलेमें न बेचता था।

ह्यूनसाङ्ग। ह्यूनसाङ्ग जिस समय नालन्द पहुंचा, उससे पहले उसकी प्रसिद्धि वहां पहुंच चुकी थी। यह चीनी यात्री २६ वर्षकी आयुमें स्वजन्म भूमिसे चला। जिस समय उसने प्रस्थान किया उस समय वह महायान सिद्धान्तका उद्भट विद्वान और प्रभावशाली प्रचारक गिना जाता था। वह भारतमें बौद्ध सम्प्रदायकी पुस्तकें इकट्ठी करने और योग-विद्या सीखनेके लिये आया। ह्यूनसाङ्ग उत्तरीय मार्गसे झील अस्तकाकल, ताशकन्द, समरकन्द और कन्दजमेंसे होता हुआ सन् ६३० ई० में ग़ान्धार पहुंचा। वह तेरह वर्षतक भारतमें घूमता रहा। इस यात्रामें उसे बहुत कष्ट हुआ। एक बार उत्तर-पश्चिमी सीमापर उसको सागरदस्युओंने पकड़ लिया और जलानेकी तैयारियां कीं। ह्यूनसाङ्गने तैयारीके लिये कुछ मिनटका अवकाश मांगा और अलग बैठकर ध्यानमें लीन हो गया। वह अभी ध्यानमें निरत था कि एक ऐसी आंधी आई जिससे वे डाकू बहुत भयभीत हो गये और उस आंधीको चीनी यात्रीका चमत्कार समझकर उसके चरणोंपर आ गिरे।

उस समयका राजनीतिक प्रबन्ध। ह्यूनसाङ्ग भारतके भिन्न भिन्न भागोंमें फिरता रहा। बहुतसे भागोंमें उसको सड़कें उत्तम और धर्म-शालायें बहुत अच्छी मिलीं जिनमें दरिद्र पथिकोंको भोजन और औषधि बिना मूल्य दी जाती थी। फाहियानकी तरह यह चीनी यात्री भी यही लिखता है कि राजा प्रजाकी बातोंमें बहुत कम हस्तक्षेप करता है और अपनी प्रजासे बेगार नहीं लेता। कृषिकार उपजका छठवां भाग करमें देते थे और [illegible]पारी लोग पुलों आदिपर बहुत थोड़ी चुङ्गी देकर अपना कार [illegible] थे। राजकीय भूमियोंकी आय चार भागोंमें विभक्त [illegible] जाती थी। एक

भाग राज्यके व्यय और राजकीय पूजा-पाठके लिये रक्खा जाता था। दूसरे भागसे विद्वानोंको पुरस्कार और पारितोषिक दिये जाते थे। तीसरे भागमेंसे राजकर्मचारियोंको वेतन, पारितोषिक और उपहार मिलते थे। और चौथा भाग भिन्न भिन्न धार्मिक सम्प्रदायोंको दान देनेके लिये सुरक्षित रहता था। ह्यूनसाङ्ग लिखता है कि राजकर्मचारियोंको उनके कामके अनुसार वेतन दिया जाता था और किसी व्यक्तिको किसी कामके लिये विवश नहीं किया जाता था।

उस समयके राजाओंका वर्ण।

उस समयके जिन राजाओंका उल्लेख इस चीनी पर्यटकने किया है उनमें सभी वर्णके मनुष्य थे अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। ऐसा प्रतीत होता है कि राजगद्दी पाते ही सब कोई क्षत्रियपदको प्राप्त हो जाते थे।

साधारणतया भारतीयोंका शील।

साधारणतया भारतीयोंके शीलके विषयमें ह्यूनसाङ्ग वैसी ही उच्च सम्मति प्रकट करता है जैसी कि उसके पहले फाहियानने की थी। यद्यपि कोई यह नहीं कह सकता कि उस समय भारतमें ऐसे शासक विद्यमान न थे जो धार्मिक पक्षपातके कारण अन्य धर्मावलम्बियोंके साथ पक्षपात और दुराग्रह न करते हों, तथापि सर्वसाधारणके विषयमें वह यह साक्षी देता है कि वे संकीर्णहृदय और पक्षपातयुक्त न थे। वे प्रायः सुशिक्षित विद्या-व्यसनी और अतिथि-सत्कार करनेवाले थे। उसके समयमें धार्मिक सम्प्रदाय असंख्य हो गये थे। उनमेंसे कुछ बौद्ध थे और कुछ हिन्दू। वैष्णव और शैव साधुओंके परिधानका वृत्तान्त उसने विस्तारपूर्वक लिखा है। वे इस समयके वृत्तान्तोंके सर्वथा अनुकूल हैं। ह्यूनसांग ब्राह्मणों और

क्षत्रियोंकी बहुत प्रशंसा करता है। वह लिखता है कि ये लोग हाथोंके और हृदयके साफ थे। उनका जीवन सरल और पवित्र था। वे मितव्ययसे निर्वाह करते थे। ब्राह्मण लोग अपने धर्मके पक्के थे। वे रीति-नीतिका अनुसरण करते थे। प्रदेशके कुछ राजा बौद्ध-धर्मावलम्बी थे और कुछ दूसरे हिन्दू थे। दक्षिण भारतमें जैनोंका प्राबल्य था। पाटलीपुत्र और गया उजड़ चुके थे।

नालन्दमें ह्यूनसांगका स्वागत। नालन्दके भिक्षुओंने बड़े समारोहके साथ चीनी यात्रीका स्वागत किया और उसे विश्वविद्यालयका अतिथि बनाया। उसकी सेवा और सम्मान राजाओंके सदृश किया। यह चीनी यात्री मगधके चावलों और हिन्दुओंके पकवानकी बहुत प्रशंसा करता है। वह नालन्द विश्वविद्यालयके भवनकी शोभाके विषयमें भी बहुत कुछ लिखता है। यह विश्वविद्यालय बुद्धके समयसे आरम्भ होकर उस समयतक उत्तरोत्तर उन्नति ही करता गया था। इसके भवनोंमें अति विशाल, सुसज्जित और सुन्दर बड़े बड़े हाल थे जिनमें सुनहला और रुपहला काम बना हुआ था तथा हीरे और जवाहरातकी मीनाकारी हो रही थी। विश्वविद्यालयकी सीमाओंके अन्दर अगणित और विशाल वृक्ष खड़े थे। पानीके झरने, फौव्वारे और नहरें जारी थीं जिनमें कमलके फूल अत्यन्त शोभा लिये फूलते थे।

विश्वविद्यालयकी आय। विश्वविद्यालयके व्ययके लिये सौ गांव माफ थे। सब भिक्षुओं और विद्यार्थियोंको जीवनकी आवश्यक वस्तुयें और शिक्षा निःशुल्क मिलती थी। दूर दूरसे, यहांतक कि विदेशोंसे भी विद्यार्थी वहां शिक्षा पाने आते थे। परन्तु विश्वविद्यालयके नियम ऐसे कड़े

थे और प्रवेश का आदर्श इतना ऊंचा था कि विदेशोंसे आये हुए बहुत थोड़े विद्यार्थी ऊंची कक्षाओंमें प्रवेश पा सकते थे।

आसामके राजाकी ओरसे ह्यूनसांगको निमन्त्रण।

जब ह्यूनसाङ्ग नालन्दमें योगशास्त्र पढ़ रहा था तब उसको आसामके राजा कुमारने बुलाया। यह राजा हिन्दू-धर्मावलम्बी था। कन्नौज-नरेश हर्षका मित्र था। (हर्ष अपनी राजधानी थानेश्वरसे कन्नौजमें ले आया था)। परन्तु वह इतना विद्या-प्रेमी था कि प्रत्येक धर्मके विद्वानोंको अपने दरबारमें बुलाता था, उनकी सेवा और सम्मान करता था।

राजा हर्षने ह्यूनसांगको बुलाया।

इस बीचमें ह्यूनसांगकी प्रसिद्धि हर्षतक पहुंची और उसने कुमारके पास संदेश भेजा कि वह चीनी यात्रीको कन्नौजकी राजसभामें भेज दे। कुमार स्वयं बड़े समारोह और सजधजसे ह्यूनसांगके साथ कन्नौजको चल पड़ा। मार्गमें दौरा करता हुआ हर्ष उनको मिल गया। चीनी यात्रीने इस प्रथम दर्शनके बहुत ही मनोरञ्जक वृत्तान्त दिये हैं।

हर्षका चरित्र।

ह्यूनसांगने हर्षके व्यक्तिगत चरित्र और उसके जीवनकी रीतिकी बहुत प्रशंसा की है। अशोकके सदृश हर्षने भी पशु-वध बन्द कर दिया था। और सहस्रोंकी संख्यामें स्तूप, मठ और धर्म-शालायें आदि बनवाई थीं। वह सभी सम्प्रदायोंके साधुओंको बड़ी वदान्यतासे दान देता था। जहां जहां राजा ठहरता था, एक सहस्र बौद्ध भिक्षुओं और पांच सौ ब्राह्मणोंको भोजन मिलता था। प्रतिवर्ष बौद्ध-संघका अधिवेशन होता था जिसमें सिद्धान्तों और अनुष्ठानोंके विषयमें सभी बातोंका निश्चय होता था। पांचवें वर्ष एक बड़ी सभा होती थी।

हर्षका धर्म । आरम्भमें हर्ष और उसकी बहिन, जिसकी चतुराई और योग्यताकी बड़ी प्रशंसा थी, हीनयान सम्प्रदायके उपासक थे। परन्तु ह्यूनसांगने एक विशेष पुस्तक लिखकर राजाके मनमें महायान निकायका ऐसा गौरव बैठाया कि उसने एक बड़ी सभा बुलाई ताकि उसमें हीनयान और महायानके सिद्धान्तोंकी तुलना की जाय। राजा उस समय बङ्गालमें था। वह गङ्गाके दक्षिण तटसे कूच करता हुआ नब्बे दिनमें कन्नौज पहुंचा। दूसरे तटपर उसका मित्र कुमार भी बड़े समारोहके साथ कूच कर रहा था। सन् ६४३ ई० के फरवरी और मार्च मासमें राजाने कन्नौजके बाहर उस अस्थायी शिविरमें जो बड़ी सजधजके साथ इस सभाके लिये बनाया गया था, डेरा किया। इस सभामें कामरूपका राजा कुमार, वल्लभीका राजा जो विवाहके नातेसे हर्षका सम्बन्धी था, और अन्य अठारह करद राजे सम्मिलित थे। चार सहस्र भिक्षु आये थे जिनमेंसे एक सहस्र केवल नालन्द विश्वविद्यालयके थे। तीन सहस्र ब्राह्मण और जैन पण्डित थे। ये बड़े बड़े मठधारी साधु अतीव समारोहके साथ इस सभामें सम्मिलित हुए। हाथियोंपर या पालकियोंमें सवार होकर गाजे बाजे और पताकाओंके साथ आये, जैसा कि वर्त्तमानकालमें कुम्भके मेलेपर मठधारी और मण्डलाधीश महन्त और गुरु आदि आया करते हैं।*

सभाके धुरीण सदस्योंके लिये एक अति सुन्दर मण्डप रचा गया। उसके बीचमें एक ऊंचा मीनार लकड़ी और फूसका बनाया गया। उसके ऊपर भगवान् बुद्धकी सोनेकी मूर्त्ति रखी गई। वह ऊंचाईमें राजाके डीलके बराबर थी। उसके साथ ही तीन फुट ऊंची एक और छोटी मूर्त्ति तैयार की गई। वह कई

* ज्ञात पड़ता है कि यह रीति उसी समयसे प्रचलित हुई है।

दिनतक बराबर जुलूसमें लायी जाती थी। सवारीके जुलूसमें बीस राजा और तीन सौ हाथी होते थे। छतरी स्वयं हर्षके हाथमें थी। उसने शुक्र देवताका वेष धारण किया था। राजा कुमार जो उस समय सब राजाओंमें प्रतिष्ठित था, ब्रह्माके वेषमें चंवर करता था। राजा मार्गमें चारों ओर मोती और अन्य बहुमूल्य वस्तुयें बखेरता जाता था। मण्डपके द्वारपर जुलूस ठहर गया और मूर्त्तिको एक सिंहासनपर बैठाया गया राजाने स्वयं अपने हाथसे मूर्त्तिको स्नान कराया। फिर उसको ले जाकर सिंहासनपर स्थापित किया और उसके सामने सहस्त्रोंकी संख्यामें रेशमके वस्त्र जिनमें मोती और हीरे जड़े हुए थे, भेंट किये। सब साधुओं और उपस्थित जनोंको खाना खिलानेके पश्चात् ह्यूनसाङ्गको इस सभाका प्रधान बनाया गया। ह्यूनसाङ्गने उपस्थित जनोंको ललकारा कि यदि कोई व्यक्ति मेरी एक भी युक्ति काट दे तो उसको अधिकार होगा कि मेरा सिर काट ले। परन्तु किसको साहस हो सकता था कि राजाके मित्र ह्यूनसाङ्गके साथ शास्त्रार्थ करे। चीनी यात्री लिखता है कि अठारह दिनतक इसी प्रकार होता रहा और किसीने शास्त्रार्थ करनेका साहस न किया। अन्तको यह सभा अतीव अप्रिय रीतिसे समाप्त हुई। चीनी पर्यटकके विपक्षियोंके षड्यन्त्रसे किसीने मण्डपमें आग लगा दी और राजापर भी वार किया। कहा जाता है कि पांच सौ ब्राह्मणोंने अपराध किया और वे देशसे निर्वासित किये गये।

इसी वर्ष इलाहाबादमें प्रयागके स्थानपर एक मेला था जो हर पांचवें वर्ष हुआ करता था। वहां राजा स्वयं जाकर असंख्य धन, दानमें बांटा करता था। कहते हैं इस अवसरपर जो मेला हुआ वह अपने प्रकारका छठा मेला था। सभी करद राजे और लगभग पांच लाख मनुष्य, जिनमें प्रत्येक प्रकारके साधु और

संन्यासी सम्मिलित थे, एकत्र हुए। मेला ढाई मासतक रहा और प्रत्येक प्रकारका धार्मिक पूजन होता रहा। पहले दिन बुद्धको मूर्त्ति स्थापित की गई और असीम कीमती कपड़े और अन्य वस्तुयें बांटी गई। दूसरे दिन सूर्यकी मूर्त्ति स्थापित की गई, और तीसरे दिन शिवकी। प्रत्येक अवसरपर पहले दिनकी अपेक्षा आधा धन बांटा गया। चौथे दिन दस सहस्र चुने हुए भिक्षुओंको दान दिया गया। प्रत्येक भिक्षुको उत्तमोत्तम भोजनों, फूलों और सुगन्धित वस्तुओं सहित एक सौ सोनेकी मुद्रा, एक मूर्त्ति और एक परिधान दिया गया। इसके पश्चात् बीस दिन-तक ब्राह्मणोंको दान मिलता रहा। फिर दस दिनतक जैन और अन्य धर्मके पुजारियोंको दान मिला। तब उतना ही समय उन फकीरोंको दान दिया जाता रहा जो दूर दूर स्थानोंसे आये थे। फिर एक मासतक दरिद्र, अनाथ और धनहीन लोगोंको दान दिया जाता रहा। इस पक्षमें राजाने अपनी प्रत्येक अधिकृत वस्तुको दानमें दे दिया। और अन्तको अपनी बहिन राज्यश्रीसे एक पुराना परिच्छद मांगकर बुद्धकी मूर्त्तिके सामने अन्तिम पूजा की। हिन्दू-शास्त्रोंमें इस प्रकारके पक्षको सर्वस्वपक्ष कहा है।

कहते हैं कि मेलेकी समाप्तिपर हर्षके अठारह करद राजाओंने राजकीय सामग्री और वस्तुयें खरीदकर हर्षको दे दीं। परन्तु थोड़े दिनोंमें हर्षने फिर जो अतीव मूल्यवान वस्तुयें थीं वे दानमें दे दीं। इस मेलेके दस दिन पीछे चीनी पर्यटकने अपने देशको प्रस्थान किया। राजाने बहुतसा सोना चाँदी और मूल्यवान् पदार्थ उसके भेंट किये परन्तु उसने राजा कुमारसे केवल एक समूरका कोट स्वीकार किया। शेष सब वस्तुओंके लेनेसे इन्कार कर दिया। परन्तु महाराज हर्षने उसके मार्ग-व्ययके लिये तीन सहस्र मुहरें और दस सहस्र चांदीके सिक्के

एक हाथीपर लादकर उसके साथ भेजे। उधित नामक राजाको उसकी अरदलीमें भेजा कि वह उसको सीमान्ततक पहुचा आवे। सुख पूर्वक यात्रा करता हुआ ह्यूनसाग जालन्धर पहुचा। यहा उसने एक मास विश्राम किया। फिर एक नया जुलूस लेकर नमककी खानोंके निकटसे होता हुआ पामीर और खुतनके रास्तेसे सन् ६४५ ई० में चीन पहुंच गया। वह अपने साथ सख्यातीत पुस्तकें, मूर्त्तियाँ और पवित्र प्रसाद ले गया। इस सारे खजानेको लिये हुए वह कई वर्षतक पुस्तक प्रणयनमें लगा रहा। और अन्तको ६४ या ६५ वर्षकी आयुमें सन् ६६४ ई० में उसका शरीरान्त हो गया।*

महाराज हर्षकी मृत्यु। सन् ६४६ के अन्त या सन् ६४७ के आरम्भमें महाराज हर्षका देहान्त हो गया।†

महाराज हर्षके समयमें विद्याकी उन्नति। राजा हर्षके विषयमें यह बात मानी हुई है कि वह बड़ा विद्वान् था। उसके अक्षर

* मैं जब सन् १९१७ में जापानमें था तो एक जापानी बौद्ध भिक्षु भी हिमालय और तिब्बतसे पोथियों और मर्त्तियोंका एक बड़ा सग्रह लेकर टोकियो पहुचा था। जापानके लोगोंने उसका बहुत सम्मान किया। वह अनेक वर्षतक हिमालयके पर्वतों और तिब्बतके हिमालय-प्रदेशमें इन हस्तलिखित पोथियोंकी खोजमें रहा। इन सब पोथियों, मूर्त्तियों और पवित्र प्रसादोंकी वहां एक प्रदर्शनी की गई। यदि मैं भूल नहीं करता तो उनका जुलूस भी निकाला गया था। यह सारी सामग्री वजनमें कई मनोंका बोझ थी।

† विंसेंट स्मिथकी 'आक्सफोर्ड हिस्टरी आव इण्डिया, में पृष्ठ १६५ में लिखा है कि हर्षने इकतालीस वर्षतक राज्य किया और पृ० १६७ में यह लिखा है कि वह अपनी आयुके इंतालीसवें या अड़तालीसवें वर्षमें परलोकगत हुआ। यह अन्तिम अङ्क अशुद्धिकी अशुद्धि है।

बहुत सुन्दर थे और वह गद्य-पद्य दोनों लिख सकता था। उसकी रचनाओंमेंसे कुछ एक नाटक शेष हैं, अर्थात् नागानन्द, रत्नावली और प्रियदर्शक। व्याकरणपर भी उसने एक बड़ी विद्वतापूर्ण पुस्तक लिखी थी। उसके राजत्वकालमें बाण नामक संस्कृतका एक बड़ा प्रसिद्ध ग्रंथकार उत्पन्न हुआ। उसने राजा हर्षकी प्रशंसामें एक ऐतिहासिक पुस्तक लिखी है। हर्षके समयमें चीनके साथ भारतका गहरा सम्बन्ध था। सन् ६४१ ई० में हर्षने चीन सम्राट्के दरबारमें एक दूत भेजा जो सन् ६४३ ई० में एक चीनी दूतके साथ उत्तर लेकर वापस आया। यह चीनी दूत सन् ६४५ ई० तक वापस नहीं गया। इसके अगले वर्ष ही चीन-सम्राट्ने कुछ और दूत भारतको भेजे। इस बीचमें राजाका देहान्त हो चुका था। उसके मन्त्री अर्जुनने सिंहासनपर अधिकार जमाकर इन चीनी दूतोंके मार्गमें बाधा दी और उनके साथके सिपाहियोंको मार डाला या कैद कर लिया, और उनकी सम्पत्तिको लूट लिया, परन्तु दूत रातको बचकर नैपालमें चले गये।

तिब्बतके राजाने राज्यापहारी अर्जुनको पराजित किया।

उस समय तिब्बतमें जो राजा राज्य करता था उसकी स्त्री चीनके राज-परिवारकी एक राजकुमारी थी। नैपाल भी तिब्बतको कर देता था। तिब्बतके शासकने बारह सौ चुनी हुई सेना चीनी दूतोंकी सहायताके लिये दी और नैपाल-नरेशने सात सहस्र सैनिकोंका दल उनके साथ किया। इस सेनाकी सहायतासे चीनी दूत भारतके मैदानोंमें उतरे और उन्होंने तिर्हुत जिलेको विजय करके तीन सहस्र कैदियोंको मार डाला और दस सहस्र मनुष्योंको नदीमें डुबो दिया। अर्जुन भाग निकला, परन्तु एक नयी सेना इकट्ठी करके दुबारा

लड़नेपर उद्यत हुआ। इस बार भी उसकी पराजय हुई। विजेताने एक सहस्र कैदियोंका वध किया और एक दूसरे आक्रमणमें सारे राजपरिवारको, बारह सहस्र मनुष्यों समेत पकड़ लिया*। कहा जाता है कि इस चीनी सेनापतिने ५८० नगरोंको विजित किया और लौटते समय अर्जुनको अपने साथ चीन ले गया।

इस सेनापतिका नाम वानह्यूनसे था। वह सन् ६५७ ई०में एक यात्रीके रूपमें फिर भारतमें आया और चीन-सम्राट्की ओरसे बौद्धोंके पवित्र स्थानोंके लिये असंख्य उपहार लाया। वह नैपालसे होता हुआ लासाकी सड़कके मार्गसे, जो उस समय खुला था, भारतमें प्रविष्ट हुआ। और वैशाली, बुद्धगया और अन्य पवित्र स्थानोंकी यात्रा करके हिन्दूकुश और पामीरके मार्गसे लौट गया।

राजनीतिक विभागके विषयमें ह्यूनसांगके लिखे हुए वृत्तान्त। ह्यूनसांगके भ्रमण-वृत्तान्तसे तत्कालीन राजनीतिक मानचित्रके आगे दिये अधिक वृत्तान्तोंका पता लगता है :—

काश्मीर। सातवीं शताब्दीमें काश्मीर एक शक्तिशाली राज्य हो गया था और नमककी गिरिमाला, तक्षशिला और अन्य पहाड़ी राज्य उसके अधीन थे।

पंजाब। सिंधु नदी और व्यासके बीच चेहक नामका एक नया राज्य स्थापित हो चुका था। उसकी राजधानी सियालकोटके निकट थी। मुलतान प्रान्त और मुलतानका उत्तर-

* यद्यपि अर्जुन अपनी बेईमानीके कारण दण्डनीय था परन्तु उसके परिवारके लोगोंको या प्रजाको कदी कारणा किसी राजनीतिक व्यवहारकी दृष्टिसे उचित न था। आर्य लोगोंकी युद्धनीतिकी इस चीनी सेनापतिकी नीतिसे क्या तुलना हो सकती है। राजनीति तथा युद्ध नीतिमें हिन्दू आर्य संसारमें अनुपम हो गये हैं।

पूर्वी प्रदेश उसके अधीन थे। इस समय मुलतान सूर्य्यकी पूजाके लिये प्रसिद्ध हो चुका था।

सिंध। सिंध शूद्र जातिके एक बौद्ध राजाके अधीन था। सिंधु नदीका त्रिभुज द्वीप उस राजाके प्रदेशके अन्तर्गत था। बलोचिस्तान भी उसके अधीन था। सिंधकी राजधानी अलोर थी। यह वर्त्तमान रोड़ीके समीप थी। यह राज्य बहुत धनाढ्य और शक्तिशाली था। सिन्धु वर्त्तमान कालकी अपेक्षा बहुत अधिक आबाद था।

स्मिथकी सम्मतिमें उस बौद्ध राजाका नाम राय सिहरस (सहर्षण) था। इसके राजत्वकालमें अरब लोगोंका पहला आक्रमण मकरानपर हुआ। इन लोगोंका सामना करता हुआ राय सिहरस मारा गया। सन् ६४४ ई० में अरब लोगोंने मकरानपर अधिकार कर लिया और सिहरसरायका पुत्र साहसी भी उनसे लड़ता हुआ वीरगतिको प्राप्त हुआ।

जच्च और दाहिरका समय, मुहम्मदबिन कासिमका पहला आक्रमण। साहसीके मारे जानेपर सिंधका राज्य जच्च नामक एक ब्राह्मण मन्त्रीके हाथमें चला गया। उसने चालीस वर्षतक शासन किया। सन् ७१०,११ ई० में मुहम्मदबिन कासिमने सिंधपर आक्रमण किया और जच्चका पुत्र राजा दाहिर जून सन् ७१२ ई० में मार डाला गया। सिंध इसके पश्चात्‌से सदा मुसलमानोंके अधिकारमें रहा।

उज्जैन। एक ब्राह्मण वंशके राजाओंके अधिकारमें था।

आसाम। आसाम (कामरूप) के कुमार राजाका उल्लेख पहले हो चुका है।

दसवां खण्ड।

सातवीं शताब्दीसे दसवीं शताब्दीके अन्ततक भारतका इतिहास।

पहला परिच्छेद
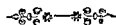
चीन, तिब्बत और नैपालके साथ भारतवर्षके सम्बन्ध।

जैसा कि पहले कह आये हैं, संसारमें चीन एक ऐसा देश है जहाँ उस देश और उस जातिका क्रमिक इतिहास आजसे चार साढे चार सहस्र वर्ष पहलेतकका मिलता है। इस समयमें चीनमें संख्यातीत राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक परिवर्त्तन हुए और चीनकी शक्ति कभी कम और कभी अधिक रही कभी कभी लगभग सारा पूर्वी एशिया और ईरानकी पश्चिमी सीमाओंतक सारा मध्य एशिया चीनकी राजनीतिक अधीनतामें रहा। यूरोपीय देशोंसे चीनके व्यापारके स्थल मार्ग उस समय तक बंद नहीं हुए जबतक कि इसलामने एशियाकोचक, [illegible] और रूमपर अधिकार नहीं कर लिया।

धार्मिक विचार-बिन्दुसे चीन भारतका शिष्य है।

भारतके इतिहासके साथ चीनका दो प्रकारसे सम्बंध रहा है।—

(१) धार्मिक।

चीनके आरम्भिक धर्म्म टाओ और कन्फ्यूशस धर्म्म थे। टाओ-धर्म्म एक प्रकारकी पितृ-पूजा है और बहुत अंशोंमें पौराणिक धर्म्मसे मिलता है। कन्फ्यूशस सिद्धान्तोंपर जोर नहीं देता। यह अधिकतर अनुष्ठान और कर्मका धर्म्म है। इस भूमिमें बुद्ध-धर्म्म-ने बहुत उन्नति की। ऊपर अनेक स्थलोंपर इस बातका उल्लेख हो चुका है कि किन रीतियोंसे बुद्ध-धर्म्म चीनमें पहुंचा। गत १५०० वर्षसे बौद्ध-धर्म्म चीनका प्रधान धर्म्म है।

(२) राजनीतिक सम्बंध।

भारतके साथ चीनके राजनीतिक सम्बन्ध तिब्बत और नैपालके द्वारा रहे हैं, क्योंकि साधारणतया चीनी यात्री और चीनी व्यापारी इन्हीं मार्गोंसे भारतमें आते रहे।

तिब्बतका प्रसिद्ध राजा सरोङ्गसन गम्पो।

तिब्बतका सबसे प्रसिद्ध राजा सरोङ्गसन-गम्पो हुआ है। इसने सन् ६४७ ई०में लासाकी नींव रक्खी, अपने देशमें बुद्ध-धर्म्मका प्रचार किया और भारतीय विद्वानोंकी सहायतासे तिब्बती लिपिकी नींव डाली। इसका सम्बन्ध विवाहके द्वारा एक ओर नैपाल-वंशसे और दूसरी ओर तेसी-सङ्ग नामके चीन सम्राट्से था। अपनी दोनों स्त्रियोंकी सहायतासे गम्पोने बौद्ध-धर्म्मको बहुत विस्तृत किया। तिब्बतकी लोक-कथाओंमें इस राजाको बुद्धका अवतार अवलोकितेश्वर कहा गया है। इसकी दोनों स्त्रियाँ हरितारा और श्वेततारा नामसे पुकारी जाती थीं। नैपाली स्त्रीका नाम हरीतारा और

चीनी स्त्रीका नाम श्वेततारा था। सन् ६६८ ई० तक चीनके साथ तिब्बतका गहरा सम्बन्ध रहा और इसी कारणसे सन् ६४४ ई० और सन् ६४५ ई० में चीनी दूत तिब्बत और नैपालसे होकर हर्षके दरबारमें पहुंचे और इसके पश्चात् जब कन्नौजके राजा अर्जुनने एक चीनी दूतसमूहके मनुष्योंको बंदी कर लिया तो तिब्बत और नेपालने वान ह्यूनसेकी सहायता करके अर्जुनको हरा दिया।

भारतकी उत्तर-पश्चिमी सीमा-पर चीनका प्रकाश।

ऐसा प्रतीत होता है कि सन् ६६१ ई० से सन् ६६५ ई० तक चीनका राज्य कोरियासे लेकर ईरानतक फैला हुआ था और कपिस* भी चीनके राज्यमें मिला हुआ था। राजकीय जुलूसमें सुवातकी उपत्यकाके दूत भी सम्मिलित थे। परन्तु यह शोभायुक्त साम्राज्य चिरकालतक नहीं रहा। इसके पश्चात् सातवीं शताब्दीके आरम्भतक चीनका भारतकी सीमाके साथ कोई राजनीतिक सम्बन्ध नहीं रहा। सन् ७१६ में फिर जब चीनकी मुठभेड़ अरब आक्रमकोंके साथ हुई तो चीन-सम्राट्ने सुवात, बदाखशान और चत्रालके मुखियों-को राजकीय प्रमाण-पत्र प्रदान किये और वैसा ही सम्मान यासीन, ज़ाबुलिस्तान अर्थात् गजनी, कपिस अर्थात् उत्तर-पूर्वी अफगानिस्तान और काश्मीरके शासकोंका किया। सन् ७२० ई० में सम्राट्ने काश्मीर-नरेश चन्द्रापीड़को शाही खिलअत प्रदान की और सन् ७३३ ई० में इसके भाई मुक्तापीड़ ललितादित्यका भी ऐसा ही सम्मान किया।

* ऐतिहासिक पुस्तकोंमें कपिस कभी काश्मीरका और कभी उत्तर पूर्वी अफ-गानिस्तानका नाम कहा गया है।

तिब्बतमें बौद्ध-धर्म-का विस्तार । सन् ७४३ ई० से सन् ७७६ ई० तक तिब्बतमें बुद्ध-धर्मकी उन्नतिका विशेष-काल गिना जाता है । इस समय तिब्बतके राजाने शान्तिरक्षित और पद्मसंभव नामके दो भारतीय ऋषि महात्माओंको अपने दरबारमें बुलाकर उनसे उस शासन-पद्धतिके स्थापित करनेमें सहायता ली जिसका सम्बन्ध इस समयतक लासाके नामके साथ बताया जाता है ।

ऐसा जान पड़ता है कि नवीं शताब्दीमें लंदर्म नामक एक राजाने बौद्ध-धर्मको अपने प्रदेशसे निकाल दिया और सन् ८४२ ई० में फिर एक लामाने राजाका वध करके अपने सहधर्मियोंका बदला लिया ।

सन् १०१३ ई० और सन् १०४२ ई० में मगध देशसे बौद्ध प्रचारक तिब्बतमें पहुंचे और वहां उन्होंने बौद्ध-धर्मको बहुत दृढ़ता-पूर्वक स्थापित कर दिया ।

नैपाल । भारतके इतिहासमें नैपालका प्रथम उल्लेख अशोकके कालमें आता है । नैपाल उस समय मगध राज्यका एक भाग था और महाराजा अशोकने नैपालमें पाटन नामका एक नगर बसाया । वहाँ उन्होंने और उनकी पुत्रीने बहुतसे भवन बनवाये थे । उसके पश्चात् समुद्रगुप्तके समयमें नैपालका उल्लेख मिलता है । इलाहाबादके स्थानपर जो लाट समुद्रगुप्तने बनवाई थी उसमें नैपाल गुप्तराज्यकी करद रियासतोंमें गिना गया है । फिर सातवीं शताब्दीमें कन्नौजपति हर्षका राज्य भी नैपालकी सीमातक पहुंचता था । राजा हर्षने अपना संवत् नैपालमें प्रचलित कराया । हर्षके मरनेके पश्चात् नैपालका सम्बंध तिब्बतसे हो गया और सन् ८७६ ई० से नवीन नैपाली संवत् प्रचलित हुआ ।

नैपालका इतिहास। नैपालके लिये इस देशकी पुस्तकोंमें पर्याप्त सामग्री पाई जाती है। सन् १७६८ ई० में नैपालको गोरखोंने विजय किया और वहाँ वर्त्तमान राज्य-संस्था स्थापित हुई। यह अपने संगठनमें जापानके उस कालसे मिलती है जब कि जापानमें जापान-सम्राट्का कुछ अधिकार न था और सब अधिकार शोगणके हाथमें थे। इसी प्रकार वर्त्तमान नैपाल-नरेश नाम मात्राका राजा है। वास्तविक शासन वहाँके प्रधान मन्त्रीके हाथमें है। नैपाल इस समय एक स्वाधीन राज्य गिना जाता है यद्यपि अपने वैदेशिक सम्बन्धोंमें वह ब्रिटिश गवर्नमेंटके अधीन है। वर्त्तमान नैपालमें पूर्वसे पश्चिमतक ५०० मील लम्बा प्रदेश है।

नैपालका धर्म्म। महाराज अशोकने नैपालमें बुद्ध-धर्म्मको फैलाया। सातवीं शताब्दीमें तन्त्र-सिद्धान्तोंने महायान धर्म्ममें बहुत कुछ प्रवेश पा लिया। इसका परिणाम यह हुआ कि नैपालका बुद्ध-धर्म्म बहुत कुछ शैवमतके सदृश हो गया। नैपालमें भिक्षुओंको विवाह करनेकी आज्ञा है। इस समय नैपालका धर्म्म अधिकांश शैवमतका पौराणिक हिन्दू धर्म्म है।

दूसरा परिच्छेद ।

आसाम और काश्मीर ।

आसाम भारतकी उत्तर-पूर्व सीमाका नाम है। इसका प्राचीन नाम कामरूप है। सबसे पहले इसका उल्लेख समुद्रगुप्तके समयमें आता है। इलाहाबादके स्तम्भपर कामरूपको गुप्त-साम्राज्यके करद राज्योंमेंसे वर्णन किया गया है। इसके पश्चात् फिर आसामका उल्लेख चीनी यात्री ह्यूनसाङ्गके समयमें आता है जो कामरूपके राजा कुमारके निमन्त्रणपर नालन्दसे वहां गया। कुमारका दूसरा नाम भास्कर वर्मा भी था।

ह्यूनसाङ्ग लिखता है कि राजा ब्राह्मण था। इसके पश्चात् फिर कामरूपका उल्लेख बङ्गालके पालवंशके वृत्तान्तोंमें आता है। बारहवीं शताब्दीमें कुमार पालने अपने मन्त्री वैद्यदेवको राजकीय अधिकार देकर इस प्रान्तका शासक बनाया। सन् १३२८ ई०में शान जातिके अहोम नामक वंशने एक नवीन कुलकी नींव डाली, जिसका सन् १८२५ ई० तक इसपर अधिकार रहा। इस प्रान्तके निवासी अधिकतर मङ्गोल-जातिके हैं। मङ्गोल-जातिके धार्मिक विचारोंने एक विचित्र प्रकारका तन्त्र उत्पन्न कर दिया है; जो ब्राह्मणिक और बौद्ध-मतकी मिलावट है। गौहाटीका समीपवर्ती कामाक्षाका मन्दिर शाक्त हिन्दुओंके अतीव पवित्र देवालयोंमेंसे गिना जाता है। आसाम प्रान्तका इतिहास इस बातकी अतीव प्रामाणिक साक्षी उपस्थित करता है कि किस प्रकार ब्राह्मण लोग अनार्य्य जाति-

योंको आर्य्य सामाजिक संगठनमें प्रविष्ट करके हिन्दू बना लेते थे। मुसलमानोंने अनेक बार आसाम प्रान्तपर धावे किये परन्तु हर बार विफलमनोरथ हुए। पहला धावा बख़्तियार बिन मुहम्मदके पुत्रने सन् १२०४ ई०में किया और वह कृतकार्य न हुआ। फिर दूसरी बार दूसरे वर्ष उसने धावा किया और वहां मारा गया। सन् १८१६ ई०में ब्रह्माके लोगोंने इस प्रान्तपर अधिकार कर लिया। सन् १८२६ में यह प्रान्त अंगरेज़ी राज्यमें मिल गया।

काश्मीर

काश्मीरके सविस्तर वृतान्त कल्हनकी राजतरङ्गिणीसे मिलते हैं। इसका अंगरेज़ीमें भी अनुवाद हो चुका है। इस स्थानपर काश्मीरके इतिहासके कतिपय संक्षिप्त वृतान्त दिये जाते हैं। काश्मीर अशोकके राज्यमें मिला हुआ था। यह भी कहा जाता है कि कनिष्कने बौद्ध-धर्मकी दूसरी महासभा काश्मीरमें की थी। राजा हर्षने भी काश्मीरपर धावा किया था और वह यहांसे महात्मा बुद्धका एक दांत बड़े समारोहके साथ ले गया था। काश्मीरका वास्तविक इतिहास करकोट वंश से, जिसको हर्षके समयमें दुर्लभवर्द्धनने चलाया था, आरम्भ होता है। चीनी यात्री ह्यूनसाङ्गने दो वर्ष काश्मीरमें काटे। महाराज ललितादित्यने जिसको चीन-सम्राटकी ओरसे खिलअत मिली थी, काश्मीरकी शक्तिको बहुत बढ़ाया। यह राजा ३६ वर्ष तक राज्य करता रहा। उसने कन्नौज-नरेश यशोवर्म्मनको पूर्ण रूपसे पराजित किया और सिन्धु नदीके तटपर तिब्बतियों, भूटानियों और तुरकोंको जीता। मार्तण्डका प्रसिद्ध मन्दिर उसके समयमें बनाया गया था। उसके भग्नावशेष अबतक पड़े हैं। ललितादित्यका उपनाम मुक्तापीड़ भी था। इसके पुत्र विजयापीड़ या विनयादित्यने भी अच्छी प्रसिद्धि प्राप्त की और कन्नौजके राजा

वज्रायुधको राज्यच्युत कर दिया। इतिहास-लेखक इस राजाके अन्याय, निर्दयता और लोभकी असंख्य कहानियां वर्णन करता है। सन् ८५५ ई०में राजा अवन्तिवर्मन गद्दीपर बैठा। वह बड़ा विद्या-रसिक था। उसके मन्त्री सुय्यने सिंचाई और सण्डासकी सफाईकी अत्युपयोगी कल्पनायें प्रचलित कीं। राजा अवन्तिवर्मनने सन् ८५५ ई०से सन् ८८३ ई० तक और इसके पश्चात् शङ्करवर्मनने सन् ८८३ ई० से सन् ९०२ ई० तक शासन किया। यह राजा भी बड़ा लालची था। इसने भी बहुतसे मन्दिरोंको लूटा। राजा पार्थको बाल्यकालमें ही गद्दी मिल गई थी। इसके राजत्वकालमें सन् ९१७ ई० या सन् ९१८ में एक भारी अकाल पड़ा। इस वंशका इतिहास अत्याचार और प्रजा-पीड़नकी एक क्रमिक कहानी है। यह वंश लगभग सन् १३३९ ई० तक काश्मीरमें राज्य करता रहा। इस वर्षमें एक मुसलमान-वंशने इस देशपर अधिकार करके लोगोंको बड़ी क्रूरतासे और बलात्कार मुसलमान बना लिया। अकबरने सन् १५८७ ई०में काश्मीरको विजय करके मुगल-राज्यमें मिला लिया।

तीसरा परिच्छेद

कन्नौज, पंजाब, अजमेर, देहली और ग्वालियरकी राजधानियां।

कन्नौजका उल्लेख महाभारतमें मिलता है। महर्षि पतञ्जलिने भी इसका उल्लेख किया है। परन्तु इतिहासमें इसका पहला उल्लेख फाहियानके भ्रमण-वृत्तान्तमें आता है। यह चीनी पर्य-

तक सन् ४०५ ई०के लगभग दूसरे चन्द्रगुप्त और विक्रमादित्यके समयमें भारतमें आया था। उसने लिखा है कि इस नगरमें दो बौद्ध मठ और एक स्तूप था। कन्नौजको गुप्त राजाओंके शासन-कालमें बड़ी उन्नति प्राप्ति हुई। महाराज हर्षके समयमें यह नगर उन्नतिके शिखरपर था। उस समय इसमें एक सौ मठ थे और महायान तथा हीनयान सम्प्रदायके लगभग दस सहस्र भिक्षु वहां निवास करते थे। हिन्दू-धर्म भी बौद्ध-धर्मके समान ही उन्नति-पर था। हिन्दुओंके लगभग दो सौ मन्दिर थे। जिनमें सहस्रों मनुष्य प्रतिदिन पूजा करते थे। नगर बहुत मजबूत बना था और गङ्गाके पूर्वी तटपर चार मीलतक फैला हुआ था। नगरमें बड़े बड़े उद्यान और तालाब थे। अधिवासी बहुत धनाढ्य थे। चीनी पर्यटकके लेखानुसार सर्वसाधारण रेशमी वस्त्र पहनते थे और कला कौशल तथा विद्याकी बहुत चर्चा थी।

गजनीके महमूदका धावा।

सन् १०१८ ई०में जब गजनीके महमूदने पहले पहल कन्नौजपर आक्रमण किया तो उस समय नगरकी रक्षाके लिये सात दुर्ग बने हुए थे और नगरमें दस सहस्र मन्दिर थे।

कन्नौज यद्यपि दो बार उत्तरी भारतके राज्यकी राजधानी बना, एक बार महाराज हर्षके समयमें और दूसरी बार महाराज भोज और महाराजा महेन्द्रपालके समयमें, परन्तु वास्तवमें वह केवल पचाल राज्यकी राजधानी था। उत्तरी पचालका राज्य महाभारतके समयमें द्रोणाचार्यके भागमें आया और दक्षिणी पचाल द्रुपदके राज्यके अन्तर्गत था। उस समय पंचाल-देशमें पंजाब भी मिला हुआ था। महाराज हर्षकी मृत्युके पश्चात् पहला राजा जिसने कुछ प्रसिद्धि प्राप्त की यशोवर्मन था। इसने सन् ७३१ ई०में चीनको दूत भेजे। इसके नौ दस वर्ष बाद

काश्मीरके राजा ललितादित्य उपनाम मुक्तापीड़ने राज्यच्युत कर दिया। यशोवर्मन संस्कृत-भाषाके प्रसिद्ध कवि भवभूति और प्राकृतके वाक्पति रावका आश्रयदाता था। यह वंश सन् ८१६ ई० तक कन्नौजमें शासन करता रहा, यद्यपि सन् ८०० ई०में बङ्गाल-विहारके राजा धर्मपालने इन्द्रायुधको राज्यच्युत करके उसके स्थानमें उसके एक सम्बन्धी चक्रायुधको राज मुकुट दे दिया था। परन्तु सन् ८१६ ई० में राजपूतानेकी रियासत गुर्जर प्रतिहारके राजा नागभटने फिर उससे राज्य छीन लिया।

नागभटकी राजधानी कन्नौज।

नागभटने अपनी प्राचीन राजधानी भिलमालको छोड़ कन्नौजको अपनी राजधानी बनाया और उसकी मृत्युपर उसका पुत्र रामभद्र सन् ८२५ ई०से सन् ८४० ई० तक शासन करता रहा।

मिहिर भोज।

हिन्दुओंके उपाख्यानोंमें महाराज भोज ऐसा ही प्रतिष्ठित है जैसा कि विक्रमादित्य। इसने उत्तर भारतको फिर अपने झंडेके नीचे इकट्ठा किया और लगभग पचास वर्षतक सन् ८४० ई०से सन् ८९० ई० तक शासन किया। पंजाबका वह सारा भाग जो सतलजके पूर्वमें है, राजपूतानेका बहुत सा भाग, लगभग साराका सारा वह प्रदेश जो इस समय आगरा और अवधके संयुक्त-प्रान्तों और ग्वालियर राज्यमें है, इसके राज्यमें था। काठियावाड़, गुजरात और मालवा भी राजा भोजके अधीन थे।

भोजके राज्यकी सीमा।

भोजका साम्राज्य पूर्वमें बङ्गाल और विहारके राजा देवपालसे मिलता था। इसको उसने धावा करके सफलतापूर्वक पराजित किया। उत्तर-पश्चिममें सतलज नदी उसकी सीमा थी। पश्चिम-

में हका या वहिदह नदी, जिसका इस समय कोई नाम-निशान मौजूद नहीं, सिन्धुके मुसलमान शासकोंसे उसके राज्यको अलग करती थी। दक्षिण-पश्चिममें राजा राष्ट्रकूट उसका प्रतियोगी था। दक्षिणमें चन्देल राजपूतोंका जेजाकभक्ति राज्य था जिसको आजकल बुन्देलखण्ड कहते हैं। यह राज्य सम्भवतः उसका सिक्का मानता था। भोज अपने आपको विष्णुका अवतार समझता था और उसने आदि वराहकी उपाधि धारण की थी।

भोजके चरित्रके सम्बन्धमें हिन्दू उपाख्यान।

भोजके विषयमें बहुतसे उपाख्यान और कहानियाँ हिन्दुओंमें परम्परासे चली आ रही हैं। वे उसकी वदान्यता और विद्यानुरागकी प्रशंसा करती हैं। सामान्यतः हिन्दुओंका यह विश्वास है कि राजा भोजके समयमें इस देशमें कोई भी मनुष्य अपढ़ न था। न उसके समयमें चोरी होती थी और न कोई भूखों मरता था। परन्तु एक राजा भोज मालवामें भी हुआ है। वह विद्यारसिक होनेके लिये विशेष रूपसे प्रसिद्ध है।

महेन्द्रपाल।

भोजका उत्तराधिकारी उसका पुत्र महेन्द्रपाल हुआ। उसके शासन-कालमें राज्यकी सीमायें पूर्ववत् वही रहीं जो भोजके समयमें थीं। भोजका गुरु राजशेखर नामक एक बड़ा प्रसिद्ध कवि था। उसकी रचनाओंमेंसे कर्पूरमञ्जरी नामक एक नाटक उल्लेखनीय है।

द्वितीय भोज और महिपाल।

सन् ६४० ई० तक महेन्द्रपालके पुत्र द्वितीय भोजने और तत्पश्चात् उसके सौतेले भाई महिपालने शासन किया। महिपालके समयमें कन्नौज-राज्यका अधःपात आरम्भ हुआ। महिपालके पश्चात् देवपाल और जयपाल सिंहासनपर बैठे। परन्तु उनका राज्य धीरे धीरे कम होता गया।

मुसलमानोंका आगमन। इस कालमें मुसलमानोंने उत्तर-भारतपर आक्रमण करना आरम्भ कर दिया। अबतक उनका अधिकार सिन्धपर था। दक्षिणमें वे अपने प्रबल पड़ोसी राष्ट्रकूटोंसे मैत्री रखते थे। वे उत्तर-भारतमें कभी कभी डाका डालते थे। परन्तु इससे अधिक उनके आक्रमणोंका कोई महत्व न था। कन्नौज-राज्यके दुर्बल हो जानेपर उन्होंने उत्तर भारतको सर करना आरम्भ किया। सन् ९८६ ई० और सन् ९८७ ई० में गजनीके अमीर सबुक्तगीनने भारतपर अपना पहला आक्रमण किया। उस समय पञ्जाबमें राजा जयपाल राज्य करता था। उसकी राजधानी भटिण्डामें थी। यह इस समय पटियाला राज्यमें है और बड़ा भारी रेलवे-जंक्शन है। जयपालके साथ सबुक्तगीनकी दो तीन लड़ाइयां हुईं। इनमें उसकी या उसके साथियोंकी पराजय हुई। सन् ९९१ ई०में ऐसा प्रतीत होता है कि बहुतसे हिन्दू राजोंने इकट्ठे होकर कुर्म उपत्यकाके समीप सुबुक्तगीनका सामना किया परन्तु हार खाई और मुसलमानोंने पेशावरपर अधिकार कर लिया। जयपालने सुलतान महमूदसे हार खाकर आत्म-हत्या कर ली। उसके सिंहासनपर उसका पुत्र आनन्दपाल बैठा। अलबेरूनी लिखता है कि जयपालका गुरु उग्रभूति था। उसने संस्कृत-व्याकरणपर एक प्रामाणिक ग्रन्थ लिखा है। भारतपर गजनीके महमूदके आक्रमणोंका वर्णन दूसरी पुस्तकमें किया जायगा। यहांपर कतिपय और हिन्दू-वंशोंका वर्णन किया जाता है जो उस समय या उस समयके लगभग भारतके भिन्न भिन्न भागोंपर शासन करते थे।

जयपालके उत्तराधिकारी। जयपालकी मृत्युके पश्चात् उसका पुत्र राज्यपाल गद्दीपर बैठा। राज्यपालने महमूदसे पराजित होकर उससे सन्धि कर ली। इससे

शेष हिन्दू राजे रुष्ट हो गये। उन्होंने इकट्ठे होकर सन् १०१६ ई० में कन्नौजपर धावा किया और राज्यपालका वध कर डाला कन्नौजका बाकी बचा खुचा इलाका उसके पुत्र त्रिलोचनपालके अधिकारमें आया। उसकी सहायताके लिये गजनीके महमूदने चढ़ाई की और उस भागमें बहुत सी लूट मार की। उस समय उत्तर-भारतमें चन्देल राजपूतोंका प्राबल्य था। परन्तु इन्होंने महमूदका सामना नहीं किया। वे उसे यमुना पार उतरनेसे न रोक सके। इसके पश्चात् कन्नौजमें छोटे छोटे अप्रसिद्ध राजा राज्य करते रहे। सन् १०९० ई० में कन्नौजको गहरवार जातिके राजपूतोंने विजय किया। उनके राजाका नाम चन्द्रदेव था। उनके राज्यमें बनारस, अयोध्या और सम्भवतः दिल्लीका प्रान्त मिला हुआ था।

राठौर राजपूत। गहरवार वंशको राठौर राजपूत भी कहा जाता है। इस वंशने सन् ११९४ ई० तक कन्नौजमें शासन किया। अन्तको सुल्तान मुहम्मद गोरीने उनको पराजित किया। चन्द्रदेवके पोते गोविन्दचन्द्रने सन् ११०४ ई० से सन् ११५५ ई० तक शासन किया। इस बातके पर्याप्त प्रमाण मौजूद हैं कि गोविन्दचन्द्रके राजत्वकालमें कन्नौजने फिर महत्ता प्राप्त की और अपने खोये हुए गौरवको एक बड़े अंशमें पुनः प्राप्त किया।

राजा जयचन्द। राजा जयचन्द कन्नौजके प्रसिद्ध शासकोंमेंसे था। हिन्दू ऐतिह्योंमें इसका वर्णन बड़ी घृणासे किया जाता है। यह अजमेर और दिल्लीके राजा पृथ्वीराजका घोर शत्रु था। जब उसने अपनी पुत्री संयोगिताका स्वयम्बर रचा तो पृथ्वीराजकी एक मूर्त्ति बनाकर उसको अतीव नीच कर्मपर लगा दिया। संयोगिताने सभामें आते ही पृथ्वीराजके

गलेमें जयमाल पहना दी। परन्तु जयचन्दने संयोगिताके इस निर्वाचनको स्वीकार नहीं किया। कहते हैं कि संयोगिताको ले जानेके लिये पृथ्वीराजको जयचन्दके साथ युद्ध करनेकी आवश्यकता न हुई। इसके विषयमें हिन्दुओंमें बहुतसे सर्वप्रिय गीत और कहानियां मौजूद हैं।

मुसलमान इतिहासकारोंका कथन। मुसलमान इतिहासकारोंने जयचन्दको बनारसका राजा लिखा है और कहा है कि इसके राज्यमें उत्तरसे दक्षिण, चीनकी सीमाओंसे लेकर मालवातक और पूर्वसे पश्चिम, समुद्रसे लेकर लाहौरसे दस दिनके अन्तरतक सारा देश मिला हुआ था। शहाबुद्दीनने यमुनाके निकट इटावाके जिलेमें चन्दावरके स्थानपर इसे पराजय दी और उसकी सेनाका एक बड़ा भाग मार डाला। इस वधमें राजा भी मारा गया। कहते हैं यहांसे शहाबुद्दीन गोरी बनारसतक लूट-मार करता हुआ चला गया। वहांसे चौदह सौ ऊंटोंपर लूटका माल लादकर वापस लौट गया।

राजा जयचन्दका देशद्रोह। सामान्यतः हिन्दू ऐतिह्योंमें यह विश्वास किया जाता है कि जयचन्दने अपने प्रतियोगी रायपिथौरा अर्थात् पृथ्वीराजको पराजित करनेके लिये शहाबुद्दीनको बुलाया था। यह बात मानी हुई है कि पृथ्वीराजने जब उत्तर भारतके अनेक राजाओंको इकट्ठाकर शहाबुद्दीनसे स्वदेशकी रक्षाके प्रयत्नमें, पानीपतके रणक्षेत्रमें, अन्तिम युद्ध किया तो जयचन्द इसमें सम्मिलित नहीं हुआ।

जयचन्दकी हत्यापर कन्नौजके प्रसिद्ध राज्यकी समाप्ति हो गई।

चौहान जातिके राजपूतोंके राज्य ।

दसवीं शताब्दीमें अजमेर और साँभरके प्रदेशमें चौहान जातिके राजपूत राज्य करते थे और दिल्लीमें तोमर वंशके राजपूतोंका शासन था। बारहवीं शताब्दीके मध्यमें चौहान जातिके विग्रहराजने जिसको विसलदेव भी लिखा है, दिल्ली-को जीतकर अजमेरके साथ मिला लिया। राजा पृथ्वीराज चौहान उस समय दिल्लीमें शासन करता था जब शहाबुद्दीन गोरीने भारतपर चढ़ाई की।

दिल्लीकी नींव।

कहते हैं वर्त्तमान दिल्लीको सन् ९९३ ई० या सन् ९९४ ई० में तोमरवंशके राजाओंने बसाया था। सामान्यतः यह ऐतिह्य है कि राजा अनङ्गपालने उसको बसाया परन्तु राजा अनङ्गपाल लगभग सन् १०४५ ई० में हुआ और उसने उस स्थलपर जहां अब कुत्ब साहबकी मसजिद खड़ी है, एक लाल किला बनवाया। लोहेकी जो लाट वहा खड़ी है उसके विषयमें लोगोंका विश्वास है कि तोमर जातिके राजपूत उसको मथुरासे उखड़वाकर लाये थे। और सन् १०६२ ई० के लगभग उसको कतिपय हिन्दू मन्दिरोंके समूह-के बीचमें खड़ा कर दिया। इन मन्दिरोंकी सामग्रीसे मुसलमा-नोंने बादमें एक बड़ी मसजिद बनाई।

राजा विसलदेवके समयके दो नाटक।

कुछ वर्ष हुए अजमेरकी बड़ी मसजिदके नीचेसे काले पत्थरोंकी छः शिलायें निकलीं। उनपर दो ऐसे नाटक लिखे हुए थे जिनका इस समयतक किसीको ज्ञान न था। उनमेंसे एकका नाम ललितविग्रह राज नाटक है। यह विसल-देवके सम्मानमें लिखा गया था। दूसरा हरकलि नाटक स्वयं विसलदेवकी रचना है।

गलेमें जयमाल पहना दी। परन्तु जयचन्दने संयोगिताके इस निर्वाचनको स्वीकार नहीं किया। कहते हैं कि संयोगिताको ले जानेके लिये पृथ्वीराजको जयचन्दके साथ युद्ध करनेकी आवश्यकता न हुई। इसके विषयमें हिन्दुओंमें बहुतसे सर्वप्रिय गीत और कहानियां मौजूद हैं।

मुसलमान इतिहासकारोंका कथन।

मुसलमान इतिहासकारोंने जयचन्दको *बनारसका राजा लिखा है और कहा है कि* इसके राज्यमें उत्तरसे दक्षिण, चीनकी सीमाओंसे लेकर मालवातक और पूर्वसे पश्चिम, समुद्रसे लेकर लाहौरसे दस दिनके अन्तरतक सारा देश मिला हुआ था। शहाबुद्दीनने यमुनाके निकट इटावाके जिलेमें चन्दावरके स्थानपर इसे पराजय दी और उसकी सेनाका एक बड़ा भाग मार डाला। इस वधमें राजा भी मारा गया। कहते हैं वहांसे शहाबुद्दीन गोरी बनारसतक लूट-मार करता हुआ चला गया। वहांसे चौदह सौ ऊंटोंपर लूटका माल लादकर वापस लौट गया।

राजा जयचन्दका देशद्रोह।

सामान्यतः हिन्दू ऐतिह्योंमें यह विश्वास किया जाता है कि जयचन्दने अपने प्रतियोगी रायपिथौरा अर्थात् पृथ्वीराजको पराजित करनेके लिये शहाबुद्दीनको बुलाया था। यह बात मानी हुई है कि पृथ्वीराजने जब उत्तर भारतके अनेक राजाओंको इकट्ठाकर शहाबुद्दीनसे स्वदेशकी रक्षाके प्रयत्नमें, पानीपतके रणक्षेत्रमें, अन्तिम युद्ध किया तो जयचन्द इसमें सम्मिलित नहीं हुआ।

जयचन्दकी हत्यापर कन्नौजके प्रसिद्ध राज्यकी समाप्ति हो गई।

चौहान जातिके राजपूतोंके राज्य ।

दसवीं शताब्दीमें अजमेर और साँभरके प्रदेशमें चौहान जातिके राजपूत राज्य करते थे और दिल्लीमें तोमर वंशके राजपूतोंका शासन था। बारहवीं शताब्दीके मध्यमें चौहान जातिके विग्रहराजने जिसको विसलदेव भी लिखा है, दिल्लीको जीतकर अजमेरके साथ मिला लिया। राजा पृथ्वीराज चौहान उस समय दिल्लीमें शासन करता था जब शहाबुद्दीन गोरीने भारतपर चढ़ाई की।

दिल्लीकी नींव।

कहते हैं वर्त्तमान दिल्लीको सन् ९९३ ई० या सन् ९९४ ई० में तोमरवंशके राजाओंने बसाया था। सामान्यतः यह ऐतिह्य है कि राजा अनङ्गपालने उसको बसाया परन्तु राजा अनङ्गपाल लगभग सन् १०४५ ई० में हुआ और उसने उस स्थलपर जहां अब कुत्ब साहबकी मसजिद खड़ी है, एक लाल किला बनवाया। लोहेकी जो लाट वहां खड़ी है उसके विषयमें लोगोंका विश्वास है कि तोमर जातिके राजपूत उसको मथुरासे उखड़वाकर लाये थे। और सन् १०९२ ई० के लगभग उसको कतिपय हिन्दू मन्दिरोंके समूहके बीचमें खड़ा कर दिया। इन मन्दिरोंकी सामग्रीसे मुसलमानोंने बादमें एक बडी मसजिद बनाई।

राजा विसलदेवके समयके दो नाटक।

कुछ वर्ष हुए अजमेरको बडी मसजिदके नीचेसे काले पत्थरोंकी छः शिलायें निकलीं। उनपर दो ऐसे नाटक लिखे हुए थे जिनका इस समयतक किसीको ज्ञान न था। उनमेंसे एकका नाम ललितविग्रह राज नाटक है। यह विसलदेवके सम्मानमें लिखा गया था। दूसरा हरकेलि नाटक स्वयं विसलदेवकी रचना है।

महाराजा पृथ्वी-राज या राय-पिथौरा।

प्रसिद्ध पृथ्वीराज चौहान विग्रहराजका भतीजा था। उसने सन् ११८२ ई०में चन्देल-राज परमालको हराकर महोवाको अपने राज्यमें मिला लिया।* पृथ्वीराजने पहली वार तरावड़ीके मैदानमें शहाबुद्दीन गोरीको एक कड़ी पराजय दी। हार खाकर शहाबुद्दीन सिन्ध नदीके पार वापस चला गया। हिन्दू ऐतिह्योंके अनुसार पृथ्वीराजने एकसे अधिक वार शहाबुद्दीन गोरीको हार दी और एक वार तो उसको गिरफ्तार करके छोड़ दिया। यह अन्तिम घटना बहुत असम्भाव्य नहीं है, क्योंकि हिन्दू क्षत्रिय प्राचीन कालसे अपने पराजित शत्रुका वध अथवा बन्दी करना बहुत बुरा समझते थे। इस सारे लम्बे इतिहासमें कोई घटना ऐसी नहीं मिलती जहां किसी हिन्दू राजाने किसी पराजित राजाको पकड़ लेनेके पश्चात् मार डाला या बन्दी किया हो। लड़ाईमें अवश्य राजा मारे गये। वे राज्यविप्लवोंमें भी मारे गये। परन्तु सामान्यतः हिन्दुओंको किसी पकड़े हुए शत्रुका वध या उसे कैद करनेसे घृणा थी।† जैसा कि ऊपर उल्लेख हो चुका है कि किस प्रकार बालादित्यने मिहिर-गुलको पकड़कर छोड़ दिया और किस प्रकार मिहिरगुलने

---

* कविक सम्भव है कि यह वही लड़ाई है जिसके सम्बन्धमें आल्हा उदलकी वीरताकी कहानियां गाई जाती हैं (सर्वप्रिय महाकाव्योंमें महोवाके आल्हा उदल उसी कोटिके वीर गिने जाते हैं जैसे कि राजपूत जैमल और फत्ता।

† आरम्भिक कालके मुसलमान ऐतिहासिकोंने हिन्दुओंकी इस नीतिकी प्रशंसा की है। सर हेनरी इलियट कृत 'भारतवर्षका इतिहास'के प्रथम खण्डमें यह उल्लेख है कि हिन्दू किसी प्रदेशको जीतकर सदा उसी कुलके किसी प्रतिष्ठित पुरुषको दे देते थे। एक और मुसलमान ऐतिहासिकने भी लिखा है कि हारे हुए प्रतियोगीका वध या उसे बंदी करनेकी प्रथा हिन्दुओंमें न थी। यदि कोई ऐसा करता था तो लोग उसे ताना देते थे।

उसका बदला लिया। राजपूतानेके इतिहासमें भी कई ऐसी घटनायें हैं जिनमें राजपूतोंने काबूमें आये हुए शत्रुको छोड़ दिया इसलिये हिन्दू कहानी लेखकोंका यह कथन कोई असम्भाव्य नहीं हो सकता कि पृथ्वीराजने शहाबुद्दीनको छोड़ दिया हो। जो भी हो शहाबुद्दीन थोड़े ही कालके पश्चात् एक नई सेना लेकर पृथ्वीराजके मुकाबिलेमें आ डटा। पृथ्वीराजकी सहायताके लिये जयचन्दके सिवा उत्तर भारतके सभी राजा आये थे, पर पानीपतके स्थलपर उसकी हार हुई।

पृथ्वीराजकी मृत्यु। विंसेंट स्मिथकी सम्मतिमें इस ऐतिह्यमें कुछ भी सत्यांश नहीं है कि पृथ्वीराज पकड़ा जाकर गजनी पहुंचाया गया, वहां उसने सुल्तानपर वार किया और फिर उसके टुकड़े कर दिये गये। स्मिथकी सम्मतिमें पृथ्वीराज पानीपतके क्षेत्रमें मारा गया। एक हिन्दू ऐतिह्य भी यह कहता है कि कन्नौज-नरेश जयचन्दकी पुत्री संयोगिता जो पृथ्वीराजकी प्रिय पत्नी थी, अपने पतिका सिर लेकर सती हुई। स्मिथ गजनीवाली कहानीको इसलिये निर्मूल ठहराता है कि सुलतान शहाबुद्दीन गजनी पहुंचनेसे पहले ही मार्गमें मारा गया था। इसलिये यह सत्य नहीं हो सकता कि पृथ्वी-राजने गजनी पहुंचकर सुलतानपर आक्रमण किया हो। परन्तु यह हो सकता है कि सुलतानसे अभिप्राय मुहम्मद गोरीके अतिरिक्त किसी और व्यक्तिसे हो। परन्तु जो भी हो यह बात मानी हुई है कि पृथ्वीराज अपने देशकी रक्षा करता हुआ शहा-बुद्दीन गोरीके हाथसे मारा गया। स्मिथ लिखता है कि पहले पृथ्वीराजको कैद कर लिया गया और फिर निर्दयतापूर्वक मार डाला गया। पृथ्वीराजकी हारके पश्चात् मुसलमानोंने चार पांच वर्षके समयके अन्दर अन्दर दिल्ली, कन्नौज, अज-

मेर, बनारस, ग्वालियर और अनहिलवाड़को जीतकर भारतपर अपना अधिकार जमा लिया। सन् १२०३ ई० में कालञ्जर भी मुसलमानोंके अधिकारमें आ गया।

राठौरोंका मारवाड़से कूच। कन्नौजके मुसलमानोंके अधिकारमें आनेके पश्चात् धारवार वंशके सभी राजपूत जिनको अब राठौर कहा जाता है, कन्नौजसे उठकर मारवाड़में जा बसे। वहां उन्होंने एक नवीन राज्यकी स्थापना की जिसको जोधपुर राज्य कहा जाता है।

चौथा परिच्छेद

मध्यवर्ती प्रान्त बुन्देलखण्ड और मालवाके हिन्दू-राज्य।

जो प्रदेश यमुना और नर्मदाके बीच स्थित है और जिसको अब बुन्देलखण्ड कहा जाता है उसका नाम जेजाकभुक्ति था। जो इलाका अब मध्यप्रदेशमें मिला हुआ है उसको प्राचीन कालमें चेदि कहते थे। चेदिके दो भाग थे—पूर्वी और पश्चिमी; पश्चिमी चेदिकी राजधानी जबलपुरके निकट त्रिपुरमें थी। पश्चिमी चेदि दाहाल भी कहलाता था। पूर्वी चेदि या महाकोसलकी राजधानी रत्नपुरमें थी। चन्देल राजपूतोंका मूल पुरुष नन्नुक चंदेल ईसाकी नवीं शताब्दीमें ऐतिहासिक प्रकाशमें आया क्यों-कि उसने सन् ८३१ ई० में एक परिहारको पराजित करके जेजाकभुक्तिपर अधिकार किया, चन्देल वंशके शासकोंने असंख्य मन्दिर और तालाब बनाये। उन्होंने महोबा, कालञ्जर, खजुराहो के नगरोंको सुसज्जित और सुन्दर बनाया। उनके मन्दिर

विशाल और उनके तालाव अतीव सुन्दर थे। पहाड़ियोंमेंके नालोंपर बांध लगाकर ये तालाव या झीलें बनाई गईं। इस वंशके राजा यशोवर्मनका नाम पहले इस इतिहासमें आ चुका है। वह इसी वंशके राजा हर्षका पुत्र और उत्तराधिकारी था।

राजा धङ्ग।

परन्तु इस वंशका प्रसिद्ध राजा यशोवर्मनका पुत्र धङ्ग था। यह सौ वर्षसे अधिक आयुका होकर मरा, और इसने ४६ वर्षतक शासन किया।

सन् ९८९ ई० या सन् ९९० ई० में वह पञ्जाबके राजा जयपालकी उस लड़ाईमें सम्मिलित हुआ जो जयपालने सबुक्तगीनसे अपने राज्यको बचानेके लिये की थी। फिर जब जयपालके पुत्र आनन्दपालने सन् १००८ई०में महमूदके मुकाबलेमें हिन्दू राजाओंका एक नया संघ या एका स्थापित किया तब धङ्गका पुत्र गण्ड उसमें मिला। इसके दस वर्ष पश्चात् गण्डने कन्नौजपर आक्रमण करके राजा जयपालको जिसने मुसलमानोंसे संधि कर ली थी, मार डाला। परन्तु सन् १०२३ ई० में उसे स्वयं कालिञ्जरका प्रसिद्ध दुर्ग महमूदको देना पड़ा।

चेदिके राजा गाङ्गेयदेव और कर्णदेव।

सन् १०१५ ई० से सन् १०४० ई० तक चेदिका राजा गाङ्गेयदेव कलचुरि उत्तर भारतमें सबसे प्रबल शक्ति बनानेका यत्न करता रहा और बहुत अंशतक उसे सफलता भी हुई। सन् १०१९ ई० में उसका राज्य नर्म्मदातक माना जाता था। उसके पुत्र कर्णदेवने, जिसका राजत्वकाल सन् १०४० ई० से सन् १०७० तक है, अपने पिताके उद्योगको जारी रखा, और सन् १०६० ई० में गुजरातके राजा भीमके साथ मिलकर मालवाके विद्वान् राजा भोजको पराजय दी। परन्तु कुछ वर्ष उपरान्त स्वयं कर्णदेवकी कई हारें हुईं।

कीर्त्ति वर्मन चंदेल । कीर्त्ति वर्म्मन चन्देलका नाम संस्कृतके प्रसिद्ध नाटक प्रबोध चन्द्रोदयसे सम्बद्ध है। यह नाटक सन् १०६५ ई० में उसके दरबारमें खेला गया था। यह खेलके रूपमें वेदान्तके सिद्धान्तोंकी शिक्षा देता है। चन्देल वंशका अन्तिम राजा परमाल सन् १२०३ ई० में कुत्बुद्दीन ऐबकके हाथसे पराजित हुआ। एक मुसलमान ऐतिहासिकने कालिञ्जरके दुर्गके विजयका वर्णन करते हुए लिखा है कि कालिञ्जर-नरेशने रण-क्षेत्रसे भागकर दुर्गमें शरण ली और उसने दुर्गमेंसे सन्धि करनेका यत्न किया। परन्तु संधि-की शर्तोंको पूरा करनेके पहले ही उसका शरीर छूट गया। उसका दीवान अजयदेव जबतक दुर्गमें अन्न और जल समाप्त नहीं हो गया तबतक सामना करता रहा। अन्तको भूख और प्याससे तङ्ग आकर सेना दुर्गसे बाहर निकली और नगरको छोड़कर चली गई। दुर्ग मुसलमानोंके अधिकारमें आ गया। मुसलमान ऐतिहासिक लिखता है कि मन्दिरोंकी मसजिदें बना दी गईं और मूर्त्ति-पूजनका नाम-निशान उड़ा दिया गया। पचास सहस्र मनुष्य बन्दी हुए और अगणित हाथी, पशु और शस्त्र, विजेताके अधिकारमें आये। इसके पश्चात् कुछ समयतक चन्देल जातिके कुछ छोटे छोटे राजा बुन्देलखण्डमें राज्य करते रहे। बङ्गालके अन्तर्गत मुंगेरके समीप गिधौरका राजा इस वंशका प्रतिनिधि गिना जाता है।

चेदिके कलचुरि राजा। इस वंशके अन्तिम राजाओंका अन्तिम उल्लेख इतिहासमें सन् ११८१ ई० में आता है। इस वंशके राजपूत संयुक्तप्रान्तके बलिया जिलेमें बसते हैं और उनको हयोवंश कहते हैं।

मालवाके परमार राजपूत ।

मालवाके पवार या परमार वंशको उपेन्द्र नामक एक सर्दारने, जिसको इतिहास-में कृष्णराज भी कहा है, चलाया। विंसेण्ट स्मिथकी सम्मतिमें उपेन्द्र आबू पर्वतके समीप चन्द्रावती और अचलगढ़में आया। वहां उसकी जातिके लोग चिरकालसे बसते थे। इस वंशके राजाओंने संस्कृत-साहित्यको उन्नत करनेके लिये विशेषरूपसे प्रसिद्धि पाई है। उनका सातवां राजा मुञ्ज न केवल कवियोंका आश्रयदाता था वरन् स्वयं भी अच्छा कवि था। वह अपनी विद्वत्ता और वाग्मिताके कारण बहुत प्रसिद्ध हुआ है। संस्कृतका प्रसिद्ध लेखक धनमजय और उसका भाई धनिक उसके दरबारकी शोभा थे। इस राजाने चालुक्य जातिके राजा तैल द्वितीयसे सात युद्ध किये। छः बार उसने जीता, परंतु सातवीं बार वह पकड़ा जाकर मारा गया।

राजा भोज ।

मुञ्जका भतीजा, जो भोजराजके नामसे प्रसिद्ध हुआ, सन् १०१८ ई० में धाराकी गद्दीपर बैठा। धारा उस समय मालवाकी राजधानी थी। यह राजा भी अपने चचाकी भांति युद्ध और शान्तिकी कलाओंमें निपुण था। एक विद्यारसिक राजाके रूपमें उसकी प्रसिद्धि अबतक कम नहीं हुई। हिन्दू इसको अबतक बहुत सम्मान और प्रेमसे याद करते हैं और उसको आदर्श राजा मानते हैं। ज्योतिष, वास्तुविद्या, पद्यरचना और अन्य विषयोंपर बहुतसे ग्रन्थ उसके नामसे प्रसिद्ध हैं। स्मिथ लिखता है कि समुद्रगुप्तकी भांति यह राजा असाधारण योग्यता रखता था। धारामें इस समय एक मसजिद उस स्थानपर खड़ी है जहां भोजने सरस्वती देवीका मन्दिर बनाया था और जिसके बीच संस्कृतका एक कालेज स्थापित किया था।

तालाब भोजपुर। परन्तु उसका सबसे प्रसिद्ध स्मारक भोजपुरकी बड़ी झील थी जो भोपालके दक्षिण-पूर्वमें ढाई सौ मीलके क्षेत्रमें बनाई गई थी। पर्वतोंकी एक माला-में पानीके सब मार्गों पर बहुत मजबूत बांध लगाकर यह झील बनाई गई थी। एक मुसलमान राजाने इस बांधको उखड़वा दिया और पानी बह गया। सन् १०६० ई० में गुजरात और चेदिके राजाओंने मिलकर भोजपर धावा किया और उसको हार दी। उसका वंश छोटे छोटे राजाओंके रूपमें तेरहवीं शताब्दी-तक बना रहा। इसके पश्चात् उसका नाम-निशान मिट गया।

टिप्पणी—

हिन्दू-ऐतिह्योंमें कई राजा भोज प्रसिद्ध हैं। जैसे पहले कह आये हैं, कन्नौजका राजा भोज भी एक बहुत विद्यारसिक और धर्म्म-सुधारक हो गया है। यह कहना बहुत कठिन है कि कौन कौन सी कहानियोंका किस किस राजा भोजसे सम्बन्ध है। परन्तु चूंकि हिन्दू लोग राजा भोजकी उपमा बहुधा विक्रमादित्यसे देते हैं, और चूंकि विक्रमादित्य और भोज दोनों ही मालवाके राजा थे। इसलिये अधिक सम्भव है कि हिन्दू-कहानियोंका राजा भोज मालवाका शासक था।

पांचवां परिच्छेद।

बिहार और बंगालके नरेश।

बंगाल और बिहारके पाल और सेन वंश। महाराज अशोक और चन्द्रगुप्तके समयमें बङ्गाल मौर्यवंशके अधीन था। कन्नौजके राजा हर्षके समयमें कामरूप या आसाम एक करद स्वतन्त्र राज्य था। बङ्गालके ऐतिह्य यह सिद्ध करते हैं कि लगभग सन् ७०० ई० में या उससे पहले बङ्गालमें हिन्दू-धर्म्मको दुबारा पुष्टि देनेके लिये कन्नौजसे पांच ब्राह्मण और पांच कायस्थ आये और उनकी सन्तानमेंसे इस समय बहुतसे गण्य वंश हैं। आठवीं शताब्दीमें सन् ७५० ई० में गोपाल नामक एक मनुष्यको बङ्गाल निवासियोंने अपना राजा चुना और उसने पैंतालीस वर्षतक राज्य किया।*

धर्मपाल। इस वंशका दूसरा राजा धर्मपाल हुआ। कहते हैं इसने चौंसठ वर्षतक राज्य किया परन्तु स्मिथकी सम्मतिमें कमसे कम तीस वर्षका शासन प्रमाणित है। इस राजाने अपने राज्यकी सीमाओंको बहुत बढ़ाया। बाबू प्राणनाथका कथन है कि उसके राज्यमें वह सारा प्रदेश

---

* डाक्टर राजेन्द्रनाथको सम्मतिमें इस वंशका शासन सन् ८५५ ई० में प्रारम्भ हुआ। श्रीयुत र० द० बन्दोपाध्याय इसका सन् ८०१ ई० में प्रारम्भ होना बताते हैं। विंसेंट स्मिथ इसकी तिथि सन् ७३० ई० देता है।

मिला हुआ था जो पूर्व और पश्चिमकी ओर बंगालकी खाड़ीसे लेकर जालंधरतक फैला हुआ है। दक्षिणमें उसका राज्य विन्ध्याचलतक था। यह बात मानी हुई है कि सन् ८१० ई० के लगभग इस राजाने कन्नौजके राजाको पराजित किया। उस समय उसके साथ उत्तर भारतके नौ राजा सहायक थे। धर्मपाल बौद्धधर्मका अनुयायी था। उसने विक्रमसीलका प्रसिद्ध मठ और महाविद्यालय स्थापित किया। यह भागलपुरके जिलेमें पत्थरघाटके स्थलपर था। उस मठमें कहा जाता है कि १०७ मन्दिर और ६ कालेज थे।

देवपाल। इस वंशका तीसरा राजा देवपाल था। यह पाल वंशके सब राजाओंमेंसे अधिक शक्तिशाली गिना गया है। इसके सेनापति लाउसेनने आसाम और कलिङ्गको विजय किया। इस राजाने ४८ वर्षतक राज्य किया। दसवीं शताब्दीमें काम्बोज नामकी एक पहाड़ी जातिने अपने एक सरदारको राजा बनाकर इस वंशके राज्यमें हस्तक्षेप किया। परन्तु इस वंशके नवें राजा महीपाल प्रथमने सन् ६७८ ई० या सन् ६८० ई० में उनको निकालकर फिर अपने सिंहासन-पर अधिकार कर लिया। इस राजाका राजत्वकाल ५२ वर्षतक रहा और उसकी महत्तामें बहुतसे बङ्गाली गीत बंगालके भिन्न भिन्न भागोंमें गाये जाते हैं। कहा जाता है कि इस राजाने बौद्ध-धर्मके फैलानेमें बहुत यत्न किया। उसने और उसके पुत्र न्याय-पालने तिब्बतमें बौद्ध-धर्म की नीवोंको दृढ़ किया। न्यायपालके पुत्र विग्रहपाल तृतीयने चेदिके राजा कर्णको हार दी। जब सन् १०८० ई० में उसकी मृत्यु हुई तो उसके तीन पुत्र महीपाल, शूरपाल और रामपाल थे। जब महीपाल सिंहासनपर बैठा तो उसने अपने भाइयोंको कैद किया। इसके कारण राज्यमें बहुत

गड़बड़ फैली। उसके अत्याचारका यह परिणाम हुआ कि वसि-कैवर्त जातिके सरदार दिव्य या दिव्योकने विद्रोह खड़ा कर दिया। इसमें महीपाल दूसरा मारा गया। दिव्यके स्थानपर उसका भतीजा भीम वरेन्द्रका राजा बन बैठा। रामपालने दूसरे राजाओं और राष्ट्रकूटोंकी सहायतासे भीमको पराजित करके मार डाला और अपना सिंहासन वापस ले लिया। बाबू तारानाथ वर्णन करते हैं कि रामपाल एक बहुत समझदार राजा था और उसका राज्य दूरतक फैला हुआ था। उसने उत्तर विहारको, जिसमें चम्पारन और दर्भङ्गाके ज़िले मिले हुए हैं, विजय किया और आसामको भी अपने राज्यमें मिलाया। इस राजाके शासन-कालमें बौद्धधर्म्मका बहुत ज़ोर हुआ। उसके पश्चात् इस वंशके पांच छोटे छोटे राजे राज्य करते रहे। यह वंश साढ़े चार सौ वर्षतक राज्य करता रहा। इस वंशने साहित्य और कलाके प्रचारमें बहुत यत्न किया। उनके राजत्वकालमें दो नामी शिल्पी हो गये हैं। उन्होंने चित्रकारी और दूसरी कलाओंमें प्रसिद्धि लाभ की।

सेनवंश। कहा जाता है कि सेनवंशने सन् १११९ ई० में एक स्वतन्त्र राज्यकी स्थापना की। उनका पहला राजा विजयसेन था। इसने बहुतसा देश पलावंशसे छीन लिया। वह दूसरे वंशोंके साथ भी सफलतापूर्वक लड़ाइयाँ लड़ा। उसने चालीस वर्षतक राज्य किया। कहते हैं विजयसेनके मित्र कलिङ्गके राजा चोरगंगने ७१ वर्षतक राज्य किया।

बल्लाल सेन। बङ्गालके ऐतिह्योंमें बल्लालसेन एक बहुत प्रसिद्ध और प्रतिष्ठित नाम है। यह विजयसेनका पुत्र था। कहते हैं इसने बंगालमें हिन्दू वर्ण-व्यवस्थाको दुबारा स्थापित किया। अधिक सम्भव है कि बौद्धधर्म्मके प्रभावसे

बंगालमें वर्ण-व्यवस्था बहुत दुर्बल हो गई होगी। इसी राजाने ब्राह्मणों, वैद्यों और कायस्थोंमें "कुलीनता" का प्रचार किया। कई ऐतिहासिक कहते हैं कि इस राजाने गौर या लखनौतीकी नींव रक्खी। परन्तु विंसेंट स्मिथकी सम्मतिमें यह नगर पहलेसे मौजूद था। सेनवंशके राजा तान्त्रिक हिन्दू थे। उन्होंने हिन्दू-धर्मके प्रचारके लिये मगध, भोटान, चिटागांग, अराकान, उड़ीसा और नैपालको अगणित ब्राह्मण प्रचारक भेजें। बल्लालके पश्चात् सन् ११७७ ई० में उसका पुत्र लक्ष्मणसेन गद्दीपर बैठा। इस राजाको मुसलमान इतिहासोंमें राय लखमनिया लिखा है।

सेनवंशका अन्त। विहार और बंगालमें पाल और सेन दोनों वंशोंका अन्त मुसलमान आक्रमणकारियोंके हाथों हुआ। जिस रीतिसे कुतुबुद्दीन ऐबकके सेनापति मुहम्मद बिन बख्तियारने बंगाल और विहारको विजय किया उससे अनुमान किया जा सकता है कि बौद्धधर्मके प्रभावसे हिन्दुओंकी शक्ति और उनकी प्रबंध-क्षमता कैसी दुर्बल हो गई थी। पालवंशने बंगाल और विहारमें चार सौ, साढ़े चार सौ वर्षतक बौद्धधर्मका पालन पोषण किया और सेनवंशके राजाओंने तान्त्रिक हिन्दू-धर्मका प्रचार किया। परन्तु वे प्राचीन आर्य्योंका प्रबन्ध अपने शासनमें प्रविष्ट न कर सके। सन् ११९७ ई० में जब मुहम्मद बिन बख्तियार विहारमें पहुंचा तो उसने अतीव सुगमतासे विहार और बंगालको विजय कर लिया। ऐसा जान पड़ता है कि विहार उस समय एक नगरका नाम था। वह बौद्धोंकी शिक्षा और धर्मका भारी केन्द्र था। उसका दुर्ग स्वयं एक कालेज था। कहा जाता है कि मुहम्मद बिन बख्तियार केवल दो सौ सवार लेकर दुर्गमें प्रविष्ट हो गया और इतनी छोटीसी

सेनाके साथ उसने दुर्गपर अधिकार कर लिया। यहाँ जितने भी भिक्षु थे उनकी हत्या उसने ऐसे पूर्णरूपसे की कि अन्तको जब विजयी सेनापति मठके पुस्तकागारोंमें पहुंचा तो एक भी मनुष्य ऐसा शेष न रहा जो उसको यह बता सके कि ये पुस्तकें किस विषयकी हैं। इसके अतिरिक्त उसने संख्यातीत धन लूटा। बौद्ध भिक्षु इस चोटसे ऐसे छिन्न भिन्न हुए कि उस एक ही आघातसे बिहार प्रान्तमें जो बौद्ध-धर्मका अन्तिम आश्रय-स्थान था, यह धर्म सर्वथा नष्ट हो गया। बहुतसे भिक्षु तिब्बत, नैपाल और दक्षिण भारतको भाग गये। जो भिक्षु तिब्बतमें गये उनकी सहायतासे महान् लामाने संस्कृत-पुस्तकोंके बहुतसे अनुवाद तिब्बती भाषामें कराये। उस समय तिब्बतमें मुद्रण-कला (Black printing) चीनसे आकर प्रचलित हो चुकी थी। इसलिये संस्कृत पुस्तकोंके ये प्रचुर अनुवाद मुद्रित करके सुरक्षित किये गये।

राय लखमनियाका पराजय। सेनवंशके अन्तिम राजा राय लक्ष्मण सेनके विषयमें यह प्रसिद्ध है कि उसने ८० वर्षतक राज्य किया। यह कथन सत्य हो या न हो परन्तु यह प्रकट है कि लक्ष्मणसेन बुड्ढा मनुष्य था और बहुत धर्मपरायण था। उसकी वदान्यता और न्यायशीलताकी कहानियाँ विश्वास्य ऐतिहासिकोंने लिखी हैं। भारतके सब राजा महाराजा उसका सम्मान करते थे और उसको देशका धार्मिक नेता मानते थे। उसकी राजधानी नदियामें थी जो चिरकालसे हिन्दुओंका विद्या-पीठ है। नदियामें शिक्षा पानेके लिये अब भी दूर दूरसे पण्डित जाते हैं और वहांके स्नातकोंका बहुत गौरव होता है।

नदियापर मुहम्मद बिन बख्तियारका धावा ।

अधिक सम्भव यह है कि सन् ११९९ ई०में बख्तियारके पुत्र मुहम्मदने बंगालको विजय करनेके लिये एक बड़ी सेना तैयार की। सेनासे आगे बढ़कर केवल अठारह सवारोंके साथ उसने नगरमें प्रवेश किया। लोग यह समझते रहे कि कोई घोड़ोंका व्यापारी आया है। अन्तको जब वह महलके द्वारपर पहुंचा तो उसने तलवार खींच ली और आक्रमण आरम्भ किया। राय लखमनिया उस समय खाना खा रहा था। वह महलके पिछले द्वारसे भाग गया। उसका सारा कोश, उसकी रानियाँ, दूसरी स्त्रियां और बाँदियाँ सब आक्रमणकारियोंके हाथ आ गईं। अगणित हाथी और अपरिमेय लूटका माल विजेताको प्राप्त हुआ। इतनेमें बाकी सेना आ गई। उसने नगरपर अधिकार कर लिया। राय लखमनिया विक्रमपुरको भाग गया। वहाँ जाकर उसकी मृत्यु हो गई। मुसलमान आक्रमणने नदिया नगरको नष्ट करके हिन्दुओंके प्राचीन नगर लखनौतीको अपनी राजधानी बनाया। उसने बहुत सा धन अपने राजा कुत्बुद्दीनको भेजा। इसके अतिरिक्त उसने अगणित मसजिदें, कालेज और उपासना-स्थान बनवाये।

लक्ष्मण सेनके समयमें संस्कृत साहित्यकी उन्नति।

लक्ष्मणसेनकी प्रशंसामें कहा जाता है कि व्यक्तिगतरूपसे यह राजा बड़ा विद्या-रसिक और धर्मशील था। उसके राजकवि धोयिने कालिदासके मेघदूतके नमूनेपर एक और नाटक लिखा। गीतगोविन्दका प्रसिद्ध लेखक जयदेव भी इसीके शासन-कालमें हुआ।

यह सब कुछ स्वीकार करके भी कोई व्यक्ति इस बातको अस्वीकार नहीं कर सकता कि राय लखमनियाके राजत्वकालमें

हिन्दुओंकी प्रबंधशक्ति ऐसी गिर चुकी थी कि अधिकारियोंको एक आनेवाले आक्रमणकारीकी सेनाका उस समयतक पता ही नहीं लगा जबतक, कि आक्रमणकारीने ठीक राजप्रासादके सामने आकर खड्ग नहीं खींच ली। इससे अधिक कुप्रबंध और शासनके विचार बिन्दुकी अयोग्यता और क्या हो सकती थी? ऐतिहासिकोंको यह सम्मति बनानेमें किंचित भी संकोच नहीं कि यह परिणाम उन धार्मिक पक्षपातों और मूढविश्वासोंका था जो उस समयके प्रचलित बौद्धधर्म्म और तान्त्रिक धर्म्मने देशमें फैला दिये थे।

छठा परिच्छेद
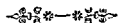
राजपूतोंका मूल।

यह बात स्पष्ट है कि जिस समय मुसलमान आक्रमणकारियोंने इस देशपर धावा किया उस समय भारतका बहुत सा भाग भिन्न भिन्न जातियोंके राजपूतोंके अधिकारमें था। प्रश्न उत्पन्न होता है कि ये राजपूत कौन हैं? स्वयं राजपूत यह प्रतिज्ञा करते हैं कि वे प्राचीन आर्य्यों की सन्तान हैं और उनका प्राचीन कालके क्षत्रियोंसे निकास है।

महाराना उदयपुरका वंश सूर्यवंशी क्षत्रियोंसे गिना जाता है और दूसरे वंश अपने आपको चन्द्रवंशी क्षत्रियोंसे गिनते हैं। सामान्यत. हिन्दू भी ऐसा ही मानते हैं। परन्तु अंगरेज ऐतिहासिक और विद्वान् इस बातको स्वीकार नहीं करते। उनकी सम्मतिमें राजपूतोंके दो विभाग हैं एक विभागमें वे वंश हैं जो शक जातिसे हैं, और दूसरे विभागमें वे वंश हैं जो भारतके

आदिम निवासियोंमेंसे हैं। इन दोनों विभागोंको हिन्दुओंने अपनी वर्ण-व्यवस्थामें सम्मिलित करके क्षत्रिय-पद दे दिया है।

इसमें कुछ सन्देह नहीं कि वर्त्तमान हिन्दू-समाजकी वर्ण-व्यवस्थामें बहुतसे मनुष्य ऐसे मिले हुए हैं जो विशुद्ध आर्य्य-वंशसे नहीं, जो पूर्व या पश्चिमसे भारतमें आये, और जिनको हिन्दुओंने अपने धर्ममें मिलाकर अपने समाजका प्रतिष्ठित सदस्य बना लिया। इस रीतिसे उन्होंने बहुत सी ऐसी जातियोंको भी हिन्दू समाजमें प्रविष्ट कर लिया जो इस देशके मूल निवासियों—गौंड, भील आदि—से हैं। यह रीति अति प्राचीन कालसे जारी रही और अबतक जारी है। हिन्दू-समाजमें नयी जातियाँ नित्य बनती हैं और सदा यह क्रम जारी रहता है कि कुछको उच्च वर्ण और कुछको नीच वर्ण दिया जाता है। यह बात भी ऐतिहासिक दृष्टिसे प्रमाणित समझ लेनी चाहिये कि शक और यूएची जातिके बहुतसे मनुष्य जो तुर्कमान वंशके थे, ईसाके सन्‌की प्रारम्भिक शताब्दियोंमें इस देशमें आये और हिन्दू-समाजमें मिल गये। यूरोपीय विद्वान जाट, अहीर और गूजर आदि जातियोंको भी इन्हीं वंशोंमेंसे गिनते हैं। परन्तु यह विवाद अधिकांशमें व्यर्थ है। राजपूतों, जाटों, गूजरों और अहीरोंको हिन्दू-समाज अपना स्तम्भ समझता है। यह बात कि वे कब और किस प्रकार हिन्दू-समाजमें प्रविष्ट हुए सर्वथा अप्रासङ्गिक है और इसपर अधिक विवाद करनेकी आवश्यकता नहीं, जिस प्रकार ब्राह्मणोंके बीसों वंश आर्य्य-जातिसे नहीं हैं और जिस प्रकार बहुत सी अन्य जातियाँ भी वास्तविक आर्य्य-वंशसे नहीं हैं वरन् मिश्रित हैं, उसी प्रकार वर्त्तमान राजपूत भी हो सकते हैं। यही पर्याप्त है कि हिन्दू उन्हें क्षत्रिय समझते हैं और उनके कार्य-कलापर गौरव करते हैं।

ग्यारहवां खण्ड

दक्षिण भारतका इतिहास ।

पहला परिच्छेद

दक्षिण और मैसूरका वृत्तान्त ।

संस्कृत-साहित्यमें विन्ध्याचलसे दक्षिणके सारे प्रदेशको प्रायः दक्षिण नामसे पुकारा गया है। यह प्रदेश त्रिकोणाकार है और जैसा कि पहले भूगोलके वर्णनमें कह आये हैं भारतकी प्राचीन वस्ती इसी प्रदेशमें थी और ठेठ भारत अर्थात् आर्यावर्त्तके वड़े भागमें समुद्र लहरें मारता था। उस समयके इतिहासका किसीको कुछ ज्ञान नहीं। संस्कृत-साहित्यमें दक्षिणका पहला स्मरणीय उल्लेख रामायणमें मिलता है, यद्यपि स्वयं रामायणमें इस वातके साक्ष्य विद्यमान हैं कि आर्य्य-धर्म और आर्य्य सभ्यताका कुछ न कुछ प्रभाव उस समय भी दक्षिणमें था। नर्म्मदाके दक्षिणमें सवसे पहली वार आर्य्य सभ्यताका प्रवेश ऐतिहासिक कालमें चन्द्रगुप्तके कालमें हुआ। उसके पश्चात् दक्षिणका थोड़ा वहुत क्रमिक सम्वंध उत्तर भारतके साथ रहा।

यद्यपि सारे भारतका कोई नियमपूर्वक इतिहास मौजूद नहीं तथापि दक्षिणके भिन्न भिन्न भागोंके इतिहासको एकत्र करके दक्षिणका एक क्रमिक इतिहास बनानेके लिये पर्याप्त सामग्री मौजूद है। इस समयतक उत्तर भारतके इतिहासपर अधिक ध्यान रहा है।

दक्षिणमें हिन्दू-सभ्यता। यद्यपि दक्षिणमें आर्य्य-सभ्यता बहुत देरमें पहुंची, परन्तु यह प्रकट है कि मुसलमानी कालमें दक्षिण भारत आर्य्य-सभ्यता और हिन्दू धर्म्मका आश्रय-स्थान रहा और यद्यपि अधिक सम्भव यही है कि वैदिक धर्म्म इस देशमें अपने वास्तविकरूपमें कभी नहीं फैला, फिर भी हिन्दू-धर्म्म और जैन-धर्म्मने वहाँपर अपने विशुद्धरूपको बहुत अंशतक बनाये रक्खा। इस समय भी संस्कृतका प्रचार जितना दक्षिणमें है उतना उत्तरमें नहीं। भारतके मध्यकालके बहुधा धर्म्म-सुधारक और विद्वान् दक्षिणमें उत्पन्न हुए। दक्षिण-भारतमें महाराज शंकर* और रामानुजका जन्म हुआ। पौराणिक कालमें बहुतसे शास्त्रकार, टीकाकार और दार्शनिक दक्षिणमें उत्पन्न हुए। वेदोंकी रक्षा भी अधिकतर दक्षिणके पण्डितोंने की। दक्षिणके वेद-पाठी प्रसिद्ध हैं। यज्ञोंका क्रम भी न्यूनाधिक दक्षिणमें जारी रहा। हिन्दू-संस्कार अपने वास्तविकरूपमें अब-

तक दक्षिणमें मौजूद है, इसलिये दक्षिणके इतिहासका अध्ययन उत्तर भारतके निवासियोंके लिये भी नीरस न होगा। परन्तु दुर्भाग्यसे अभीतक इस प्रदेशका पूरा इतिहास तैयार नहीं हुआ। यह भी स्मरण रहना चाहिये कि वर्त्तमान कालमें भी दक्षिणने हमारी प्रगतिको बढ़ानेमें महत्वपूर्ण भाग लिया है।

दक्षिणकी बांट।

दक्षिणकी बांट प्रायः दो भागोंमें की जाती है। प्रथम भागमें वह प्रदेश मिला है जो उत्तरमें नर्मदा तथा दक्षिणमें कृष्णा और तुङ्गभद्राके बीच है। और दूसरे भागमें वह त्रिकोणाकार भूभाग आता है जो कृष्णा और तुङ्गभद्रा नदीसे आरम्भ होकर कुमारी अन्तरीप-तक जाता है। इस दूसरे भागको साधारणतया ऐतिहासिकोंने तामिल देशका नाम दिया है। ठेठ दक्षिणमें हैदराबाद राज्यका प्रायः सारा इलाका और महाराष्ट्र मिले हुए हैं।

ऐतिहासिक प्रयोजनोंके लिये मैसूरको भी दक्षिणमें गिना जाता है। दक्षिणकी सबसे प्राचीन राजनीतिक शक्ति आन्ध्र-राज्य थी जो साढ़े चार सौ वर्ष अर्थात् सन् २२५ ई०तक उन्नत अवस्थामें रही। उसके बादका दक्षिणका इतिहास अभीतक पूर्णरूपसे तैयार नहीं हुआ। दक्षिणका नियमबद्ध इतिहास छठी शताब्दीमें चालुक्य वंशसे आरम्भ होता है।

कदम्ब।

कहा जाता है कि ईसाकी तीसरीसे छठी शताब्दीतक उत्तरी और दक्षिणी प्रान्तके जिले और पश्चिमी मैसूर कदम्बोंके अधिकारमें रहे। उनकी राजधानी बनवासी थी। इसको जयन्ती भी कहा है। इसका उल्लेख अशोककी राजाज्ञाओंमें मिलता है। यह वंश वास्तवमें ब्राह्मण था परन्तु राजपदको पानेके कारण उनको क्षत्रिय गिना गया है।

यद्यपि सारे भारतका कोई नियमपूर्वक इतिहास मौजूद नहीं तथापि दक्षिणके भिन्न भिन्न भागोंके इतिहासको एकत्र करके दक्षिणका एक क्रमिक इतिहास बनानेके लिये पर्याप्त सामग्री मौजूद है। इस समयतक उत्तर भारतके इतिहासपर अधिक ध्यान रहा है।

दक्षिणमें हिन्दू-सभ्यता। यद्यपि दक्षिणमें आर्य्य-सभ्यता बहुत देरमें पहुंची, परन्तु यह प्रकट है कि मुसलमानी कालमें दक्षिण भारत आर्य्य-सभ्यता और हिन्दू धर्म्मका आश्रय-स्थान रहा और यद्यपि अधिक सम्भव यही है कि वैदिक धर्म्म इस देशमें अपने वास्तविकरूपमें कभी नहीं फैला, फिर भी हिन्दू-धर्म्म और जैन-धर्म्मने वहाँपर अपने विशुद्धरूपको बहुत अंशतक बनाये रक्खा। इस समय भी संस्कृतका प्रचार जितना दक्षिणमें है उतना उत्तरमें नहीं। भारतके मध्यकालके बहुधा धर्म्म-सुधारक और विद्वान् दक्षिणमें उत्पन्न हुए। दक्षिण-भारतमें महाराज शंकर* और रामानुजका जन्म हुआ। पौराणिक कालमें बहुतसे शास्त्रकार, टीकाकार और दार्शनिक दक्षिणमें उत्पन्न हुए। वेदोंकी रक्षा भी अधिकतर दक्षिणके पण्डितोंने की। दक्षिणके वेद-पाठी प्रसिद्ध हैं। यज्ञोंका क्रम भी न्यूनाधिक दक्षिणमें जारी रहा। हिन्दू-संस्कार अपने वास्तविकरूपमें अव-

* महाराज शङ्कराचार्य नाम्बोद्री जातिके ब्राह्मण थे। उनका जन्म सुदूर दक्षिणमें हुआ। एक ऐतिह्यके अनुसार वे मालाबारके एक गाँवमें उत्पन्न हुए और दूसरे ऐतिह्यके अनुसार चिदम्बरममें। शङ्करने वेदोंका आश्रय लेकर बौद्धधर्म्मका खण्डन किया और बनारसमें आकर गीतापर और उपनिषदोंपर भाष्य लिखा। शङ्कर अपने समयका एक अद्वितीय पण्डित और दार्शनिक था। उसने काशीसे अपनी दिग्विजय आरम्भ करके समस्त भारतमें अपने सिद्धान्तका बड़े समारोहके साथ प्रचार किया और अपने सब विपक्षियोंको परास्त किया। सन् ८२८ ई० में केवल ३४ वर्षकी अवस्थामें उनका देहान्त हो गया।

तक दक्षिणमें मौजूद है, इसलिये दक्षिणके इतिहासका अध्ययन उत्तर भारतके निवासियोंके लिये भी नीरस न होगा। परन्तु दुर्भाग्यसे अभीतक इस प्रदेशका पूरा इतिहास तैयार नहीं हुआ। यह भी स्मरण रहना चाहिये कि वर्त्तमान कालमें भी दक्षिणने हमारी प्रगतिको बढ़ानेमें महत्वपूर्ण भाग लिया है।

दक्षिणकी बांट।

दक्षिणकी बांट प्रायः दो भागोंमें की जाती है। प्रथम भागमें वह प्रदेश मिला हैं जो उत्तरमें नर्म्मदा तथा दक्षिणमें कृष्णा और तुङ्गभद्राके बीच है। और दूसरे भागमें वह त्रिकोणाकार भूभाग आता है जो कृष्णा और तुङ्गभद्रा नदीसे आरम्भ होकर कुमारी अन्तरीप-तक जाता है। इस दूसरे भागको साधारणतया ऐतिहासिकोंने तामिल देशका नाम दिया है। ठेठ दक्षिणमें हैदराबाद राज्यका प्रायः सारा इलाका और महाराष्ट्र मिले हुए हैं।

ऐतिहासिक प्रयोजनोंके लिये मैसूरको भी दक्षिणमें गिना जाता है। दक्षिणकी सबसे प्राचीन राजनीतिक शक्ति आन्ध्र राज्य थी जो साढ़े चार सौ वर्ष अर्थात् सन् २२५ ई०तक उन्नत अवस्थामें रही। उसके बादका दक्षिणका इतिहास अभीतक पूर्णरूपसे तैयार नहीं हुआ। दक्षिणका नियमबद्ध इतिहास छठी शताब्दीमें चालुक्य वंशसे आरम्भ होता है।

कदम्ब।

कहा जाता है कि ईसाकी तीसरीसे छठी शताब्दीतक उत्तरी और दक्षिणी प्रान्तके जिले और पश्चिमी मैसूर, कदम्बोंके अधिकारमें रहे। उनकी राजधानी बनवासी थी। इसको जयन्ती भी कहा है। इसका उल्लेख अशोकको राजाज्ञाओंमें मिलता है। यह वंश वास्तवमें ब्राह्मण था परन्तु राजपदको पानेके कारण उनको क्षत्रिय गिना गया है।

गङ्गवंश। दूसरी शताब्दीसे ग्यारहवीं शताब्दीतक मैसूरमें गङ्गवंशने राज्य किया। दसवीं शताब्दीमें गङ्ग-नरेश जैन-धर्म्मके बड़े प्रतिपालक थे।

जैन-धर्म दक्षिणमें ईसाकी चौथी शताब्दीसे फैला हुआ है। गोमाताकी महत्तायुक्त मूर्त्ति श्रवण वेलगोलमें पहाड़ीमेंसे काटकर बनाई गई है। यह उंचाईमें ५६॥ फुट है। यह अपनी कारीगरी और डीलडौलमें भारतमें अद्वितीय है। कहते हैं कि सन् ९८३ ई०में यह मूर्त्ति गङ्गराजके मन्त्री चामुण्डरायने पत्थरको कटवाकर बनवाई थी।

चालुक्य। चालुक्य जातिके राजपूतोंने सन् ५५० ई० में वातापि नगरपर अधिकार करके अपना राज्य स्थापित किया। वातापिका नाम अब बादामि है और यह बीजापुरके जिलेके अन्तगत है। इसके सरदारका नाम पुलकेशिन प्रथम था। इसने अश्वमेध यज्ञ भी किया। इसके पुत्र कीर्त्तिवर्म्मन और मङ्गलेशने इसके राज्यको पूर्व और पश्चिमकी ओर बहुत बढ़ाया। मङ्गलेशकी मृत्युपर उससे और कीर्त्तिवर्म्मनके पुत्रसे झगड़ा हो गया। अन्तको कीर्त्तिवर्म्मनके पुत्रको सफलता हुई और उसने सन् ६०८ ई० में पुलकेशिन द्वितीयके नामपर राज्याभिषेक किया। उसने अपने राज्यका चारों ओर विस्तार किया। सन् ६१५ ई० में पुलकेशिनके भाई कुब्ज विष्णुवर्धनने पूर्वी चालुक्य वंशकी स्थापना की। यह वंश सन् १०७०

प्रतीत होता है कि अजन्ताकी प्रसिद्ध गुहायें, जो अपनी चित्रकारी और आलेख्यके लिये संसारकी अद्भुत वस्तुओंमें गिनी जाती हैं, इसी राजाके समयमें निर्मित हुईं। चीनी यात्री ह्यूनसाङ्ग सन् ६४१ ई० में पुलकेशिनके दरबारमें आया। उस समय अजन्ताकी गुहायें तैयार हो चुकी थीं। पुलकेशीको सन् ६४२ ई० में कांचीके पल्लव राजाने पराजित किया। परन्तु तेरह वर्ष पश्चात् पुलकेशिनके पुत्र विक्रमादित्यने अपने बापका बदला लिया और कांचीपर अधिकार कर लिया। पल्लवों और चालुक्योंके बीच आठवीं शताब्दीके मध्यतक लड़ाइयां जारी रहीं। फिर सन् ७५३ ई० में राष्ट्रकूट जातिके एक सरदारने चालुक्योंके राज्यको उखाड़ दिया। यद्यपि चालुक्यवंशके राजपूत अपनी वंशावली श्रीरामचन्द्रजीके साथ मिलाते हैं पर कहा जाता है कि वे दूसरी जातिके थे।

धार्म्मिक परिवर्त्तन। इन दो सौ वर्षोंमें बौद्ध-धर्म्मके पतनपर जैन और पौराणिक हिन्दू-धर्म्मने बहुत उन्नति की। विष्णु, शिव और अन्य देवी देवताओंके अगणित मन्दिर इस कालमें तय्यार किये गये। बादामिमें छठी शताब्दीकी जो पौराणिक गुफायें मौजूद हैं। वे तक्षण-विद्या और आलेख्य-के अतीव महत्तायुक्त उदाहरण हैं। दक्षिण महाराष्ट्र देशमें जैन-धर्म्म बहुत जनप्रिय हो गया था।

उर्दुरत। पार्सियोंकी पहली बस्ती खुरासानसे चलकर सन् ७२५ ई० में बम्बईके समीप थानामें आकर स्थापित हुई। राष्ट्रकूटवंशके कामोंमें सबसे प्रसिद्ध इलोराकी गुफा है जो कैलासका मन्दिर कहलाती है। इस पूरे मंदिरको पर्वतमेंसे काटकर बनाया गया है। संसारमें जितने भी भवन पर्वतोंको काटकर बनाये गये हैं उनमें यह सबसे सुंदर और महत्तायुक्त है।

अमोघवर्ष । इस वंशका एक प्रसिद्ध राजा अमोघवर्ष हुआ है। इसने सन् ८१५ ई० से सन् ८७७ ई० तक राज्य किया। इसके समयमें जैनोंके दिगम्बर सम्प्रदायका प्रभाव बहुत बढ़ा।

सुलेमान नामक एक अरबी व्यापारीने इस राजाकी बहुत प्रशंसा की है। यह राजा स्वयं दिगम्बर सम्प्रदायका जैन था। वह बहुत प्रतापी और ऐश्वर्यवान था। इस वंशका अन्तिम राजा कक्क द्वितीय था। इसको पुराने चालुक्य वंशके राजा तैलप द्वितीयने पराजित करके कल्याणके चालुक्य वंशकी नींव सन् ९७३ ई० में रक्खी। इस वंशका सबसे प्रसिद्ध राजा विक्रमाङ्क था। इसने सन् १०७६ ई० से लेकर सन् ११२६ ई०तक राज्य किया। इस राजाके प्रणय और वीरताकी कहानियां उसके राजकवि विल्हणने एक कवितामें लिखी है। हिन्दू-धर्म-शास्त्रका प्रसिद्ध टीकाकार मिताक्षराका रचयिता विज्ञानेश्वर इसी राजाके शासनकालमें हुआ। वह कल्याणका रहनेवाला था। सन् ११९० ई० में इस वंशका प्रताप-रवि अस्त हो गया और राज-शक्ति देवगिरिके यादवों और दोर समुद्रके होयसलोंके हाथ आई। सन् ११५६ ई० से लेकर सन् ११६२ ई० तकके समयमें राजा तैल तीसरेके राजत्वकालमें, उसके सेनापति बिज्जल कलचुरीने विद्रोह करके देशपर अधिकार कर लिया और वह तथा उसके पुत्र सन् ११८३ ई० तक राज्य करते रहे। इस बिज्जलके संक्षिप्त राजत्वकालमें शैव-धर्मका एक नवीन मत जारी हुआ जिसका नाम लिङ्गायत-धर्म है। लिङ्गायत लोग कनाराके जिलोंमें बड़े शक्तिशाली हैं। वे शिव-लिङ्गके पुजारी हैं। वेदोंको नहीं मानते और न पुनर्जन्ममें विश्वास रखते हैं। ब्राह्मणोंके बहुत द्वेषी हैं। उनके यहां बाल्यविवाहकी प्रथा भी नहीं है। वे विधवाओंका भी

पुनर्विवाह कर देते हैं। लिङ्गायत-धर्मको उन्नतिसे जैन-धर्मकी बहुत हानि हुई।

विष्णुवर्धन होय्सल। मैसूरके होय्सलवंशने पश्चिमीघाट पर अधिकार कर लिया। सबसे पहले उनके मूल पुरुष विष्णुवर्धनने इस राज्यको स्थापित किया। विष्णुवर्धन तीस वर्ष राज्य करनेके बाद मर गया। यह विष्णुवर्धन जिसका दूसरा नाम विित्तिदेव है अपने बाल्यकालमें धर्मात्मा जैन था। उसने अपने मन्त्री गङ्गराजके द्वारा उन सब जैन मन्दिरोंको दुबारा स्थापित किया जिनको चोल राजाओंने नष्ट कर डाला था। परन्तु अपने राज्यकी समाप्तिपर विित्ति रामानुजका शिष्य हो गया। उसने वैष्णव मतके संख्यातीत मन्दिर और मठ बनवाये। ये अपनी सुन्दरता और महत्तामें अनुपम हैं। यह वंश सन् १३१० ई० तक उन्नतावस्थामें रहा। तब मलिक काफूर और ख्वाजा हाजीने उसको नष्ट कर दिया।

रामानुजाचार्य। रामानुजाचार्यने कांचीमें शिक्षा पाई। वह अधिराजेन्द्र चोलके समयमें तृचनापलीके समीप श्रीरङ्गम्में रहता था। परन्तु वहांका राजा शैव था। इसलिये उसके विरोधके कारण रामानुजको श्रीरङ्गम्को छोड़कर मैसूर जाना पड़ा। परन्तु अधिराजेन्द्रकी मृत्युके पश्चात् वह फिर श्रीरङ्गम्को वापस चला गया। वहीं बारहवीं शताब्दीके बीच उसकी मृत्यु हुई।

रामानुजने उपनिषदों और गीतापर विद्वत्तापूर्ण भाष्य लिखा है और शङ्कराचार्यके मतका खण्डन किया है। रामानुजने शङ्कराचार्यके मतके खण्डनमें गीता और उपनिषदोंसे द्वैतवादका उपदेश किया है। शङ्कराचार्य मुक्तिका साधन ज्ञानको बतलाते हैं, और रामानुज भक्तिको। देवगिरिमें कुछ कालतक यादववंशके राज-

पूतोंका राज्य रहा। देवगिरिको अब औरङ्गाबाद कहते हैं। सन् १२९४ ई०में अलाउद्दीन खिलजीने देवगिरिपर धावा करके असीम धन प्राप्त किया। सन् १३१६ ई०में दक्षिणके अन्तिम स्वाधीन राजा रामचन्द्रने मलिक काफूरकी अधीनता स्वीकार की। सन् १३१८ ई०में उसके जामाता हरपालने विद्रोहका झंडा खड़ा किया। इसपर मलिक काफूरने उसकी जीते जी खाल खिंचवाई इस प्रकार यादववंशका अन्त हुआ।

हेमाद्रि। संस्कृतका प्रसिद्ध लेखक हेमाद्रि जिसका दूसरा नाम हेमादपन्त है रामचन्द्रके समयमें हुआ। इस लेखकने हिन्दू-धर्मकी मर्यादापर बहुत सी पुस्तकें लिखी हैं।

दूसरा परिच्छेद

सुदूर दाक्षिणके राज्य।

(१) पांड्य और चेर-राज्यकी कहानियां।

हम ऊपर कह आये हैं कि उस प्रदेशका नाम तामिल है जो कृष्णा और तुङ्गभद्राके दक्षिणमें है और कुमारी अन्तरीपतक पहुंचता है। महाराज अशोकके शिलालेखोंमें इस प्रदेशके चार बड़े राज्योंका उल्लेख है—एक पांड्य, दूसरा चेर या केरल, तीसरा चोल और चौथा केरलपुत्र।

महाराजा अशोकके समयमें पांड्य राज्यमें मदुरा और तिनावलीके ज़िले और चेर राज्यमें मालाबार, आजकलके कोचीन और ट्रावङ्कोरका प्रदेश मिला हुआ था। चोल राज्य कॅरोमण्डलपर था। कहते हैं कि ईसाके सन्के आरम्भमें इस सारे

प्रान्तकी भाषा तामिल थी और मदुरा उसका साहित्यिक केन्द्र था। उस समयतक मलयालम भाषा उत्पन्न न हुई थी।

पाण्ड्य राज्य। ईसाके संवत्‌की पहली शताब्दीमें रोमन ऐतिहासिक प्लीनीने पांड्य राज्यका उल्लेख किया है। उस समय इस राज्यकी राजधानी मदुरा थी। परन्तु इससे प्राचीन कालमें वास्तविक राजधानी कोरकाईके स्थल-पर थी। यह अब तिनावली ज़िलेमें ताम्रपर्णी नदीके तटपर एक छोटा सा गांव है। अपनी महत्ताके समयमें यह स्थान दक्षिणी सभ्यताका केन्द्र था और मोतियोंके व्यापारके लिये बहुत प्रसिद्ध था। जब राजधानी मदुराको स्थानान्तरित की गई तब भी कोरकाई अपने व्यापारिक महत्वके कारण प्रसिद्ध रहा। उसका नया बन्दरगाह जो कायलमें था शताब्दियोंतक पूर्वी व्यापारका प्रसिद्ध केन्द्र रहा। तेरहवीं शताब्दीमें मारकोपोलो एकसे अधिक बार इस बंदरगाहमें उतरा। वह यहांके लोगों और राजाकी महत्तासे बहुत प्रभावित हुआ। परन्तु जब कायलका बन्दरगाह कोरकाईके सदृश सूख गया तो पुर्तगालवालोंने अपने व्यापारका केन्द्र ट्यूटीकोरिणको बनाया। यह इस समय कुमारी अन्तरीपका प्रसिद्ध बंदर है। यहांसे लंका और पूर्वी तथा पश्चिमी सागर तटोंको जहाज जाते हैं। पाण्ड्य राज्यका उल्लेख संस्कृतके प्रसिद्ध वैयाकरण कात्यायनके ग्रन्थोंमें मिलता है। कात्यायनका समय ईसाके पूर्व चौथी शताब्दी है। पाण्ड्य राज्य अति प्राचीन कालसे रोमवालोंके साथ व्यापार करता था और अनेक रोमन पुस्तकोंमें पांड्य देशके भिन्न भिन्न बंदरगाहों और मण्डियोंका वर्णन आता है। कहा जाता है कि पांड्य राजाने सन् २० ई० पू०में आगस्टस सीजरके दरबारमें दूत भेजे। रोमन ग्रन्थकार पीटर वीनसको इस बातका सन्देह

पूतोंका राज्य रहा। देवगिरिको अब औरङ्गाबाद कहते हैं। सन् १२६४ ई०में अलाउद्दीन खिलजीने देवगिरिपर धावा करके असीम धन प्राप्त किया। सन् १३१६ ई०में दक्षिणके अन्तिम स्वाधीन राजा रामचन्द्रने मलिक काफूरकी अधीनता स्वीकार की। सन् १३१८ ई०में उसके जामाता हरपालने विद्रोहका झंडा खड़ा किया। इसपर मलिक काफूरने उसकी जीते जी खाल खिंचवाई इस प्रकार यादववंशका अन्त हुआ।

हेमाद्रि। संस्कृतका प्रसिद्ध लेखक हेमाद्रि जिसका दूसरा नाम हेमाद्पन्त है रामचन्द्रके समयमें हुआ। इस लेखकने हिन्दू-धर्मकी मर्यादापर बहुत सी पुस्तकें लिखी हैं।

दूसरा परिच्छेद

सुदूर दाक्षिणके राज्य।

(१) पांड्य और चेर-राज्यकी कहानियां।

हम ऊपर कह आये हैं कि उस प्रदेशका नाम तामिल है जो कृष्णा और तुङ्गभद्राके दक्षिणमें है और कुमारी अन्तरीपतक पहुंचता है। महाराज अशोकके शिलालेखोंमें इस प्रदेशके चार बड़े राज्योंका उल्लेख है—एक पांड्य, दूसरा चेर या केरल, तीसरा चोल और चौथा केरलपुत्र।

महाराजा अशोकके समयमें पांड्य राज्यमें मदुरा और तिनावलीके ज़िले और चेर राज्यमें मालाबार, आजकलके कोचीन और ट्रावङ्कोरका प्रदेश मिला हुआ था। चोल राज्य कैरोमण्डलपर था। कहते हैं कि ईसाके सन्‌के आरम्भमें इस सारे

प्रान्तकी भाषा तामिल थी और मदुरा उसका साहित्यिक केन्द्र था। उस समयतक मलयालम भाषा उत्पन्न न हुई थी।

पाण्ड्य राज्य। ईसाके संवत्‌की पहली शताब्दीमें रोमन ऐतिहासिक प्लीनीने पांड्य राज्यका उल्लेख किया है। उस समय इस राज्यकी राजधानी मदुरा थी। परन्तु इससे प्राचीन कालमें वास्तविक राजधानी कोरकाईके स्थल-पर थी। यह अब तिनावली ज़िलेमें ताम्रपर्णी नदीके तटपर एक छोटा सा गांव है। अपनी महत्ताके समयमें यह स्थान दक्षिणी सभ्यताका केन्द्र था और मोतियोंके व्यापारके लिये बहुत प्रसिद्ध था। जब राजधानी मदुराको स्थानान्तरित की गई तब भी कोरकाई अपने व्यापारिक महत्वके कारण प्रसिद्ध रहा। उसका नया बन्दरगाह जो कायलमें था शताब्दियोंतक पूर्वी व्यापारका प्रसिद्ध केन्द्र रहा। तेरहवीं शताब्दीमें मारकोपोलो एकसे अधिक बार इस बंदरगाहमें उतरा। वह यहांके लोगों और राजाकी महत्तासे बहुत प्रभावित हुआ। परन्तु जब कायलका बन्दरगाह कोरकाईके सदृश सूख गया तो पुर्तगालवालोंने अपने व्यापारका केन्द्र ट्यूटीकोरिणको बनाया। यह इस समय कुमारी अन्तरीपका प्रसिद्ध बंदर है। यहांसे लंका और पूर्वी तथा पश्चिमी सागर तटोंको जहाज जाते हैं। पाण्ड्य राज्यका उल्लेख संस्कृतके प्रसिद्ध वैयाकरण कात्यायनके ग्रन्थोंमें मिलता है। कात्यायनका समय ईसाके पूर्व चौथी शताब्दी है। पाण्ड्य राज्य अति प्राचीन कालसे रोमवालोंके साथ व्यापार करता था और अनेक रोमन पुस्तकोंमें पांड्य देशके भिन्न भिन्न बंदरगाहों और मण्डियोंका वर्णन आता है। कहा जाता है कि पांड्य राजाने सन् २० ई० पू०में आगस्टस सीज़रके दरबारमें दूत भेजे। रोमन ग्रन्थकार पीटर वीनसको इस बातका सन्देह

था कि कुछ श्रीमतियां भारतीय परिधान पहनकर निर्लज्जताकी दोषी होती हैं। वह भारतकी मलमलको 'बुनी हुई पवन'के नामसे पुकारता है। प्लीनी शिकायत करता है कि रोमन साम्राज्यसे प्रति वर्ष ७५ लाख* की पूंजी भारतको जाती है। म्योमन (?) ने इसकी संख्या ७॥ करोड़ बताई है। प्लीनके शब्दोंमें यह सारा मूल्य उन विलासिताकी वस्तुओंका था जिनका उपभोग रोमन रमणियां करती थीं।

उस समय रुई, ऊन और रेशमके कपड़े बनते थे। ऊनके वस्त्रोंमें सबसे नफ़ीस चूहोंकी ऊन गिनी जाती थी। रेशमके कपड़ेके ३० प्रकार थे, जो चीनके रेशमी कपड़ेसे सर्वथा भिन्न थे। रूईके कपड़ेकी प्रशंसामें यह कहा जाता था कि "वह सांपकी केंचली और दूधके धुएँके सदृश सूक्ष्म थे और उनका तागा आँखसे नहीं पहचाना जा सकता था।" अनेक अँगरेज़ पर्यटकोंने ईसाकी अठारहवीं शताब्दीमें भी भारतीय मलमलकी बारीकीकी (जो उत्तर और दक्षिण दोनों प्रदेशोंमें बुनी जाती थी) प्रशंसामें लगभग ऐसे ही प्रशंसात्मक शब्दोंका प्रयोग किया है जैसे कि रोमन लेखकोंने किया † है।

पश्चिमी समुद्रतटके बन्दर मुज़िरिससे आगे लिखी वस्तुयें पश्चिमको जाती थीं :—

काली मिर्च, मोती, हाथी दाँत, रेशम, पान, हीरा, लाल, कछुएकी खाल, अन्य प्रकारके बहुमूल्य और चमकीले पत्थर और दारचीनी।

---

* यह राशि भिन्न भिन्न रीतिसे बताई गई है क्योंकि एक स्थानपर हमने इसी पुस्तकमें १५ करोड़ लिखा है। अभिप्राय प्रचुर धनसे है।

† इसका सविस्तर वर्णन बेन महाशयकी पुस्तकमें है। वह रुईके शिल्पका इतिहास है।

पूर्वी सागर-तटके वयहार बंदरमें आगे लिखी वस्तुयें बिकनेके लिये आती थीं:—समुद्र पारसे घोड़े, काली मिर्च, सोना और बहुमूल्य पत्थर उत्तरीय प्रदेशसे, चन्दन और Aghil पश्चिमी तटसे, मोती दक्षिणी सागरसे और मूंगे पूर्वी सागरोंसे।

तामिल लोग जहाज चलानेकी विद्यामें निपुण थे और अपने जहाज आप बनाते थे। इसी प्रकार दुर्गों और शस्त्रोंके बनानेमें वे चरम उन्नतिपर पहुंचे हुए थे। मदुरापर आक्रमण हुआ तो उसकी रक्षामें २४ प्रकारके शस्त्रोंका वर्णन मिलता है।

तामिल जातियोंके राजनीतिक नियम।

तामिल जातियोंके राजनीतिक नियम भी अधिकांशमें ऊँचे थे। राजाके अधिकारोंका निरीक्षण करनेके लिये पांच प्रकारकी सभायें थीं, अर्थात् मन्त्रियोंकी सभा, पुरोहितोंकी सभा, सैनिक अधिकारियोंकी सभा, राजदूतोंकी सभा और भेदियोंकी सभा। पण्डितों और सामान्य विद्वानोंको अधिकार था कि जिस समय चाहें अपनी सम्मति प्रकट करें। श्री०कृष्ण स्वामी आयङ्गरने, जिनके इतिहाससे हमने ये घटनायें ली हैं, अनेक ऐसे उदाहरण दिये हैं जिनसे यह प्रतीत होता है कि बड़े बड़े राजाओंने पण्डितों और विद्वानोंके कहने पर अपने निर्णय बदल दिये। न्यायका जो आदर्श तामिल राजाओंके सामने रहता था उसका अनुमान आगे लिखी कहावतोंसे हो सकता है—यदि समयपर वर्षा न हो तो राजाके पापोंका फल है; यदि स्त्रियां व्यभिचारणी हो जायँ तो भी उसका उत्तरदायित्व राजापर है।

तामिल राजाओंके समयमें शिक्षाका खूब प्रचार था और विद्याका बहुत सम्मान होता था। स्त्रियाँ स्वतन्त्रतापूर्वक विद्याध्ययन करती थीं। बहुत सी योग्य स्त्रियां कवयित्री हुई हैं।

विद्वत्ता केवल ब्राह्मणोंतक परिमित न थी। विद्वानोंके सम्मान और निरीक्षणके लिये आजकल यूरोपीय नमूनेपर एक समाज या 'संघम्' था। उसके सदस्य उच्चकोटिका साहित्य उत्पन्न करते थे। वह समाज प्रमाण-पत्र आदि देता था।

चीनी यात्री ह्यूनसाङ्गके भ्रमण-वृत्तान्तमें दक्षिणी राज्योंका उल्लेख।

ह्यूनसाङ्ग सन् ६४० ई० में दक्षिण भारतमें आया और उसने कांचीमें चतुर्मास्य किया। कांचीमें उस समय राजा नरसिंह वर्म्मन पल्लवकी राजधानी थी। वह उस समय दक्षिणका बहुत बड़ा राजा गिना जाता था। चौथी शताब्दीमें समुद्रगुप्तको भी कांचीके एक पल्लव राजासे वास्ता पड़ा था। ख़याल किया जाता है कि पदूकोटाका राजा इस वंशका प्रतिनिधि है। पदूकोटा त्रिचनापली, तञ्जोर और मदुराके जिलोंके समीप एक छोटा सा देशी राज्य है।

मलकूट।

यह पर्यटक पांड्य राजाओंके प्रदेशका भी वर्णन करता है। वह उसे मलकूटके नामसे पुकारता है। मलकूटमें उस समय बौद्धधर्म्म नष्ट भ्रष्ट हो चुका था। हिन्दुओंके मन्दिर सैकड़ोंकी संख्यामें थे। दिगम्बर सम्प्रदायके जैन भी सहस्रों थे।

कूनका जैनोंपर अत्याचार।

पाण्ड्यवंशके कून नामक एक राजाने (जिस को सुन्दर या नेदुमारण पाण्ड्य भी कहा गया है) जैनोंको बहुत सताया। पहले यह राजा स्वयं बड़ा कट्टर जैन था, परन्तु पीछेसे वह अपनी रानीकी प्रेरणासे शैव हो गया। कहते हैं उसने आठ सहस्र जैनोंका चमड़ा उतरवाकर उनको अतीव वेदनासे मारा।

लङ्काके आक्रमण। पाण्ड्यवंशके राजत्वकालमें लङ्कासे दक्षिण भारतपर दो आक्रमण हुए। महावंशका प्रणेता लिखता है कि लङ्कावाले जीत गये परन्तु स्थानीय इतिहास साक्षी देते हैं कि आक्रमणकारीको पीछे हटना पड़ा।

पाण्ड्य राज्यका अंत। सन् ६६४ ई० में पाण्ड्य राज्य चोल राज्यका करद हो गया। परन्तु यह छोटे मोटे राजाओंके रूपमें लगभग सोलहवीं शताब्दीतक जीवित रहा।

चेर या केरल राज्यकी राजनीतिक संस्थायें। चेर या केरल राज्यके इतिहासमें जो बात विशेष रूपसे उल्लेखनीय प्रतीत होती है वह यह है कि उनके राजत्वकालमें हातका शासन अधिकांशमें प्रजातन्त्र नियमोंपर चलाया जाता था। इसका प्रभाव सारे राज्यपर पड़ता था। गांवोंमें भिन्न भिन्न सभायें * प्रवन्ध और विचार सम्बन्धी अधिकारोंका उपयोग करती थीं। इस राज्यका इतिहास भी ईसाके संवत्‌की आरम्भिक दो शताब्दियोंतक पहुंचता है। एक समयमें ट्रावङ्कोरका प्रदेश भी इस राज्यमें था। इसके इतिहासपर सर्वोत्तम पुस्तक श्रीयुत सुन्दरम् पिल्लेकी है।

(२) चोल राज्यकी कथा।

ऐतिह्योंके अनुसार चोल प्रदेशका नाम चोलमण्डल था जिसका अपभ्रंश कोरोमण्डल हो गया।† इसके उत्तरमें पेन्नार और दक्षिणमें वेलारु नदी थी पश्चिममें यह राज्य कुर्गकी सीमातक पहुंचता था। अर्थात् इस प्रदेशमें मदरास, मैसूरका बहुत

* देखो विंसेंट स्मिथका इतिहास, तीसरा संस्करण, पृष्ठ ४५८।
† विंसेंट स्मिथ पृष्ठ ४६०।

महासागरके बहुतसे द्वीपोंको विजय किया था। इनमें लकाद्वीप और माल्द्वीपका द्वीपसमूह उल्लेखनीय है।

तञ्जोरका मन्दिर। तञ्जोरका प्रसिद्ध मन्दिर इसी राजाका बनवाया हुआ है।

राजेन्द्र चोलदेव। राजराजके पुत्र राजेन्द्र चोलदेवने बङ्गालकी खाड़ीमें बहुतसे धावे किये और पेगू, निकोबार, अण्डेमान, तथा टक्कोलम और मर्तबानके बन्दरगाहोंको जीतकर अपने राज्यमें मिलाया। पेगू नगरमें दो स्तम्भ उसके स्मारकमें खड़े हैं।

राजेन्द्र चोलकी विजय। यह राजा लड़ता लड़ता बङ्गालकी सीमाओंतक पहुंचा। अपने विजयोंकी स्मृतिमें उसने गंगैकोण्ड-चोलपुरम् नामकी एक नयी राजधानी बसाई। इस नगरके निकट एक अति विशाल और सुन्दर झील बनवाई। इसका बांध लम्बाईमें १६ मील था। इसमें उस प्रदेशमें सिंचाईके लिये भिन्न भिन्न नालियां और मोघे बनाये गये थे। उसने नगरमें एक विशाल भवन और एक महान् मन्दिर बनवाया। इस मन्दिरमें काले पत्थरकी एक २० फुट लम्बी (शिवलिंगकी) मूर्त्ति स्थापित की। मन्दिरमें चित्रकारी और आलेख्यका काम अतीव अद्भुत है।

चालुक्य और चोलके गृहविद्रोह। इसके पश्चात्का इतिहास चालुक्य राजाओंके साथ इस वंशकी लड़ाइयोंका इतिहास है। इनमें कभी चोल और कभी चालुक्य जीतते रहे। अंतको सन् १०७४ ई० के लगभग ये दोनों वंश एक ही व्यक्तिमें एकत्र हो गये। राजा राजेन्द्र गंगैकोण्ड चोलका नवासा था। और वेंगी-नरेशका (जो चालुक्य वंशकी पूर्वी शाखामेंसे था) पुत्र था।

उसने ४१ वर्षतक बड़ी सफलतापूर्वक राज्य किया और अपने इलाकेका पूरा पूरा भूमाप कराया।

अन्त। सन् १३२७ ई० तक यह वंश अच्छा महत्तायुक्त रहा। इसके पश्चात् धीरे धीरे इसका अधःपात हो गया। सन् १३७० ई०में सारा परलेसिरेका दक्षिण विजयनगरके अधीन हो गया।

चोल राज्यका राजनीतिक प्रबन्ध। इस वंशके राजनीतिक प्रबन्धका कुछ वर्णन ऊपर हो चुका है। कतिपय अधिक बातें यहाँ लिखी जाती हैं। राजस्वकी दर उपजका .१६' भाग थी। और कर (Cesses) आदिको मिलाकर सारा .२६' का अनुमान किया गया है। राजकर नगद या अन्नके रूपमें दिया जा सकता था। सिक्का सुवर्णका था। प्राचीन कालमें चाँदीके सिक्कोंका दक्षिणमें चलन न था। सिंचाई और वास्तुविभागका अतीव पूर्ण प्रबन्ध था। चोल राज्यने अतीव विशाल मन्दिर और भवन निर्माण किये। तञ्जोरके मन्दिरमें चोटीकी एक २५॥ फुट घन शिला तौलमें ८० टनकी है।

यह राज्य अपने सामुद्रिक बेड़ेके लिये विशेषरूपसे प्रसिद्ध था*।

धर्म। चोल राजाओंका धर्म शैव था। परन्तु उनके शासन-कालमें दूसरे धर्मोंके साथ किसी प्रकारका कोई हस्तक्षेप न होता था।

कला। इन राजाओंके राजत्वकालमें वास्तुविद्या, आलेख्य और पत्थर काटनेके शिल्पमें बहुत उन्नति

* ये सब हवाले विंसेंट स्मिथके 'आक्सफोर्ड भारतका इतिहास' (प्रकाशित सन् १९०९ ई०) से लिये गये हैं।

को। परंतु उनका सविस्तर वर्णन इस पुस्तकमें नहीं किया जा सकता।

(२) पल्लव वंशका शासन।

पल्लव-वंशके राजाओंके मूलका वृत्तान्त निश्चयात्मक-रूपसे कुछ भी ज्ञात नहीं। ऐतिहासिक कालमें उनका वर्णन पहले पहल समुद्रगुप्तके वृत्तान्तमें मिलता है जिसने पल्लव राजा विष्णुगोपको सन् ३५० ई० में पराजित किया था। तत्पश्चात् लगभग दो सौ वर्षतक वे दक्षिण भारतकी भिन्न भिन्न शक्तियोंसे लड़ते रहे। फिर दो सौ वर्षतक वे दक्षिणके सबसे प्रबल राज्य रहे। अपने उत्कर्षके समयमें उनके राज्य-की उत्तरी सीमा नर्म्मदा थी और दक्षिणी पन्नार नदी। दक्षिणमें समुद्रसे समुद्रतक उनका राज्य था। उनका पहला प्रसिद्ध राजा सिंहविष्णु था। उसका यह दावा था कि उसने दक्षिणके तीनों राज्योंके अतिरिक्त लङ्काको भी विजय किया है।

महेन्द्र वर्म्मन्। उसका उत्तराधिकारी उसका पुत्र महेन्द्र वर्म्मन् प्रथम हुआ। उसकी ख्याति पहाड़ोंसे काटी हुई गुफाओंके उन अगणित मन्दिरोंसे है जो तृचनापली, चिङ्गले-पुट, उत्तरी अर्काट और दक्षिणी अर्काटमें मिलते हैं। उसने महेन्द्रवाड़ी नामका एक बड़ा नगर बसाया और उसके समीप एक बड़ा तालाब अपने नामपर खुदवाया। इनके खँड़हर उनकी महत्ताके प्रमाण हैं। यह राजा आरम्भमें जैन था परन्तु फिर उसने शैवमत ग्रहण कर लिया और जैनोंके प्रसिद्ध पाटलिपु-त्रिम्‌को नष्ट किया। यह मठ दक्षिणी अरकाटमें था।

नरसिंह वर्म्मन्। इस वंशका सबसे नामी राजा नरसिंह वर्म्मन् था। इसने पुलकेशिनको पराजित कर-

के सन् ६४२ ई० में वातापि (वादामि) पर अधिकार प्राप्त किया और चालुक्य वंशकी पहली शाखाकी समाप्ति कर दी।

ह्यूनसांगका पर्यटन।

इस घटनासे दो वर्ष पहले चीनी यात्री ह्यूनसाङ्ग पल्लव राज्यकी राजधानी कांचीमें आया। उसने यहांके निवासियोंकी वीरता, सत्यप्रियता, विद्या-रसिकता और परोपकार भावकी बहुत प्रशंसा की।

कांची नगरका मानचित्र प्रोफेसर गेडसकी सम्मतियां।

अध्यापक गेडस नामके एक अंगरेज विशेषज्ञने कांची नगरके मानचित्रकी प्रशंसा आगे लिखे शब्दोंमें की है :—

"यहांपर एक ऐसा नगर बसा हुआ है जो केवल अपने बड़े बड़े धनाढ्य और भिन्न भिन्न प्रकारके मन्दिरोंके लिये ही स्मरणीय नहीं, परन्तु इसको जिस बातसे मैं प्रसन्न हुआ हूं वह यह है कि इस नगरका नकशा अतीव उपयुक्त और पूर्ण है। वह ऐसे स्केलपर है जिसमें विशाल महत्ताके साथ व्यक्तिगत और शिल्प-सम्बन्धी स्वतन्त्रताको ऐसा मिलाया गया है कि मुझे इस प्रकारका नमूना न केवल भारतमें वरन् और कहीं भी नहीं मिला।

मन्दिर।

ह्यूनसाङ्गके समयमें इस नगरमें लगभग एक सौ मठ थे जिनमें दस सहस्रसे अधिक भिक्षु थे। लगभग इतने ही मन्दिर जैनोंके थे।

धर्म्मपालका जन्म स्थान।

कांची हिन्दुओंके सात पवित्र नगरोंमें गिना जाता है। यहाँ धर्म्मपाल नामक एक विख्यात बौद्ध प्रचारक उत्पन्न हुआ था। यह शीलभद्रके पहले नालन्द विश्वविद्यालयका प्रधान माइचियेक या चांसलर था।

इस वंशका शेष इतिहास चालुक्य, राष्ट्रकूट और गङ्ग राजाओंसे लड़ाई भिड़ाईका वृत्तान्त है। सन् ७७५ ई०के लगभग इस वंशकी महत्ता नष्ट हो गई।

जगन्नाथका मन्दिर। गङ्गवंशके एक राजा अनन्तवर्म्मन् चोदगङ्गने पुरीमें जगन्नाथका मन्दिर बनाया।

धर्म्म। इस वंशके राजाओंका धर्म्म पहले बौद्ध था, पीछेसे कई राजा वैष्णव हो गये और कई राजा पहले जैन थे और फिर शैव मतमें मिल गये। परन्तु साधारणतया सभी धर्म्मों के लोग उनके राज्यमें शान्तिपूर्वक रहते थे यद्यपि ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ राजाओंने जैन होनेके कारण शैव मतवालोंको और कुछने शैव होकर जैन धर्म्मवालोंको दुःख दिया परन्तु यह पीड़न अपवादरूप है। सामान्यतया कोई किसी धर्म्मका हो राजा लोग किसीके धर्म्ममें हस्तक्षेप न करते थे।

पहला परिशिष्ट

हिन्दू और यूरोपीय सभ्यताकी तुलना।

इतिहासके अध्ययनका प्रयोजन। इतिहासके पाठका मूल प्रयोजन यह है कि पाठकको किसी काल और किसी जातिकी सभ्यताका यथार्थ ज्ञान हो जाय। राजनीतिक इतिहासमें जो राजाओं और शासकोंका वर्णन अधिक रहता है उसका बड़ा लाभ यह होता है कि सभ्यताके इतिहासके पढ़नेवालेको कालका निरूपण करनेमें सुगमता होती है। अन्यथा यह बात कि किस राजाने क्या किया और कौन कौन

सी लड़ाइयां लड़ीं, प्रत्यक्षरूपसे किस्सा-कहानीसे अधिक महत्व नहीं रखतीं। इन पृष्ठोंमें मुसलमानोंके पहलेके शासन-कालके भारत-इतिहासका संक्षिप्तसा दिग्दर्शन कराया गया है। परन्तु प्रकृत उद्देश्य यह रहा है कि भारतीय नवयुवकोंको भारतीय सभ्यता, भारतीय विचार और भारतीय साहित्यकी कथा संक्षिप्तरूपसे सुना दी जावे। अच्छा तो यह होता कि यह कथा केवल वर्णनतक ही परिमित रहती परन्तु कुछ कारणोंसे यह आवश्यकता जान पड़ती है कि हिन्दू-सभ्यताकी तुलना वर्त्तमान कालकी यूरोपीय सभ्यतासे की जाय, जिससे इस पुस्तकके पढ़नेवालोंको दोनों सभ्यताओंके विषयमें सम्मति स्थिर करनेमें सुविधा हो।

इस तुलनाकी आवश्यकता। यह भी आवश्यक प्रतीत है कि संक्षिप्त रीतिसे यह भी बता दिया जाय कि इस तुलनाके करनेकी क्यों आवश्यकता है, और तुलना करनेका यह काम पाठकोंपर क्यों नहीं छोड़ा जा सकता! बात यह है कि भारतके इतिहासमें भारतीयोंने पहली बार किसी दूसरी जातिसे बौद्धिक और आध्यात्मिक पराजय पाई है। आशा की जाती है कि यह पराजय स्थायी नहीं है। इसके पहले बाहरके आक्रमणकारी आते रहे और राजनीतिक परिवर्त्तन करते रहे, परन्तु सबने हमारी सभ्यता, हमारे रहन-सहनके ढङ्ग और हमारे सामाजिक जीवनके सामने सिर झुकाया। प्रत्येक आक्रमणकारी जातिने इसीमें अपना कल्याण, अपना त्राण और अपना गौरव समझा कि वह हमारा धर्म ग्रहण करके और हमारे समाजमें प्रविष्ट होकर अपने आपको भारतीय जातिका अङ्ग बनाये। प्राचीन आर्योंके भारतमें आनेके पश्चात् और मुसलमानोंके आक्रमणके पहले बहुत सी जातियां और

इस वंशका शेष इतिहास चालुक्य, राष्ट्रकूट और गङ्ग राजाओंसे लड़ाई भिड़ाईका वृत्तान्त है। सन् ७७५ ई०के लगभग इस वंशकी महत्ता नष्ट हो गई।

जगन्नाथका मन्दिर। गङ्गवंशके एक राजा अनन्तवर्म्मन् चोदगङ्गने पुरीमें जगन्नाथका मन्दिर बनाया।

धर्म्म। इस वंशके राजाओंका धर्म्म पहले बौद्ध था, पीछेसे कई राजा वैष्णव हो गये और कई राजा पहले जैन थे और फिर शैव मतमें मिल गये। परन्तु साधारणतया सभी धर्म्मोंके लोग उनके राज्यमें शान्तिपूर्वक रहते थे यद्यपि ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ राजाओंने जैन होनेके कारण शैव मतवालोंको और कुछने शैव होकर जैन धर्म्मवालोंको दुःख दिया परन्तु यह पीड़न अपवादरूप है। सामान्यतया कोई किसी धर्म्मका हो राजा लोग किसीके धर्म्ममें हस्तक्षेप न करते थे।

पहला परिशिष्ट

हिन्दू और यूरोपीय सभ्यताकी तुलना।

इतिहासके अध्ययनका प्रयोजन। इतिहासके पाठका मूल प्रयोजन यह है कि पाठकको किसी काल और किसी जातिकी सभ्यताका यथार्थ ज्ञान हो जाय। राजनीतिक इतिहासमें जो राजाओं और शासकोंका वर्णन अधिक रहता है उसका बड़ा लाभ यह होता है कि सभ्यताके इतिहासके पढ़नेवालेको कालका निरूपण करनेमें सुगमता होती है। अन्यथा यह बात कि किस राजाने क्या किया और कौन कौन

सी लड़ाइयां लड़ीं, प्रत्यक्षरूपसे किस्सा-कहानीसे अधिक महत्व नहीं रखती। इन पृष्ठोंमें मुसलमानोंके पहलेके शासन-कालके भारत-इतिहासका संक्षिप्तसा दिग्दर्शन कराया गया है। परन्तु प्रकृत उद्देश्य यह रहा है कि भारतीय नवयुवकोंको भारतीय सभ्यता, भारतीय विचार और भारतीय साहित्यकी कथा संक्षिप्तरूपसे सुना दी जावे। अच्छा तो यह होता कि यह कथा केवल वर्णनतक ही परिमित रहती परन्तु कुछ कारणोंसे यह आवश्यकता जान पड़ती है कि हिन्दू-सभ्यताकी तुलना वर्त्तमान कालकी यूरोपीय सभ्यतासे की जाय, जिससे इस पुस्तकके पढ़नेवालोंको दोनों सभ्यताओंके विषयमें सम्मति स्थिर करनेमें सुविधा हो।

इस तुलनाकी आवश्यकता। यह भी आवश्यक प्रतीत है कि संक्षिप्त रीतिसे यह भी बता दिया जाय कि इस तुलनाके करनेकी क्यों आवश्यकता है, और तुलना करनेका यह काम पाठकोंपर क्यों नहीं छोड़ा जा सकता? बात यह है कि भारतके इतिहासमें भारतीयोंने पहली बार किसी दूसरी जातिसे बौद्धिक और आध्यात्मिक पराजय पाई है। आशा की जाती है कि यह पराजय स्थायी नहीं है। इसके पहले बाहरके आक्रमणकारी आते रहे और राजनीतिक परिवर्त्तन करते रहे, परन्तु सबने हमारी सभ्यता, हमारे रहन-सहनके ढङ्ग और हमारे सामाजिक जीवनके सामने सिर झुकाया। प्रत्येक आक्रमणकारी जातिने इसीमें अपना कल्याण, अपना त्राण और अपना गौरव समझा कि वह हमारा धर्म्म ग्रहण करके और हमारे समाजमें प्रविष्ट होकर अपने आपको भारतीय जातिका अङ्ग बनाये। प्राचीन आर्योंके भारतमें आनेके पश्चात् और मुसलमानोंके आक्रमणके पहले बहुत सी जातियां और

इस वंशका शेष इतिहास चालुक्य, राष्ट्रकूट और गङ्ग राजाओंसे लड़ाई भिड़ाईका वृत्तान्त है। सन् ७७५ ई०के लगभग इस वंशकी महत्ता नष्ट हो गई।

जगन्नाथका मन्दिर। गङ्गवंशके एक राजा अनन्तवर्म्मन् चोदगङ्गने पुरीमें जगन्नाथका मन्दिर बनाया।

धर्म्म। इस वंशके राजाओंका धर्म्म पहले बौद्ध था, पीछेसे कई राजा वैष्णव हो गये और कई राजा पहले जैन थे और फिर शैव मतमें मिल गये। परन्तु साधारणतया सभी धर्म्मों के लोग उनके राज्यमें शान्तिपूर्वक रहते थे यद्यपि ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ राजाओंने जैन होनेके कारण शैव मतवालोंको और कुछने शैव होकर जैन धर्म्मवालोंको दुःख दिया परन्तु यह पीड़न अपवादरूप है। सामान्यतया कोई किसी धर्म्मका हो राजा लोग किसीके धर्म्ममें हस्तक्षेप न करते थे।

पहला परिशिष्ट

हिन्दू और युरोपीय सभ्यताकी तुलना।

इतिहासके अध्ययनका प्रयोजन। इतिहासके पाठका मूल प्रयोजन यह है कि पाठकको किसी काल और किसी जातिकी सभ्यताका यथार्थ ज्ञान हो जाय। राजनीतिक इतिहासमें जो राजाओं और शासकोंका वर्णन अधिक रहता है उसका बड़ा लाभ यह होता है कि सभ्यताके इतिहासके पढ़नेवालेको कालका निरूपण करनेमें सुगमता होती है। अन्यथा यह बात कि किस राजाने क्या किया और कौन कौन

सी लड़ाइयां लड़ीं, प्रत्यक्षरूपसे किस्सा-कहानीसे अधिक महत्व नहीं रखती। इन पृष्ठोंमें मुसलमानोंके पहलेके शासन-कालके भारत-इतिहासका संक्षिप्तसा दिग्दर्शन कराया गया है। परन्तु प्रकृत उद्देश्य यह रहा है कि भारतीय नवयुवकोंको भारतीय सभ्यता, भारतीय विचार और भारतीय साहित्यकी कथा संक्षिप्तरूपसे सुना दी जावे। अच्छा तो यह होता कि यह कथा केवल वर्णनतक ही परिमित रहती परन्तु कुछ कारणोंसे यह आवश्यकता जान पड़ती है कि हिन्दू-सभ्यताकी तुलना वर्तमान कालकी यूरोपीय सभ्यतासे की जाय, जिससे इस पुस्तकके पढ़नेवालोंको दोनों सभ्यताओंके विषयमें सम्मति स्थिर करनेमें सुविधा हो।

इस तुलनाकी आवश्यकता। यह भी आवश्यक प्रतीत है कि संक्षिप्त रीतिसे यह भी बता दिया जाय कि इस तुलनाके करनेकी क्यों आवश्यकता है, और तुलना करनेका यह काम पाठकोंपर क्यों नहीं छोड़ा जा सकता? बात यह है कि भारतके इतिहासमें भारतीयोंने पहली बार किसी दूसरी जातिसे बौद्धिक और आध्यात्मिक पराजय पाई है। आशा की जाती है कि यह पराजय स्थायी नहीं है। इसके पहले बाहरके आक्रमणकारी आते रहे और राजनीतिक परिवर्त्तन करते रहे, परन्तु सबने हमारी सभ्यता, हमारे रहन सहनके ढङ्ग और हमारे सामाजिक जीवनके सामने सिर झुकाया। प्रत्येक आक्रमणकारी जातिने इसीमें अपना कल्याण, अपना त्राण और अपना गौरव समझा कि वह हमारा धर्म्म ग्रहण करके और हमारे समाजमें प्रविष्ट होकर अपने आपको भारतीय जातिका अङ्ग बनाये। प्राचीन आर्योंके भारतमें आनेके पश्चात् और मुसलमानोंके आक्रमणके पहले बहुत सी जातियां और

बहुत सी उपजातियां भारतके उत्तर-पश्चिमी दर्रों और उत्तरी रास्तोंसे इस देशमें प्रविष्ट हुईं। उनमेंसे कुछ सभ्य भी थीं और अपने अपने धर्मकी अनुयायी थीं। परन्तु किसीने यह चेष्टा नहीं की कि भारतीयोंको अपने धर्मकी शिक्षा दें अथवा उनके अन्दर अपनी सभ्यता और अपने विचारोंको फैलायें। ऐतिहासिक कालमें भी लगभग आधी दर्जन इस प्रकारकी जातियोंने भारतमें प्रवेश किया और उनकी राजनीतिक सत्ता नष्ट हो जानेपर भी उनकी पर्याप्त संख्या हमारे अन्दर पचकर आत्मसात हो गई। हमने उनको अपने धर्ममें मिलाकर अपने सामाजिक संगठनका अङ्ग बना लिया और उनकी योग्यता और उनके 'गुण-कर्म-स्वभाव'के अनुसार उनको भिन्न भिन्न पद दे दिये। भारतके इतिहासमें मुसलमान आक्रमणकारी ही ऐसे पहले जन-समूह थे जिन्होंने अपना विशेष धर्म्म और विशेष सभ्यता रखते हुए हमको अपना धर्म्म और अपनी सभ्यता देनेकी चेष्टा की, और जो हममेंसे एक अच्छी संख्याको अपने साथ मिलानेमें कृतकार्य्य हुए। परन्तु इतना होते हुए भी हिन्दू-जातिने सामूहिक-रूपसे कभी इस बातको स्वीकार नहीं किया कि मुसलमानी धर्म या मुसलमानी सभ्यता हिन्दू-धर्म या हिन्दू-सभ्यतासे उच्चतर है। हिन्दुओंने राजनीतिक हार मान ली (यद्यपि पूर्णरूपसे तो यह भी कभी नहीं मानी) परन्तु बौद्धिक या आध्यात्मिक पराजय कभी स्वीकार नहीं की और यही हिन्दुओंके बचावका कारण हुआ।

हिन्दू-सभ्यतापर मुसलमानोंका प्रभाव।

इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि मुसलमानी सभ्यताका प्रभाव किसी अंशमें हिन्दुओंके रहन-सहनके ढंग और हिन्दू-सभ्यतापर हुआ परन्तु उससे

कहीं अधिक प्रभाव हिन्दुओंकी सभ्यताका भारतके मुसलमानों-पर हुआ। जब हम चीनी यात्रियोंके भ्रमण-वृत्तान्तोंको पढ़ते हैं अथवा हिन्दू-कालके नाटकों या उपन्यासोंको देखते हैं और उस समयके रहन-सहनकी रीतिकी वर्त्तमान समयके रहन-सहनके रीतिके साथ तुलना करते हैं तो हमें आश्चर्यजनक सादृश्य देख पड़ता है और यह सादृश्य ही संसारके बड़े बड़े विद्वानोंको यह कहनेपर विवश करता है कि हिन्दू-धर्ममें परिवर्त्तन बहुत कठिन है। हिन्दू-धर्मकी तुलना बहुधा लोग ऐसे मगरसे करते हैं जो नाना प्रकारकी मछलियों और जीवोंको पेटमें डालकर भी कभी अजीर्णकी शिकायत नहीं करता। और अपने तत्व और वास्तविक स्वरूपको कभी नहीं बदलता। परन्तु इससे भी इंकार नहीं हो सकता कि पश्चिमी शिक्षाने भारतमें एक ऐसा जन-समुदाय उत्पन्न कर दिया है जो अपने देशके इतिहास और धर्मसे सर्वथा अनभिज्ञ है और प्रायः प्रत्येक विषयमें पश्चिमको प्रमाण मानता है। इस शिक्षित जन-समुदायके रहन-सहनके ढङ्ग और जीवनमें उनके बौद्धिक और आध्यात्मिक पराजयकी असंख्य साक्षियां मिलती हैं। और यदि इस लहरको न रोका गया तो कुछ आश्चर्य नहीं कि सौ दो सौ वर्षमें (इससे कममें असम्भव है) हिन्दू-धर्म अपने वास्तविक स्वरूप और तत्वको बदलकर कुछ औरका और हो जाय।

पश्चिमी शिक्षा-प्रणालीपर शिक्षा पाये भारतीय जन-समुदायका झुकाव।

पश्चिमी शिक्षा-प्रणालीसे शिक्षा पाये हुए जन-समुदाय-के रहन-सहन, पठन-पाठन, उनके मस्तिष्ककी समस्त चेष्टायें और उनकी सभी रीतियां पाश्चात्य होती जाती हैं। हमारा खान-पान हमारा परिधान, हमारे खेल कूदकी सामग्री, हमारे पढ़ने-

पढ़ानेकी रीतियां सब बदलती जा रही हैं और सबसे बढ़कर दुःखकी बात यह है कि हम जीवनके सब नियमोंमें पश्चिमसे प्रकाश पानेकी चेष्टा करते हैं। भारतकी आदालतोंमें जब कोई ऐसा सूक्ष्म कानूनी विषय उपस्थित होता है जिसपर भारतीय गवर्नमेण्टका कोई स्पष्ट नियम लागू न होता हो तो हमारे वकील इस विषयको हल करनेके लिये अमरीकन, जर्मन और फ्रांसीसी कानूनदानोंकी सम्मतियां पेश करते हैं। भारतीय वकीलोंने कानूनपर जितनी बड़ी बड़ी पुस्तकें लिखी हैं उनमें उन्होंने अपनी विद्वत्ता और महत्ताका प्रमाण इस प्रकार दिया है कि यूरोपके भिन्न भिन्न कानूनदानोंके विचारोंसे अपना परिचय सिद्ध करें और उनके प्रमाण दें। कभी यह नहीं देखा गया कि ये लोग भारतके प्राचीन बड़े बड़े कानूनदानों (धर्मशास्त्रज्ञों) के प्रमाणोंसे किसी नवीन विषयपर प्रकाश डालनेका यत्न करें। कोई जाति कानूनके बिना नहीं रह सकती और यदि कानूनी बातोंमें किसी जातिका मस्तिष्क बाहरसे पथदर्शन ढूंढ़ता है तो निश्चय ही वह जाति अपनी कानूनी योग्यताके दीवालेका प्रमाण देती है। परन्तु हमारी प्रकृतियोंका वर्त्तमान झुकाव केवल यहींतक पर्याप्त नहीं है। हम जीवनके सभी अङ्गोंमें उदाहरणार्थ शिक्षा, संस्कार, चिकित्सा और प्रबन्ध आदिमें भी अपना पराजय स्वीकार करके सदा बाहरसे प्रकाश ढूंढ़नेका यत्न करते हैं। मैं इस बातका माननेवाला नहीं कि यदि हमें किसी बातका ज्ञान नहीं तो वह हमें बाहरसे नहीं सीखनी चाहिये। परन्तु मैं इस बातका माननेवाला भी नहीं कि हम अपने समग्र अतीत इतिहासपर पानी फेरकर एक ऐसा

चेष्टा हमारे लिये घातक होगी। पहले तो नवीन विचार, नवीन ...न और रहन-सहनके नवीन ढंगको अपने हमको बहुत देर लगेगी और इतनी देरतक दूसरी जातियोंके दास रहेंगे।

शिष्यता और अल्प वयस्कताका काल।

...ताका समय अधीनता और ...समय होता है। देखिये, अँगरेज राजनीतिज्ञ ...क हम अपने देशका शासन करनेके योग्य नहीं, ...ी शिष्यता और अल्पवयस्कताका काल अभी ...ा। वे यह समझते हैं कि अपने देशपर शासन ...ता हमको उनसे मिलेगी। और यदि हम इस और शिष्यताको एक बार स्वीकार कर लें तो सम्मतिके दुरुस्त होनेपर आपत्ति करनेका कोई रहता। यदि सचमुच ही हम बुद्धि, आध्यात्मि-...कृतिकी दृष्टिसे कङ्गाल हों तो भी हमें यह शिष्यता में कोई इन्कार न होना चाहिये। परन्तु जब हम ...पन अतीत इतिहासका अध्ययन करते हैं तो हमें पर्याप्तरूपसे यह विदित हो जाता है कि हम कङ्गाल नहीं वरन् इतने वैभव-सम्पन्न हैं कि हम अपने भाण्डारोंसे दूसरोंको भी कुछ दे सकते हैं। हमारे जातीय व्यक्तित्वकी स्थिरता इस बातपर निर्भर है कि हम इस नयी दुनियामें अपने कङ्गालपनको न स्वीकार करते हुए अपने जातीय अस्तित्वको बनाये रक्खें। और जहां हमको कभी इस बातमें सङ्कोच न हो कि जो कुछ हमें नहीं आता वह औरोंसे सीख लें, वहां दूसरी ओर हम कभी यह यत्न न करें कि हम पाश्चात्य जगत्का अनुसरण करते हुए एक नवीन भारतीय अस्तित्व बन जायँ। पाश्चात्य जगत्ने विज्ञानकी भिन्न

भिन्न शाखाओंमें जो कुछ आविष्कार किया है उसका जानना और समझना हमारा कर्त्तव्य है। परन्तु इससे यह आवश्यक नहीं ठहरता कि हम केवल उनका उच्छिष्ट उठानेवाले हो जायँ और अपनी बुद्धि और समझको उसमें कुछ दखल न दें और हमारी जातिने जो कुछ आविष्कार किये हैं उनको केवल इस लिये तुच्छ समझें कि वे राजनीतिकरूपसे पराजित जातिके आविष्कार हैं और इसलिये वे हेय हो गये हैं।

अंगरेज जातिका उद्देश्य। अँगरेज जातिके बहुतसे राजनीतिज्ञ अभिमानसे यह कहते हैं कि उनका उद्देश्य यह है कि वे भारतको पाश्चात्य सभ्यताकी शिक्षा दें और उसके सारे राजनीतिक और सामाजिक संगठनको वर्त्तमानकालको सर्वोत्तम जातियोंके नमूनेपर ढाल दें। भारतीयोंमेंसे जो व्यक्ति इस विचारका विरोध करता है और अपनी जातिको भारतीय ढंगपर जीवन ढालनेका उपदेश देता है तो वे उसको पाश्चात्य सभ्यताका शत्रु बतलाते हैं और भारतकी प्रगतिके मार्गमें बाधक समझते हैं। हम उनके इस दावेको स्वीकार नहीं करते।

क्या हिन्दू जातिकी सभ्यता उन्नतिका अन्तिम शब्द है? इस अवसरपर प्राचीन हिन्दू-सभ्यता और वर्त्तमान पाश्चात्य सभ्यताकी तुलना करनेका एक और कारण भी है और वह यह है कि जिस प्रकार पाश्चात्य सभ्यताके भक्त हमें पाश्चात्य जातियोंका अनुकरण करनेका उपदेश देते हैं और प्रत्येक भारतीय वस्तु, भारतीय विचार, भारतीय रीति-नीति और भारतीय संस्थाओंसे घृणा करना सिखलाते हैं, उसी प्रकार भारतीयोंमें एक और जन-समुदाय भी जो यह विश्वास करता है कि हिन्दू-सभ्यता

और हिन्दू-उन्नति सचाईकी चरमसीमातक पहुंच चुकी है और उसमें अब भविष्यमें न उन्नतिकी गुञ्जायश है और न आवश्यकता ही है। उनका यह विश्वास है कि उनके बाप-दादा पूर्ण मनुष्य थे और जो कुछ वे कर गये या कह गये वह मानवी उन्नतिमें अन्तिम शब्द था। इस विचारके रखनेवाले भारतीय अपनी जातिको पीछे ले जाना चाहते हैं। परन्तु वे भूल जाते हैं कि आजका भारत वह भारत नहीं है जो विक्रमीय संवत्से तीन सहस्र वर्ष पूर्व था या जो ईसाके संवत्की पहली बारह शताब्दियोंमें था और इसलिये उसको दुबारा पहली अवस्थापर ले जानेकी चेष्टा व्यर्थ ही नहीं वरन् असम्भव है। इस यत्नमें भी हमको इतना समय लगेगा कि हम चिरकालतक दासत्वकी ज़ञ्जीरोंमें जकड़े रहेंगे। इन कारणोंसे मैं उचित समझता हूं कि हिन्दू और यूरोपीय सभ्यताकी तुलना करके दोनों सभ्यताओंका एक संक्षिप्त सा चित्र नवयुवक भारतीयोंके लिये खींच दूँ, ताकि वे स्वतन्त्ररूपसे सम्मति स्थिर कर सकें। इस प्रयोजनके लिये उचित प्रतीत होता है कि मैं हिन्दू-इतिहास और हिन्दू-सभ्यताकी कतिपय मुख्य मुख्य विशेषताओंका वर्णन करूं।

हिन्दू आर्य्योंने कभी भारतके बाहर आक्रमण नहीं किया।

सबसे पहले यह बात द्रष्टव्य है कि हिन्दू आर्य्य लोगोंने अपनी सर्वोत्तम राजनीतिक शक्तिके समयमें भारतके बाहर किसी जातिपर आक्रमण करनेकी चेष्टा नहीं की। ऐतिहासिक कालमें कई हिन्दू राजा ऐसे प्रबल हो गये हैं जो यदि तलवारके ज़ोरसे कुछ पाश्चात्य देशोंको जीतनेकी चेष्टा करते तो आवश्यक न था कि उनको विफलता होती। यह अवश्य है कि हिन्दू-सत्ताके सर्वोत्तम कालोंमें हिन्दू-राज्य हिन्दूकुश पर्वतमालांतक रहा परन्तु इसके आगे

कभी किसीने बढ़नेका यत्न नहीं किया। यह भाग भी, जो सिन्धु नदीके पश्चिम है, कभी किसीने जान बूझकर विजित नहीं किया। सिन्धु नदी और हिन्दूकुशके बीचका जो इलाका हिन्दू-राज्योंमें सम्मिलित हुआ उसका बड़ा कारण यह था कि उस समयमें उस प्रदेशके लोग जातिसे, धर्मसे, सभ्यतासे और भाषासे हिन्दू-आर्य्योंके सम्बन्धी थे। फिर भी एक कारण यह बताया जा सकता है कि चन्द्रगुप्त, अशोक, समुद्रगुप्त, विक्रमादित्य और हर्षने अपनी रक्षाके विचारसे आगे बढ़ना उचित न समझा हो कि कहीं उनके पीछे उनका राज्य छिन्न भिन्न न हो जाय। परन्तु जब हम यह देखते हैं कि समुद्रगुप्त अपनी राजधानीसे चलकर निरन्तर दो वर्षतक दक्षिणी राज्यों-को विजय करनेमें लगा रहा और उसकी अनुपस्थितिमें उसके केन्द्रिक राज्यमें कोई विद्रोह नहीं हुआ तो हमें यह युक्ति अकाट्य नहीं प्रतीत होती। यह भी कहा जा सकता है कि भारत स्वयं इतना लम्बा चौड़ा और इतना विस्तृत देश था कि वह बड़ेसे बड़े आक्रमणकारी और बड़ेसे बड़े राजनीतिक लोलुपकी लाल-साओंके लिये पर्याप्तसे अधिक था। अस्तु, चाहे कुछ ही कारण हो, यह सत्य घटना विचारणीय है कि अपनी सर्वोत्तम शक्तिके समयमें भारतीय शासकोंने कभी भारतके बाहर अपने राज्यको बढ़ानेका यत्न नहीं किया।

हिन्दू-आर्य्य साम्राज्यवाद-का भाव।

इस सिलसिलेमें यह बात भी विशेषरूपसे द्रष्टव्य है कि हिन्दू-राजनीतिक पद्धतिका यह एक प्रामाणिक सिद्धान्त रहा है कि जिन प्रदेशोंको हिन्दू-आर्य्यों, बौद्धों या जैन राजाओंने विजय किया उनमें अपनी राजनीतिक सत्ताको, वहांके धर्म्म और सभ्यताको बदलनेके लिये

प्रयुक्त नहीं किया। हमारा इससे यह तात्पर्य नहीं कि उन्होंने अपने धर्मके प्रचारमें कुछ सहायता नहीं की। वरन् हमारा अभिप्राय इससे यह है कि उन्होंने कोई उपाय ऐसे ग्रहण नहीं किये जिनसे अधिकृत प्रदेशोंकी प्रजाका दिल दुखे। सामान्यतः हिन्दू-आर्य्य लोग इस सिद्धान्तके माननेवाले रहे हैं कि किसी प्रान्तकी रीति-नीति और शासन-पद्धतिको बलात्कार परिवर्तित न करना चाहिये। इस सिद्धान्तपर यहांतक आचरण किया गया कि प्रायः विजित प्रदेशके राजपरिवारको भी अपने स्थानसे नहीं हिलाया गया और न उनका कानून बदलनेकी चेष्टा की गयी। केन्द्रसे सारे साम्राज्यपर शासन करनेका यत्न नहीं किया गया। महाराज चन्द्रगुप्त, महाराज अशोक, महाराज समुद्रगुप्त, विक्रमादित्य, हर्ष और भोज आदि चक्रवर्ती राजाओंके शासन-कालमें भी केन्द्रिक शासन भारतके विशेष भागोंतक ही परिमित रहा और अवशेष भारतके विजित भागोंमें अपना अपना स्थानिक राज्य (लोकल सेल्फ गवर्नमेंट) रहा। वर्त्तमान यूरोपीय शक्तियां इस सिद्धान्तकी माननेवाली नहीं। उनका पेट इतना बड़ा है कि वह कभी नहीं भरता। उनकी लोलुपता इतनी है कि कभी पूरी नहीं होती। वे भूमण्डलके सभी भागों और सभी दिशाओंमें अपना राज्य, अपना धर्म्म और अपनी सभ्यता फैलाना चाहती हैं। साम्राज्यवादी मस्तिष्कवाले यूरोपीय राजनीतिज्ञ यह समझते हैं कि वे समस्त संसारपर शासन करनेके लिये उत्पन्न हुए हैं और उनका यह कर्तव्य है कि वे सारे संसारको न केवल अपना धर्म दें वरन् अपनी सभ्यताको भी बलात् और अत्याचारसे सारे संसारमें फैला दें।

बौद्ध-धर्म्म पहला मिशनरी धर्म्म था।

धर्म्मोंके इतिहासमें बौद्ध-धर्म्म पहला प्रचारक या मिशनरी धर्म्म हुआ है। बौद्ध

प्रचारक सबसे पहले तत्कालीन ज्ञात संसारके भिन्न भिन्न भागोंमें प्रचारके लिये गये। महाराज अशोकने प्रचारकोंकी भिन्न भिन्न मण्डलियां पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिणको भेजीं। परन्तु इस बातका कोई प्रमाण विद्यमान नहीं कि इन धर्म्म-प्रचारकोंने दूसरे देशोंमें जाकर लोगोंके प्रचलित धर्म्मोंपर अनुचित आलोचना की और जब वहांके राज्योंने उनपर कठोरता की तो भारतीय राज्यने उन कठोरता करनेवालोंके विरुद्ध युद्ध-घोषणा की। आज यूरोपीय राज्य अपने धर्म-प्रचारकोंको राजनीतिक और सैनिक प्रवेशका अग्रगामी बनाते हैं। धर्म-प्रचारक विदेशोंमें जाते हैं। वहां जाकर स्थानीय धर्म्मोंपर आक्षेप करते हैं। जब वहांके लोग उनका विरोध करते हैं तो वे अपनी गवर्नमेंटका सहारा ढूंढते हैं। गवर्नमेंटें इन अवसरोंको ग़नीमत समझकर उनको अपनी राजनीतिक और आर्थिक-शक्तिका विस्तार करनेके लिये उपयोगमें लाती हैं। प्राचीन कालमें बौद्ध-धर्म्मके प्रचारकोंने दूसरे देशोंमें जाकर प्रचार किया। परन्तु अपने प्रचारके लिये अपनी सरकारकी सहायता नहीं ढूंढी। और इस कारणपर कभी किसी हिन्दू या बौद्ध राज्यने किसी जाति या किसी बाह्य शक्तिके साथ लड़ाई झगड़ा नहीं किया। हिन्दू आर्य्योंने तो कभी किसी जातिपर अपने धर्म्म और अपनी सभ्यताको ठूंसनेकी चेष्टातक नहीं की। कुछ लोग यह कहेंगे कि यह सत्य घटना उनकी तुच्छताका प्रमाण है। विश्वव्यापी राज्यकी इच्छा करना मनकी उच्चताका चिह्न है। परन्तु हमको इस युक्तिके स्वीकार करनेमें आपत्ति है। हमारी सम्मतिमें साम्राज्यवादका भाव और संसारमें एक ही धर्म्म और एक ही सभ्यताके फैलानेका विचार प्राकृतिक नियमके विरुद्ध है और इससे संसारमें बहुत कुछ उपद्रव, विनाश और

विपत्ति फैली है। जो लोग इन विचारोंके माननेवाले हैं वे मनुष्य-समाजके मित्र नहीं वरन् शत्रु हैं। सिकन्दर, नैपोलियन, सीज़र, शार्लिमेन ये पुण्यकी शक्तियां नहीं थीं। उन्होंने विश्व-व्यापी विजयोंके अभिमानमें और विश्वव्यापी साम्राज्यकी लालसामें संसारमें अपरिमेय रक्तपात किया और संसारको तहस नहस करके वे मनुष्य-जातिके विनाशके कारण हुए। भारतके इतिहासको पढ़कर हम यह नहीं कह सकते कि किसी भारतीय राजाके हृदयमें साम्राज्यका विचार प्रविष्ट नहीं हुआ। केवल इतना कह सकते हैं कि किसी हिन्दू आर्य्य या बौद्ध राजाने अपने साम्राज्य सम्बंधी विचारको इतना नहीं बढ़ाया कि वह इसको भारतसे बाहर ले जाता। भारतके भीतर भी वह कभी इस विचारको ऐसी तरहसे उपयोगमें नहीं लाया जिससे कि स्थायी और पूर्णरूपसे विजित प्रदेशोंको वह राजनीतिक और संस्कृत-सम्बंधी दोनों रीतियोंसे दासत्वकी जञ्जीरोंमें जकड़ देता। इन राजाओंने देश अवश्य लिये और कभी कभी लूट-मार भी की परन्तु स्थायीरूपसे किसी विजित या स्वायत्त किये प्रदेशका रुधिर चूसनेकी चेष्टा नहीं की। हिन्दुओंने अपने इतिहासके किसी कालमें धर्म्मका राजनीतिक उपयोग नहीं किया और न धर्मकी छत्रछायामें दूसरी जातिकी स्वतंत्रता, उसके देश और उसकी सम्पत्तिपर कोई छीना झपटी की। इस विषयमें प्रसिद्ध अँगरेज ग्रन्थकार श्रीयुत एच० जी० वेलसकी पुस्तक, 'संसारका इतिहास', दूसरा खण्ड, पृष्ठ २५७ देखने योग्य है। वेल्स महाशय नैपोलियन बोनापार्टके लेखोंमेंसे इस विषयका एक लेख उपस्थित करते हैं जिससे प्रकट होता है कि फ्रांसीसी राज्य अपने पादरियोंको इस प्रयोजनसे विदेशोंमें भेजता रहा। वास्तवमें समग्र यूरोप ही ऐसा

करता रहा है और करता है। अमरीकन व्यापारी और कारखानादार भी इस उद्देशसे अपने प्रचारक एशियाके देशोंमें भेजते हैं। कुछ गुप्तरूपसे यह काम करते हैं और कुछ प्रकटरूपसे। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि धर्म्म-प्रचारका उपयोग राजनीतिक शक्ति और व्यापारिक प्रयोजनोंके लिये किया जा रहा है। हमारी सम्मतिमें धर्म्म-प्रचारकी जो रीति और नियम पाश्चात्य जगत्ने ग्रहण किया है वह सिद्धान्तरूपेण बहुत ही खराब है। धर्म्म-प्रचारका राजनीतिक सत्ताके लिये और राजनीतिक सत्ताका आर्थिक लाभके लिये उपयोग करना अतीव नीचता है। हमारी यह प्रतिज्ञा है कि न हिन्दुओंने, न बौद्धोंने और न जैनोंने धर्म्मको राजनीतिक सत्ताकी सीढ़ी बनाया। इस दृष्टिसे हिन्दू-सभ्यता यूरोपीय सभ्यतासे अनेक अंशोंमें उच्च और उत्तम थी।

समस्त संसारमें एक धर्म्म स्थापित करनेकी चेष्टा करना प्रकृतिके विरुद्ध है। धर्म्मका सम्बन्ध प्रत्येक मनुष्यकी आत्मासे है। वास्तवमें किन्हीं दो मनुष्योंका धर्म्म एक नहीं हो सकता। कहा जा सकता है कि धर्म्मके प्रचारसे उतना सिद्धान्तका प्रचार अभीष्ट नहीं जितना कि धार्म्मिक मर्यादाका है। संसारको एक ही धार्म्मिक मर्यादामें ढालने या एक ही धार्मिक नियमका अनुयायी बनानेकी चेष्टा भी प्रकृतिके विरुद्ध है, सिद्धान्तरूपसे अशुद्ध है और क्रियात्मिकरूपसे असम्भव है। यदि कभी यह असम्भव सम्भव हो गया तो संसार बड़ा नीरस और आलस्यका स्थान हो जायगा। संसार अपने विश्वास और रीतिनीतिमें स्वतन्त्रता-पूर्वक मत-भेद रखते हुए भी परस्पर द्वेष, शत्रुता, लड़ाई और उपद्रवसे किस प्रकार अलग रह सकता है, इसपर विवाद चलानेके लिये यह उपयुक्त स्थल नहीं।

जातीयताका भाव। हिन्दू-धर्म और हिन्दू-सभ्यतामें जातीयताके इस भावको कभी स्थान नहीं मिला जिससे प्रेरित होकर आज पश्चिम समस्त संसारमें रक्तपात और लड़ाई भिड़ाईका कारण हो रहा है। आज यूरोपीय जातियाँ एक मगरके सदृश मुँह खोले सामूहिकरूपसे समस्त संसारको अपने अधीन करनेकी आकांक्षा कर रही हैं और समस्त संसारके धनको एकत्र करनेकी कामना रखती हैं। राष्ट्रीय शक्तिकी प्राप्ति और जातीय स्तम्भोंके धनकी वृद्धिके निमित्त- प्रत्येक प्रकारका अनियम और अनीति उचित समझी जाती है। यूरोपमें राष्ट्रीयताके जिस भावने विकास पाया है वह अतीव भीषण और आध्यात्मिकतासे शून्य है।

हम देश-भक्तिको स्वीकार करते हैं, राष्ट्रीयताको भी मानते हैं और हमको हिन्दू-सभ्यतामें ये दोनों भाव मिलते हैं। परन्तु हम इस सिद्धान्तके माननेवाले नहीं कि उन्नति दूसरी जातियोंको दास बनानेपर निर्भर है, अथवा हमारे राष्ट्रीयभाव हमें इस बातकी आज्ञा देते हैं कि हम अपने राष्ट्रकी उन्नतिके लिये दूसरे राष्ट्रोंके नाश और लूटको उचित समझें। जिस प्रकार नीति और आध्यात्मिकताके नियम किसी व्यक्तिविशेषको या किसी परिवारको इस बातकी आज्ञा नहीं देते कि वह अपने उत्कर्ष और अपनी प्रगतिका भवन दूसरे लोगों या दूसरे परिवारोंके ह्रास या उनकी लूट मारपर निर्माण करे, उसी प्रकार राष्ट्रीयताके भाव और जातीय-प्रेमकी यह उचित माँग नहीं है कि अपनी जातिके हितके लिये दूसरी जातियोंको तहस नहस कर डाला जाय। राष्ट्रीयताका भाव शुभ है। परन्तु इस भावके वशीभूत होकर दूसरी जातियोंकी हानि करना, उनको दासत्वकी ज़ञ्जीरोंमें जकड़ना, और उनकी दरिद्रतापर अपनी जातिको

धनाढ्य बनाना, जातियों और राष्ट्रोंकी अवस्थामें भी वैसा ही अनुचित और अपवित्र है जैसा कि व्यक्तियों और कुलोंकी अवस्थामें। हमें प्रसन्नता है कि हमको जातीयताके इस अनुचित भावका कोई प्रमाण नहीं मिलता। यह भी सत्य है कि स्वयं जातीयताका भाव भी हिन्दू-आर्य्योंमें थोड़ा बहुत दुर्बल था। आजकल जातीयताका भाव संसारमें बहुत प्रबल हो गया है। और यदि हिन्दू आर्य्योंमें भी यह भाव उतना ही प्रबल होता तो कदाचित् भारतपर उतनी विपत्तियां न आतीं जितनी कि उसपर आईं। इस विषयमें इस बातकी आवश्यकता है कि आधुनिक भारतीय वर्त्तमान कालकी यूरोपीय जातियोंसे कुछ शिक्षा सीखें। दूसरोंका अपकार करनेवाली देशभक्ति एक जघन्य भाव है। यह सदाचार, आध्यात्मिकता तथा मनुष्यत्वका शत्रु और उनकी जड़ोंको काटनेवाला है। परन्तु शत्रुकी रोक थाम करनेवाली देश-भक्ति (*Defensive Nationalism*) एक प्रयोजनीय भाव है। इसपर किसी जातिका जातीय अस्तित्व और उत्कर्ष निर्भर है। अपनी सहज सीमाओंके भीतर प्रत्येक जातिका कर्त्तव्य है कि वह अपने समस्त स्तम्भोंकी भलाई और उन्नतिकी जिम्मेदार बने और क्या बाहरी क्या भीतरी सब प्रकारकी विपत्तियोंसे उनकी रक्षा करे।

हिन्दू-शास्त्रोंमें और हिन्दू राजनीतिक पुस्तकोंमें इस भावके पर्याप्त चिह्न मिलते हैं परन्तु देशके विस्तार और व्यक्तित्वके विचारने कभी उस भावको प्रबल नहीं होने दिया। यह भी स्मरण रहना चाहिये कि वर्त्तमान यूरोपमें भी जातीयताका भाव बहुत प्राचीन नहीं है। यह विकास केवल उन्नीसवीं शताब्दीका है। आधुनिक कालके साहित्यिक अन्वेषणोंने इस भावकी बहुत कुछ पुष्टि की है। भारतके धार्मिक, वंश और भाषा-

सम्बन्धी भेदोंने भारतमें इस भावको पुष्ट नहीं होने दिया, यह विचार उतना महत्व नहीं रखता जितना कि समझा जाता है। यूरोपका इतिहास बताता है कि राष्ट्रीयता न तो भाषाके एक होनेपर निर्भर है और न वंश तथा धर्मके एक होने-पर। हां, वंश, भाषा और धर्ममें एक होना राष्ट्रीयभावकी पुष्टि अवश्य करता है। यूरोपके बहुतसे राजनीतिक टीकाकार और प्रामाणिक अध्यापक अब इस बातको स्वीकार करते हैं कि राष्ट्रीयताके अस्तित्वके लिये जाति, भाषा और धर्मका एक होना आवश्यक नहीं।

आजकलके संसारमें ऐसे अनेक राष्ट्र हैं जिनके अन्दर राष्ट्रीयताके यह माने हुए लक्षण नहीं पाये जाते, फिर भी कोई व्यक्ति उनकी राष्ट्रीयतासे इन्कार नहीं कर सकता।। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि जिन राष्ट्रोंमें वंश और भाषाकी एकता पायी जाती है उनमें यह एकता उनकी शक्तिका एक प्रबल साधन है।

क्या राज्य (स्टेट) कानूनसे ऊपर है ?

यूरोपीय सभ्यताका शिखर राजा या राज्यकी स्वाधीनता है। यूरोपीय सभ्यता स्टेट अर्थात राज्यकी शक्तियोंपर कोई सीमा नहीं लगाती। वास्तवमें राज्यकी प्रत्येक आज्ञा कानूनका पद रखती है और यूरोपीय सभ्यता राज्यके लिये यह उचित ठहराती है कि वह अपनी आवश्यकताओंके लिये प्रत्येक प्रकार-के कानूनोंको तोड़ डाले। हिन्दू-सभ्यता इस सिद्धान्तको नहीं मानती। इसलिये हिन्दू राजत्वकालमें कभी राजाको ऐसे कानून बनानेका अधिकार न था जो धर्मके विरुद्ध हों। कानूनके अनुसार न्याय करना राजाओंका कर्त्तव्य ठहराया गया था, परन्तु इसके साथ स्वयं राजाका भी यह कर्त्तव्य था कि वह कानूनके

अनुसार चले। कभी किसी राजाको या किसी राज्यको ऐसी स्वतन्त्रता नहीं मिली जिससे राज्यप्रबन्ध-सम्बन्धी बातोंको छोड़कर उसको प्रजाके जीवनके सम्बन्धमें कानून बनानेका अधिकार दिया गया हो। हिन्दू राजनीतिक इतिहासमें हमें कोई ऐसा उदाहरण नहीं मिलता जहाँ किसी राजाने या किसी राज-सभाने राज्यप्रबन्ध-सम्बन्धी बातोंको छोड़कर और किसी विषयके सम्बन्धमें कानून बनाया हो।। हिन्दू राजनीति-विज्ञानका यह सिद्धान्त है कि राजा या राज्य प्रजाके लाभके लिये हैं न कि प्रजा राजा या राज्यके लाभके लिये। इसीलिये हिन्दू राजनीति-विज्ञानमें बार बार यह बात दुहराई गई है कि यदि राजाका आचरण धर्म्मके विरुद्ध हो और वह अत्याचारी, व्यभिचारी या विलासी हो जाय तो प्रजाको न केवल यह अधिकार है कि वह इसको सिंहासनच्युत कर दे वरन् उसको यह भी अधिकार है कि वह उसको मृत्यु-दण्ड दे। यूरोपीय सभ्यता राज्यको सब कानूनोंसे उच्चतर समझती है। हिन्दू-सभ्यता राज्यको कानूनके अधीन समझती थी। कानूनोंकी रचना और व्याख्या करनेवाले धर्मात्मा विद्वान होते थे जिनका पवित्र और निःस्वार्थ जीवन उनके निर्णयोंके पवित्र और निष्पक्ष होनेकी प्रबल युक्ति थी। कानूनके कई आधार थे जैसे कि श्रुति, स्मृति और लोक प्रथा। कानूनमें कोई परिवर्त्तन तबतक धर्म्म और आचरणीय नहीं समझा जाता था जबतक लोग उसको अपने क्रियात्मक जीवनमें धारण करके प्रचलित न कर देते थे। हिन्दुओंकी राज-सभायें आजकलकी जुडीशल कमेटियोंके सदृश नये कानून नहीं गढ़ सकती थीं।

भारतमें प्रजातन्त्र-का भाव। बहुतसे यूरोपीय लेखकोंका यह विचार है कि भारतमें कभी प्रजातन्त्र नहीं हुआ। इतिहासने इस विचारको असत्य सिद्ध कर

दिया है और इस बातके पर्याप्त प्रमाण मिल गये हैं कि ऐतिहासिक कालमें भी भारतमें प्रजातन्त्र राज थे। वास्तवमें पूर्वीय अनियन्त्रित राजसत्ताका जो चित्र यूरोपीय लोगोंने तैयार किया है उसका अस्तित्व केवल यूरोपीय लोगोंकी कल्पनामें है। भारतमें किसी समयमें भी कभी इस प्रकारकी स्वेच्छाचारिता किसी बड़े परिमाणमें नहीं हुई। बड़ेसे बड़े और कठोरसे कठोर स्वेच्छाचारी राजाके समयमें केन्द्रिक शासनका परोक्षप्रभाव प्रजाके बहुत थोड़े भागपर रहा। देशकी प्रजा दो भागोंमें विभक्त की जाती है—अर्थात् ग्राम और नगर। ग्रामोंका प्रबन्ध ऐतिहासिक कालके पहलेसे आरम्भ होकर अंगरेजी शासनके आरम्भ कालतक सदा ग्राम्य पञ्चायतोंके हाथमें रहा और सामान्यतः कभी किसी केन्द्रिक शासनने ग्रामोंके भीतरी प्रबन्धमें अधिक हस्तक्षेप नहीं किया।

ग्राम्य पञ्चायतें। इस बातके भी पर्याप्त प्रमाण मौजूद हैं कि इन ग्राम्य पञ्चायतोंका निर्वाचन प्रजातन्त्र नियमोंसे होता था। ये अपने अपने ग्रामोंके लोकमत और सर्वसाधारणके भावोंको प्रकट करती थीं। इन पञ्चायतोंमें समाजकी प्रत्येक स्थिति और प्रत्येक श्रेणीके प्रतिनिधि सम्मिलित होते थे। शूद्रोंके प्रतिनिधि भी लिये जाते थे। कुछ अवस्थाओंमें स्त्रियां भी इन पञ्चायतोंकी सदस्या चुनी जाती थीं प्रबन्धके भिन्न भिन्न विभाग समितियोंके सिपुर्द होते थे। दक्षिणके ग्रामोंके इतिहासमें इस बातके असंख्य प्रमाण मिलते हैं कि प्रत्येक ग्राममें एक निर्वाचित सामान्य सभाके अतिरिक्त प्रबन्धके भिन्न भिन्न विभाग भिन्न भिन्न निर्वाचित परिषदोंके अधीन थे। उदाहरणार्थ सिंचाईकी कमेटी, वाटिकाओंकी कमेटी, अभियोगोंके निर्णयकी कमेटी, सोने चांदीकी कमेटी इत्यादि सब पृथक पृथक

होती थीं। उत्तर भारतके इतिहासमें इस प्रकारके विस्तारात्मक उदाहरण कम मिलते हैं। परन्तु फिर भी यह मानी हुई बात है कि उत्तर भारतमें भी ग्रामोंका प्रबन्ध प्रायः ग्राम्य पञ्चायतोंके हाथमें था। इसी प्रकार हिन्दू-शास्त्रोंमें ग्राम-समूहोंके प्रबन्धका जो चित्र खींचा गया है वह भी कपोल-कल्पित नहीं है वरन् उसके अनुसार आचरण होता रहा है। उदाहरणार्थ, हिन्दू शास्त्रोंमें लिखा है कि प्रबन्धके प्रयोजनके लिये सौ ग्रामोंका समूह एक इकाई गिना जाता था और फिर उसके ऊपर एक सहस्रका इत्यादि इत्यादि। दक्षिणके इतिहासमें इस प्रकारके बहुतसे दृष्टान्त मिलते हैं जिनसे इन ग्राम-समूहोंके प्रजातन्त्र गणोंका पता लगता है। यह सारा प्रबन्ध लगभग उसी प्रकारका था जैसा कि आज कल सोवियट रूसमें है। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि इन गणोंके राजनीतिक और आर्थिक नियम भी सोवियट रूसकेसे थे। इसी प्रकार नगरोंमें भी ऐसे निर्वाचित गण थे जो नगरोंके भिन्न भिन्न अङ्गोंका प्रबन्ध करते थे। उनके प्रबन्धमें केन्द्रिक शासनका बहुत कम हाथ होता था। सब व्यवसायियों और शिल्पियोंकी अपनी निर्वाचित पञ्चायतें थीं जो अपने अपने व्यवसायों, शिल्पों और कलाओंका प्रबन्ध करती थीं। वे अपने अपने व्यवसायों और शिल्पों आदिके सामूहिक व्यक्तित्वको प्रतिष्ठित करती थीं। इसी प्रकार नगरका सारा म्युनिसिपल प्रबन्ध भिन्न भिन्न प्रकारके निर्वाचित समाजोंके हाथमें होता था। केन्द्रिक शासनके हाथमें राज्यकी परराष्ट्र-नीति, सैनिक प्रबन्ध, बड़े बड़े अपराधोंका रोकना, राजकीय मकानों और सड़कोंका विभाग, राजस्वोंका लगाना और वसूल करना आदि थे। वर्तमान यूरोपमें विचारोंका झुकाव अब वर्तमान पार्लिमेण्टरी पद्धतिके विरुद्ध होता जाता है। राजनीति-विज्ञानकी प्रायः

सभी नई पुस्तकोंमें इस बातपर प्रकाश डाला गया है। भाव यह है कि अन्तिम शासन केवल उन लोगोंके हाथमें नहीं होना चाहिये जो प्रान्तोंके प्रतिनिधि हों, वरन् शासनकी कुञ्जी भिन्न भिन्न काम करनेवाले समाजोंके प्रतिनिधियोंके हाथमें होनी चाहिये।

गवर्नमेंटका हस्तक्षेप प्रजाके जीवनके प्रत्येक अगमें।

फाहियान और ह्यूनसाङ्ग दो चीनी पर्यटक एक दूसरेसे दो सौ वर्षके अन्तरसे भारतमें आये। इन दोनोंने इस बातको प्रमाणित किया है कि सामयिक गवर्नमेंट लोगोंकी बातोंमें बहुत कम हस्तक्षेप करती थी। वर्त्तमान कालमें क्या यूरोपमें और क्या भारतमें, राज्यका प्रवेश जीवनके प्रत्येक विभागमें हो गया है। लोकल सेल्फ गवर्नमेंट भी एक प्रकारसे केन्द्रिक शासनका एक विभाग है। उसीकी नकल गवर्नमेंटने भारतमें उतारी है। ब्रिटिश गवर्नमेंटके अधीन पहली बार भारतके इतिहासमें केन्द्रिक शासनने ग्रामोंके भीतरी प्रबन्धमें हस्तक्षेप करना आरम्भ किया है। इसका परिणाम जातिके लिये अतीव विनाशक सिद्ध हुआ है। आजकल यूरोप और अमरीकामें यद्यपि प्रजातंत्र नियमोंके अनुसार शासन किया जाता है, परन्तु लोगोंके जीवनोंके प्रत्येक विभागमें गवर्नमेंटका हाथ इतना बढ़ गया है कि लोग इस प्रजातंत्रपर बहुत सन्देह करने लगे हैं। भारतको इस नियमने बहुत हानि की है। कदाचित् इस देशके इतिहासमें कभी इतनी बड़ी संख्यामें सरकारी कार्म्मचारी न रक्खे गये थे और न उनको इतने बड़े बड़े वेतन दिये गये थे जितने कि अँगरेज़ी शासन-कालमें दिये जा रहे हैं। जितने अधिक सरकारी कर्म्मचारी होंगे उतनी ही कम प्रजाको स्वतंत्रता होगी। वेतनभोगी कर्मचारियोंकी प्रचुरता राजनीतिक दासत्व-

का सबसे बुरा रूप है, विशेषतः जब कि उनकी नियुक्ति और उनको अलग कर देना, प्रजाके हाथमें न हो।

यूरोप और अमरीकामें अब यह सामान्य शिकायत है कि जिन प्रजातंत्र नियमोंपर आजकल संसारमें राज्य किया जाता है वे सच्चे प्रजातंत्रके नियम नहीं। वह केवल नामका प्रजातंत्र है। सारी शक्ति धनाढ्यों और पूंजीवालोंके हाथोंमें है और ये धनाढ्य और पूँजीवाले लोग शासनकी समस्त शक्ति और राज्यके समस्त उपायोंको अपने लाभके लिये काममें लाते हैं। सर्वसाधारणको और कङ्गालोंको यद्यपि मत (वोट) का अधिकार है परन्तु वास्तवमें राज्यके प्रबंधमें उनका कुछ भी हाथ नहीं। इन प्रजातंत्र देशोंमें राजकर्म्मचारी पहले दर्जेके बेईमान और घूस खानेवाले हैं। और वृत्तिधारियों (पेंशनरों) को धनाढ्यों और पूँजीवालोंके हाथोंकी ओर देखना पड़ता है। पश्चिमके वर्त्तमान प्रजातंत्र राज्योंमें जितने दोष और कुप्रबंध हैं वे हमको उन प्रजातंत्र नियमोंका प्रशंसक नहीं बनाते। वास्तविक प्रजातंत्र-शासन उस समय स्थापित होगा जब धनाढ्यों और निर्धनोंके बीच जो दीवार खड़ी है वह गिर जायगी और साधारण प्रजाकी दीनता और दरिद्रता दूर हो जायगी। इसके अतिरिक्त प्रजातंत्र शासनके यह अर्थ नहीं कि शासन नियमहीन, दुराचारी, कपटी, स्वार्थी, लोभी और दुर्वृत्त मनुष्योंके हाथमें चला जाय। आधुनिक प्रजातंत्र शासन केवल धन और बौद्धिक योग्यताको राजसिंहासनपर बैठाता है। भारत ऐसे प्रजातंत्रका माननेवाला था जिसकी नींव धर्म्म, सदाचार, स्वार्थहीनता, त्याग, नम्रता और लोकहितेच्छापर थी। यूरोपके प्रजातंत्र राज्योंके कर्मचारी प्रचुर संख्यामें दुराचारी, लालची, नियमहीन और

स्वार्थी हैं। उन्होंने यूरोपमें और सारे संसारमें अधर्म और पापका राज्य फैला दिया है।

भारत और प्राचीन यूरोपका लोकतंत्र राज्य।

यूरोपके इतिहासके पाठसे ऐसा प्रतीत होता है कि भारतमें पच्चीस सौ वर्ष पहले जो प्रजातंत्र राज्य थे वे तत्कालीन यूरोपके प्रजातंत्र राज्योंसे अनेक गुना अच्छे थे। उदाहरणार्थ, यूनानमें जो लोकतंत्र राज्य थे उनको नगर-लोकतंत्र (सिटी रिपब्लिक) के नामसे पुकारा गया है। इन प्रजातंत्र राज्योंमें केवल कतिपय सहस्र मनुष्य स्वतंत्र होते थे जिनको राज्यके कामोंमें सम्मति देनेका अधिकार था। शेष लाखोंकी संख्यामें वे लोग थे-जिन्हें दास कहा जाता था। वे उन सहस्रों सम्मति देनेवालोंकी सम्पत्ति समझे जाते थे। यही दशा पीछेके रोमन लोकतंत्र राज्योंकी थी और यही अवस्था मध्यकालीन प्रजातंत्र राज्योंकी थी। यूरोपके आधुनिक प्रजातंत्र राज्योंका विकास गत दो सौ वर्षमें हुआ है। भारतमें कभी उस प्रकारके दासोंकी श्रेणी न थी जैसी कि यूरोप और अमरीकामें ठीक उन्नीसवीं शताब्दी तक रही। अमरीकामें दासत्व सन् १८६५ ई०में कानूनी तौरपर हटाया गया और इङ्गलैंडमें इङ्गलैंडका प्रसिद्ध राजनीति-विशारद ग्लेडस्टोन भी दासत्वका पक्षपोषण करता रहा। चन्द्रगुप्तके शासनकालमें जो यूनानी राजदूत मगस्थनीज़ आया था उसने लिखा है कि उस समय भारतमें दासत्व बिलकुल न था। यह राजदूत यूनानमें दास-समाजकी अवस्था और उसके विस्तारसे परिचित था। वह भारत और यूनानकी सामाजिक और राजनीतिक अवस्थाकी तुलना भली भांति कर सकता था। कुछ यूरोपीय ऐतिहासिक मगस्थनीजके इस कथनको असत्य ठहराते हैं और इसका कारण यह बताते

है कि कौटिल्यके अर्थशास्त्रमें जिस प्रकारके दासोंका उल्लेख है वे यूरोप और अमरीकाके दासोंसे बहुत भिन्न थे। प्रथम तो अर्थशास्त्र यह कहता है कि कोई "आर्य्य" किसी अवस्थामें दास नहीं बनाया जा सकता। उस समय उत्तर भारतमें लगभग सभी अधिवासियोंको "आर्य्य" कहते थे। और यदि जनताका कोई भाग ऐसा था जिसपर "आर्य्य" शब्द लागू न हो सकता था तो वह अत्यन्त ही अल्प था और वह इतना अल्प था कि विदेशी दूत और पर्यटक उसको पहचान न सकते थे। दूसरे किसी हिन्दू-शास्त्रमें दासोंके क्रय-विक्रयकी आज्ञा नहीं दी गई। दास केवल वे गिने जाते थे जो अपने ऋणोंको न चुकानेके कारण या लड़ाईमें बन्दी हो जानेके कारण "दास" बन जाते थे। परन्तु इन दासोंके क्रय-विक्रयका निषेध था और प्रत्येक दासको यह अधिकार था कि वह अपना ऋण चुकाकर या किसी अन्य रीतिसे अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त कर ले। फिर उसको पूर्ण अधिकार मिल जाते थे। ऐसे दास भी अपने स्वामीके परिवारके सदस्य समझे जाते थे और उनसे दुर्व्यवहार करना अपराध था। कुछ भी हो भारतके इतिहासमें ऐसा कोई भी काल नहीं हुआ कि जब दासोंकी संख्या आर्य्यों या स्वतन्त्र लोगोंकी संख्यासे अधिक हो। इसके विपरीत यूनानी और रोमन प्रजातन्त्र राज्योंमें प्रायः सदा ही ऐसा रहा। यहाँ तक कि उनमेंसे कुछ जातियोंमें स्वतन्त्र मनुष्य केवल सैकड़ों या सहस्रों होते थे और दास सहस्रों या लाखोंकी संख्यामें थे।

यूरोपीय देशोंका पार्लिमेंटरी शासन।

यद्यपि देखनेको हम पार्लिमेंटरी शासनके बहुत प्रशंसक हैं परन्तु यूरोपमें कुछ कालतक निवास करने और यूरोपीय पार्लिमेंटोंकी कार्य्यवाहीका ध्यानपूर्वक अध्ययन करनेके

पश्चात् हमको बहुत सन्देह हो जाता है कि क्या यह शासन-पद्धति साधारण प्रजाके लिये बहुत लाभदायक है। प्रजाके लिये वही पद्धति लाभदायक हो सकती है जिसमें गवर्नमेण्ट प्रजाकी सेवक हो। उसका अस्तित्व समस्त प्रजाके हितके लिये हो, न कि विशेष श्रेणियोंके लिये। यूरोपकी समस्त जातियोंको ये अधिकार नाममात्रको ही प्राप्त हैं कि वे अपनी गवर्नमेंटोंको बनाये रक्खें या अलग कर दें। प्रजाकी प्रत्येक श्रेणीको वोट अर्थात् मत देनेका अधिकार है, परन्तु वास्तवमें ये समस्त अधिकार, धनवानों और साहूकारोंके हाथमें हैं। प्राचीन भारतमें इस प्रकारका पार्लिमेंटरी शासन न था। परन्तु साथ ही इस प्रकारका वैयक्तिक शासन भी न था जैसा कि यूरोपमें प्रायः फ्रांसकी राज्यक्रान्तिके पूर्वतक रहा। अँगरेज़ोंका दावा है कि उन्होंने इस देशमें प्रतिनिधि संस्थायें (रिप्रिज़ेंटेटिव इन्स्टीट्यूशन्स) प्रचलित कीं। परन्तु जब हम उन कानूनोंका अध्ययन करते हैं जिनके अधीन उन संस्थाओंका प्रबन्ध होता है तो हमें मालूम हो जाता है कि प्रजाके प्रतिनिधियोंका अधिकार सचमुच बहुत थोड़ा है, और शासनके समस्त सूत्र एक विजातीय नौकरशाहीके हाथमें हैं। नौकरशाही किसी अंशतक प्रत्येक शासनका आवश्यक अङ्ग है, परन्तु इस नौकरशाहीके सदस्य जितने कम हों, और प्रजाके प्रति उसकी ज़िम्मेदारी जितनी अधिक हो, प्रजाको उतनी ही अधिक स्वतंत्रता प्राप्त होती है। इस सम्बंधमें जब हम प्राचीन हिन्दू राजनीतिक प्रथाओंकी तुलना आधुनिक यूरोपीय पद्धतिके साथ करते हैं तो निश्चय ही हम अपने आपको यह कहनेके योग्य नहीं पाते कि यूरोपीय-पद्धति प्राचीन हिन्दू-पद्धतिसे अच्छी है। अधिकसे अधिक यह कहा जा सकता है कि कुछ अंशोंमे वह अच्छी थी और

यह अच्छी है। न वह पूर्ण थी और न यह पूर्ण है। इस विषयमें अभी उन्नतिके लिये बहुत गुञ्जायश है।

गवर्नमेंटके विभाग। राज्यके भिन्न भिन्न विभागोंकी परीक्षा करनेसे ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन हिन्दू-कालमें प्रायः वह प्रत्येक विभाग मौजूद था, जिसपर इस समय यूरोपके राज्य अभिमान करते हैं। उदाहरणार्थ, यदि आधुनिक गवर्नमेंटोंके युद्ध-विभागके प्रबंधकी तुलना चन्द्रगुप्त मौर्य्यके राज्यके युद्ध-विभागके प्रबंधके साथ की जाय तो यह नहीं कहा जा सकता कि उसका प्रबंध अपूर्ण या सदोष था। आधुनिक कालमें वैज्ञानिक आविष्कारोंके कारण युद्ध-कलाने बहुत उन्नति की है, परन्तु इसके साथ ही युद्धकी नीतिमें बहुत कुछ अधःपात भी हुआ है। आजकलका युद्ध युद्ध नहीं वरन् रक्तपात है।

सार्वजनिक आय या पब्लिक फाईनांस। सरकारी आय और व्ययके विभागके सम्बन्धमें भी हमको वर्त्तमान राजप्रबन्धमें कोई बात विशेषरूपसे उत्तम नहीं देख पड़ती। हिन्दू-धर्म्मशास्त्रमें बार बार उन राजस्वोंकी दरका वर्णन है जो राजाको लेने चाहियें। किसी गवर्नमेंटकी आर्थिक नीतिकी कठोरता या कोमलताका प्रमाण प्रजाकी आर्थिक अवस्था होती है। ऐतिहासिक कालके आरम्भसे लेकर मुसलमानोंके आक्रमण-तक विदेशी पर्यटकों और व्यापारियोंके जितने वृत्तान्त मिलते हैं उनसे निश्चयात्मकरूपसे यह सिद्ध होता है कि यह देश अतीव धनवान् था और सर्वसाधारण बड़े सुखी थे। यद्यपि कुछ राजा बहुत अपव्ययी थे और इतिहास हमें बतलाता है कि राजकीय ठाट-बाट और प्रतिपत्तिपर अमित व्यय किया जाता था, परन्तु यह सब धन देशमें ही व्यय होता था, इन व्यर्थव्ययोंसे प्रजा-पर कुछ बोझ नहीं पड़ता था और देश कङ्गाल न होता था।

इस बातसे कौन इन्कार कर सकता है कि चन्द्रगुप्त, समुद्रगुप्त, विक्रमादित्य, हर्ष और भोज आदिकी वदान्यतासे इसी देशके निर्धन मनुष्योंको लाभ होता था। हर्षने प्रयाग-क्षेत्रमें अपना सारा उपार्जित धन लोगोंमें बांट दिया। इसलिये यदि यह भी मान लिया जाया कि राजस्व वर्त्तमानकालसे अधिक लिया जाता था (यद्यपि इसका कोई प्रमाण नहीं) तो भी हमें यह कहनेपर विवश होना पड़ता है कि उस समय प्रजा इतनी तंग और दुखी न थी जितनी कि प्रायः भारतमें इस समय है।

भूमिका कर और भूमिका स्वामित्व।

आजकल भूमिके स्वामित्वके विषयमें प्रायः विवाद होता है कि सरकार समस्त भूमियोंकी स्वामिनी है या नहीं, और जो कर दिया जाता है वह राजस्व है या लगान (रेवीन्यू या रेण्ट)। अंगरेज लेखक प्रायः यह कल्पना कर लेते हैं कि भारतमें प्राचीन कालसे राजा समस्त भूमियोंका स्वामी समझा जाता था। परन्तु अनेक अंगरेज विद्वान इसका खण्डन करते हैं। और यदि उन प्रमाणोंको पढ़ें जो प्रो० रिस डेविड्सने अपनी पुस्तक "बुधिस्ट इण्डिया" में दिये हैं और जो अन्य विद्वानोंने संग्रह किये हैं तो हमें कुछ भी सन्देह नहीं रह जाता कि प्राचीन भारतमें वे सब भूमियां जो किसी ग्राममें सम्मिलित गिनी जाती थीं, ग्रामका सम्मिलित स्वत्व (मुश्तरका मिलकियत) मानी जाती थीं। न राजाको अधिकार था कि चाहे जिसको दे दे, और न भूमिपर अधिकार रखनेवाले व्यक्तियों और कृषकोंको अधिकार था कि वे ग्रामकी पञ्चायतकी स्वीकृतिके बिना दूसरे लोगोंके हाथ उन्हें स्थानान्तरित कर दें। राजाको केवल इतना अधिकार था कि वह समिष्टिरूपसे गांवसे उपजका .०८३ या .१ या १२५ या .१६ भाग राजस्वमें प्राप्त करे। किसी किसी राजके

इतिहासमें यह लिखा है कि उन्होंने विशेष अवस्थाओंमें उपजका .२५ भाग भी प्राप्त किया है। एक राजाके राजत्वकालके सम्बन्धमें कहा जाता है कि ग्राम्य विभागोंको मिलाकर राजस्वका सर्वयोग .३ था। परन्तु यह प्रकट है कि राजस्वकी इस दरमें कुछ सुविधायें भी थीं। उदाहरणार्थ उन वनों और गोचर-भूमियोंपर कोई कर न था जो गांवके इलाकेमें सम्मिलित थीं। केवल खेती किये हुए क्षेत्र-फलपर ही उपजके अनुसार कर लिया जाता था। कुछ भी हो, इस कठोरताके वे बुरे परिणाम न होते थे जो आजकल प्रकट होते हैं। इस समय अंगरेजी गवर्नमेण्ट नियम रूपेण स्वामित्व (मालिकाना) का लगभग पचास प्रतिशत वसूल करती है। कुछ क्षेत्रोंमें इससे अधिक और कुछमें इससे कम। ग्राम्य राजस्व (Cess) इसके अतिरिक्त होते हैं। गैरमौरूसी मुजारियोंसे मालिक लोग कुछ अवस्थाओंमें .५ और प्रायः .३ बंटाई लेते हैं। कदाचित कहीं .२५ भी लेते हैं। अतएव इन भूमियोंमें अंगरेजी गवर्नमेण्टका भाग .२५ या .१६ या .१२५ हुआ। परन्तु हमारी सम्मति यह है कि कोई देश सरकारके अधिक कर लेनेसे कङ्गाल नहीं होता यदि उसकी सारी आय उसी देशमें व्यय हो।

स्वदेशसे बाहर जाने और विदेशसे स्वदेशमें आनेवाले मालपर कर।

इसके अतिरिक्त यह भी स्मरण रखना चाहिये कि आजकलकी गवर्नमेण्टें भिन्न भिन्न रूपोंमें नाना प्रकारके इतने टैक्स लेती हैं कि यदि उन सबको इकट्ठा किया जाय तो वे एक बड़ी भारी संख्या बन जाते हैं। आयात और निर्यात मालपर जो कर इस समय कुछ यूरोपीय और अमरीकन देशोंमें लिये जाते हैं वे उन करोंसे अनेक गुना अधिक हैं जो हिन्दू-गवर्नमेण्टोंके राजत्वकालमें लिये जाते

थे। उदाहरणार्थ अमरीकामें कुछ वस्तुओंके आयातपर ६० प्रतिशत या १०० प्रतिशत लिया जाता है। यूरोपके आयात और निर्यातके करोंके साथ यदि प्राचीन हिन्दू राज्योंके आयात और निर्यातके करोंकी तुलना की जाय तो ज्ञात होता है कि अपेक्षाकृत हिन्दू-राज्य मुक्त व्यापार (फ्री ट्रेड) के सिद्धान्तपर अधिक आचरण करते थे। आधुनिक समयमें मुक्त व्यापारका सिद्धान्त अधिकांशमें कल्पित है। इससे केवल उन्हीं राष्ट्रोंको लाभ पहुंचता है जिन्होंने अपने हाथोंमें संसारकी राजनीतिक या आर्थिक शक्तिको इकट्ठा कर लिया है और जो इस सिद्धान्तको दूसरे राष्ट्रोंके लूटनेके लिये उपयोगमें लाते हैं।

आधुनिक कालकी साम्पत्तिक पद्धति (इकानामिक सिस्टम।)

आधुनिक समयकी साम्पत्तिक पद्धति हमें इस नवीन सभ्यताकी दुर्बलतम श्रृङ्खला जान पड़ती है। इस सभ्यताकी सबसे बुरी साक्षी यूरोप और अमरीकाके कल-कारखानों में मिलती है। ये कारखाने जहां एक ओर मानवी पाण्डित्य और मानवी जानकारीकी महत्तायुक्त साक्षी हैं वहाँ दूसरी ओर मानवी लोलुपता तथा लोभ और उसकी सभ्याभास लूटकी रीतियोंके भी घृणोत्पादक प्रमाण हैं। आधुनिक सभ्यताने मनुष्यको केवल मिट्टीमें मिला दिया है। एक ओर तो मनुष्यमात्रकी समताका डङ्का बजाया जाता है और उनको राजनीतिक मताधिकार (वोट) देकर समताकी गद्दीपर बिठला दिया जाता है। परन्तु दूसरी ओर बड़े बड़े लोहेके कारागार बनाकर उनकी वह मिट्टी खराब की जाती है जो प्राचीन जातियां अपने पशुओंकी भी न करती थीं। यूरोपकी कोयलेकी खानोंमें, रसायन-शालाओंमें, लोहे और फौलादके कारखानोंमें अथवा ऐसी ही अन्य बड़ी बड़ी उद्योगशालाओंमें चले जाइये, आपको

ऐसा प्रतीत होगा कि वहां मजदूरी करनेवाले स्त्री-पुरुष उन निर्जीव यन्त्रोंके दास हैं, जिनको मालिकोंने धन इकट्ठा करनेके लिये लगाया है। इन उद्योगशालाओंमें न स्त्रियोंका सतीत्व सुरक्षित है, न उनका *सौन्दर्य और शारीरिक स्वास्थ्य* बना रहता है और न बालकोंको बाल्यकालका आनन्द आता है। ये सब एक यन्त्रके भाग हैं और दिन-रात रोटी और कपड़ेके लिये भारवाहक पशुओंके सदृश काम करते हैं। वर्त्तमान सभ्यता-ने मनुष्य-सृष्टिकी एक प्रचुर संख्याको श्रमजीवियों (मजदूरों) के दर्जेतक गिरा दिया है। इस समय यूरोप और अमरीकामें श्रमजीवी अधिक हैं और आर्थिक दृष्टिसे स्वतन्त्र नागरिक बहुत कम।

जातियोंकी समृद्धि-की पहचान।

किसी जातिकी आर्थिक स्मृद्धिका अनुमान उस जातिके व्यापारिक आंकड़ों और गणनाओंसे या उस जातिकी मजदूरीकी दरसे नहीं लग सकता, क्योंकि मजदूरीकी दरका निर्भर जीवनकी आवश्यकताओंके मूल्यपर है। जातिकी आर्थिक स्मृद्धिका अनुमान इस बातसे होता है कि उस जातिके सर्वसाधारणको आवश्यक भोजन और वस्त्र सुगमतासे और ऐसी दशामें मिल जाता है या नहीं कि जो दशा उनकी महत्ताको गिरानेवाली न हो। उद्योग-शालाओं (फैक्टरियों) में मजदूरी मानवी महत्ताको बनाये नहीं रखती। सहस्रों मनुष्योंका भाग्य और उनका भोजन वस्त्र कारखानाके एक स्वामीके हाथमें होता है। वह स्वामी जब चाहता है बिना सूचनाके इन सहस्रों प्राणियोंको आजीविका-हीन कर देता है। यह अवस्था सन्तोषजनक नहीं है।

श्रमकी महत्ता।

हिन्दुओंको प्रायः यह उपालम्भ दिया जाता है कि उन्होंने कांम करनेके माहात्म्यको बहुत

घटा दिया। परन्तु यदि ध्यानपूर्वक इस प्रश्नकी परीक्षा की जाय तो जान पड़ेगा कि यद्यपि इस आपत्तिमें कुछ सत्यांश अवश्य है, परन्तु उतना नहीं जितना कि हमारे आपत्ति करनेवाले सज्जन प्रकट करना चाहते हैं। काम करना, परिश्रम करना और काम तथा श्रमसे आजीविका कमाना—चाहे वह काम और वह श्रम किसी भी प्रकारका क्यों न हो—मानवी महत्ताको नहीं गिराता। यदि कोई व्यक्ति अपने वस्त्र धोता है, अपने घरको साफ करता है, अपना विष्टा उठाता है तो उससे वह नीच नहीं हो जाता। और जो व्यक्ति स्वतन्त्रतापूर्वक बिना किसी दूसरेकी अधीनताके ऐसा करता है वह अपनी महत्ताको किसी प्रकार कम नहीं करता। इसी प्रकार यदि समाज अपनी सब आवश्यकताओंको इस प्रकार बांट लेता है कि विशेष विशेष भाग विशेष विशेष काम करते हैं, तो इससे भी उन लोगोंकी महत्तामें—जिनको श्रम करनेका काम सौंपा जाय—अन्तर नहीं पड़ता। परन्तु जब बहु-संख्यक मनुष्य-समुदायको दैनिक या मासिक वेतनपर श्रम करना पड़े और इस श्रम—मजदूरीका मिलना या न मिलना किसी एक मालिकके अधिकारमें हो तो ऐसी मजदूरीसे मनुष्यकी स्वतन्त्रतामें बहुत कुछ अन्तर आ जाता है। अध्यापक रिस डेविड्स स्वीकार करते हैं कि २५०० वर्ष हुए भारतमें वेतनपर श्रम करना बहुत निन्दित समझा जाता था। इसका यह अर्थ है कि जनताका एक बड़ा भाग अपना काम आप करता था। धनाढ्यों और पूंजीवालोंसे वेतन लेकर उनका काम नहीं करता था। दूसरोंसे वेतन लेकर उनका काम करना—चाहे वह कैसा ही अच्छा काम क्यों न हो—कुत्सित गिना जाता था। काम करनेका माहात्म्य यह है कि मनुष्य किसी प्रकारके कामसे जो उसके या उसके समाजके लाभार्थ

हो न कतराये और किसी प्रकारके कामको घृणाकी दृष्टिसे न देखे। परन्तु दूसरोंके लिये वेतन लेकर काम करना मानों अपनी काम करनेकी शक्तिको बेचना है। यह मानवी महत्ताका उच्च आदर्श नहीं। इसको श्रमकी महत्ता नहीं कहते।

हिन्दुओंकी भूल। हिन्दुओंने यह भूल की कि उन्होंने धार्मिक पवित्रता और शौचकी दृष्टिसे प्रायः प्रत्येक व्यवसाय और शिल्पको नीच बना दिया। चमड़ेका काम करनेवालों, कसाइयों, चाण्डालों आदिसे आरम्भ करके उन्होंने शनैः शनैः सभी शिल्पों और व्यवसायोंको घृणाकी दृष्टिसे देखना आरम्भ कर दिया। यहांतक कि सम्भ्रान्त काम केवल दो तीन रह गये। अर्थात ब्राह्मणका कर्म, क्षत्रियका कर्म और वाणिज्यका काम। यह भूल हिन्दू-धर्मके अधःपतनके कालकी है, क्योंकि हिन्दू इतिहासमें इस प्रकारकी पर्याप्त साक्षी मिलती है कि पचीस सौ वर्षके पहले हिन्दुओंमें प्रत्येक प्रकारका शिल्प सम्मानकी दृष्टिसे देखा जाता था और शिल्पियोंको समाजकी उच्च श्रेणियोंमें गिना जाता था। यदि वर्त्तमान स्मृतियोंकी आज्ञाओंको देखा जाय तो बहुत थोड़े व्यवसाय ऐसे रह जाते हैं जिनको स्मृतिकारोंने पसन्द किया और इस योग्य समझा हो कि उनसे सम्बन्ध रखनेवालोंके घरका खाना या ब्राह्मणोंके लिये उनसे दान लेना उचित ठहराया हो। कहा जा सकता है कि ये बन्धन ब्राह्मणोंके आध्यात्मिक लाभके लिये थे, उनसे शिल्पियोंको नीच ठहराना अभीष्ट न था। परन्तु हम इस युक्तिको नहीं मान सकते, क्योंकि वास्तवमें ही परिणाम यह हुआ है कि व्यवसायियों और श्रमजीवियोंको हिन्दू-समाजमें घृणाकी दृष्टिसे देखा जाता है। हमारे दुर्भाग्यसे अंगरेजी शिक्षाने भी इस घृणाको कम करनेके स्थानमें इसकी वृद्धि ही की है। इस सम्बन्ध-

में वर्त्तमान यूरोपीय सभ्यताका भाव पौराणिक सभ्यतासे अनेक गुना अच्छा है। समाजमें सम्मान और पदका निरूपण मनुष्यके व्यक्तिगत चरित्रसे होना चाहिये न कि उस कामसे जिससे वह रोटी कमाता है। प्राचीन हिन्दू-इतिहासमें भी हमको इस बातकी साक्षी मिलती है कि जब कभी नीची जातियोंमें कोई मनचला योग्य मनुष्य उत्पन्न हुआ तो वह अपनी व्यक्तिगत योग्यतासे समाजमें उच्चसे उच्च पदतक पहुंच गया। हिन्दू-कालके बहुतसे राजघराने नीच जातियोंके मनुष्योंने चलाये और उनको समाजने निस्संकोच होकर क्षत्रियोंमें परिगणित कर लिया। बहुतसे मनुष्य छोटी जातियोंमें उत्पन्न होकर ब्राह्मण ही नहीं वरन् ऋषि बन गये।

अछूत जातियोंका अस्तित्व।

अछूत जातियोंका अस्तित्व हिन्दू-सभ्यतापर एक कलङ्क है। परन्तु इसके मूलमें मजदूरीसे घृणाका भाव नहीं, वरन् वह स्वच्छता और पवित्रता है जिनको हिन्दुओंने असाध्य सीमाओंतक पहुंचा दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि कुछ एक प्रकारके श्रम और मजदूरीको साधारण समाज घृणाकी दृष्टिसे देखने लगा। माता जिस समय अपने बालकका मल धोती है तो कोई भी व्यक्ति उसको घृणाकी दृष्टिसे नहीं देखता। परन्तु भङ्गीको सारा समाज अछूत ठहराकर एक प्रकारकी घृणाका प्रकाश करता है। यदि समाजको भङ्गियोंकी आवश्यकता है तो उसे उचित है कि इन लोगोंको घृणाकी दृष्टिसे देखनेके स्थान उनका सम्मान करे और उनके कामको आदरसे देखे। छूत-छात हिन्दुओंमें कब प्रचलित हुई और किस प्रकार इसमें उन्नति होती गई, इस प्रश्नपर अभी इतिहास पर्याप्त प्रकाश नहीं डालता। परन्तु यह प्रकट है कि हिन्दू-राजत्वकालमें इस दर्जेकी छूत-छात

हिन्दुओंमें जारी न थी जैसी कि अब पाई जाती है। परन्तु इसका सूत्रपात पौराणिक कालमें हो चुका था। दूसरे धर्मों और दूसरी जातियोंसे छूत-छात सम्भवतः असहयोगके सिद्धान्तोंपर जारी की गई थी।

जुडीशल सिस्टम। हिन्दुओंका जुडीशल सिस्टम (विचार-पद्धति) भी कुछ अंशोंमें यूरोपके जुडीशल सिस्टमसे अच्छा था। कुछ अंशोंमें वह इससे बुरा भी था। कुछ यूरोपीय अध्यापक भारतमें अङ्गरेजी राज्यकी प्रशंसा करते हुए यह दावा करते हैं कि भारतीय इतिहासमें पहली बार अङ्गरेजी-शासनने कानून और न्यायको व्यक्तित्व और पदसे उच्चतर रक्खा है। अर्थात् कानूनके सामने समताका भाव स्थापित किया है। कहा जाता है कि अङ्गरेजी-शासन-पद्धतिको यह गौरव प्राप्त है कि इस राज्यमें सिंह और बकरी एक घाट पानी पीते हैं और अदालतोंकी दृष्टिमें अमीर और गरीब, रईस और मजदूर, राजा और प्रजा सब समान हैं। यह भी कहा जाता है कि संसारमें सबसे पहले रोमन कानूनने इस भावको फैलाया और वर्त्तमान यूरोपीय लोगोंने रोमवालोंसे यह भाव ग्रहण किया। हमारी सम्मतिमें ये दोनों प्रतिज्ञायें मिथ्या हैं। हमें हिन्दू-शास्त्रों और हिन्दुओंकी पवित्र पुस्तकोंमें इस बातके पर्याप्त प्रमाण मिलते हैं कि हिन्दुओंमें कानूनके सामने राजाको भी वैसे ही सिर झुकाना पड़ता था, जैसे कि अतीव छोटेसे छोटे दर्जेकी प्रजाको। जिसको अङ्गरेज़ी शब्दोंमें 'ला' या 'कानून' कहा जाता है उसका वर्णन हिन्दू-शास्त्रोंने 'धर्म' शब्दसे किया है। अतएव जहाँतक सिद्धान्त या कल्पनाका सम्बन्ध है, हम यह माननेके लिये तैयार नहीं कि संसारमें सबसे पहले रोमन-विधिने कानूनके सामने समताका भाव फैलाया और भारतमें अङ्गरेजी राज्यने

पहली बार अपने न्यायालयोंका सिलसिला इस सिद्धान्तपर स्थापित किया।

परन्तु यदि कियाको देखा जाय तो न हिन्दुओंने इसपर पूर्ण-रूपसे आचरण किया, न रोमवालोंने और न इस समय अङ्गरेज इसके अनुसार कार्य कर रहे हैं। भारतवर्षमें तो खुल्लमखुल्ला दण्डविधि और अन्य कानूनोंमें भारतीयों और यूरोपीय लोगोंके अधिकारों और जवाबदारियोंमें अन्तर प्रतिष्ठित रक्खा गया है। यह अन्तर कारागारके प्रबन्धमें भी प्रतिष्ठित है। परन्तु भारतीयों और भारतीयोंके बीच भी क्रियात्मक समताका कोई नामो-निशान मौजूद नहीं। अदालतोंके न्यायमें समताका भाव बना नहीं रहता। न्यायाधीशके निर्णयोंपर नाना प्रकारके प्रभाव पडते हैं, उदाहरणार्थ वकीलोंके, सिफारिशोंके, घूसोंके, इत्यादि इत्यादि। निर्धन लोगों और दीन, हीन, असहाय मुकद्दमेवालोंको उस प्रकारका न्याय नही मिलता जो धनवानों और साधन-सम्पन्न मनुष्योंको मिलता है। हम प्रतिदिन न्यायालयोंके न्याय-में धनवान और निर्धनका भेद पाते हैं। यहांतक कि गवर्नमेण्ट अभियोग चलानेमें भी धनाढ्यता और निर्धनता, पद और पदवी-का ध्यान रखती है। इसी प्रकारसे यह भेद-भाव हिन्दू शास्त्रोंमें भी पाया जाता है, परन्तु भिन्न नियमोंपर। सबसे प्रकट भेद ब्राह्मणों और अब्राह्मणोंकी अवस्थामें देख पडता है। उदाहरणार्थ कुछ अपराधोंके दण्ड नियत करनेमें स्मृतिकारोंने ब्राह्मणों और ब्राह्मणेतरोंमें भेद रक्खा है, और ब्राह्मणोंके लिये कोमल दण्ड नियत किये हैं। यह भेद कुछ व्यवसायियोंकी अवस्थामें भी रक्खा गया था। परन्तु धनवान और निर्धनका कोई विचार नहीं, वरन् इस बातका भी प्रमाण मौजूद है कि कुछ अपराधों-का दण्ड ठहराते समय दरिद्रोंकी अपेक्षा धनवानोंको अधिक कठोर दण्ड देनेकी आज्ञा है।

दीवानी और फ़ौजदारी अभियोग। ऐसा जान पड़ता है कि हिन्दू-कालमें दीवानी अभियोगोंकी सुनवाईके लिये वेतनभोगी अधिकारी न थे। प्रायः ये अभियोग ग्राम्य पञ्चायतें या नगरोंकी कमेटियां या व्यवसायियोंके समाज अथवा इन सब समितियोंकी सम्मिलित कमेटियाँ करती थीं। केवल विशेष अवस्थाओंमें ही केन्द्रिक शासनको हस्तक्षेप करनेकी आवश्यकता पड़ती थी। न्यायकी यह रीति आधुनिक अदालती रीतिसे अनेक गुना अच्छी थी। आधुनिक अदालती रीति घोररूपसे आपत्तिजनक है। यह न्याय और चरित्रकी हत्या करती है। वर्त्तमान अधिकारियोंको न समाजका भय है और न लोकमतकी परवाह है। वे ऐसा न्याय करते हैं जिसको जीवनकी वास्तविक अवस्थाओंके साथ कोई सम्बन्ध नहीं और जिससे वादी और प्रतिवादी दोनोंका नाश हो जाता है। वर्त्तमान साक्षीका कानून (शहादतका कानून) कुछ अंशोंमें हिन्दुओंके साक्षीके कानूनसे बहुत सदोष है। अङ्ग्रेज़ी अदालतें भारतमें अङ्गरेजोंको भारतीयोंकी तुलनामें, धनाढ्योंको निर्धनोंकी तुलनामें, उपाधिधारी लोगोंको उपाधिहीनोंकी तुलनामें, सरकारी कर्म्मचारियोंको गैरसरकारी लोगोंकी तुलनामें अधिक विश्वास्य समझती हैं। परन्तु वास्तवमें देखा जाय तो इन श्रेणियोंके लोगोंमें प्रायः सत्यवादिताका आदर्श ऊँचा नहीं। हमारा अपना अनुभव है कि सरकारी कर्म्मचारियोंमें, सरकारी अधिकारियोंमें और धनवानोंमें, निर्धनों, उपाधिहीन और गैरसरकारी लोगोंकी तुलनामें सत्यवादियोंकी संख्या बहुत कम होती है। अतएव इस विषयमें भी हमको यह कहनेके लिये कोई कारण नहीं मिलता कि अङ्गरेजी अदालती रीति प्राचीन हिन्दू अदालती रीतिसे अच्छी है। हिन्दुओंमें विचारपति-

नियुक्तिमें और साक्षियोंके विश्वासपर सम्मति बतानेमें चाल-
ानका अधिक ध्यान रखा जाता था। न्यायाधीशोंको
ुक्तिके लिये उत्तम आचारका होना आवश्यक था। लालची,
ाचारी, और नीच मनुष्योंको न्यायाधीश नहीं बनाया जा
कता था। जज बननेके लिये केवल परीक्षा पास करना पर्याप्त
था। इस सम्बन्धमें हिन्दू-शास्त्रोंकी आज्ञाएँ बहुत कड़ी थीं,
ोंकि न्यायाधीशोंके आचरण और निस्स्वार्थ न्यायपर प्रजाके
ख और कल्याणका निर्भर था।

जदारी कानून। दण्ड-नीतिके सम्बन्धमें अङ्गरेज़ी कानून-
का यह सिद्धान्त है कि प्रत्येक व्यक्तिको
तक निरपराध समझना चाहिये जबतक कि यह अपराधी
द्ध न हो जाय। नियम रूपसे एक निरपराधके दण्ड पा
नेकी अपेक्षा ६६ अपराधियोंका छूट जाना अच्छा है। अंग-
ी सिद्धान्तोंके अनुसार प्रजाकी स्वतन्त्रता—कर्म, वचन और
त्रकी स्वतन्त्रता—बहुत पवित्र है। यूरोपमें किसी अंशतक
सिद्धान्तोंपर आचरण भी होता है, परन्तु भारतमें कर्म ठीक
के विपरीत है। प्राचीन हिन्दू-सभ्यतामें भी हमें यही सिद्धान्त
ोगोचर होते हैं। देखिये अध्यापक रिस डेविड्स अपनी
तक, बुधिस्ट इण्डिया, में लिखते हैं कि उस समयके एक
दू राज्यमें फौजदारी अदालतोंके छः दर्जे थे। इनमेंसे प्रत्येक
धीको छोड़ या मुक्त कर सकता था। परन्तु दण्ड देनेका
धिकार किसी एकको न था। दण्ड उस समय मिलता था
ब छहों दर्जे मिलकर राजाकी प्रिवी कौंसिलको रिपोर्ट करते
। कदाचित् फौजदारी न्यायका यह मानचित्र हिन्दू-कालमें
र्वत्र न पाया जाता हो, वरन् किसी राज्य विशेषतक परिमित
, फिर भी इससे यह अनुमान हो सकता है कि हिन्दू-धर्म-

ास्त्री (कानूनदाँ) और हिन्दू राजकर्म्मचारी प्रजाके स्वत्वों और उनकी स्वतन्त्रताकी कितनी परवा किया करते थे। हमें यह भी पता लगता है कि वर्त्तमान यूरोपीय पद्धतिके सदृश हिन्दुओंमें एक प्रकारका जूरी सिस्टम भी प्रचलित था। उदाहरणार्थ, हिन्दुओंकी राजनीतिक पुस्तकों और धर्म्म-शास्त्रोंमें अदालतोंकी नियुक्तिके सम्बन्धमें यह नियम लगाया गया है कि प्रत्येक अदालतके अनेक सदस्य हों। उनमेंसे कतिपय शास्त्रज्ञ हों, और दूसरे ऐसे हों जो अपने आचरणकी दृष्टिसे और उस विषयमें—जिसके सम्बन्धमें कि झगड़ा है—अपनी निपुणताकी दृष्टिसे न्याय करनेके योग्य समझे जायँ। इस प्रकार कानून, अनुभव और चरित्रको एक स्थानपर एकत्र करके अदालत बनाई जाती थी। भारतमें फौजदारी या दीवानीके अभियोगोंके निर्णयकी जो वर्त्तमान रीति है वह इसकी तुलनामें अतीव सदोष है। कुछ शास्त्रोंमें अदालतके लिये सात या छः और कुछ दूसरोंमें पाँच जज ठहराये गये हैं। उनकी कमसे कम संख्या तीन बताई गई है। ऐसा प्रतीत होता है कि इन अधिकारियोंमेंसे केवल एक प्रधान विचारपति या 'चीफ़ जस्टिस' नियमपूर्वक वेतनभोगी अधिकारी होता था और शेष सब चुने जाते थे। दूसरे जजोंको भी वेतन मिलता था या नहीं, यह नहीं कहा जा सकता। अदालतोंके कई दर्जे थे, जैसे कि प्रारम्भिक और अपीलकी अदालत।

हम नहीं कह सकते कि क्रियामें हिन्दू-कालका न्याय इससे उत्तम था या बुरा। परन्तु यदि हम चीनी पर्यटकोंके वृत्तान्तोंपर विचार करें या यूनानी विद्वानोंके लेखोंको प्रमाणिक समझें तो उन्होंने न्यायके विषयमें एक ही शिकायत की है, और वह यह कि दण्ड बहुत कठोर दिये जाते थे। चीनी पर्यटक और यूनानी दूत

मगस्थनीज़ सबके सब हिन्दुओंकी सत्यवादिता और सत्याचरणकी बहुत प्रबल साक्षी देते हैं। ये हिन्दू अदालतोंके न्यायकी भी बड़ी प्रशंसा करते हैं। इसका समर्थन आरम्भिककालके मुसलमान इतिहास-लेखकों और पर्यटकोंके वृत्तान्तोंसे भी होता है।

दण्ड। इस विषयमें हम निस्संकोच होकर कह सकते हैं कि यूरोपीय सभ्यताने मनुष्यताकी ओर बहुत उन्नति की है। हिन्दू कालके दण्ड हमें पाशविक देख पड़ते हैं। लोगोंके हाथ पांव, नाक-कान काट लेना या उनको जीते जी आगमें जला देना या जलमें डुबो देना या पर्वतपरसे फेंक देना या उनके शरीरको गरम गरम पत्थरों या लकड़ियोंसे घायल करना, ये दण्ड किसी सभ्य जातिके लिये गौरवका कारण नहीं हो सकते। दण्डोंके सम्बंधमें कदाचित उस समयके संसारमें सब कहीं ऐसी ही अवस्था थी। यूरोप और अमरीकामें भी लगभग ईसाकी अठारहवीं शताब्दीतक ऐसा ही रहा। सन् १७८६ ई०में अमरीकाके संयुक्त राज्यमें एक लड़कीको टोपी और जूता चुरानेके अपराधमें फांसी दी गई। इंग्लैण्डमें जार्ज तृतीयके कालतक यातनाकी रीति प्रचलित थी। देखो श्री० वेल्सका इतिहास, द्वितीय खंड, पृष्ठ ३३८। इसके अतिरिक्त यूरोपमें जीता जलानेकी प्रथा भी थी। धर्मसे इन्कार करनेवालोंको नाना प्रकारकी यातनायें दी जाती थीं। परन्तु उन्नीसवीं शताब्दीमें यूरोपने इस विषयमें बहुत उन्नति की है। हमारी सम्मतिमें अब भी प्राण-दण्ड या दीर्घ कारावासोंका दण्ड देना या कोड़े लगाना एक पाशविक कर्म या चेष्टा है। हम आशा करते हैं कि समय उन्नति करता करता दण्डोंके विषयमें इससे भी अधिक उन्नति करेगा और मनुष्यताके नियमोंपर चलनेमें पग आगे बढ़ायेगा। इस विषयमें यूरोपीय समाज-शास्त्री और अमरीकन संस्कारक बहुत

कुछ यत्न कर रहे हैं। हमको उनके उद्योगोंके साथ पूरी पूरी सहानुभूति है। यूरोप और अमरीकाने बंदियोंके साथ बर्तावके सम्बंधमें बहुत कुछ उन्नति की है यद्यपि अभी बहुत अधिक उन्नति की गुञ्जायश है। ब्रिटिश-इण्डियाके बंदीगृहोंमें जो बर्ताव भारतीय बंदियोंके साथ होता है वह अमरीका और जापानकी तुलनामें बहुत पाशविक हैं। इस सुधारकी बहुत ही अधिक आवश्यकता है। प्राचीन भारतके विषयमें फाहियान और ह्यून-सांगकी साक्षी है कि जिस समय वे भारतमें आये उस समय इस देशमें शारीरिक दण्ड नहीं दिया जाता था। वरन् फाहियानके समयमें तो मृत्यु-दण्ड भी बंद हो चुका था। शारीरिक दण्डके विषयमें यवन राजदूत मगस्थनीज़ भी कहता है।

स्त्रियोंका स्थान। जब कोई सुशिक्षित भारतीय यूरोप और अमरीका जाता है तो उसको यह मालूम होता है कि स्त्रियोंके विचार-विन्दुसे आधुनिक सभ्यता बहुत उन्नति-पर है और एशियाकी प्राचीन तथा अर्वाचीन सभ्यता इस विषय-में यूरोपसे बहुत पीछे है। परन्तु इस प्रश्नके यावतीय अङ्गोंपर विचार करनेके पश्चात् इस विषयमें अधिक सावधानतापूर्वक सम्मति स्थिर करनेकी आवश्यकता प्रतीत होती है।

स्त्रियों और पुरुषोंका साम्य। पश्चिमी सभ्यता स्त्रियों और पुरुषोंके साम्यपर बहुत बल देती है, परन्तु यह प्रकट है कि यह सिद्धान्त सर्वथा अशुद्ध है। कुछ माननीय यूरोपीय विद्वानोंने भी—जिनको इस विषयमें प्रामाणिक समझा जाता है—स्पष्टरूपसे इस मतका प्रकाश कर दिया है। हेवेलाक एलिस सामाजिक विज्ञानके जाननेवालोंमें एक उच्च कोटिके विद्वानका नाम है। उसने इस विचारको स्पष्टरूपसे निस्सार बतलाया है। सच तो यह है कि न पुरुष स्त्रियोंसे

अधिक श्रेष्ठ हैं और न स्त्रियां पुरुषोंसे अधिक श्रेष्ठ हैं। छुटाई बड़ाईका कोई प्रश्न नहीं है। प्रकृतिने स्त्रियोंको विशेष प्रयोजनोंके लिये बनाया है और पुरुषोंको अन्य प्रयोजनोंके लिये। कुछ गुण और इन्द्रियां दोनोंमें समान हैं और कुछ भिन्न भिन्न। कुछ बातोंमें स्त्रियां पुरुषोंकी अपेक्षा अधिक सम्मान और आदरकी पात्री हैं और कुछ दूसरी बातोंमें पुरुषोंकी योग्यता अधिक है। उदाहरणार्थ प्रेम, सहानुभूति, सेवा, और त्याग जितना स्त्री जातिमें पाया जाता है उतना पुरुषोंमें नहीं। स्त्रियां पुरुषोंकी अपेक्षा अधिक संयमी हैं और उनमें कष्ट सहन करनेकी शक्ति भी अधिक है। पुरुष स्त्रियोंकी अपेक्षा अधिक परिश्रमी, अधिक धीर हैं, अधिक कठिन कार्य कर सकते हैं। स्त्रियां अपनी प्रकृतिको हानि पहुंचाये बिना उतना कष्ट नहीं उठा सकतीं। यूरोप और अमरीकाने स्त्रियोंके जीवनके प्रत्येक अङ्गमें स्वतंत्रताका अधिकार-पत्र दे दिया है और उसका परिणाम यह हो रहा है कि जहां स्त्रियोंके अधिकार अधिक हो गये हैं वहां उनपर उत्तरदायित्व भी बढ़ गये हैं। जहां स्त्रियोंको यह अधिकार प्राप्त है कि वे आजीविका कमानेके भिन्न भिन्न साधनोंमें स्वतंत्र हों वहां आजीविका कमानेका उत्तरदायित्व भी उनपर इतना बढ़ गया है कि सहस्रों और लाखों स्त्रियोंको अपने विशेष नारि-धर्म्मोंको पूरा करनेका न अवकाश है और न रुचि। जहां हमें एशियामें स्त्रियोंकी आर्थिक दासताको देखकर शोक होता है वहां यूरोपमें उनकी जिम्मेदारी देखकर भी दुःख होता है। लाखों स्त्रियां यूरोप और अमरीकाकी दूकानोंमें लगभग आठ घंटे खड़ी रहती हैं। कुछ स्त्रियोंको तो इससे भी अधिक श्रम करना पड़ता है। इस घोर शारीरिक श्रमका परिणाम यह होता है कि स्त्रियां अपने मातृ-धर्म्मकी उपेक्षा करती हैं और कुछ अवस्थाओंमें उसके

सर्वथा अयोग्य होकर अपने जीवनका अधिकांश विलासिता और पापमें व्यतीत करती हैं। प्रायः भारतीय लोग यूरोपीय और अमरीकन स्त्रियोंको दुराचारिणी बतलाकर उनपर हँसी करते हैं। मुझे उनकी दशापर दया आती है। मेरे हृदयमें पश्चिमी स्त्रियोंके लिये अतीव सम्मान और पूजाका भाव है। उनके दोष उनकी अपनी प्रकृतिके विकारसे नहीं हैं वरन् वे यूरोपकी सामाजिक पद्धतिके परिणाम हैं। यूरोप और अमरीकाकी वर्त्तमान सामाजिक पद्धतिने स्त्रियोंको स्वतंत्रताके सिंहासनपर बैठाकर दिव्य पदवी—देवीपनसे गिरा दिया है। मेरी सम्मतिमें स्त्रियोंको यह स्वतंत्रता होनी चाहिये कि वे अपनी आजीविका कमा सकें और वे बलात् आर्थिक दासतामें न डाली जायं। परन्तु उनको इतना श्रम करनेपर विवश करना, उनको उनकी वास्तविक पदवीसे गिरा देना है। मेरी सम्मतिमें स्त्रीके कर्त्तव्य ऐसे कठिन हैं कि उनको पूरा करनेके बदलेमें उसका अधिकार है कि पुरुष उसकी सारी आर्थिक अवस्थाओंको पूरा करे, परन्तु इस कारणसे वह उसको अपनी दासी या अधीनस्थ न समझे। ये दोनों बातें सम्भव हैं या नहीं, यह सन्देहास्पद है, क्योंकि साधारणतया संसारमें देखा जाता है कि आर्थिक शक्ति अर्थात् पैसेकी कुञ्जी ही सर्व शक्तियोंका उद्भव है।

प्राचीन भारतका विचार-बिन्दु। प्राचीन भारतमें हमको स्त्रियोंकी स्वतंत्रतापर किसी अनुचित बंधनका कोई प्रमाण नहीं मिलता। हिन्दू-शास्त्रोंमें, हिन्दू-इतिहासमें और पुराणोंमें इस बातकी पर्याप्त साक्षी विद्यमान है कि विवाहके विषयमें हिन्दू-स्त्रियां ऐसी ही स्वतंत्र थीं जैसे कि पुरुष। जो बंधन और रुकावटें इसके पीछेकी स्मृतियोंमें स्त्रियोंकी स्वतंत्रतापर लगाई गई हैं वे प्राचीन कालके शास्त्रोंमें नहीं पाई

जातीं। पीछेके कालके शास्त्रोंमें चूंकि स्त्रियोंका पद गिरा दिया गया है इसलिये शास्त्रकारोंको वार वार यह लिखनेकी आवश्यकता पड़ती है कि स्त्रियोंका सम्मान करना और उनको प्रसन्न रखना पुरुषोंका कर्त्तव्य है। इन स्मृतियोंमें हमें दो प्रकारके परस्पर विरोधी विचार मिलते हैं। कुछ स्थलोंपर स्त्रियोंको आदर, सम्मान और सेवाके योग्य ठहराकर उनकी पूजा करना धर्म्म बतलाया गया है। कुछ दूसरे स्थलोंपर उनके दुर्गुण बताकर उनको सदा अधीन और दबाये रखनेकी शिक्षा दी गई है।

स्त्री-शिक्षा। इसी प्रकार स्त्रियोंकी शिक्षाके सम्बंधमें भी परस्पर विरोधी प्रमाण मिलते हैं। प्राचीन कालमें स्त्रियोंकी शिक्षापर कोई बंधन न था।

हिन्दू-स्त्रियोंकी आर्थिक दशा। प्राचीन कालमें या हिन्दुओंके उत्कर्षकालमें स्त्रियोंकी आर्थिक दशा क्या थी, इस विषयमें सम्मति स्थिर करनेके लिये पर्याप्त सामग्री नहीं है। यह प्रकट है कि उस समयमें परदेकी प्रथा न थी। अतएव इस समय परदेकी प्रथाके कारण जो आर्थिक बंधन प्रतिष्ठित हो गये हैं वे विद्यमान न थे। परन्तु साथ ही स्त्रियोंपर वे आर्थिक उत्तरदायित्व भी न थे जो यूरोपमें देख पड़ते हैं। यूरोपीय स्त्रियोंकी अवस्थामें जो बातें आपत्तिजनक जान पड़ती हैं वे आजकलकी यूरोपीय सामाजिक और आर्थिक पद्धतिका अवश्यम्भावी परिणाम हैं। आजसे एक शताब्दी पहले यूरोपीय स्त्रियोंको कानूनकी दृष्टिसे सम्पत्ति रखने या पैदा करनेके वे अधिकार न थे जो इस समय हैं, अथवा जो प्राचीन कालसे हिन्दू-स्त्रियोंको प्राप्त हैं। कोड नेपोलियनके अनुसार किसी विवाहिता स्त्रीको सम्पत्ति रखनेका अधिकार न था। उसकी अपनी निजकी सम्पत्तिपर भी उसके पतिको पूरा अधिकार था।

नेपोलियन स्त्री-शिक्षाके पक्षमें भी न था। इस एक सौ वर्षके समयमें यूरोपीय स्त्रियोंने अपने आर्थिक अधिकारोंमें बहुत उन्नति की, जिसका आवश्यक परिणाम यह हुआ कि उनकी आर्थिक ज़िम्मेदारियां बढ़ गईं और उनके साथ ही उनके राजनीतिक स्वत्व भी बढ़ गये। निर्दोष नियम यह है कि जो श्रेणियां जातिकी आर्थिक समृद्धिकी ज़िम्मेदार हैं उनका अधिकार है कि वे जातिके राजनीतिक प्रबंधमें सम्मिलित हों। राजनीतिक अधिकार आर्थिक जिम्मेदारियोंके साथ साथ जाते हैं। हम नहीं कह सकते कि किस प्रकार संसारमें यह नियम प्रतिष्ठित किया जा सकता है कि स्त्रियां आर्थिक रूपसे दास भी न हों और उनको अपनी आर्थिक आवश्यकताओंके लिये उतना घोर श्रम भी न करना पड़े जितना कि यूरोपीय स्त्रियोंको करना पड़ता है। सच तो यह है कि आधुनिक कालमें न तो हमें एशियाकी स्त्रियोंकी अवस्था सन्तोष जनक देख पड़ती है और न यूरोपीय स्त्रियोंकी आत्म-त्याग, प्रेम इन्द्रियनिग्रह, और सेवाके विशिष्ट गुण एशियाकी स्त्रियोंमें अधिक हैं परन्तु बौद्धिक और विद्या-सम्बंधी उन्नति और स्वतंत्रताके विचार-विन्दुसे यूरोपीय स्त्रियोंकी अवस्था कई गुना अच्छी है प्राचीन हिन्दू-समाजमें स्त्रियोंकी जो स्थिति थी वह हमको मँझले दर्जेकी प्रतीत होती है।

साहित्य और कला। ललित कलाओं अर्थात् आलेख्य, तक्षण, लकड़ीका काम, चित्रकारी, रङ्ग बनाना और कविताके विषयमें हम यह कहनेका साहस कर सकते हैं कि अर्वाचीन कालकी सभ्यताने प्राचीन कालकी सभ्यतापर कोई उन्नति नहीं दिखलाई। इन कलाओंके जो नमूने प्राचीन भारत, प्राचीन मिस्र, प्राचीन यूनान और कुछ दूसरे भागोंमें मिलते हैं उनका सामना वर्तमान कालकी ललित कलायें नहीं कर

सकतीं। इस विषयमें वर्तमान कालका यूरोप मध्य कालसे भी पीछे देख पड़ता है।

पदार्थ विज्ञानका प्रभाव यूरोपकी सभ्यतापर।

निस्सन्देह पदार्थ-विज्ञानमें अर्वाचीन कालने उन्नतिकी पराकाष्ठा देखी है। पदार्थ-विज्ञानमें जो आविष्कार गत तीन चार सौ वर्षोंमें हुए हैं वे आश्चर्यजनक हैं और उन्होंने युगकी काया-पलट कर दी है। संसारको बहुत संक्षिप्त सा स्थान बना दिया है और देश और कालका लोप कर दिया है! संसार-की उपजमें भी बहुत वृद्धि हो गई है। मानवी आवश्यकतायें और मानवी रुचियां भी बहुत बढ़ गई हैं। परन्तु यह खेदसे कहना पड़ता है कि इन विद्याओंमें जितनी आश्चर्यजनक उन्नति संसार-ने की है उतना ही आश्चर्य-जनक ह्रास संसारने अपने राज-नीतिक शीलमें किया है। यूरोप और अमरीका अपने इन आश्चर्य जनक आविष्कारोंका उपयोग थोड़ेसे मनुष्योंके लाभार्थ कर रहा है। मनुष्य-समाजको इन आविष्कारोंसे जो थोड़ा-बहुत लाभ पहुंचता है वह केवल उदर-संबन्धी है। वह लाभ भी स्वय-मेव उन्हें धनाढ्य पूंजीवालों और शक्तिशाली श्रेणियोंका दास बनाता है। चाहिये तो यह था कि ज्ञानकी वृद्धिसे और प्रकृतिके विजयोंसे मनुष्यको स्वतन्त्रता और अवकाश अधिक मिलता, परन्तु परिणाम यह हुआ है कि इन जानकारियोंकी बढ़तीसे मनुष्यकी एक प्रचुर संख्या पहलेकी अपेक्षा अधिक दरिद्र और तङ्ग हो गई है। ज्ञानकी वृद्धिसे मनुष्यके शीलमें जो उन्नति होनी चाहिये थी और उसकी मनुष्यतामें जो सज्जनता आनी चाहिये थी। वह नहीं आई। वरन् अभिमान, गर्व, दुष्टता, लोभ, द्वेष और अनीति, इन सब बुरे स्वभावोंमें वृद्धि हो गई। मनुष्य अपने इस सारे ज्ञान-भाण्डारको दूसरे मनुष्योंपर अत्याचार,

कठोरता करनेके लिये उपयोगमें ला रहा है। गत महायुद्धमें इसका पर्याप्त प्रमाण मिल चुका है। प्राचीन कालमें जो युद्ध होते थे उनमें उतना नर-संहार नहीं होता था जितना कि आधुनिक युद्धोंमें होता है। उन लोगोंकी प्रकृतियां चाहे उतनी सभ्य न थीं परन्तु उनके शस्त्रोंकी धार मन्द थी। हिन्दुओं-का सैनिक शील इतना उच्च था कि वह युद्ध करनेवालोंको किसी प्रकारका अनुचित लाभ उठानेकी आज्ञा न देता था। युद्ध-कालमें स्त्रियोंको, वृद्धोंको, निहत्थोंको, जनताके न लड़ने-वाले भागको हानि पहुँचाना बहुत बुरा समझा जाता था। धोखेसे शत्रुको मारना, या अनशनसे शत्रुको परास्त करना, या घिरे हुए विवश शत्रुपर आघात करना वीरताकी महत्ताके उप-युक्त न था। प्राचीन कालमें कभी किसीको यह विचार भी न आता था कि अपने विरोधी पक्षकी प्रजाको अनशनसे मार डालनेका यत्न करे, अथवा उनके जल या उनके अन्नको हानि पहुँचाये। विषाक्त शस्त्रोंसे लड़ना भी पाप समझा जाता था। बहुतसे इतिहास-लेखकोंने इस प्रकारकी हिन्दू-रीतियोंकी प्रशंसा की है। हिन्दू-सभ्यताका इतने दीर्घकालतक सक्रम प्रतिष्ठित रहना इसी शीलका परिणाम है। हिन्दू-भारतमें सैकड़ों लड़ाइयां हुईं; आक्रमणकारी आये और चले गये, राजवंश बने और बिगड़ गये, परन्तु इन सब युद्धोंमें और इन सब परिवर्तनोंमें प्रजाको विशेष हानि पहुंचानेका यत्न नहीं किया गया। कुछ हानि अवश्य होती होगी, परन्तु उस परिमाणमें नहीं जिसमें कि आज कलके विज्ञान-वेत्ता लड़नेवाले करते हैं। युद्धके प्रयोजनोंके लिये विज्ञानका यह पाशविक उपयोग आधुनिक सभ्यताके मुखपर एक ऐसा कलङ्क है जिसकी तुलनाका कोई कलङ्क हमको प्राचीन हिन्दू-सभ्यतामें नहीं मिलता। विज्ञानके आविष्कारों

और परीक्षणोंने मनुष्यको अपने शील और अपनी आध्यात्मिकतामें उन्नति करनेके स्थानमें बहुत कुछ गिरा दिया है।

आधुनिक सभ्यताके परस्पर विरोधी अङ्ग।

आधुनिक सभ्यताका यह चित्र है कि एक ओर तो विषाक्त धुआं, विषाक्त यंत्र, दूर दूरतक मार करनेवाली तोपें, हवाई जहाज, जलमग्न नावें, युद्धके बड़े बड़े जहाज मनुष्यमात्रके विनाशके लिये उपयोगमें लाये जाते हैं और शत्रुकी जातिको स्त्रियों, बच्चों और बूढ़ों समेत, निर्दयता-पूर्वक नष्ट किया जाता है, दूसरी ओर उनकी मर्हम-पट्टीके लिये और उनकी चिकित्साके लिये डाक्टर और धायें रक्खी जाती हैं। पहले जान बूझकर लोगोंको बड़ी क्रूरतासे घायल किया जाता है और फिर उनके घावोंको चङ्गा करनेके लिये सर्जन और रेडक्रासकी दाइयां रक्खी जाती हैं। यूरोप और अमरीकाके बहुतसे विद्वान और विचारक इस प्रश्नपर विचार कर रहे हैं कि किस प्रकार युद्धके इस भीषण पक्षको बदला जाय। सेना और सामुद्रिक सामग्रीको कम करनेके लिये भिन्न भिन्न प्रस्ताव किये जा रहे हैं। गत महायुद्धके दिनोंमें कहा जाता था कि यह लड़ाई युद्धके सूत्रको संसारसे काट डालेगी। परन्तु परिणाम ठीक इसके विपरीत हुआ। लड़ाइयां अभीतक पूर्ववत् जारी हैं। घृणा, शत्रुता और मनोमालिन्य सारे संसारमें फैला हुआ है। राष्ट्र राष्ट्रोंके शत्रु हैं। समाजके भिन्न भिन्न समूह एक दूसरेके रक्तके प्यासे हैं। प्रत्येक मनुष्यके हृदय और मस्तिष्कमें प्रतियोगिताका भाव विद्यमान है। मुखसे संसार सहयोग सहयोग पुकारता है। परन्तु अपने कर्मसे सारा सभ्य-संसार एक दूसरेके साथ असहयोगका बर्ताव कर रहा है यह असहयोग महात्मा गान्धीके असहयोगके सदृश अहिंसा-मूलक नहीं है, वरन् इसकी जड़में

हिंसा, अत्याचार, लोभ, द्वेष और नाना प्रकारकी पैशाचिक कामनायें हैं। यूरोप और अमरीकाके बहुतसे पुण्यात्मा समाज अपनी सभ्यताके इस अङ्गपर लज्जित हैं और दिन रात इसी चिन्तामें हैं कि इस सभ्यताका अन्त क्या होगा। परन्तु अभी-तक उनको कोई उपाय नहीं मिला और न तबतक मिलेगा जबतक कि इस सभ्यताकी नैतिक और आध्यात्मिक नीवें न बदली जायंगी। यूरोप और अमरीकामें आजके समयमें बहुत-से पुण्यात्मा मनुष्य भी हैं। हमको उनके उच्च चरित्र और आध्यात्मिकतामें कोई सन्देह नहीं है। हमको उनके प्रति सच्ची भक्ति है। हम उनका उतना ही सम्मान करते हैं जितना कि भारतके प्राचीन ऋषियों और महर्षियोंका। परन्तु हमको उन-की विवशता और असमर्थतापर दया आती है। उनका शब्द अरण्यरुदनके समान है जिसकी प्रतिध्वनि उनके अपने कानोंमें आकर समाप्त हो जाती है, परन्तु जिसका कोई प्रभाव वनके वृक्षों और जङ्गलके जीवोंपर नहीं होता।

यूरोपकी सभ्यता अपना युग बदलनेवाली है।

संसारमें बहुत सी सभ्यतायें हो चुकी हैं और हमारा विचार है कि यूरोपीय सभ्यता भी अब अपना युग समाप्त करनेवाली है। उसके स्थानमें एक नवीन सभ्यता उत्पन्न होनेवाली है जो पूर्वी आध्यात्मिकता और पश्चिमी विज्ञानका मिश्रण होगी। यद्यपि हमें अनेक बार सन्देह हो जाता है कि यूरोपीय सभ्यतापर पूर्वी आध्यात्मिकताका कलस चढ़ाना या पूर्वी आध्यात्मिकताके भवनको पश्चिमी विज्ञानके आधारपर निर्माण करना सम्भव भी है कि नहीं।

रवीन्द्रनाथ ठाकुरके विचार।

भारतके प्रसिद्ध कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर जब सन् १९१७ ई० या १९१८ई० में जापान पहुंचे तो जापानके अधि-

वासियोंने उनका बहुत सम्मान किया। उन्होंने जापानके लोगों-को पश्चिमी सभ्यताकी नकल करनेवाले कहकर बहुत भर्त्सना की। एक जापानी समाचार-पत्रने क्रुद्ध होकर यह उत्तर दिया कि रवीन्द्रनाथ ठाकुरका शब्द एक कब्रका शब्द है जो श्मशान भूमिसे आता है। इसका यह अर्थ था कि रवीन्द्रनाथका अपना देश कब्रस्थान है और उनके शब्दका वही मूल्य है जो उस व्यक्ति-के शब्दका होना चाहिये जिसने अपने देशको कब्रस्थान बननेसे न बचाया हो। जब रवीन्द्रनाथ ठाकुर अमरीका पहुंचे तो युद्ध अभी अपने जोरोंपर था। उन्होंने अमरीकावालोंको बहुत कुछ चेता-वनी दी और अमरीकन स्त्रियोंकी भी बहुत कुछ डांट-डपट की। परन्तु युद्धके पश्चात् जब वे फिर यूरोपके भ्रमणको गये तो यूरोपीय साहित्य और कलापर मुग्ध होकर आये। हम कविके हृदयकी इन दोनों अवस्थाओंको समझ सकते हैं और उनके इस भावका सम्मान करते हैं कि हमें यूरोपीय विद्याओं और कलाओंको घृणाकी दृष्टिसे नहीं देखना चाहिये। हम हृदयसे इस भावके बहुत विरोधी हैं कि यूरोपीय सभ्यता और यूरोपीय विद्याओंके विरुद्ध घृणा फैलाई जाय और हिन्दुओंको यह शिक्षा दी जाय कि उनके बाप-दादा जो कुछ उनको बतला गये वह जीवनके प्रत्येक अंगमें अन्तिम शब्द था। परन्तु सच तो यह है कि यह गुत्थी हमें सुलझने योग्य नहीं मालूम होती कि यूरोपीय सभ्यता और संस्कृतिको स्वदेशमें प्रचलित करके हम किस प्रकार उसके बुरे परिणामोंसे बच सकते हैं। अभीतक हमको यूरोपीय सभ्यता-विपाक प्रभावोंका कोई प्रतीकार नहीं मिला। यूरोपका व्यापा-रिक और औद्योगिक भाव अतीव जघन्य है। यूरोपकी युद्ध-कला अतीव शीलसे गिरी हुई है। यूरोपका साम्राज्यवाद संसार-के लिये अतीव भयानक है। और यह सब यूरोपीय सभ्य

परिणाम है। यह कैसे हो सकता है कि हम यूरोपीय सभ्यताको ग्रहण करके उसके विषैले प्रभावोंसे बच सकें और केवल उसके सुखद अंगोंसे ही लाभ उठायें। यह पहेली अभीतक हमारे लिये हल नहीं हुई. और हमारी समझमें नहीं आता कि यह किस प्रकार हल होगी। जो भी हो, इसको सन्तोषजनक रीतिसे हल करनेका यत्न करना हमारा सर्वोत्तम कर्त्तव्य है।

शिक्षा। यूरोप और अमरीकाने शिक्षा-प्रचार और शिक्षा-विज्ञानमें बहुत उन्नति की है। उनकी शिक्षा-विधियां निस्सन्देह अनेक अङ्गोंमें प्राचीन शैलियोंसे अच्छी हैं। मुद्रण-कलाने भी शिक्षा-प्रणालीमें एक क्रान्ति उत्पन्न कर दी है। इस लिये प्राचीन शिक्षा-प्रणालियोंमें जो जोर स्मरण-शक्तिपर दिया जाता था उसकी अब आवश्यकता नहीं रही। इस बातके पर्याप्त प्रमाण मौजूद हैं कि हिन्दू-कालमें शिक्षाका बहुत प्रचार था। शिक्षाका कार्य और उत्तरदायित्व राज्यपर न था। शिक्षा-सम्बन्धी प्रयोजनोंके लिये राज्य न कोई कर लेता था, और न विद्यार्थियोंसे कोई शुल्क ही लिया जाता था। ब्राह्मणिक-कालमें ब्राह्मण लोग सर्वसाधारणको बिना शुल्क विद्या दान करते थे। व्यवसायी, शिल्पी,और कारीगर अपने शिष्योंको औद्योगिक शिक्षा देते थे। चीनी पर्यटकोंने तत्कालीन शिक्षा-पद्धतिकी भूरि भूरि प्रशंसा की है। इस शिक्षाका एक फल यह था कि लोगोंकी प्रकृतिमें सत्यवादिता, पवित्रता और उपकारका भाव अधिक था। शिक्षा देनेवालोंकी इतनी प्रचुरता थी कि एक अध्यापकके पास कभी इतने शिष्य न होने पाते थे जितने कि आजकलके स्कूलोंमें भिन्न २ श्रेणियोंमें पाये जाते हैं। बौद्धकालमें ब्राह्मणोंके स्थानमें यह काम बौद्ध भिक्षु करते थे। अध्यापकोंको समाज और राज्य दोनों मिलकर खर्च देते थे। न उनको नियत वेतन

दिये जाते थे और न विद्यार्थियोंसे कुछ शुल्क लिया जाता था। अधिक सम्भव है कि आरम्भिक शिक्षाका काम मातायें स्वयं करती थीं। इसी शिक्षा-प्रणालीमें वे सब जिम्मेदारियां आ जाती थीं जो आजकल राज्यके सिरपर हैं। इस शिक्षा-प्रणालीमें वे दोष न थे जो आजकलकी सरकारी शिक्षाकी रीतियोंमें पाये जाते हैं। परन्तु यूरोप और अमरीकामें राज्यने जो व्यापक अधिकार अपनी प्रजापर प्राप्त किये हैं उनसे वहांकी औद्योगिक अवस्थाओंमें यह आवश्यक है कि शिक्षाका सारा उत्तरदायित्व राज्य अपने ऊपर ले। शुल्क न लेनेका भाव, वरन स्कूलके विद्यार्थियोंकी अवस्थामें भोजन देनेका भाव भी, यूरोप और अमरीकामें सामान्य रूपसे फैलता जा रहा है। उन महा-देशोंमें शिक्षा सामान्य और अनिवार्य है। वह निःशुल्क भी है। और अब यह विचार व्यापक रूपसे फैलता जा रहा है कि स्कूलके विद्यार्थियोंके स्वास्थ्यका उत्तरदायित्व भी राज्यपर है। बहुतसे देशोंमें तो स्कूलके बच्चोंको कमसे कम एक समय बिना मूल्य भोजन दिया जाता है और उनकी चिकित्साका प्रबंध भी राज्यकी ओरसे निःशुल्क होता है। ऐसी अवस्थामें शिक्षाका सारा विभाग राज्यके हाथोंमें है। प्राचीन भारतमें समाज इन सर्व आवश्यक जिम्मेदारियोंको स्वीकार करता था परन्तु राज्यको शिक्षाकी बातोंमें हस्तक्षेप करनेकी आज्ञा न देता था। प्राचीन शैली उस समयके रहन सहनके ढङ्गका फल था। आधुनिक रीति यूरोपके औद्योगिकवाद और वाणिज्यवादका परिणाम है। हां, शिक्षाकी रीतियोंमें जो उन्नति यूरोप और अमरीकाने की है वह विचारणीय है। उससे भारतके शिक्षा-शास्त्रियोंको अवश्य लाभ उठाना चाहिये।

विद्या सभायें और विद्यापीठें। उच्च शिक्षा और वैज्ञानिक अन्वेषण तथा खोजके लिये जो साधन आधुनिक यूरोप और अमरीकाने ग्रहण किये हैं वही प्राचीन भारतमें प्रचलित थे। देशमें स्थान स्थानपर विद्यापीठें फैली हुई थीं। वहाँ सैकड़ोंकी संख्यामें अध्यापक रहते थे और सहस्रोंकी संख्यामें विद्यार्थी शिक्षा पाते थे। एशियाके सभी देशोंसे लोग यहाँ शिक्षा पानेके लिये आते थे। इसके अतिरिक्त ऐसी विद्या-सभायें और परिषद् थे जो विद्वानोंकी सहायता करते थे और उनको उनकी रचनाओं और आविष्कारोंपर प्रमाण-पत्र और उपाधियाँ प्रदान करते थे।

वर्त्तमान भारतमें शिक्षाकी प्राचीन शैली सर्वथा नष्ट हो चुकी है। उसका पुनरुद्धार करना प्रायः असम्भव है। इसलिये हमें यह सोचना होगा कि आधुनिक यूरोपीय पद्धतिमें हम क्या क्या परिवर्त्तनकर उसे अपनी अवस्थाके अनुकूल बना सकते हैं।

स्वास्थ्य-रक्षा। स्वास्थ्य-रक्षाके विषयमें भी हमको प्राचीन काल अर्वाचीनकालसे बहुत पीछे नहीं प्रतीत होता। इसका अर्थ यह नहीं कि आजकलकी अस्त्रचिकित्सा और वैद्यकके भिन्न भिन्न विभागोंमें जो उन्नति यूरोपने की है उसको हम आदरके योग्य नहीं समझते। अस्त्रचिकित्सा और कीटाणु-विद्या (बेक्टीरियालोजी) में यूरोपने विस्मयजनक उन्नति की है। स्वास्थ्य-रक्षाके विभागमें भी यूरोप और अमरीकामें जो उपाय रोगोंको रोकनेके लिये किये जाते हैं वे भूरि भूरि प्रशंसाके योग्य हैं। परन्तु हिन्दू आर्यलोग भी स्वास्थ्य-रक्षाके सम्बन्धमें जो लेख छोड़ गये हैं वे भी आदरणीय हैं। उदाहरणार्थ, घरों, गली कूचोंकी सफाईके सम्बन्धमें जल और वायुको शुद्ध रखनेके लिये जो आदेश हिन्दू-शास्त्रोंमें मिलते हैं वे

प्रकट करते हैं कि हिन्दू इस विभागमें कितने सावधान थे। पानीके झरनों, कुओं, नदियों और सड़कों आदिको गंदा करनेवालेके दण्ड नियत थे। गृह-निर्माणमें प्रकाश और वायुका विशेष ध्यान रक्खा जाता था। छूतके रोगोंके दिनोंमें विशेष उपायोंका उपयोग किया जाता था। ऐसा प्रतीत होता है कि कीटाणु-विद्याके सम्बन्धमें भी हिन्दुओंको पर्याप्त ज्ञान था। साधारणतया हिन्दू शरीरकी स्वच्छता और सार्वजनिक सफाईकी ओर यथेष्ट ध्यान देते थे। सभी शास्त्रोंमें इस विषयमें उपदेश पाये जाते हैं। नगरों और उपनगरोंके म्युनिसिपल प्रबन्धमें भी सफाईके विभागका अस्तित्व पाया जाता है। औषध बिना मूल्य बाँटना, रोगियोंकी देख-रेख करना, और उनको औषधि, भोजन और वस्त्र मुफ्त देना इन बातोंको हिन्दू विशेषरूपसे अच्छा समझते और सम्मानकी दृष्टिसे देखते थे। महाराजा चन्द्रगुप्तके राजत्वकालसे बहुत समय पहले यह भाव हिन्दुओंमें पाया जाता है। मौर्य्यवंशके राजत्वकालमें तो राज्यका यह कर्त्तव्य ठहराया गया था कि सार्वजनिक चिकित्सालय और औषधालय न केवल मनुष्योंके लिये बनाये जायँ वरन् पशुओंके लिये भी। महाराजा अशोकने न केवल भारतकी भिन्न भिन्न दिशाओंमें इस प्रकारके चिकित्सालय बनवाये, वरन् अपनी सीमाओंके बाहर विदेशोंमें भी इस पुण्य कार्यको अपने व्ययसे प्रचारित किया। मनुष्य-समाजके इतिहासमें सम्भवतः हिन्दुओंने ही सबसे पहले इस कामको जारी किया और सबसे प्रथम उन्होंने ही एक पूर्ण चिकित्सा-शास्त्रकी नींव डाली।

दूसरे देशोंके वृत्तान्तोंका ज्ञान न होना।

हिन्दुओंकी सभ्यताका एक दुर्बल अङ्ग यह था कि हिन्दू दूसरे देशोंके वृत्तान्तोंसे यथेष्ट परिचय न रखते थे

और अधिक सम्भव है कि उनको यात्राका भी स्वभाव न था। हिन्दू अपने आपमें ऐसे मग्न थे कि उनकी दृष्टिमें कोई दूसरा देश न जँचता था। वे जहाज़ चलाते थे; विदेशोंके साथ व्यापार करते थे; अपने प्रचारक भी दूसरे देशोंको भेजते थे, परन्तु वे अपने स्वदेश-बंधुओंको उन देशोंकी सभ्यता, शिक्षा और अन्य वृत्तान्तोंका ज्ञान करानेका यत्न न करते थे। हिन्दू-साहित्यमें न दाराके आक्रमणका, न सिकन्दरके आक्रमणका, और न चीनी पर्यटकोंका उल्लेख है। हिन्दू-साहित्यमें अवतक न कोई ऐसी पुस्तकें मालूम हुई हैं जिनसे हिन्दुओंके पर्यटनके वृत्तान्त ज्ञात हों। चीनके साहित्यमें, सिंहलके ग्रंथोंमें, मुसलमानोंकी पुस्तकोंमें, यूनानियों, ईरानियों और रोमवालोंकी रचनाओंमें अनेक स्थलों-पर भारतका उल्लेख है। परन्तु भारतकी प्राचीन पुस्तकोंमें दूसरे देशोंका कुछ भी उल्लेख नहीं है। यदि कहीं है भी तो केवल संकेत रूपसे। दूसरी जातियोंके ठीक ठीक वृत्तान्त न हिन्दुओंने मालूम किये और न उनको लेखबद्ध किया। अब भी कुछ हिन्दू विद्वान् इस सङ्कीर्ण दृष्टिके पक्षमें हैं, यद्यपि वे जानते हैं कि आधुनिक संसारमें किसी जातिका किसी परिमित प्रदेशमें बन्द रहना, संसारके साथ मेल जोल न रखना, और व्यापारिक तथा राजनीतिक सम्बन्ध उत्पन्न न करना असम्भव है।

भारतमें धर्म-भेदोंके कारणसे कोई राजनीतिक अयोग्यता न थी।

परन्तु हिन्दुओंकी इस संकीर्ण-दृष्टिने कभी यह रूप धारण नहीं किया कि हिन्दू-विदेशियोंको कभी अपने देशमें न आने दें। भारतवर्ष सदासे प्रत्येक देश, प्रत्येक जाति, और प्रत्येक धर्मके लिये खुला रहा है। हिन्दुओंने कभी अपने देशका द्वार किसीपर बन्द नहीं किया। उन्होंने न कभी विदेशियोंके पर्यटनपर ही कोई बन्धन लगाये।

इसके विपरीत जो लोग इस देशमें आये उनको उन्होंने खूब सेवा और सम्मान किया और यदि उन्होंने यहां बसना चाहा तो उन्हें बसने दिया। हिन्दू-न्यायालय दूसरी जातियोंके लोगोंके अधिकारोंकी विशेष रक्षा करते थे।

दूसरे दान-पुण्यके काम। दान-पुण्यके दूसरे कामोंमें भी प्राचीन हिन्दू-सभ्यता आधुनिक यूरोपीय सभ्यतासे पीछे न थी। हमको इस बातके असंख्य प्रमाण मिलते हैं कि हिन्दू लोग मन्दिर बनाना, मन्दिरोंके लिये स्थायी प्रबंध करना, धर्मशालायें बनाना, कूप, तथा सरोवर खुदवाना, सार्वजनिक वाटिकायें बनाना, सदाव्रत चलाना, दरिद्राश्रम बनवाना, अनाथों और विधवाओंके पालन-पोषणका प्रबन्ध करना इत्यादि पुण्यके कार्यों और शिक्षा-सम्बन्धी तथा धार्मिक संस्थाओंके प्रतिष्ठित करनेमें विशेष रुचि प्रकट करते थे। दुर्भिक्षके दिनोंमें न केवल व्यक्तिगत दानसे अकाल-पीड़ितोंकी सहायताका प्रबंध किया जाता था, वरन् महाराज अशोकके समयमें जो सरकारी नीति शास्ता (सेंसर) नियत होते थे उनका विशेष रूपसे यह कर्तव्य था कि दरिद्रों, अनाथों, विधवाओं और ऐसे परिवारोंके विषयमें राजाको सूचना दें जिनकी आयके साधन उनकी आवश्यकताओंसे कम हों। इसका यह अर्थ है कि राज्य अपना कर्तव्य समझता था कि राष्ट्रमें कोई व्यक्ति जीवनकी आवश्यकताओंकी कमीसे कष्ट न पाये। अर्वाचीन सभ्यताने राज्योंकी इस जिम्मेदारीको अभीतक स्वीकार नहीं किया।

इस प्रकारके दान-पुण्यके कार्योंके लिये प्राचीन हिन्दू-आर्य व्यक्तिगत तथा सामूहिक रूपसे बहुतसे स्थायी दान प्रतिष्ठित करके ग्राम्य और नागरिक पंचायतों तथा समितियोंके सिपुर्द कर देते थे और उनके स्थायी प्रबन्धका उत्तरदायित्व उनपर

डाल देते थे। सार्वजनिक दानका प्रत्येक विभाग इस प्रकारसे सार्वजनिक निरीक्षणमें आ जाता था।

सहकारी व्यापार अर्थात् सम्मिलित पूंजीके व्यवसाय।

देशके कला-कौशल और शिल्प-सम्बन्धी समितियोंके विषयमें इसके पहले लिख चुके हैं। परन्तु इन व्यावसायिक समाजोंके अतिरिक्त इस बातका पर्याप्त प्रमाण है कि भारतमें व्यापारिक कार-बारके लिये और साहूकारोंके प्रयोजनोंके लिये सम्भूय समुत्थान या सम्मिलित मण्डलियां होती थीं। विशेष विशेष प्रयोजनोंके लिये सैकड़ों व्यापारी और साहूकार इकट्ठे मिलकर काम करते थे और अपने भागोंको बांट लेते थे। हम यह नहीं कह सकते कि मण्डलियोंकी जिम्मेदारी परिमित होती थी या नहीं।

हमारी सम्मतिमें आधुनिक सभ्यताका यह अङ्ग बहुत बुरा है। लिमिटेड या परिमित कम्पनियोंकी प्रथा और कानूनने संसारमें इतना दुराचार फैलाया है और व्यापारिक जूएको इतना बढ़ा दिया है कि उसकी उपमा मानवी इतिहासके किसी अतीत भागमें नहीं मिलती। वर्तमान संसारका व्यापारिक शील बहुत गिरा हुआ है। वह मनुष्यों और राष्ट्रोंके बीच रुचिकर सम्बन्ध उत्पन्न होनेमें बहुत बाधक और हानिकारक है। संसारके सभी बड़े बड़े सहकारी विनिमय (ज्वयेण्ट स्टाक एक्सचेंज*) ठगीके महकमे हैं। ये सब संस्थायें गरीबोंको लूटने और पूंजीवालोंके लाभार्थ बनाई गई हैं। इनका एक शुक्ल पक्ष यही है कि इनसे व्यापार और कला-भवनोंकी उन्नति होती है। परन्तु इनका कृष्ण पक्ष इनके शुक्ल पक्षकी अपेक्षा कई गुना

*उन स्थानोंका नाम है जहां कम्पनियोंके हिस्से बिकते और बदनी या सट्टे के सौदे किये जाते हैं।

बुरा है और आधुनिक सभ्यतापर एक भारी कलङ्क है। इन व्यापारिक नियमोंके प्रभावमें आकर प्रत्येक व्यक्ति दूसरे व्यक्तिको लूटनेकी चिन्तामें रहता है और अनेक प्रकारकी व्यापारिक धोखेबाजियां और अनीतियां समाजमें घुस आती हैं।

धार्मिक भेदोंके कारण अत्याचार। हिन्दू स्वभावसे मेल-प्रिय हैं। समस्त संसारके न्यायप्रिय मनुष्य इस बातको स्वीकार करते हैं। परन्तु कुछ लोग यह समझते हैं कि उनका यह मेल-प्रिय स्वभाव उनकी राजनीतिक विवशता और दासतासे उत्पन्न होता है। यह विचार सर्वथा मिथ्या है। हिन्दू सदासे धार्म्मिक स्वतन्त्रताके पक्षपाती हैं। उन्होंने कभी किसी कालमें धार्म्मिक भेदोंको शत्रुता, वैर, या विरोधका साधन नहीं बनाया। वैदिक कालसे लेकर आजतक हिन्दुओंने धार्म्मिक स्वतन्त्रताकी दुंदुभी बजायी है और उसीके अनुसार आचरण किया है। हिन्दुओंकी दृष्टिमें प्रत्येक व्यक्तिको अपने ढङ्गसे अपनी आध्यात्मिक उन्नति करनेका अधिकार और स्वत्व है। यही कारण है कि संसारका कोई भी ऐसा धार्म्मिक विचार नहीं जो हिन्दू-धर्म्ममें नहीं पाया जाता। इस विषयमें अर्वाचीन जगत् हिन्दू-धर्म्मको कुछ नहीं सिखा सकता। संसारके सर्वोत्तम धार्म्मिक नियम और सिद्धान्त किसी न किसी रूपमें हिन्दू-धर्म्ममें मौजूद हैं। ईश्वरका एकत्व भी उच्च कोटिका है और प्राकृतिक तत्त्वोंकी पूजा, प्रतिमा-पूजन और नास्तिकपनकी भी पराकाष्ठा है। हिन्दू न केवल मनुष्यमात्रको अपना बंधु समझते हैं वरन् वे सर्व प्राणियोंको दया, अनुकम्पा और मित्रताका पात्र समझते हैं। उनके धर्म्ममें नास्तिक लोगोंको भी ऋषि-पदवी दी गयी है और प्रत्येक व्यक्तिके धार्म्मिक विश्वास और भावनाको सम्मानपूर्वक स्मरण करना सिखाया गया है। बौद्ध और जैन

धर्मोंके प्रचारसे हिन्दू-धर्मके इस स्वरूपमें अन्तर नहीं आया। यद्यपि लगभग एक सहस्र वर्षतक इन धर्मोंके बीच प्रतियोगिता और मुठभेड़ रही, परन्तु अन्ततः हिन्दू धर्मने महात्मा बुद्धको विष्णुका अवतार कहकर बौद्ध धर्मको भी आत्मसात कर लिया। हिन्दू-इतिहासमें बीसों ऐसे दृष्टान्त मिलते हैं जहां इन भिन्न भिन्न धर्मोंके अनुयायियोंमें विवाह-सम्बंध हुए। मुसलमानोंके आनेके पहले धार्मिक विभिन्नताके कारण न खानपानमें और न विवाहादिमें ही कोई संकोच किया जाता था। हिन्दू, बौद्ध और जैन सब आपसमें प्रत्येक प्रकारका व्यवहार करते थे। जाति-पांतिके कारण विवाहका सम्बन्ध परिमित था परन्तु धार्मिक विभिन्नताके कारण ऐसा न था। हिन्दू, बौद्ध और जैन एक दूसरेकी लड़कियां लेते भी थे और देते भी थे। एक घरानेके भिन्न भिन्न व्यक्ति भिन्न भिन्न धार्मिक विश्वास रखते थे, वरन् विदेशी जातियोंके साथ भी हिन्दू विवाह-सम्बन्ध करते थे। महाराजा चन्द्रगुप्तने सिल्यूकसकी लड़कीसे विवाह किया। हम यह नहीं कह सकते कि हिन्दुओंके राजनीतिक-कालमें भारतमें धार्मिक भेदोंके कारण कभी अत्याचार नहीं हुए। परन्तु जब हम यूरोपका इतिहास पढ़ते हैं तब हमें यह प्रतीत होता है कि यूरोपकी धार्मिक मारकाट, रक्तपात और अत्याचारोंको दृष्टिमें रखते हुए यदि हम यह कह दें कि हिन्दुओं, बौद्धों और जैनोंने अपने उत्कर्षके कालमें धार्मिक मत-भेदोंके कारण कभी एक दूसरेपर अत्याचार नहीं किया तो हमारा यह कथन झूठ न होगा। यूरोपमें कोई शताब्दी ऐसी नहीं बीती जब लाखों मनुष्योंको धार्मिक मत-भेदोंके कारण तलवारके घाट नहीं उतारा गया। इस विषयमें यूरोपका इतिहास एक रक्तमय इतिहास है और उसकी टक्करका एक भी दृश्य हिन्दू-इतिहासमें नहीं है।

उपसहार। हमने संक्षेपसे प्राचीन हिन्दू आर्य्य-सभ्यता और अर्वाचीन सभ्यताकी यह तुलना की है जिससे लोगोंको अपनी प्राचीन सभ्यताकी त्रुटियों और सद्गुणोंका ज्ञान हो जाय। हिन्दू आर्य्योंकी वर्त्तमान सभ्यताका रूप बहुत भद्दा हो गया है क्योंकि उन्होंने प्राचीन नियमों और पुरानी प्रथाओंका परित्याग करके मध्यकाल और आधुनिक कालमें बहुतसी गन्ध अपनी सभ्यतामें मिला दिया है। जहां हम यह बात जानते हैं कि भारतको इसकी प्राचीन सभ्यतापर ले जाना असम्भव है वहां हमारा यह भी दृढ़ विश्वास है कि भारतको यूरोप और अमरीकाकी प्रतिलिपि बना देना भी हमारे लिये घातक सिद्ध होगा। हमारा यह प्रयत्न होना चाहिये कि हम अपने आपको यूरोपके शासनसे प्रत्येक अङ्गमें स्वतन्त्र कर लें। यूरोप इस समय हमपर राजनीतिक अर्थों में ही शासन नहीं कर रहा है वरन् यह आर्थिक, बौद्धिक और संस्कृति सम्बन्धी अङ्गोंमें भी हमारा शासक बना हुआ है। जिस समय इस शासनका दबाव हमारे सिरोंपरसे टल जायगा तब ही हमें स्वतन्त्रतापूर्वक यह सोचनेका अवसर मिलेगा कि हमें यूरोपसे क्या क्या सीखना और उसकी सभ्यताके कौन कौनसे अङ्गोंको अपने जीवनमें धारण कर लेना चाहिये। उस समय हमारा कर्त्तव्य होगा कि हम अपने समाजके विभागोंका प्राचीन तथा अर्वाचीन सभ्यताके प्रकाशमें अध्ययन करें और आवश्यकतानुसार व्यक्तिगत और राष्ट्रीय जीवनमें इसके अनुसार परिवर्त्तन करते चले जायँ। दासताकी अवस्थामें और अपने मस्तिष्क और प्रकृतिमें दासताके संस्कार रखते हुए जो परिवर्त्तन हम अर्वाचीन मनुष्य बननेकी अभिलाषासे करेंगे उसमें सदा यह शङ्का बनी रहेगी कि सिद्धान्तके स्थानमें नकल अधिक भाग ले लेगी।

उत्तम आधारोंपर और शुद्ध नियमोंपर हम अपने देशका भविष्य केवल उसी अवस्थामें बना सकते हैं जब हमारा भाग्य स्वयं हमारे हाथमें हो। उसपर न किसी बाह्य शक्तिका और न किसी बाह्य सभ्यताका दबाव हो। इस संसारमें रहते हुए हम अपनी महान् जातिको और इस विस्तृत महादेशको विचारों या अनुष्ठानोंकी किसी सङ्कीर्ण कोठरीमें बन्द करना नहीं चाहते। हम संसारसे अलग होकर यदि ढाई ईंटकी इमारत बनाना भी चाहें तो भी नहीं बना सकते। हमें इस बातका अनुभव होता है कि हमने अपनी सभ्यतामें इस अलग होनेके भावका अनुचित रूपसे पालन-पोषण करके हानि पहुंचाई है। हमें इस बातकी आवश्यकताका अनुभव होता है कि हम अपनी जातिके प्रत्येक स्त्री-पुरुष और बच्चेके मनमें यह भाव बैठा दें कि संसारसे भाग जाना वीरता और पुरुषत्वका चिह्न नहीं है, वरन् संसारमें रहकर संसारके समस्त पदार्थोंको धर्म्मानुसार उचित रूपसे भोगते हुए पुण्यमय जीवन व्यतीत करना, स्वाधीन रहना, और दूसरे मनुष्योंको स्वतन्त्र रहनेमें सहायता देना ही सच्ची वीरता और पुरुषत्व है। हम अपनी जातिको प्रजापीड़क बनाना नहीं चाहते। हमारा उद्देश्य यह नहीं है कि हमारी जाति दूसरोंको नष्ट करके, या दूसरोंको अपने अधीन करके, या दूसरोंकी स्वतन्त्रतामें हस्तक्षेप करके धनाढ्य या समृद्धिशाली बने। हम केवल यह चाहते हैं कि न हम दास हों और न और कोई दास हो। जिस प्रकार हमें अपनी आवश्यकताओंको पूरा करनेमें और धर्म्म तथा सदाचारके नियमोंपर अपने व्यक्तिगत और राष्ट्रीय जीवनको ढालनेमें पूर्ण स्वतन्त्रता हो उसी प्रकार संसारके अन्य देशों और अन्य जातियोंको भी स्वतन्त्रता प्राप्त हो। हम संसारमें भाई-बन्दी और मित्रता फैलाना चाहते हैं। हम केवल बरा-

चरीका अधिकार माँगते हैं। न शासित रहना चाहते हैं और न दूसरोंको शासित बनाना चाहते हैं। हमारी अभिलाषा यही है कि धर्म और सदाचारमें यदि हम संसारको दूसरी जातियों-से अधिक उन्नति कर सकें तो संसार हमारा सम्मान इसलिये करे कि हम उसके मित्र और शुभचिन्तक हैं, न कि इस कारण कि हम अपनी उच्चताके अभिमान और गर्वमें दूसरोंको नीचा दिखाकर अपनी बड़ाईसे लाभ उठायें।

यह इतिहास इस उद्देश्यसे तैयार किया गया है कि हिन्दुओं-को यह मालूम हो जाय कि हमारी प्राचीन सभ्यता न तो ऐसी पूर्ण थी कि उसमें अब उन्नतिके लिये कोई स्थान ही नहीं, और न वह ऐसी अपूर्ण और निकम्मी थी जो हमारे लिये लज्जास्पद हो और हमको उसके कारणसे लज्जित और अपमानित होना पड़े। हमारी निस्सहायता और दरिद्रताकी वर्तमान अवस्था हमारी दुर्बलताओंका परिणाम है, परन्तु वह हमारी सभ्यताका कोई अवश्यम्भावी फल नहीं।

दूसरा परिशिष्ट

हिन्दुओंकी राजनीतिक पद्धति ।

प्राचीन भारतमें राजनीतिक संगठन और व्यवस्था ।

आजकल यह फैशन हो गया है कि कुछ हिन्दू विद्वान् राजनीतिक विज्ञान अर्थात् पालिटिक्सको तिरस्कारकी दृष्टिसे देखते हैं और सब राजनीतिक काम करनेवाले एजीटेटर (आन्दोलनकारी) समझे जाते हैं। अँगरेजीका यह शब्द आजकल बुरे अर्थमें प्रयुक्त होता है; अर्थात् साधारणतया यह उन लोगोंके लिये उपयोगमें लाया जाता है जो जनताके हृदयोंमें अशान्ति और संक्षोभ उत्पन्न करें। परन्तु यह बात स्पष्ट है कि जबतक मनुष्योंकी प्रकृतिमें अपनी वर्त्तमान अवस्थाके विरुद्ध अशान्ति उत्पन्न न हो तबतक उन्नति असम्भव है। जो मनुष्य अपने मनमें यह समझे हुए हैं कि मैं सर्वाङ्गपूर्ण हूँ, मुझमें कोई त्रुटि नहीं, वह कभी उन्नति नहीं कर सकता। उन्नति करनेके लिये यह आवश्यक है कि मनुष्योंकी प्रकृतियोंमें संक्षोभ और मानसिक अशान्ति उत्पन्न हो। इसलिये प्रत्येक सुधारकका यह पहला काम है कि वह लोगोंके मनमें सुधार और उन्नतिकी चाह उत्पन्न करे। अतएव एजीटेटर होना वास्तवमें एक सुधारकका लक्षण है। परन्तु सब सरकारें उन लोगोंको बदनाम करनेका उद्योग करती हैं जो वर्त्तमान राजव्यवस्थाके दोष बतलाकर उसमें परिवर्त्तन करनेका

यत्न करते हैं। कुछ शान्तिप्रिय प्रकृतियाँ या वे लोग जिनको राज्यकी वर्त्तमान व्यवस्थासे लाभ पहुंचता हो इस प्रकारके सुधारकोंको एजीटेटर कहकर लोगोंकी दृष्टिमें गिरानेका यत्न करते हैं। आश्चर्यका विषय है कि जहाँ एक ओर गवर्नमेंट और गवर्नमेंटके सहायक राजनीतिक काम करनेवालोंको एजीटेटर कहकर कलङ्कित करनेका यत्न करते हैं वहाँ उसीके साथ हिन्दुओंपर यह भी दोष लगाते हैं कि उनके अन्दर यथेष्ट राजनीतिक बुद्धि नहीं है, वरन् वे यहांतक कहते हैं कि यह पहले भी कभी न थी। कहा जाता है कि हिन्दू इस बातकी कुछ परवाह नहीं करते कि उनपर कौन राज्य करे। वे केवल यह चाहते हैं कि उनको शान्तिसे रहने दिया जाय और शान्तिसे अपना निर्वाह करने दिया जाय। यहांतक कि स्वराज्यके अधिकारके खण्डनमें यह युक्ति दी जाती है और कहा जाता है कि भारतीय सामान्यरूपसे और हिन्दू विशेषरूपसे इस कारण स्वराज्यके अयोग्य हैं कि उनके अन्दर न राजनीतिक बुद्धि है और न राजनीतिक योग्यता है। वास्तवमें ये दोनों कथन मिथ्या हैं। इतना ठीक है कि कुछ कालसे भारतीयोंकी राजनीतिक बुद्धि दुर्बल हो गई है। परन्तु यह अवस्था प्रत्येक जातिकी हो जाती है जो चिरकाल तक राजनीतिक दासत्वमें रहे।

भारतमें दो बड़े धार्म्मिक समाज, अर्थात् हिन्दू और मुसलमान, बसते हैं। इन दोनों जन-समुदायोंके प्राचीन इतिहास और सभ्यताके समयमें इन दोनोंमें राजनीतिक चैतन्य पर्याप्त रूपसे मौजूद था, और ये लोग राजनीतिकी विद्याको अत्युच्च स्थान देते थे। मुसलमानोंके राजनीति-शास्त्र और राजनीतिक विचारोंके विषयमें हम इस समय कुछ नहीं लिखेंगे। इनका वर्णन उस ग्रन्थखण्डमें होगा जिसमें मुसलमानोंके राज्यका

इतिहास लिखा जायगा। इस भागमें अभी संक्षिप्त रूपसे हम हिन्दुओंके प्राचीन राजनीति-शास्त्रके सिद्धान्तका वर्णन करेंगे।*

राजनीति विज्ञानका महत्व। महाभारतके शान्तिपर्वमें यह कहा गया है कि यदि राजनीतिकी विद्या लुप्त हो जाय तो तीनों वेद और शेष सब प्रकारके धर्म नष्ट हो जाते हैं। इसी प्रकार मानव सूत्रोंमें भी राजनीतिको उन तीन विद्याओंमेंसे बताया गया है जिनका ज्ञान प्रत्येक मनुष्यके लिये आवश्यक है। वे तीन विद्यायें ये हैं—वेद, अर्थ-शास्त्र और राजनीति। बृहस्पतिके सूत्रोंमें भी विशेष रूपसे दो विद्याओंका उल्लेख है अर्थात् अर्थशास्त्र और राजनीति। औशनस सूत्रोंमें तो राजनीति-विद्याको ही विद्या कहा गया है क्योंकि विद्याकी शेष सारी शाखाओंका आधार इसीपर है। हिन्दू-शास्त्रोंमें राजनीतिको प्रायः दण्ड-नीति कहा गया है। महाभारतके शान्तिपर्वमें दण्ड-नीतिकी बहुत महिमा वर्णन की गई है और कहा गया है कि स्वयं ब्रह्माने इस विद्याकी शिक्षा दी। स्वयं राजनीतिकी पुस्तकोंमें भी दण्ड-नीतिका महत्व भली भांति वर्णित है। हिन्दुओंके साहित्यमें कोई पुस्तक भी ऐसी न मिलेगी जिसमें देशकी वर्त्तमान राजनीतिक अवस्थाओंका थोड़ा बहुत उल्लेख न हो। धर्मशास्त्रोंमेंसे प्रायः प्रत्येक शास्त्रमें राजनीतिक विषयोंका वर्णन है और राज्यप्रबन्धके सम्बन्धमें सवि-

* इन राजनीतिक सिद्धान्तोंको स्पष्ट करनेके लिये व्याख्या रूपमें बहुत कुछ लिखा जा रहा है। कई हिन्दू विद्वानोंने इसपर अच्छी अच्छी पुस्तकें प्रकाशित की हैं। दुर्भाग्यवश ये सब पुस्तकें अंगरेजी भाषामें लिखी गई हैं। हमने इन पुस्तकोंको संक्षिप्त रूपसे हिन्दीमें दे दी है। यहां केवल इतना लिख देना आवश्यक है कि इस परिच्छेदके लिखनेमें यद्यपि हमने दूसरे विद्वानोंके सिद्धान्तोंसे भी सहायता ली है पर हमारा मुख्य आधार डाक्टर प्रमथनाथ बन्दोपाध्याय कृत "पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन इन इण्डिया" (सन् १९१६) रही है।

स्तर उपदेश मौजूद हैं। मनु, गोतम, आपस्तम्ब, वसिष्ठ, बौद्धायन, विष्णु, याज्ञवल्क्य, और नारदके नामसे जो स्मृतियां प्रसिद्ध हैं उनमें राजाओंके कर्त्तव्यों, फौजदारी और दीवानी कानूनों, सरकारी करों और अदालती प्रवन्धके विषयमें सविस्तर उपदेश दिये गये हैं। पुराणोंमें भी राजनीति-शास्त्र तथा शासन-विज्ञानकी बहुत कुछ सामग्री है। अग्निपुराणमें विशेष रूपसे बहुत विस्तारके साथ इस विषयपर विचार किया गया है। इनके अतिरिक्त हिन्दुओंके प्रत्येक प्रकारके दूसरे साहित्यमें ऐसे वृत्तान्तों और विवादोंका उल्लेख है जिनसे तत्कालीन राजनीतिक विचारोंका अनुमान किया जा सकता है।

राज्यका आरम्भ। यूरोपीय साहित्यमें इस बातपर बहुत कुछ विचार किया गया है कि संसारमें स्टेट अर्थात् राज्यकी बुद्धि कैसे उत्पन्न हुई। ऐतिहासिकोंका सामान्यतः यह कथन है कि जब संसारमें मनुष्योंकी संख्या बढ़ गई, और उनके बीच सम्पत्ति आदिके सम्बन्धमें झगड़े उत्पन्न हुए, और समाज परिवारों और वंशोंसे अधिक विस्तृत होने लगा, तब जनताको राज्यकी आवश्यकताका अनुभव हुआ। उदाहरणार्थ, महाभारतके शान्तिपर्वमें यह बताया गया है कि पहले कृतयुगमें न कोई राजा था, न सरकार, न शासक। सब लोग धर्मानुसार रहते थे, और किसी शासनकी आवश्यकता न थी। परन्तु जब धर्मका बल हीन हो गया, और जनताके हृदयोंपर लोभ और क्रोधने अधिकार पाया तब उनके अन्दर धर्माधर्मका विचार निर्बल हो गया। उस समय देवताओंने ब्रह्मासे रक्षा और शिक्षाके लिये प्रार्थना की और उसने अपने पुत्र विराटको जगत्का राजा बना दिया। इस वर्णनसे कुछ लोग यह परिणाम निकालते हैं कि राज्यका आरम्भ भी एक प्रकारसे ईश्वरकी

ओरसे है, अतः राजा ईश्वरका प्रतिनिधि है। जो कुछ वह आज्ञा दे, चाहे वह उचित हो या अनुचित, विना किन्तु-परन्तु किये उसे मान लेना चाहिये। परन्तु दूसरे हिन्दू-शास्त्रोंके पढ़नेसे यह विदित होगा कि वैदिककालमें राजाको लोग निर्वाचित करते थे। अध्यापक मेकडानलने भी इस बातको माना है कि वैदिककालमें कुछ राजा निर्वाचन द्वारा नियत किये जाते थे और कुछ परम्परासे होते थे। इस बातका अथर्ववेदके तीसरे सूक्तमें स्पष्ट रूपसे वर्णन है और इसके संकेत ऋग्वेदमें भी पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त वैदिक साहित्यकी दृष्टिसे प्रजा राजाको स्थायी या अस्थायीरूपसे गद्दीसे उतार देनेका भी अधिकार रखती थी। हिन्दू-इतिहासमें इस प्रकारके पर्याप्त दृष्टान्त मिलते हैं जिनसे यह मालूम होता है कि प्रजाने इस अधिकारका प्रयोग बहुत बार किया। हिन्दुओंकी जो पुस्तकें राजनीतिक शास्त्रपर मिलती हैं उनसे भी इस विचारका समर्थन होता है।

राजा और प्रजाके बीच समझौताके द्वारा राज्यका आरम्भ।

महावंशमें एक कथा आती है। उसमें लिखा है कि जब लोगोंके अंदर व्यक्तिगत सम्पत्तिका या पारिवारिक स्वामित्वका भाव उत्पन्न हो गया, तब एक व्यक्तिने दूसरेके धन चुरा लिये। उस समय लोगोंने इकट्ठे होकर यह मन्त्रणा की कि इस कुप्रबन्धको दूर करनेके लिये अच्छा हो कि हम अपनेमेंसे कुछ शक्तिशाली, सुन्दर और योग्य पुरुषोंको अपना शासक नियत करें, ताकि वह दण्डनीतिसे लोगोंको पाप और अपराधसे अलग रख सकें। अतएव उन्होंने एक मनुष्यको ये अधिकार दिये और उसको अपने खेतोंका रक्षक बनाया। उसकी इन सेवाओंके बदलेमें उन्होंने उसको अपने खेतोंकी उपजका एक भाग देना स्वीकार किया। इस

व्यक्तिका नाम उन लोगोंने महा सामन्त रक्खा। उसको वे क्षत्रिय कहने लगे। महा सामन्तका अर्थ यह है कि इसको सबने स्वीकार किया है। वह क्षत्रिय इसलिये कहलाया कि वह उनके खेतोंकी रक्षा करता था। क्योंकि वह धर्म्मके अनुसार सबको चलाता था और आप भी धर्म्मात्मा था, इसलिये उसको राजा कहा गया। इस कथासे भी स्पष्ट विदित होता है कि राज्यका आरम्भ और पहले राजाओंकी नियुक्ति जनताकी स्वीकृतिसे हुई। राजा उसी समयतक राजा समझा जाता था जबतक कि वह धर्म्मके अनुसार अपने कर्त्तव्योंको पूरा करे। अधर्म्मका आचरण या कर्त्तव्यकी उपेक्षा करने, या पाप, व्यभिचार या दुराचारकी अवस्थामें लोगोंका धर्म्म न था कि वे राजाकी आज्ञाओंका पालन करें। वरन् उनको यह भी अधिकार था कि उसको स्थायी या अस्थायीरूपसे सिंहासनच्युत करके उसके स्थानमें नवीन राजा नियुक्त कर दें। बौद्धायन-सूत्रोंमें स्पष्टरूपसे वर्णित है कि राजा जातिका सेवक* है। उसका कर्त्तव्य है कि प्रजाकी रक्षा करे और बदलेमें उपजका १६ भाग वेतनके रूपमें प्राप्त करे। चाणक्य † कहता है कि चूंकि प्रजा राजाओंको वेतन देती है, इसलिये उनका कर्त्तव्य है कि वे राज्यका निरीक्षण करें। शुक्र-नीतिमें भी यही विचार प्रकट किया गया है कि ब्रह्माने राजाको अपनी प्रजाका सेवक बनाया है और उपजका एक अंश उसका वेतन नियत किया है। वह राजा केवल इसी कारणसे है कि अपनी प्रजाकी रक्षा करे। महाभारत और मनुस्मृति आदि

* बौद्धायन सूत्र प्रथम भाग अध्याय दस श्लोक पहला।

† अर्थशास्त्र द्वितीय अध्याय।

इन विचारोंमें हमको उन विचारोंके बीज दिखाई देते हैं जिनको फ्रांसीसी विद्वान् रोसोके नामसे पुकारा जाता है।

पुस्तकोंमें जहां जहां राजाको परमात्माका स्वरूप वर्णन किया गया है वहाँ राजासे तात्पर्य प्रत्येक ऐसी सत्तासे है जिसको प्रजा राज्य या शासन करनेके लिये निर्वाचित या नियत करे। इसका तात्पर्य यह नहीं कि जो व्यक्ति भी राजा हो, चाहे वह बे-ईमानीसे या बलात्कार राजा बन गया हो, या अपने आचरणकी दृष्टिसे दुराचारी, दुष्कर्मी और प्रजापीड़क हो तो भी वह परमात्माका स्वरूप होता है। इसी कारण जब ब्राह्मणोंके समयमें राज्यका अधिकार क्षत्रियोंको दिया गया तो क्षत्रियोंको भी परमात्माका स्वरूप बताया गया *।

मनुस्मृति कहती है कि जब अराजकताके कारण लोग मारे डरके चारों ओर बिखर गये तो ब्रह्माने संसारकी रक्षाके लिये राजाको उत्पन्न किया और निम्नलिखित सनातन मात्रायें प्रविष्ट कीं अर्थात् आगे लिखे देवताओंका अंश उसके अन्दर प्रविष्ट किया :—इन्द्र, अनल, यम, अर्क, अग्नि, वरुण, चन्द्र और कुबेर।

महाभारतके शान्तिपर्वमें यह भी कहा गया है कि राजा भिन्न भिन्न अवसरोंपर भिन्न भिन्न रूप धारण करता है। वह कभी अग्नि हो जाता है, कभी आदित्य, कभी मृत्यु, कभी वैश्रवण और कभी यम।

"राजा परमात्माका स्वरूप है," इसका यथार्थ अर्थ।

राजाओंको परमात्माका स्वरूप वर्णन करनेमें शास्त्रका प्रयोजन यह है कि उनके उच्च कर्त्तव्योंकी ओर सदा उनका ध्यान दिलाया जाये। कौसियों स्थलोंपर वेदोंमें, महाभारत और रामायणमें, सूत्रोंमें और नीति-शास्त्रोंमें इस बातका उल्लेख है कि यदि राजा अपने कर्त्तव्योंकी उपेक्षा करे

* देखो शतपथ ब्राह्मण।

तो वह इस बातका अधिकारी नहीं रहता कि लोग उसको राजा समझें और उसकी अधीनता स्वीकार करें। जिन अर्थोंमें यूरोपके राजा अपने आपको ईश्वरकी ओरसे नियुक्त किया हुआ समझते थे वे सिद्धान्त हिन्दू-शास्त्रोंने कभी स्वीकार नहीं किये। यूरोपके राजाओंने स्पष्टरूपसे यह प्रतिज्ञा की थी कि वे अपने पुण्य और पापके लिये किसी व्यक्तिके सामने उत्तरदाता नहीं हैं और उनके कर्म्मोंपर कोई व्यक्ति आपत्ति नहीं कर सकता। उदाहरणार्थ, इंग्लैंड-नरेश प्रथम जेम्सने सन् १६०३ ई० में प्रकट रूपसे यह कहा था कि जिस प्रकार यह किसीका अधिकार नहीं कि वह ईश्वरके अधिकारोंपर आपत्ति करे, और जिस प्रकार परमेश्वरको मानना नास्तिकता है, उसी प्रकार यह प्रश्न करना उचित नहीं कि राजा क्या कर सकता है और क्या नहीं कर सकता। यूरोपके अन्य राजाओंने भी भिन्न भिन्न समयोंमें इसी प्रकारकी प्रतिज्ञायें उपस्थित कीं, और इसके उत्तरमें फ्रांसके दार्शनिक रोसोने इस सिद्धान्तका प्रचार किया कि वास्तवमें राजाओंके अधिकार उस आभ्यन्तर प्रतिज्ञासे उत्पन्न होते हैं जो प्रत्येक राजा अपनी प्रजाके साथ करता है। उसकी सम्मतिमें राज्यका मूल प्रतिज्ञासे है। हिन्दू-शास्त्रमें किसी राजाको ऐसे अधिकार नहीं दिये गये जिनसे उसके लिये अत्याचार या पाप करना भी उचित हो। डाक्टर बन्दोपाध्यायके कथनानुसार भारतमें राजाका पद एक राजनीतिक पद था। राजा जातिका मुखिया समझा जाता था न कि देशका स्वामी। राज्यका अस्तित्व जनताके कल्याणके लिये था। राजा उस समयतक राज्यका अधिकारी या अफ़सर गिना जाता था जबतक कि वह उस कल्याणका ध्यान रखता था। वेदमें राजाको विशाम्पति अर्थात् जनताका रक्षक कहा गया है। महाभारतमें यह भी लिखा है कि जो राजा

रक्षा नहीं कर सकता उससे कुछ लाभ नहीं। यदि राजा अपने कर्त्तव्य-पालनमें त्रुटि दिखलाये तो दूसरा व्यक्ति, चाहे वह किसी जातिका क्यों न हो, राजपदको ग्रहण कर ले *।

राजाको गद्दीसे अलग कर देनेका अधिकार।

शुक्र-नीतिमें भी दूसरे अध्यायके श्लोक २३४ में यह कहा गया है कि यदि राजा आचार, धर्म्म, और शक्तिका शत्रु हो और स्वयं अधर्म्माचारी हो तो लोगोंको चाहिये कि उसे राज्यका नाश करनेवाला समझकर निकाल दें और राज्यकी रक्षाके लिये पुरोहितको चाहिये कि जनताकी स्वीकृतिसे उसके स्थानपर राजपरिवारके किसी दूसरे धर्म्मात्मा मनुष्यको गद्दीपर बिठला दे। डाक्टर वन्द्योपाध्याय अपनी पुस्तकके पृष्ठ ७१ में लिखते हैं कि हिन्दू-शास्त्रकार राजाको देवता नहीं समझते थे, वरन् उसे नर-देवता कहते थे। शुक्र-नीतिमें अधर्म्मी राजाको राक्षसके समान कहा गया है। उसमें तीन प्रकारके राजा बतलाये गये हैं—अर्थात् सात्विक, राजसिक, और तामसिक; और तामसिक और राजसिक राजाकी निन्दा करते हुए उनको नरकगामी कहा गया है।

राजा कानूनके अधीन था।

इसके अतिरिक्त, हिन्दू-शास्त्रोंमें इस बातका यथेष्ट प्रमाण मिलता है कि राजाके लिये भी कानून और शास्त्राज्ञाका पालन करना वैसा ही अनिवार्य्य था जैसा कि दूसरे मनुष्योंके लिये।

चीनी पर्यटक ह्यूनसाङ्गने राजा बिम्बिसारकी आगे दी हुई कथा लिखी है:—राजाने जब यह देखा कि राजधानीमें आग बहुत लगती है तो उसने आगसे अपने नगरको बचानेके लिये

* शान्तिपर्व अध्याय ७८, श्लोक ९६, और मनुस्मृति अध्याय ८, श्लोक १११—११२।

यह आज्ञा दी कि जिसके घरमें आग लग जायगी उसको 'वन-वास' दिया जायगा। दैवयोगसे एक बार राजभवनमें आग लग गई। राजाने अपने मन्त्रियोंसे कहा कि मुझे भी 'वनवास' होना चाहिये। अत. बिम्बिसार अपने पुत्रको राज्य सौंपकर वनको चला गया। इस कथासे प्रकट होता है कि कानूनकी पाबन्दीका भाव हिन्दू राजाओंके हृदयोंमें कैसा प्रबल था! मनुस्मृतिमें भी लिखा है कि राजाका यह धर्म है कि प्रात.काल उठकर ऐसे ब्राह्मणोंकी पूजा करे जो तीनों वेदों और राजनीतिमें निपुण हों और उनके परामर्शानुसार आचरण करे।

राजाके लिये प्रतिज्ञा। ऐतरेय ब्राह्मणने राजाके लिये आगे लिखी प्रतिज्ञा नियत की है। अर्थात् "यदि मैं तुमपर अत्याचार करूँ तो मैंने जो भी पुण्य कर्म अपने जीवन-में किया है उसका फल मुझे न मिले, और मेरा अगला जीवन और मेरी सन्तान भी मुझसे छिन जाय।" महाभारतमें भी राजाओंके लिये यह उपदेश है कि "वे मन, वाणी और कर्मसे यह प्रतिज्ञा करें कि वे सदा स्वदेशको अपने लिये ईश्वर-स्वरूप सम-झकर उसके कल्याणका ध्यान रक्खेंगे और सदा धर्मानुकूल आचरण करेंगे। वे उन नियमोंका पालन करेंगे जो धर्मशास्त्र और नीति शास्त्रने बनाये हैं। और वे स्वयं कभी स्वाधीन न होंगे।" शुक्र-नीतिके सिद्धान्तोंके अनुसार "जो राजा अपने मन्त्रि-योंके परामर्शपर नहीं चलता वह "दस्यु" है। उसने राजाका भेष धर लिया है। वह अपनी प्रजाके धनका चोर है। ऐसे राजाको उसके राज्यसे वञ्चित करके राज्यसे बाहर निकाल देना चाहिये।"

आरम्भमें राजाको कानून बनानेका अधिकार न था। इसी नियमके कारण हिन्दू शास्त्रोंके अनुसार राजाको कानून बनानेका कोई अधिकार न था। कानून बनाना या कानून-की व्याख्या करना विद्वानों और शास्त्रज्ञ

लोगोंका काम था। राजाका काम केवल यह था कि वह धर्म-शास्त्रके नियमोंके अनुसार प्रबन्ध कायम रखे, और देशकी रक्षा करे। महाभारतमें, ब्राह्मणोंमें, और नीति-शास्त्रोंमें अतीव विस्तारके साथ ये नियम वर्णित हैं जिनके अनुसार राजाओंको चलना चाहिये। उनके कर्त्तव्योंका भी सविस्तर वर्णन है।

ऊपर लिखे ब्योरोंसे ये परिणाम निकलते हैं :—

(१) वैदिककालमें प्रजा राजाको चुनती थी। यह चुनाव कभी कभी या कुछ अवस्थाओंमें किसी नियत अवधिके पश्चात् होता था। किसी राजाके वंशमें राज्य परम्परीण होते हुए भी प्रत्येक राजाके तिलकोत्सवपर प्रजाकी स्वीकृति आवश्यक समझी जाती थी। देशके कुछ भागोंमें चिरकालतक यह प्रथा रही कि प्रजा प्रतिवर्ष एक या दो व्यक्तियोंको राजा निर्वाचित करती थी। कुछ स्थानोंमें दो राजा इसलिये चुने जाते थे कि एक सेनाधिकारी बनकर बाह्यरक्षाका जिम्मेदार हो और दूसरा भीतरी प्रबन्ध करे। देशके कुछ भागोंमें बहुतसे मनुष्योंको निर्वाचित करके सबको राजा कहा जाता था।

(२) राजा प्रजाका सेवक और रक्षक समझा जाता था। जो राजा अपने कर्त्तव्योंकी उपेक्षा करता था उसको राज्यसे वञ्चित कर दिया जाता था और उसके स्थानमें नवीन राजा निर्वाचित किया जाता था।

(३) राजापर कानूनका पालन ऐसा ही अनिवार्य्य था जैसा कि दूसरे लोगोंपर।

(४) सामान्यतः राजा क़ानून नहीं बनाता था। हाँ, राज्य-के प्रबन्धके लिये आज्ञायें जारी करता था। उनका पालन प्रजा-का कर्त्तव्य था।

(५) राजासे हिन्दू-शास्त्रोंका तात्पर्य प्रत्येक ऐसी शक्तिसे

है जिसके सिपुर्द देशका प्रबन्ध हो। इसमें वे समस्त समितियां मिली हुई थीं जो लोकतन्त्र प्रान्तोंमें राज्यका कार-बार किया करती थीं। हिन्दू-इतिहासमें ऐसे दृष्टान्त बहुत मिलते हैं जहाँ भिन्न भिन्न प्रदेशोंमें कोई राजा न था और शासनकी बागडोर निर्वाचित समितियों, पञ्चायतों, विद्वानों और रईसोंके हाथमें थी। गवर्नमेण्टके सम्बन्धमें जो उपदेश हिन्दू शास्त्रोंमें लिखे हैं वे उन सब प्रकारकी शासक-मण्डलियोंपर लागू थे। सारांश यह कि राजासे तात्पर्य शासन अर्थात् गवर्नमेण्टसे था न कि केवल उस व्यक्तिसे जो किसी विशेष समयमें किसी विशेष प्रदेशका राजा या शासक हो।

राजसभाओंका वर्णन ।

हिन्दू-इतिहाससे मालूम होता है कि सिकन्दरके समयमें भी भारतके बहुतसे भाग ऐसे थे जिनमें कोई भी राजा राज्य न करता था और जहां किसी न किसी रूपमें राजसभायें राज्य करती थीं। वैदिक साहित्यमें इस बातके पर्याप्त प्रमाण मौजूद हैं। महाभारतमें भी ऐसे राज्योंका उल्लेख है जिनमें कोई एक व्यक्ति राजा न था। ईसाकी पांचवीं शताब्दीतक भारतके भिन्न भिन्न भागोंमें थोड़े बहुत ऐसे राज्य रहे। ये राजसभायें भिन्न भिन्न प्रकारकी थीं।

सिकन्दरके आक्रमणके समय पञ्जाबके बहुतसे राज्य लोकतन्त्र नियमोंपर प्रतिष्ठित थे। उदाहरणार्थ इतिहासमें लिखा है कि मेलोई (मालव) जातिने जब सिकन्दरकी अधीनता स्वीकार की तो उन्होंने सिकन्दरसे यह कहा कि "हमारी जाति स्वाधीन और स्वतन्त्र है और हम सदासे स्वतन्त्र रहे हैं।" इसी प्रकार जब सिकन्दरने विसा नगरको विजय किया तो उस

समय उस नगरमें प्राचीन यूनानी नगरोंकी शैलीपर तीन सौ मनुष्योंकी एक सभा शासन करती थी। सिकन्दरने नगरवालोंसे प्रार्थना की कि इन तीन सौमेंसे एक सौ उसके सिपुर्द कर दिये जायँ। इसके उत्तरमें नगरवालोंने कहा—"राजन्! यदि नगरके सौ विद्वान चले जायँगे तो हम किस प्रकार अपने नगरका सुप्रबन्ध करेंगे।"

हम किसी दूसरे स्थलपर लिख चुके हैं कि बुद्धके समयमें भारतमें तीन प्रकारके राज्य थे—(१) व्यक्तिगत राजाओंके (२) परिमित निर्वाचित जनसमूहोंके जिनको अंगरेजीमें ओलीगार्की (अल्पजन-सत्ताक राज्य) कहा जाता है, (३) प्रजातन्त्र।

प्रजातन्त्र राज्यमें ऐसा प्रतीत होता है कि जातिके सारे स्तम्भ सम्मिलित होकर एक जन-समूहके द्वारा अपना कारोबार करते थे। इस जन-समूहको समिति कहा जाता है। इसी प्रकार बौद्धों और हिन्दुओंके साहित्यमें कई ऐसे दृष्टान्त मिलते हैं जहां युद्ध और शान्तिके समस्त विषयोंपर सामान्य समितिमें विचार होता था और राज्यकी परराष्ट्र-नीतिका निश्चय सब लोगोंके सामने किया जाता था। अध्यापक रिसडेविड्सने अपनी पुस्तक "बुधिस्ट इण्डिया" में इस प्रकारके दृष्टान्त दिये हैं। यह बात प्रकट है कि इस प्रकारका लोकतन्त्र राज्य केवल छोटे छोटे प्रदेशोंमें ही हो सकता था।। ये उसी प्रकारके लोकतन्त्र राज्य थे जैसे कि प्राचीन रोम और प्राचीन यूनानमें पाये जाते थे। इन राज्योंमें ये सामान्य सभायें प्रतिनिधियोंकी विशेष संख्या जातिकी वृहद् सभामें निर्वाचित करती थीं। ये प्रतिनिधि साधारण राज्य-प्रबन्ध करते थे। परन्तु सभी महत्वके प्रश्न साधारण सभामें प्रस्तावित होते थे। जब ये लोकतन्त्र राज्य किसी कारणसे राजाको चुननेकी इच्छा

करते थे तब वह राजा भी इन सभाओंमें ही निर्वाचित हुआ करता था। दूसरे प्रकारके राज्य वे थे जिनमें ये साधारण सभायें अपनेमेंसे एक विशेष संख्याको मनोनीत करके राज्यके यावतीय विषयोंको उनके सिपुर्द कर देती थीं।

इस बातका कोई पता नहीं चलता कि निर्वाचनका ढंग क्या था। लिखित मत-प्रदानका कोई उल्लेख पुस्तकोंमें नहीं मिलता। और यह सम्भव है कि सहमत न होनेकी अवस्थामें पांसा फेंककर निर्णय किया जाता हो। कुछ भी हो इस विषय-पर सम्मति प्रकट करनेके लिये अभीतक कोई सामग्री मालूम नहीं हुई।

एकतंत्र शासनमें राजसभायें।

एकतन्त्र राज्यमें भी कई प्रकारकी सभायें होती थीं। सामान्यतः शास्त्रोंमें तीन प्रकारकी सभाओंका उल्लेख किया गया है—अर्थात् राजसभा, विद्यासभा और धर्म्मसभा। परन्तु इनके अतिरिक्त भी और अनेक प्रकारकी सभायें नियुक्त की जाती थीं। उदाहरणार्थ मन्त्रि-परिषद् जो आधुनिक प्रिवी कौंसिलके स्थानमें थी, अथवा न्याय-सभायें जहां अभियोगोंका निर्णय किया जाता था, अथवा श्रेणी-सभायें जहां कला-कौशल और व्यापारके विषयोंका निपटारा होता था, अथवा वे कमेटियां जो भिन्न भिन्न विभागोंके प्रबन्धके लिये राज्यकी ओरसे नियत होती थीं। इन बड़ी बड़ी सभाओंके अतिरिक्त अनेक प्रकारकी उपसभायें भी होती थीं।

राजसभा।

राज्य-महासभाका अधिवेशन प्रतिदिन होता था। इसमें लोगोंकी शिकायतें सुनी जाती थीं। इसी सभाके सामने अधीनस्थ अदालतोंके निर्णयोंके विरुद्ध अभियोगोंकी अपीलें भी सुनी जाती थीं। इस सभाके

सदस्योंमें राजकुमार, मन्त्री, सेनापति, विभागोंके उच्च पदाधिकारी, करद रईस, धनी-मानी और ऐसे लोग सम्मिलित होते थे जिनको विशेषरूपसे बुलाया जाता था।* शुक्र-नीतिसे ऐसा प्रतीत होता है कि सभा-मन्दिरमें प्रत्येक सदस्यके लिये स्थान नियत होता था [देखो अध्याय १ श्लोक ३५३]। कार्यवाही-को सुचारुरूपसे सम्पादन करनेके लिये उन समस्त नियमोंपर आचरण होता था जिनका उपयोग आजकल पार्लिमेण्टमें होता है। किसी सदस्यको असभ्य भाषामें बात करने या किसी दूसरे सदस्यपर कटाक्ष करने या उसपर किसी अनुचित संकल्पका दोषारोप करने या कोई ऐसी बात कहनेकी आज्ञा न होती थी जिसका कि उसे पूर्णरूपसे ज्ञान न हो। सभाके अधिवेशनके समयमें सदस्योंको आपसमें बातचीत करनेका निषेध था। कोई भी व्यक्ति प्रधानकी आज्ञाके बिना न बोल सकता था। इन अधिवेशनोंमें प्रायः राजा स्वयं प्रधान होते थे। चाणक्यके अर्थ-शास्त्र और शुक्रनीतिमें अधिवेशनोंकी कार्यवाहीका सविस्तर वर्णन है।

मन्त्रि-परिषद्। मन्त्रि-परिषद् मन्त्रियोंकी कौंसिलका नाम था। इसके सदस्योंकी संख्या भिन्न भिन्न सूत्रकारोंने भिन्न भिन्न लिखी है। बृहस्पति-शाखाके सूत्रकार लिखते हैं कि मन्त्रि-परिषद्के सभासद सोलह होने चाहिये। औशनस-शाखावाले उनकी संख्या बीस नियत करते हैं। मनुस्मृतिमें बारहपर बस कर दी गई है। चाणक्यने कोई विशेष संख्या नियत नहीं की, परन्तु यह सम्मति प्रकट की है कि संख्या पर्याप्त होनी चाहिये। अबुलफजलने भी अपनी पुस्तक आईने-अकबरी-

* देखो शुक्रनीति अध्याय १ श्लोक ३५२ और याज्ञवल्क्य अध्याय १४ विष्णुस्मृति अध्याय ३।

में स्थान स्थानपर हिन्दुओंके नीति-शास्त्रोंका प्रमाण दिया है। राज्यके समस्त महत्वपूर्ण विषयोंका निश्चय इस परिषद्में होता था। राजाकी अनुपस्थितिमें महामन्त्री प्रधान होता था और मतभेद होनेकी अवस्थामें बहुमतसे निर्णय किया जाता था। यही परिषद् कभी अपने अधिकारोंसे और कभी सर्वसाधारणकी स्वीकृतिसे राजाओंके गद्दीपर बैठनेके सम्बन्धमें निश्चय और नवीन राजाका निर्वाचन करती थी।

मंत्री।

हिन्दु-शास्त्रोंमें मन्त्रियोंके निर्वाचनके सम्बन्धमें बहुत विस्तारपूर्वक उपदेश दिये गये हैं। अधिक जोर इस बातपर दिया गया है कि निर्वाचित व्यक्ति बहुत शुद्धाचारी और पुण्य-प्रकृतिवाले होने चाहिये। अर्थ-शास्त्रका आगे लिखा उद्धरण नमूनास्वरूप उपस्थित किया जाता है :—

"मन्त्री वह होना चाहिये जो देशका रहनेवाला हो, कुलीन हो, प्रतिपत्तिवाला हो, कला और साहित्यमें निपुण हो, बुद्धिमान और समझदार हो, अच्छी स्मरणशक्ति रखता हो, योग्य हो, वाग्मी हो, सूक्ष्मदर्शी हो, सहनशील हो, ठाट-बाटवाला हो, पवित्र आचरणवाला हो, राजभक्त हो, बलवान, नीरोग, और साहसी हो, जो अधीर और विक्रमहीन न हो, जिसके स्वभावमें प्रेम हो और जो अनर्थसे रहित हो।"

यह स्पष्ट है कि यह बहुत उत्तम और अत्युच्च आदर्श है। केवल पूर्ण मनुष्योंमें ही इस प्रकारके गुण मिल सकते हैं। विष्णु-सूत्रोंका प्रमाण देते हुए अर्थ शास्त्रका रचयिता यह भी लिखता है कि ऐसे व्यक्तियोंको मंत्री नियुक्त करना चाहिये जो अकुटिल हों, लोभी न हों, योग्य हों और सावधान हों। इसी प्रकार महा-

भारत और अन्य शास्त्रोंमें भी मंत्रीका निर्वाचन करनेके लिये सविस्तर उपदेश दिये गये हैं। ये उसी प्रकारके सद्गुण हैं जो यूनानके तत्त्ववेत्ता अफलातूनने अपनी "रीपब्लिक" नामकी पुस्तकमें वर्णन किये हैं और अरस्तूने अपनी राजनीतिमें लिखे हैं। यूनानी दूत मगस्थनीज़ चन्द्रगुप्तके राजत्वकालके विषयमें लिखता है कि "मंत्रियोंका निर्वाचन सामान्यतः ब्राह्मण विद्वानोंमेंसे किया जाता है।" वह लिखता है कि "संख्याकी दृष्टिसे यह जन-समाज बहुत परिमित है, परन्तु उच्चकोटिकी बुद्धिमत्ता और न्यायके गुणसे अलंकृत है। इसीलिये उसको यह अधिकार है कि वह गवर्नर, प्रान्तोंके उच्च पदाधिकारी, डिपुटी गवर्नर, कोषाध्यक्ष, स्थल सेनापति, सागर-सेनापति, कंट्रोलर और कमिश्नरोंकी नियुक्ति करे।"

मंत्री कितने होने चाहिये, इसपर भी बहुत कुछ विचार किया गया है, चाणक्यकी सम्मतिमें मंत्री केवल तीन या चार होने चाहिये। मनुस्मृतिमें सात या आठकी संख्या नियत की गई है। नीति-वाक्यमृतमें तीन, या पांच या सातकी संख्या लिखी है। शुक्र-नीतिमें दस उच्च मंत्री इस प्रकार वर्णित हैं:—

(पहला) पुरोहित, (दूसरा) प्रतिनिधि, (तीसरा) प्रधान, (चौथा) सचिव, (पांचवां) मंत्री, (छठवां) प्राड्विवाक अर्थात् चीफ़ जज, (सातवां) पण्डित अर्थात् कानूनी मंत्री, (आठवां) सुमन्त्रक अर्थात् युद्ध-मन्त्री, (नवां) आमात्य अर्थात् स्टेट सेक्रेटरी, (दसवां) दूत।

मिलिन्द न्याय (पट्टो) में राज्यके छः उच्च पदाधिकारियोंका उल्लेख है। उनमेंसे प्रधान अर्थात् महामन्त्री सबसे उच्च कोटिका गिना जाता था। परन्तु पुरोहित भी अत्युच्च स्थान रखता था। चाणक्यने राजाका यह कर्त्तव्य ठहराया है कि वह पुरोहितकी

आज्ञाओंका उसी प्रकार पालन करे जैसे पुत्र पिताकी या सेवक स्वामीकी आज्ञा मानता है। नीति-वाक्यामृतमें प्रधानको राजाका पिता और पुरोहितको उसकी माता कहा गया है। इन मन्त्रियोंके अतिरिक्त अर्थ-सचिव और कोषाध्यक्षका भी बहुत उच्च स्थान था। अर्थ-शास्त्रमें इन उच्च कोटिके अधिकारियोंको महामात्र कहा गया है। अर्थसचिव या कलक्टर जनरलका काम यह था कि वह नगदी, बहुमूल्य पत्थरों, सोना-चांदी और अन्य आभूषणोंकी रक्षा करे और राज्य-सम्पत्ति या राजकीय कोषमें किसी प्रकारका गोलमाल या ग़बन न होने दे। युद्ध और शान्तिके मन्त्रीका काम था कि वह दूसरे राष्ट्रोंसे पत्र-व्यवहार करके परराष्ट्र-नीतिका निरीक्षण करे। हिन्दू-शास्त्रोंमें सेनाके अधिकारियोंको मन्त्री बनानेका निषेध है। पर कुछ शास्त्रोंमें सेनापतिको इस बंधनसे अपवाद स्वरूप रक्खा गया है। शुक्र-नीति और नीति-वाक्यामृतमें उसका नाम मंत्रियोंकी सूचीसे बाहर रक्खा गया है। कभी कभी एक पृथक मन्त्री राजकीय मुद्राके अध्यक्षके रूपमें नियत किया जाता था। इस कारणसे उसका पद बड़े गौरव और महत्वका समझा जाता था।

प्रत्येक मंत्री अपने अपने विभागका ज़िम्मेदार था, और सारे मंत्री मिलकर सम्मिलित रूपसे राज्यके प्रबंधके उत्तरदाता थे। चाणक्य मंत्री-परिषद्में और मंत्रिमण्डलमें, जिसको आज-कल केबिनट कहते हैं, भेद करता है, अर्थात् इन दोनों सभाओंको पृथक् पृथक् बताता है।

मंत्रियोंका उत्तरदायित्व। मंत्री अपने अपने कर्त्तव्योंको पूरा करनेके लिये न केवल राजाके सामने वरन् *जनताके सामने भी उत्तरदाता समझे जाते थे।* हिन्दू-इतिहासमें अनेक ऐसी घटनायें आती हैं कि मंत्रियोंने राजाको

आज्ञा नहीं मानी और यह कहकर टाल दिया कि वह आज्ञा राज्य या प्रजाके लाभके लिये न थी। कई स्थानोंपर यह लेख मिलता है कि राजाकी भूलकी जवाबदेही मंत्रीपर है। ह्यूनसाङ्ग लिखता है कि सरस्वती (?) के राजा विक्रमादित्यने आज्ञा दी कि उसके कोषसे पांच लाख स्वर्ण-मुद्रायें दरिद्रों और दीनोंको प्रतिदिन बांटी जायँ। इसपर कोषाध्यक्षने राजासे यह कहा कि "ऐसा करनेसे आपका कोष रिक्त हो जायगा और नये कर लगाने पड़ेंगे जिससे प्रजामें असन्तोष फैलेगा। आपके दानकी तो लोग प्रशंसा करेंगे परन्तु मेरा अपमान होगा।" इसी प्रकार अशोकके मंत्रीके सम्बन्धमें एक कहानी है। राज्यवर्धनकी हत्या हो चुकनेके पश्चात् उसके मंत्रियोंने स्वीकार किया कि उसकी हत्याका उत्तरदायित्व उनकी गर्दनपर है क्योंकि उन्होंने राजाको शत्रुके शिविरमें जानेसे न रोका।

महामंत्रीका स्थान। महामंत्रीका स्थान राजासे उतरकर सबसे ऊंचा गिना जाता था। वरन् भरद्वाज तो राजाकी तुलनामें भी महामंत्रीको अधिक उच्च स्थान देता है। चन्द्रगुप्त प्रतिदिन सवेरे उठकर अपने महामंत्री चाणक्यके पैर छूता था। संस्कृत-साहित्यमें इस बातके पर्याप्त प्रमाण मिलते हैं कि मंत्री प्रायः बहुत सादा जीवन व्यतीत करते थे। चाणक्यने लिखा है कि किसी मंत्रीको विलासिताका जीवन नहीं व्यतीत करना चाहिये। मुद्राराक्षसमें चाणक्यके विषयमें लिखा है कि वह स्वयं एक पुराने गिरे हुए झोंपड़ेमें रहता था। भारतके इतिहासमें असंख्य ऐसे उदाहरण हैं जहां महामंत्रियोंने अपने कर्त्तव्योंका पालन करनेमें अतीव जोखिमके काम किये। परन्तु इससे यह आवश्यक नहीं ठहरता कि प्राचीन कालमें सब ही मन्त्री, सब ही राजकर्मचारी ऐसे ही भद्र, शुद्ध, पवित्र और ईमानदार होते थे।

अधीनस्थ विभाग।

चाणक्यने प्रबंध-सम्बन्धी विभागोंके अठारह प्रकारोंका वर्णन किया है। परन्तु ब्योरा देते हुए तीस विभागोंका उल्लेख किया है। इनमेंसे सबसे आवश्यक विभाग परिगणनका विभाग था। इसमें कर्मचारियोंकी एक भारी संख्या होती थी। वे नियमपूर्वक सारे राज्यका लेखा रखते थे और आय तथा व्ययकी पूरी पड़ताल करते थे। अर्थ-शास्त्रमें यह लिखा है कि आसाढ़ मासमें नियमपूर्वक प्रत्येक विभागके केन्द्र स्थानमें हिसाब पहुंच जाते थे। असावधानी होनेपर ज़िम्मेदार अफसरको अर्थदण्ड देना पड़ता था।

दूसरा विभाग कोषका था। इसके अधीन प्रत्येक प्रकारकी नगदी, सोना-चांदी, बहुमूल्य पत्थर, हीरे-रत्न, मोती और प्रत्येक प्रकारकी सरकारी सम्पत्ति और भाण्डार थे। अर्थशास्त्र और अन्य पुस्तकोंमें सब रत्नोंके भिन्न भिन्न प्रकारोंका वर्णन है।

तीसरा विभाग खानोंका था। इसके सिपुर्द खानोंको मालूम करने, उनको खुदवाने, और उनमेंसे निकले हुए पत्थर और रत्न आदिको बेचनेका काम था।

चौथा विभाग खनिज पदार्थोंका था।

पांचवां विभाग टकसालका था। इसके सिपुर्द सिक्कोंको बनाने और चलानेका काम था।

छठा विभाग वाणिज्यका था। यह व्यापारके सम्बन्धमें प्रत्येक प्रकारकी जानकारी इकट्ठी करता और जनता तथा व्यापारियोंको देता था। इस विभागका काम था कि भीतरी और बाहरी मण्डियोंके समाचारोंका ज्ञान रखे और व्यापारकी वस्तुओंके मूल्यकी देख-रेख करता रहे।

सातवां विभाग जङ्गलोंका था। इसके सिपुर्द वनोंका

लगाना, उनको सुरक्षित रखना, उनकी उपजका संग्रह करना और उनकी आय इकट्ठा करना आदि था।

आठवाँ विभाग शस्त्रास्त्रोंका था। इसके सिपुर्द प्रत्येक प्रकारके युद्ध-शस्त्रोंका बनाना, इकट्ठा करना, पहुंचाना, हिसाब रखना, और मरम्मत करना आदि था दुर्गोंका निर्माण और रक्षा भी इसीके सिपुर्द था।

नवां विभाग तौल और मापके यन्त्रोंका था। अर्थ-शास्त्रमें यह वर्णित है कि बाट लोहेके या पत्थरके या किसी ऐसी चीज़के होते थे जिसपर गरमी सरदीका कुछ प्रभाव न हो।

दसवां विभाग मापका था।

ग्यारहवां विभाग चुङ्गीका था।

बारहवां विभाग जहाजोंका था।

तेरहवां विभाग सिंचाईका था।

चौदहवां विभाग कृषिका था।

पन्द्रहवां विभाग कपड़े बुननेका था।

सोलहवां विभाग अस्तबलका था। इसी विभागके सिपुर्द यह काम था कि वह हाथी-घोड़ोंके अतिरिक्त दूध देनेवाले पशुओंकी संख्या और वंशका भी ध्यान रक्खे।

सत्रहवां विभाग गाड़ियोंका था। गाड़ियां सैनिक प्रयोजनोंके लिये भी काममें लाई जाती थीं।

अठारहवां विभाग अनुज्ञापत्र अर्थात् पासपोर्टका था।

ऐसे ही और बहुतसे विभाग थे। उदाहरणार्थ, एक आबकारी विभाग था, एक दान-पुण्यका विभाग था, और एक धार्म्मिक संस्थाओंके निरीक्षणका विभाग था। इन फुटकर विभागोंमेंसे सबसे आवश्यक विभाग पुलिसका था। इस विभागका काम दो प्रकारका था—अपराधोंको रोकना और अपराधियोंको

दण्ड दिलाना। गौतम-सूत्रोंमें यह लिखा है कि यदि किसीका चुराया हुआ माल पकड़ा न जाय तो राजाका कर्त्तव्य है कि उसका मूल्य अपने कोषसे दे दे। अग्निपुराणमें भी ऐसी ही आज्ञा है। सम्भवतः यही कारण है कि मगस्थनीज़के दौत्य कालमें और चीनी पर्यटकोंके समयमें इस देशमें सामान्यतः चोरी बहुत कम थी। अधिक सम्भव है कि इसी कारणसे कई बार चोरीके लिये कठोर दण्ड दिये जाते थे। पुलिसके साथ मिलता-जुलता एक दूसरा विभाग था। इसको भेदिया विभाग कहते हैं। इसके लिये आजकल सी० आई० डी०का शब्द प्रयुक्त होता है। चाणक्य लिखता है कि इस विभागके लिये अत्यन्त निष्कपट और विश्वास्य अधिकारी चुने जाने चाहिये। जानकारीका संग्रह करनेके लिये साधन भिन्न भिन्न होने चाहिये, ताकि एक अधिकारी जो सूचना दे उसकी सही दूसरे साधनोंसे हो सके। मगस्थनीज सिद्ध करता है कि इस विभागमें अत्यन्त योग्य और अत्यन्त विश्वासपात्र मनुष्य नियुक्त किये जाते थे। चाणक्य-नीति और शुक्र-नीतिके रचयिता लिखते हैं कि प्रत्येक विभागका प्रबंध समितियोंके सिपुर्द होना चाहिये। तदनुसार चन्द्रगुप्तके समयमें इन सभी विभागोंकी निरीक्षक समितियां थीं। राज-कर्मचारियोंके चुनावके सम्बन्धमें योग्यताके अतिरिक्त ईमानदारी और चाल-चलनका बहुत लिहाज़ किया जाता था। केवल परीक्षा पास कर लेनेपर अफसर नहीं रक्खे जाते थे। इस प्रकार इसी विचारसे चाणक्यने जो वेतनोंका मान (स्केल) बताया है वह ऐसा है जिससे किसी व्यक्तिको घूस लेनेकी आवश्यकता न होती थी।

चाणक्यने वेतनोंका मान यह लिखा है:—

(१) गुरु, पुरोहित, राजाध्यापक, महामन्त्री, सेनापति, युवराज, राज-माता और महारानी :—

अड़तालीस सहस्र पण वार्षिक।

(२) नगरके द्वारों और राज-सदनका अध्यक्ष, पुलिसका उच्चाधिकारी, कलक्टर जनरल और कोषाध्यक्ष जनरल :—

चौबीस सहस्र पण वार्षिक।

(३) दूसरे राजकुमार और राजकुमारोंकी मातायें, विभागोंके उच्चपदाधिकारी, कौंसिलके सदस्य, पुलिसके बड़े अफ़सर, हदबंदीके उच्चपदाधिकारी :—

बारह सहस्र पण वार्षिक।

(४) कारपोरेशनोंके अफ़सर, हाथियों और घोड़ोंके अध्यक्ष और निरीक्षक :—

आठ सहस्र पण वार्षिक।

(५) पलटन, अश्वारोही सेना तथा गाड़ियोंके अधिष्ठाता, और वनोंके अफ़सर :—

चार सहस्र पण वार्षिक

इत्यादि इत्यादि। एक विशेष कालके पश्चात् राजकर्म्मचारियोंको वृत्ति (पेंशन)मिल सकती थी। जब कोई कर्मचारी सरकारी नौकरीमें मर जाता था तो उसके परिवारका पालन-पोषण राजकीय कोषसे होता था।

कानूनोंका बनाना।

हम ऊपर कह आये हैं कि हिन्दू-कालमें प्रायः राज्यको कानून बनानेका अधिकार न था। हिन्दू-इतिहासमें ऐसे उदाहरण बहुत कम होंगे जहां किसी राज्यने दाय, दत्तकपुत्र बनाने, विवाह और अन्य ऐसे ही विषयोंके सम्बन्धमें कोई कानून बनाये हों।

धर्म्म-शास्त्रसे सम्बन्ध रखनेवाले सभी कानूनोंका आदि-मूल वेद और स्मृतियां हैं। गोतम ऋषि अपनी पुस्तकमें लिखते

हैं कि "वेद, स्मृति, और वेदके जाननेवाले पुरुषोंका आचार,' यही कानूनके मूल स्रोत हैं।" वे इसके अतिरिक्त यह भी लिखते हैं कि न्यायके लिये वेदान्त, पुराण, देशाचार, और ऐसे कुल-धर्म और जाति धर्म जो वेद विरुद्ध न हों, किसानों, व्यापारियों, गडेरियों, साहूकारों और शिल्पियोंकी प्रथायें मान्य हैं। मनुस्मृतिमें भी कानूनके चार ही आधार बतलाये गये हैं, अर्थात् वेद, स्मृति, प्रथा, और अपने अन्तरात्माकी आज्ञा। याज्ञवल्क्य स्मृतिमें इन चार आधारोंके अतिरिक्त दस आधार और निकाले गये हैं।

स्वयं वेदोंमें कुछ अधिक कानूनी सामग्री नहीं है। स्मृतियोंमें बहुत है। उन्हींके आधारपर हिन्दुओंका कानूनी भवन निर्मित हुआ है। आरम्भमें ये सब नियम सूत्रोंके रूपमें वर्णित किये गये थे। ये सूत्र बहुत सम्भव है कि विक्रमी संवत्के एक सहस्र या पन्द्रह सौ वर्ष पहले प्रचलित थे। इन सूत्रोंके सहारेपर धर्म-शास्त्र बनाये गये और इन धर्म-शास्त्रोंपर फिर कभी कभी भिन्न भिन्न विद्वान अपनी टीकायें और व्याख्यायें लिखते रहे। याज्ञवल्क्य धर्म शास्त्रमें निम्नलिखित स्मृतियोंका उल्लेख है.—मनु, अत्रि, विष्णु, हारीत, याज्ञवल्क्य, औशनस, अङ्गिरस, यम, आपस्तम्ब, सम्वर्त, कात्यायन, बृहस्पति, पराशर, व्यास, शंख, लिखित, दक्ष, गौतम, शातातप और वसिष्ठ। इनके अतिरिक्त और भी धर्म-शास्त्र हैं जिनका इसमें नाम नहीं। इनमें सबसे प्रसिद्ध नारद है। इसके पश्चात् पौराणिक कालमें वे पुस्तकें सकलित हुई जिनको आजकल मिताक्षरा और दायभाग आदि नामोंसे पुकारा जाता है। हिन्दुओंकी सभ्यतामें प्रचलित रीति नीतियोंको बहुत उच्च कानूनी स्थान दिया गया है। और यह भी वर्णन किया गया है कि किसी देश या प्रान्तको विजय करके उसके

प्रचलित कानूनों और रीति-नीतिको नष्ट नहीं करना चाहिये। शास्त्रोंमें इस बातका प्रबंध किया है कि यदि किसी बातमें तत्सम्बन्धी कानूनके विषयमें सन्देह हो तो पण्डितोंसे व्यवस्था लेनी चाहिये। गौतम-शास्त्रमें इस प्रयोजनके लिये दस पंडितोंकी परिषद् नियुक्त करनेकी आज्ञा है। बौद्धायन ऋषिने भी ऐसा ही नियम बतलाया है। डाकृर बंद्योपाध्यायकी सम्मतिमें यह परिषद् एक प्रकारसे कानून बनानेवाली सभाका काम देती थी। परन्तु कानूनका बनाना इसका वास्तविक काम न था। यह केवल कानूनकी व्याख्या करनेके लिये थी। वसिष्ठने एक स्थानपर लिखा है कि यदि सहस्र ब्राह्मण ऐसे इकट्ठे हो जायं जो धर्मात्मा नहीं हैं और जिन्होंने अपने कर्त्तव्योंको पूरा नहीं किया, और जिनको वेदोंका ज्ञान नहीं, तो वे धर्मतः कानूनकी व्याख्या नहीं कर सकते। इसके विपरीत पांच या तीन, वरन् एक भी सच्चा ब्राह्मण, जो निर्दोष हो, व्यवस्था दे सकता है।

राजकीय कानून।

फिर भी यह बात प्रकट है कि हिन्दू राजा प्रबन्ध-सम्बन्धी बातोंके विषयमें आज्ञायें निकालते थे और अदालती अर्थात् जुडीशल रूपसे कानूनोंकी व्याख्या भी करते थे।

अदालती अमलदारी।

वैदिक साहित्यमें दीवानी और फौजदारी अदालतोंका उल्लेख नहीं है। इससे यह प्रतीत होता है कि अदालती कारोबार प्रायः वंशों और बिरादरियोंकी पञ्चायतोंमें होता था। परन्तु सूत्रोंके कालमें नियमबद्ध अदालतोंका वर्णन है। हिन्दू-इतिहासको पढ़कर सामान्यतः यह प्रतीत होता है कि बहुतसा अदालती काम ग्राम्य पञ्चायतोंमें और बिरादरियों, वंशव्यवसायों और शिल्पोंकी समितियोंमें हो जाता था। केवल घोर अपराध या

ऐसे अभियोग राज्यकी अदालतोंके लिये बाकी रह जाते थे, जो भिन्न भिन्न ग्रामों या भिन्न भिन्न उपनगरों या भिन्न भिन्न व्यवसायियोंके बीच हों। बृहस्पतिके कथनानुसार चार प्रकारकी न्याय-सभायें थीं।

(१) स्थानीय।

(२) अ-स्थानीय, जिनमें जङ्गम या दौरा करनेवाली अदालतें भी सम्मिलित थीं।

(३) वे जिनके पास राजाकी छाप रहती थी।

(४) वे जिनमें राजा स्वयं प्रधान होता था।

सबसे बड़ी अदालत वह थी जिसका प्रधान राजा होता था। इसे आजकलकी विलायतकी प्रिवी कौंसिल समझिये।

दूसरे दर्जेकी अदालतें वे थीं जिनमें राजाकी ओरसे नियुक्त किया हुआ चीफ जज या अध्यक्ष या सभापति होता था। ये सब अदालतें ऐसी थीं जिनमें एकसे अधिक जज होते थे। मनुस्मृतिमें एक अदालतके लिये तीन जज और एक चीफ जज नियत किये गये हैं। चाणक्यके अर्थ-शास्त्रमें छः जजोंका होना आवश्यक बतलाया गया है, जिनमेंसे तीन राजकर्मचारी हों और तीन गैर-सरकारी विद्वान हों। बृहस्पतिके शास्त्रमें यह भी लिखा है कि अध्यक्ष अर्थात् चीफ जस्टिसको चाहिये कि तीन सदस्योंकी सहायतासे अभियोगोंका निर्णय किया करे। शुक्रनीतिमें लिखा है कि राजाको कभी अकेले अदालतका काम नहीं करना चाहिये और अदालतके लिये तीन या पांच या सात जजोंका होना आवश्यक बताया गया है।

किस प्रकारके मनुष्य जज बनाये जायं।

जजोंके निर्वाचन या नियुक्तिके विषयमें हिन्दू-शास्त्रोंमें उसी प्रकारके नियम मौजूद हैं जैसे कि मन्त्रियोंके

विषयमें हैं। उदाहरणार्थ याज्ञवल्क्य ऋषि लिखते हैं कि राजाको ऐसे जज नियुक्त करने चाहिये जो वेदों तथा अन्य विद्याओंके पूर्ण पण्डित हों, जो धर्म्म-शास्त्रके ज्ञाता हों, जो सत्यवादी हों, और जो शत्रु और मित्रका भेद न रक्खें। इस प्रकारके आदेश बृहस्पति और शुक्रनीतिमें भी मौजूद हैं। नारदकी स्मृतिमें भी सविस्तर उपदेश दिये गये हैं। न्याय-सभाओंके सदस्य प्रायः ब्राह्मण होते थे परन्तु उनमेंसे कुछ दूसरे वर्णोंमेंसे भी लिये जाते थे। ऊंची अदालतें नीची अदालतोंके निर्णयोंकी अपील भी सुनती थीं। साधारणतया इन अदालतोंमें दीवानी फौजदारी दोनों प्रकारके अभियोग सुने जाते थे। चाणक्य राजनीतिक अभियोगोंकी सुनवाईके लिये एक विशेष प्रकारकी अदालतका उल्लेख करता है जिसमें कमसे कम तीन सदस्योंका होना आवश्यक था।

इन समस्त शास्त्रोंमें पञ्चायतोंका बार बार उल्लेख मिलता है। शास्त्रकारोंने इन अदालतोंकी संहिता नियत करते समय चार प्रकारके कानूनोंका वर्णन किया है :—

पहला—धर्मशास्त्र।

दूसरा—व्यवहार-शास्त्र।

तीसरा—चरित्र अर्थात् रवाज।

चौथा—राज-शासन या राजाज्ञायें।

परन्तु समस्त शास्त्रोंमें रवाजके अनुसार चलनेपर बहुत बल दिया गया है।

अदालत एक खुले मकानमें होती थी जहां प्रत्येकको जानेको आज्ञा थी। शुक्र-नीतिकारने स्पष्ट शब्दोंमें लिखा है कि न राजाको और न न्याय-सभाके सदस्योंको कोई अभियोग निजमें सुनना चाहिये। सरकारी पदाधिकारियोंको अभियोगोंमें

किसी प्रकारका हस्तक्षेप करनेकी आज्ञा न थी (सिवा उनके जिनका प्रत्यक्ष रूपसे सम्बन्ध हो)। मनुस्मृतिमें अठारह प्रकारके अभियोगोंका वर्णन है। उनका ब्योरा यहां देनेकी आवश्यकता नहीं। दीवानी अभियोगोंका जो विधान बताया गया है। वह साधारणतया बहुत अंशतक आजकलके प्रचलित दीवानी जाबतेसे मिलता-जुलता है। उसमें अरजीदावा, जवाबदावा, साक्षीकी सुनवाई, वाद-विवाद और निर्णयके सम्बन्धमें सविस्तर उपदेश दिये गये हैं।

नारद-स्मृतिमें यह भी लिखा है कि यदि कोई प्रतिवादी भाग जानेकी चेष्टा करे तो वादीको उसे गिरफ्तार करके अदालतमें पेश करनेका अधिकार था। परन्तु आगे लिखे व्यक्तियोंको गिरफ्तार नहीं किया जाता।

(१) दुलहा।
(२) रोगी।
(३) जो यज्ञमें लगा हुआ हो।
(४) विपत्ति ग्रस्त।
(५) किसी दूसरे अभियोगका दोषी।
(६) राज्यका पदाधिकारी।
(७) गड़ेरिया।
(८) कृषिकार जो खेतीके काममें रत हो।
(९) कारीगर जो अपने व्यवसायमें निमग्न हो
(१०) अप्राप्त वयस्क।
(११) दूत।
(१२) जो व्यक्ति दान करनेमें लगा हो।
(१३) जो व्यक्ति किसी प्रतिज्ञाको पूर्ण कर रहा हो।
(१४) जो कठिनाइयोंमें फंसा हुआ हो।

ऐसा प्रतीत होता है कि शास्त्रकारका अभिप्राय यह था कि इस प्रथाको बन्द कर दिया जाय। अन्यथा वह अपवादोंकी इतनी लम्बी सूचीका वर्णन न करता।

इसी प्रकार अभियोगोंको सुननेके सम्बन्धमें और इनके अतिरिक्त साक्षियोंके सम्बन्धमें अर्थात् साक्षी किस प्रकारके होने चाहिये, किस प्रकारके आवेदन (बयान) लिये जावें और किस प्रकार उनको शपथ दी जावे, शास्त्रोंमें सविस्तर उपदेश लिखे हुए हैं।

लिखित साक्षीका वर्णन करते हुए शास्त्रकार तीन प्रकारके निदर्शन-पत्रोंका उल्लेख करता है :—

(१) वे जिनपर राज-कर्मचारियोंकी सही हो जैसी कि आजकल रजिस्टरी-विभागमें होती है।

(२) वे जिनपर प्राइवेट (निजी) साक्षियोंकी सही हो।

(३) वे जिनपर किसीकी सही न हो।

मिथ्या साक्षी देनेवालेके लिये घोर दण्ड नियत थे। इसलिये प्रतीत होता है कि अदालतोंमें झूठी गवाही बहुत कम गुजरती थी। मगस्थनीज़ने यह सही की है कि उसके अनुभवमें यहांके अधिवासी प्रायः झूठ न बोलते थे। नारद-स्मृतिमें यह आज्ञा है कि निर्णय हो जानेपर एक प्रति जीतनेवाले पक्षको दी जाय। शुक्रनीति और नारद-स्मृति दोनोंसे मालूम होता है कि अभियोगोंमें मुख्तारों और कानून-पेशा लोगोंको विवाद करनेकी आज्ञा थी।

चीनी पर्यटक फाहियान, सुङ्गयुन और ह्यूनसाङ्ग जो ईसाके संवत्की पहली शताब्दियोंमें भिन्न भिन्न समयोंमें आये, तीनों इस बातको प्रमाणित करते हैं कि घोरसे घोर फौजदारी अभि-

योगोंमें मृत्यु-दण्ड न दिया जाता था, यद्यपि धर्म-शास्त्रोंमें मृत्यु-दण्डका उल्लेख है।

न्यायाधीशोंको न्याय किस प्रकार करना चाहिये, इस विषय-में हिन्दू-धर्म-शास्त्रोंमें बहुतसे सविस्तर उपदेश लिखे हैं। उनमें अत्याचार और अन्याय करनेकी दशामें अधिकारियोंको दण्डनीय ठहराया गया है। चाणक्यने यह भी लिखा है कि यदि कोई अदालतका अधिकारी किसी मुकद्दमेवालेको धमकाये या चिढ़ाये या अनुचित रूपसे उसे बोलनेसे रोके, या उसे अदा-लतसे बाहर जानेपर विवश करे, तो उसे अर्थ-दण्डसे दण्डित किया जावे। इसी प्रकार यदि कोई अदालतका अधिकारी किसी मुकद्दमेवालेका अपमान करे अथवा प्रश्न पूछनेमें अनुचित रीति-का अवलम्बन करे, अथवा किसी साक्षीको पढ़ावे, अथवा अनुचित रूपसे किसी मुकद्दमेके सुननेमें विलम्ब करे अथवा इसी प्रकार कोई और अनुचित चेष्टा करे, तो अर्थदण्डके अतिरिक्त उसको अपने पदसे पृथक् कर दिया जावे।

इसी प्रकार अर्थ-शास्त्रमें उन जजोंके लिये दण्ड नियत हैं जो मोह या लालच या भयसे कानूनके विरुद्ध निर्णय दें। जहां जजोंपर इस प्रकारकी सख्तियां लगाई गई थीं वहां इसके साथ ही उनको एग्ज़ेक्टिव गवर्नमेण्टके अनुचित प्रभावसे बचाया गया था।

मगस्थनीज़ने अपने भ्रमण-वृत्तान्तमें लिखा है कि इस देशमें चोरी बहुत ही कम होती है। उनके नियमों और प्रतिज्ञाओंकी सरलता इस बातसे प्रकट होती है कि अभियोग बहुत कम होते हैं।

रहन या निक्षेपोंके सम्बन्धमें कोई अभियोग नहीं होते और न उनको छाप लगाने या साक्षी करानेकी आवश्यकता पड़ती

है, क्योंकि उनको एक दूसरेपर पूर्ण विश्वास है। ये लोग अपने घरों और अपनी सम्पत्तिको प्रायः अरक्षित छोड़ जाते हैं।

मगस्थनीज़के भारत-प्रवासके लगभग एक सहस्र वर्ष पीछे चीनी पर्यटक ह्यूनसाङ्ग इस देशमें आया। उसकी साक्षी आगे दी जाती है:—

"इस देशके सर्वसाधारण यद्यपि हँसमुख हैं परन्तु अतीव सत्यवादी और सत्यकर्म्मी हैं। रुपये पैसेके मामलोंमें वे एक दूसरेके साथ धोखा नहीं करते। न्याय करनेमें वे बहुत सावधान हैं। वे दूसरे जन्मसे डरते हैं और इस संसारके नश्वर पदार्थोंकी कुछ परवाह नहीं करते। वे अपने कर्म्मसे कपटी और विश्वासघातक नहीं। वे अपने शपथों और वचनोंके पक्के हैं। उनकी शासन-पद्धतिमें विचित्र प्रकारकी सादगी और सफ़ाई है। उनके वर्तावमें अत्यन्त सज्जनता और माधुर्य है।"

मुसलमान पर्यटकों और ऐतिहासिकोंने भी इस बातका समर्थन किया है और स्थल स्थलपर हिन्दुओंकी सत्यवादिता और निष्कपटताकी प्रशंसा की है। इस पुस्तकके दूसरे भागमें हम उन उद्धरणोंकी नकल करेंगे।

साधारण राजस्व।

अर्थ-शास्त्रमें साधारण राजस्वके विषयमें विस्तारपूर्वक उपदेश दिये गये हैं। गौतम-स्मृतिमें यह लिखा है कि किसानोंसे उपजका .१ या .१२५ या .१६ लेना चाहिये। सोनेपर .०२, व्यापारके मालपर .०५ और फल-फूल, औषधियों, मधु, मांस, घास और लकड़ीपर .०१६ लेना चाहिये। विष्णु-स्मृतिमें आयात पदार्थोंपर पांच प्रतिशत और स्थानीय बनाये हुए कपड़ेपर दस प्रति - कर है।

इस प्रकार मनुस्मृति और महाभारतमें भी नियम दिये गये हैं। परन्तु चाणक्यके अर्थ-शास्त्रमें चन्द्रगुप्तके समयके साम्पत्तिक संगठनका सविस्तर वर्णन है। चाणक्य सरकारी करोंके दो प्रकार बताता है। और फिर पहले प्रकारके सात भेद लिखता है। अर्थात् पहले वह जो राजधानीसे वसूल किया जावे; दूसरे वह जो देहाती इलाकोंसे वसूल किया जाय; तीसरा खानोंसे; चौथा सरकारी इमारतोंसे, पाँचवा वनोंसे, छठा गोचर-भूमियोंसे, सातवाँ पुलों और सड़कों आदिसे। फिर वह इन भिन्न भिन्न प्रकारकी आयोंका सविस्तर वर्णन करता है। ह्यूनसाङ्ग सही करता है कि यद्यपि राजा कुछ जन-समाजोंसे मासमें एक दिन काम लेता था परन्तु उनसे और किसी प्रकारका टैक्स न लेता था। किसीको बेगार देनेके लिये विवश नहीं किया जाता था। केवल विद्वान ब्राह्मणोंसे टैक्स नहीं लिया जाता था। परन्तु जो ब्राह्मण धार्मिक कृत्योंको करानेके अतिरिक्त अन्य वर्णोंके सदृश कारबार करते थे उनको टैक्स देना पड़ता था। आपस्तम्ब, विष्णु, मनु और कौटिल्य आगे लिखे व्यक्तियोंको टैक्ससे मुक्त करते हैं:—

स्त्री, अप्राप्तवयस्क, विद्यार्थी, अंधा, बहरा, गूंगा, रोगी, और वे सब मनुष्य जिनके लिये सम्पत्ति उत्पन्न करनेका निषेध है।

विशेष अवस्थाओंमें राजाको नियत टैक्ससे अधिक वसूल करनेकी भी आज्ञा थी। परन्तु कौटिल्यने विशेषरूपसे यह लिखा है कि किसी अवस्थामें किसी राजाको एकसे अधिक बार अधिक कर नहीं वसूल करना चाहिये। डाक्टर बंद्योपाध्याय बौद्धायन-धर्मसूत्रके प्रमाणसे यह सम्मति प्रकट करते हैं कि राजा भूमिका स्वामी नहीं समझा जाता था। महाभारतमें राजाओंको बार बार यह शिक्षा दी गई है कि वे अपनी प्रजासे

भारी कर वसूल करनेका यत्न न करें, और लालच या अधर्मसे अपना कोष न भरें। वे ऐसे कर्म्मचारियोंसे सावधान रहें जो प्रजाका रक्त चूसकर उनको प्रसन्न करना चाहते हैं।

राज्यके व्ययोंका ब्योरा देते हुए शुक्र-नीतिमें आगे लिखे नियमोंका वर्णन किया गया है। प्रथम यह कि राज्यकी आधी आय संचित रक्खी जाय और दूसरी आधीको इस प्रकार बांटा जायः—

नम्बरदारोंके वेतनोंमें	.०८३
सेनाके लिये	.२५
दानके लिये	.०४१६
सर्वसाधारणके लाभार्थ इमारतोंके लिये	.०४१६
कर्म्मचारियोंके वेतनके लिये	.०४१६
राजा और उसके परिवारके खर्चके लिये	.०४१६

व्ययोंका यह ब्योरा हमारी दृष्टिमें शास्त्रीय (साइंटिफिक) नहीं है। परन्तु इससे यह प्रकट होता है कि हिन्दू-शास्त्रकारोंकी सम्मतिमें किसी राजाको यह अधिकार न था कि राजकीय कोषको जैसे चाहे खर्च करे। शुक्र-नीतिके लेखकने राजाके व्यय पर सीमा बांध दी है। चाणक्यने अपने अर्थशास्त्रमें युवराज, दूसरे राजकुमारों, महारानी और दूसरी रानियोंके लिये वेतन नियत कर दिये हैं। इनसे मालूम होता है कि प्राचीन कालमें हिन्दू-राजा राज्य-करोंके व्यय करनेमें ऐसे स्वतन्त्र न थे जैसा कि आजकल समझा जाता है।

राज्य-करोंका पूरा निरीक्षण राज्यके कर्म्मचारियोंके हाथमें था। इनमेंसे कलक्टर जनरल और कोषाध्यक्षका उल्लेख हम पहले कर आये हैं। अर्थ-शास्त्रमें यह भी लिखा है कि प्रत्येक विभागके हिसाब नियमपूर्वक हिसाब-विभागके पास भेजे जाते

थे और इस विभागके उच्च अधिकारीके निरीक्षणके पश्चात् अच्छे योग्य हिसाब जाननेवाले गुणक इन हिसाबोंकी जांच पड़ताल करते थे। तदनन्तर ये पड़ताल हुए हिसाब भिन्न भिन्न विभागोंके मन्त्रियोंके पास भेजे जाते थे और मन्त्रि-परिषद्में भी उपस्थित किये जाते थे।

परराष्ट्र-सम्बन्ध।

इतिहाससे मालूम होता है कि हिन्दू राजाओं और सम्राटों-के सम्बन्ध बाहरके देशोंके साथ गहरे थे। चन्द्रगुप्तके दरबारमें शाम देशके राजा सिल्यूकस निकोटरका दूत मगस्थनीज़ रहता था और बिन्दुसारकी राजसभामें सिरिया-नरेश एण्टियोकस सूटरकी ओरसे डेमाकोस और डीउन सिउस और मिस्र-नरेश-की ओरसे टोल्मी फलेडोलफस दूत थे। महाराजा अशोकके समयमें बहुतसे परराष्ट्रोंके साथ मित्रताके सम्बन्ध थे। इसी प्रकार अन्य राजाओंके दरबारमें भी भिन्न भिन्न समयोंमें दूसरे देशोंके दूत रहते रहे। विदेशोंके साथ मित्रता करनेके सम्बन्धमें अर्थशास्त्रमें सविस्तर उपदेश दिये गये हैं और दूतोंकी भिन्न भिन्न कोटियोंका वर्णन है। नीति वाक्यामृतमें यह लिखा है कि कोई दूत कैसा ही चण्डाल क्यों न हो उसके साथ अतीव शिष्टा-चारका बर्ताव करना चाहिये और उसे कभी कष्ट न देना चाहिये।

सैनिक प्रबन्ध।

सैनिक प्रबन्धके विषयमें भी हिन्दू-शास्त्रोंमें बहुत विस्तार-के साथ उपदेश लिखे हुए हैं। उनसे ज्ञात होता है कि प्राचीन भारतीय साम्राज्योंका सैनिक-प्रबन्ध अतीव पूर्ण था और पलटनों तथा रिसालोंकी बनावट और नाना प्रकारके युद्धोप-

करण उपस्थित करनेके सम्बन्धमें भी प्रत्येक बात नियमबद्ध थी। चन्द्रगुप्तके समयमें छः भिन्न भिन्न विभाग सैनिक-प्रबन्धके लिये थे। इनमेंसे एक सामुद्रिक विभाग भी था।

इन शास्त्रोंमें लड़ाइयाँ लड़नेके सम्बन्धमें भी सविस्तर उपदेश लिखे हैं और उन शास्त्रोंका व्योरा भी दिया गया है जिनका युद्धमें उपयोग होना चाहिये।

इन उपदेशोंमें झण्डी देने (सिगनलिङ्ग), दुर्गोंको बनाने और उनकी रक्षा करनेका भी वर्णन है। हम उन उपदेशोंको यहाँ नहीं लिखते। हमारी सम्मतिमें इन कानूनोंका सबसे आवश्यक और महत्वपूर्ण भङ्ग वह है जिसमें युद्धके नैतिक अङ्गपर दृष्टि डाली गई है। उदाहरणार्थ, महाभारतमें लिखा है कि किसी राज्यको अधर्म या पापसे दूसरे देशोंको जीतनेका यत्न नहीं करना चाहिये, चाहे ऐसा करनेसे उसे चक्रवर्ती राज्य ही क्यों न मिलता हो। इसका तात्पर्य यह है कि हिन्दू-धर्म किसी राजाको लालचसे या चक्रवर्ती राजा होनेकी लालचसे दूसरी जातियों और दूसरे देशोंपर चढ़ाई करनेकी आज्ञा न देता था। महाभारतमें आगे लिखे नियम भी दिये गये हैं।

"यदि किसी योद्धाका कवच गिर जावे अथवा कोई शरण माँगे, अथवा अपना शस्त्र छोड़ दे तो उसकी हत्या करना उचित धर्म्म नहीं। न किसी ऐसे व्यक्तिकी हत्या करना धर्म्म है जो सोया हुआ हो, या जिसका उपकरण गिर गया हो, या जो मुक्तिकी इच्छा रखता हो (अर्थात् साधु हो), या जो भाग रहा हो, या जो खान-पानमें लगा हुआ हो, या पागल हो, या जो घोररूपसे आहत हो रहा हो, या जो भरोसा करके ठहर गया हो, या जो किसी कलाका विशेषज्ञ हो, या जो दुःखमें हो, या जो घास चाराके लिये शिविरसे बाहर आया हो, या जो खलासी

मात्र हो, या जो केवल द्वारपाल हो या किसी अन्य प्रकारसे सेवा करनेवाला हो।"

मनुने भी आगे लिखे नियम इस सम्बन्धमें दिये हैं :—

"किसी व्यक्तिको गुप्त शस्त्रोंसे न मारना चाहिये, और न विषैले शस्त्रोंसे, न काँटेदार शस्त्रोंसे, और न ऐसे शस्त्रोंसे जिनके सिरोंपर आग लगाई हो।"

शेष उपदेश लगभग ऐसे ही हैं जैसे कि ऊपर लिखे जा चुके हैं। इन शास्त्रोंमें यह भी कहा है कि "किसी ऐसे व्यक्तिपर जो नपुंसक हो, जो वृद्ध हो, या जो लड़नेवाला न हो, आघात करना अधर्म है। फ़सलोंको नष्ट करने अथवा शत्रुके देशमें लूट मचानेका घोर निषेध था।"

यूनानी दूत मगस्थनीज़ इस विषयमें यों लिखता है :—

"जैसे दूसरी जातियोंमें यह प्रथा है कि लड़ाईके दिनोंमें भूमिको नष्ट करके ऊजड़ जङ्गलके समान बना दिया जाता है, वैसा भारतीयोंमें नहीं। वरन् इसके विपरीत भारतीय कृषक समाजको पवित्र समझते हैं और उनके साथ विरोध करना पाप समझते हैं। युद्ध-कालमें भी आस-पासके किसान निश्चिन्त होकर अपने कृषि-कर्ममें निरत रहते हैं। दोनों दलोंके सिपाही उनके साथ हस्तक्षेप नहीं करते। वे न तो शत्रुकी भूमिमें आग लगाते हैं और न वृक्ष ही काटते हैं।

हिन्दू-शास्त्र इस विषयमें भी सहमत हैं कि किसी शत्रुको परास्त करके उसके देशको तहस-नहस नहीं करना चाहिये। केवल वहांके राजाकी अधीनताको ही यथेष्ट समझकर उसीको स्थानीय शासन सौंप देना चाहिये।

यूनानी दूत मगस्थनीज़ने भारतीयोंके डील-डौल, उनके शौर्य और वीरता तथा उनकी युद्ध-कलाकी बहुत प्रशंसा की है। परन्तु

इन अवस्थाओंमें स्वभावतः ही यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि क्यों हिन्दुओंने इतनी बार भिन्न भिन्न आक्रमणकारियोंसे हार खाई ? जब हम सीमान्तके उस भागको देखते हैं जो पेशावर और चनाबके बीच स्थित है, तो हमें आश्चर्य होता है कि किस प्रकार भारतीय योद्धाओंने सिकन्दरको या अन्य आक्रमणकारियोंको इस प्रदेशमेंसे गुज़रने दिया। इसके दो उत्तर हो सकते हैं। एक तो यह कि जाति-पांतिके विभागने देशकी रक्षाको केवल एक श्रेणीके सिपुर्द कर दिया था और उस श्रेणीके परास्त हो जाने या साहस छोड़ बैठनेपर सारा देश इकट्ठा होकर लड़नेके योग्य न रहता था। दूसरे यह कि बाह्य आक्रमणकारी केवल उसी समय सफल मनोरथ हुए जब स्वयं भीतरी राजाओंमें बहुत कुछ परस्पर फूट और लड़ाई-झगड़ा था। पञ्जाबकी भिन्न भिन्न जातियोंने सिकन्दरका भली भांति सामना किया और कई स्थानोंपर उसकी सेनाके दाँत खट्टे किये। परन्तु आरम्भमें ही कई देशद्रोही स्थानीय राजा उसके साथ मिल गये। उन्होंने उसको बहुत सहायता दी। फिर भी रावी पार होते ही उसीको पीछे मुड़नेकी आवश्यकता अनुभव हुई। इसी प्रकार भारतके इतिहासमें जब कभी आक्रमणकारी आये हैं तो उन्होंने भीतरी फूटसे लाभ उठाया है। जब केन्द्रिक शासन प्रबल था और देशमें एकता थी तब भारतमें आनेका किसीको साहस नहीं हुआ।

सार्वजनिक इमारतें।

किसी देशके सभ्य होनेकी एक पहचान यह है कि उस देशमें कितने नगर हैं। नगर प्रायः व्यापार और कला-कौशलके केन्द्र होते हैं और व्यापार तथा शिल्पमें उन्नति सभ्यताके प्रबल चिह्नोंमेंसे एक है। यद्यपि यह बात संदिग्ध है कि लण्डन और

न्यूयार्क ऐसे बड़े बड़े नगरोंका अस्तित्व सामान्यतः मनुष्य-मात्रके लिये लाभदायक है कि नहीं।

प्राचीन भारतमें नगर बहुत थे। यूनानी लेखक लिखते हैं कि सिकन्दरने लगभग दो सहस्र नगर पञ्जाबमें ही विजय किये। हिन्दू-शास्त्रोंमें नगरों और ग्रामोंकी रचनाके सम्बन्धमें बहुत विस्तारके साथ उपदेश दिये गये हैं। इससे मालूम होता है कि प्राचीन भारतीय नकशेके अनुसार नगर और गाँव बसानेको बहुत मानते थे। मकानोंमें प्रकाश और वायुकी पर्याप्त गुञ्जा-यश रखते थे। यूनानी-लेखक आरियन भारतीय नगरोंके विषयमें लिखता है कि इस देशमें नगरोंकी इतनी प्रचुरता है कि उनकी संख्याका अनुमान करना भी कठिन है। मगधकी राजधानी पाटलिपुत्रके विषयमें वर्णित है कि उसकी लम्बाई दस मील और चौड़ाई दो मील थी। उसके गिर्दागिर्द एक खाई थी जो छः सौ फुट चौड़ी और तीस फुट गहरी थी। नगरकी प्राचीरपर पांच सौ सत्तर बुर्ज और चौंसठ दरवाजे थे। इसी प्रकार फाहियानने पाटलिपुत्रकी प्रशंसामें बहुत कुछ लिखा है। यह नगर उस समय उजड़ हो चुका था परन्तु इसके खंडहर मौजूद थे। वैशालीके विषयमें भी चीनियोंकी पुस्तकोंमें यह लिखा है कि यह नगर बहुत विभवशाली और अतीव जनाकीर्ण था। इसमें ७७०७ ऐसी इमारतें थीं जो दो या दोसे अधिक मंजिलोंकी थीं। ७७०७ ऐसे मकान थे जिनपर शिखर लगे हुए थे; ७७०७ ऐसे चौक थे जो केवल जनताके मनोरञ्जनके लिये बनाये गये थे; और ७७०७ ऐसे सरोवर थे जिनमें कमल फूलते थे। *

संस्कृतके प्रसिद्ध कवि बाणने उज्जैन नगरकी बहुत प्रशंसा की है और चीनी पर्यटक ह्यूनसाङ्गने कन्नौज नगरके गुण गाये

* अधिक सम्भव है कि ये आंकड़े अनुमानसे ही स्थिर कर लिये गये थे।

हैं। कन्नौज गजनीके महमूदके आक्रमणके समय भी बहुत बड़ा नगर था। बौद्ध-धर्मकी एक पुस्तकमें सियालकोट नगरकी बहुत प्रशंसा की है। इसका पुराना नाम सागल था। मुसलमान ऐतिहासिकों और मुसलमान पर्यटकोंने भी हिन्दू-नगरों और हिन्दू-इमारतोंकी भूरि भूरि प्रशंसा की है। इसका वर्णन दूसरे भागमें किया जायगा।

इमारतोंकी रचनासे सम्बन्ध रखनेवाले शास्त्रका नाम शिल्पशास्त्र कहा गया है। इसकी सर्वोत्तम पुस्तक मानसार है। इसने सात प्रकारके नगर और आठ प्रकारके गांव बतलाये हैं। मानसारमें सत्तर परिच्छेद हैं। मन्दिरों और घरोंकी भूमि और मकान कैसे होने चाहिये, इन विषयोंपर उसमें सविस्तर उपदेश हैं। वास्तु-विद्याके प्रत्येक अङ्गका पूर्ण वर्णन मौजूद है। तत्कालीन स्थपति (मेमार) गणित-विद्याके पूर्ण ज्ञाता होते थे। फर्गूसन लिखता है कि "महाराज अशोकके शासनकालके पूर्व भी भारतमें प्रासाद और सभा-भवन बड़े महत्तायुक्त थे। परन्तु उनके चिह्न अब कुछ शेष नहीं हैं, क्योंकि उस समय पत्थर केवल नींवमें डाला जाता था। ऊपरका भवन लकड़ीका बनाया जाता था। अशोकके समयमें पत्थर और ईंटका उपयोग अधिक सामान्य हो गया। फाहियान अशोकके राजभवनका वर्णन करते हुए कहता है कि "वे विशाल पत्थर जो इस प्रासादमें लगाये हुए हैं किसी मानुषी शक्तिके गढ़े हुए नहीं हो सकते।" विंसेंट स्मिथ भी लिखता है कि अशोकके समयमें भारतमें ललित-कलाओंने उन्नतिकी चरमसीमा देखी थी। राजकीय इञ्जिनियर

थे। वे अतीव कठिन से कठिन चट्टानमेंसे काटकर बहुत ही सुन्दर, सीधे और बड़े बड़े स्तम्भ बनाते और सुसज्जित कमरे खोद देते थे। आलेख्य वास्तु-विद्याका एक आवश्यक अङ्ग समझा जाता था। समस्त महत्तायुक्त इमारतोंमें आलेख्य और चित्र बड़ी कारीगरीसे बनाये जाते थे। फर्गुसनने बौद्ध इमारतों-को पांच प्रकारोंमें बांटा है। अर्थात्—

पहला—स्तम्भ और लाटें, जिनके विषयमें कहा गया है कि वे भारतीय कलाकी अतीव मौलिक और अतीव सुन्दर उपज हैं।

दूसरा—स्तूप, अर्थात् ऐसे भवन जो महात्मा बुद्धके शरीरके किसी भागपर या किसी दूसरे बौद्ध साधु या महात्माकी स्मृति-में समाधि-मन्दिरके रूपमें बनाये जाते थे अथवा किसी पवित्र स्थानपर उस स्थानकी स्मृतिके रूपमें निर्मित किये जाते थे।

तीसरा—कटहरा या जङ्गला, जिनपर अत्युत्कृष्ट सुन्दर काम होता था।

चौथा—चैत्य या सभा-भवन (असम्बली हाल) जो बौद्ध धर्मके मन्दिर गिने जाते थे।

पांचवां—विहार, संघाराम या मठ, अर्थात् जहां भिक्षु लोग निवास करते और शिक्षा देते थे।

प्रथम प्रकारके भवनोंमें दिल्ली और आगरेकी लाटें अधिक विख्यात हैं। इनके अतिरिक्त तिर्हुत, संकाश (मथुरा और कन्नौजके बीच), कारली (बम्बई और पूनाके बीच) और ईरानकी लाटें भी बहुत कारीगरीकी हैं।

तिर्हुतकी लाटके ऊपर एक सिंहकी मूर्त्ति बनाई हुई है और कारलीकी लाटपर चार सिंहोंका आकार है। दिल्लीकी लोहेकी लाट अतीव अद्भुत लाट है। यह लाट भूमिसे २२ फुट ऊंची है। इसका व्यास नीचेसे १६ इंच और ऊपरसे १२ इंच है।

डाक्टर फर्गूसन महाशय कहते हैं कि यह लाट प्रकट करती है कि ईसाकी पांचवीं शताब्दीमें हिन्दू लोग लोहेकी इतनी बड़ी लाट ढाल सकते थे जिसके बराबर वर्त्तमान कालसे पहले यूरोपमें कभी नहीं बनाई गई थी, और जिस आयतनकी लोहेकी सलाखें अब भी यूरोपमें बहुत नहीं बनाई जातीं। यह भी आश्चर्यकी बात है कि चौदह सौ शताब्दीतक आंधी और वर्षाके आघात सहते हुए भी अभीतक इस लाटपर मोर्चा नहीं लगा।

दूसरे प्रकारकी इमारतोंमेंसे भेलसाके टोप सामान्यतः और साँचीके टोप विशेषतः बहुत प्रसिद्ध हैं। सांचीका टोप पेंदेसे कुछ ऊपर व्यासमें १०६ फुट है। इसके ऊपर ४२ फुट ऊंचाईका एक मीनार है। तीसरे प्रकारकी इमारतोंमेंसे दो बहुत प्रसिद्ध हैं, अर्थात् एक सांचीका कटहरा (रेल) और दूसरा अमरावतीका कटहरा। ये अतीव उच्च कोटिकी कारीगरीके हैं। इन दोनोंपर विचित्र प्रकारका तक्षण है। महात्मा बुद्धके जीवनकी भिन्न भिन्न घटनाओंके चित्र खोदे गये हैं और स्थान स्थानपर भिन्न भिन्न जन्तुओंके चित्र अतीव कौशलके साथ दिये गये हैं।

चौथे प्रकारकी इमारतें संसारमें अपने प्रकारकी निराली हैं। ये बनाई हुई नहीं, पहाड़ोंमें खोदी हुई हैं। इनमेंसे कारलीका चैत्य अतीव अद्भुत और विख्यात है। यह चैत्य ईसाके जन्मके एक सौ वर्ष पहले बना था।

इस प्रकारकी इमारतोंमेंसे तीस इमारतें अबतक मौजूद हैं। परन्तु इन सबमेंसे प्रसिद्ध और रचनाकी दृष्टिसे अतीव विचित्र पश्चिमी भारतकी वे गुफायें हैं जो पहाड़ोंमेंसे काटकर बनाई गई हैं। ये बारह सौकी संख्यामें अबतक मिलती हैं। इनमेंसे कारली, अजन्ता, और एलोरा इस कलाके सर्वोत्तम नमूने हैं। बम्बईके निकट समुद्रके बीच एक पहाड़को काटकर बनाई हुई
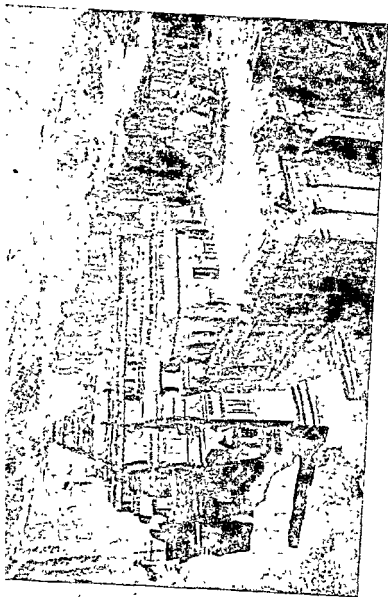
इसी प्रकारकी एक और गुफा है। इसका नाम एलीफैण्टा है। यह अपने ढंगकी एक बहुत ही अद्भुत और सुन्दर रचना है।

पांचवें प्रकारकी इमारतें बौद्ध-कालमें असंख्य थीं। इनमेंसे बहुतेरोंके खंडहर अब भी मिलते हैं। ह्यूनसाङ्गने लिखा है कि "संघाराम अतीव असाधारण कारीगरीसे बनाये गये हैं। चारों कोनोंपर एक एक तीन मंजिला बुर्ज है। शहतीरोंके कोनोंपर भिन्न भिन्न रूपोंमें अतीव कौशलके साथ चित्रकारी की गई है। द्वार, खिड़कियों और दीवारोंपर प्रचुरतासे रंग और रोगन किया हुआ है। भिक्षुओंकी कोठरियां बाहरसे सादी हैं परन्तु उनमें भीतर बहुत काम किया हुआ है। इमारतके मध्य-में एक हाल या बड़ा कमरा रक्खा जाता है। वह बहुत विशाल और ऊंचा होता है। इसके अतिरिक्त भिन्न भिन्न ऊंचाइयों और आकारोंकी कई कई मंजिलोंके कमरे और बारहदरियाँ हैं। दरवाज़े पूर्वकी ओर खुलते हैं।"

बौद्धोंके सदृश जैनों और हिन्दुओंने भी बहुत सी गुफायें खोदीं और बड़े बड़े विशाल मन्दिर बनाये। प्रत्येक राजा यह यत्न करता था कि अपने समयमें महत्तायुक्त भवनों और मन्दिरों-से नाम पैदा करे। हिन्दुओंके भवन-निर्माण और कलाओंके सम्बन्धमें श्रीयुत ई० बी० हेवेलकी पुस्तकें और श्री० फार्गुसन तथा श्री० विंसेंट स्मिथके लेख पढ़ने योग्य हैं।*

सड़कें और आने जानेके साधन। हिन्दू-कालमें सड़कोंके बनानेपर बहुत ध्यान दिया जाता था। चाणक्य लिखता है कि प्रत्येक नगरमें छः बड़ी बड़ी सड़कें होनी

* हिन्दुओंकी प्राचीन इमारत, मन्दिर, गुफायें, प्रासाद, सभाभवन इत्यादिकी अधिकांश मुसलमानोंके हाथसे गिराये गये। उनका अब नाम निशान भी मौजूद नहीं। फिर भी जो कुछ मौजूद है वह वास्तु-विद्या, कारीगरी और पत्थर गढ़ने आदि-में हिन्दुओंकी योग्यता और निपुणताका पर्याप्तसे अधिक साक्ष्य देता है।

चाहिये। उनमेंसे तीन उत्तर-दक्षिणकी ओर और तीन पूर्व-पश्चिमकी ओर हों। इनके अतिरिक्त और अन्य सड़कें भिन्न भिन्न आवश्यकताओंके लिये बनाई जावें। बड़ी सड़कें राजमार्ग कहलाती थीं और दूसरी सड़कोंको मार्ग, वीथि या पाथ कहते थे। बड़ी बड़ी सड़कोंपर अन्तर दिखानेके लिये और छोटी सड़कोंका निशान देनेके लिये स्तम्भ बनाये जाते थे। सड़कोंके दोनों ओर वृक्ष लगाये जाते थे। उचित स्थानोंपर पथिकोंके विश्रामके लिये धर्मशालायें बनाई जाती थीं, नालोंपर ईंट-चूने या लकड़ीके और बड़ी बड़ी नदियोंपर नावोंके पुल बनाये जाते थे।

वेदोंमें और महाभारतमें सिंचाईके साधनोंका बहुत उल्लेख मिलता है। पुराने राजा उचित अन्तरोंपर नहरें, तालाब और झीलें प्रचुर संख्यामें बनाते और कुवें और झरने लगवाते थे। नये तालाब और कुवें बनानेवालेको कई वर्षोंतक राजस्वमें रियायत दी जाती थी। मौर्यवंशके राजाओंके समयमें सिंचाईका एक विशेष विभाग था। राजतरङ्गिणीमें भी नहरों आदिका उल्लेख है।

यह बात द्रष्टव्य है कि हिन्दुओंने अपने मकान बनानेकी रुचिको भारततक ही परिमित नहीं रखा, वरन् जहां जहां वे जाकर बसे वहीं उन्होंने भारतीय नमूनेकी महत्तायुक्त इमारतें बनवाईं। वे अबतक लङ्का, कम्बोदिया, जावा, बाली और सुमात्रा आदि द्वीपों और श्याम देशमें मिलती हैं। सिंहल द्वीपमें राजा पराक्रम बाहुने न केवल असंख्य मन्दिर, विहार, सार्वजनिक भवन, वाटिकायें और उद्यान ही बनाये वरन् सहस्रों झीलें, तालाब और नहरें भी खुदवाईं। एक झीलका नाम उसने पराक्रम समुद्र रखा। उसकी प्रसिद्ध नहरका नाम जय गङ्गा

है। फर्गूसन महाशय लिखते हैं कि नौ सौ वर्षतक जावा और सुमात्रामें हिन्दू ऐसी इमारतें बनाते रहे जिनके नमूनेकी और इमारतें दूसरी जगह नहीं मिलतीं।

व्यापार और शिल्पका विभाग।

प्राचीन भारतमें सामयिक सरकारका यह भी कर्त्तव्य था कि वह कृषि, शिल्प और उद्योग-धन्धेकी उन्नतिके लिये उचित प्रबन्ध करे, और व्यापारकी उन्नतिकी दृष्टिसे प्रत्येक प्रकारकी आवश्यक जानकारी अपनी प्रजाको देती रहे।

कृषि-विभाग। कृषि-विभागका यह काम था कि वह कृषिकी उन्नतिके लिये उचित उपायोंसे काम ले, और भिन्न भिन्न प्रकारके उत्तमोत्तम बीज इकट्ठे करके कृषकोंमें बाँटे। इसी विभागका यह काम था कि वर्षा और वायुके सम्बन्धमें भिन्न भिन्न समाचार इकट्ठे करके लोगोंको दिया करे। आजकल यह विभाग मीटियोरोलोजी कहलाता है। चाणक्यके अर्थशास्त्रमें इसके विषयमें उपदेश लिखे गये हैं। भूमिके जिन टुकड़ोंमें खेती न हुई हो उनमें खेती करानेका प्रबन्ध करना और आवश्यकताके समय किसानोंको तकावी देना भी इसी विभागका काम था। इसी विभागके सिपुर्द दूध और मक्खन आदि उपस्थित करनेका प्रबन्ध था। दूध देनेवाले पशुओं और दूसरे जंतुओंकी रक्षा और वंश वृद्धि भी इसी विभागका कर्त्तव्य-कर्म ठहराया गया था।

पहले लिख आये हैं कि वनों, खनिजों और खानोंके विभाग हिन्दू राज्योंके आवश्यक अंग समझे जाते थे। यह माना जाता है कि धातुओंको काममें लानेके सम्बन्धमें हिन्दुओंने उच्च कोटिकी योग्यता प्राप्त की थी। जो लोहेकी लाटें भारतमें ढाली जाती थीं वे संसारकी अद्भुत वस्तुयें समझी गई हैं।

नमकका तैयार करना और भिन्न भिन्न प्रकारके मादक पदार्थ भी राज्यके निरीक्षणमें होते थे। परन्तु शिल्पोंमेंसे सबसे बड़ा तथा सबसे अधिक उत्कृष्ट शिल्प वस्त्रका था। रूई, ऊन, सन, वाल और रेशमका कपड़ा बुननेमें यह देश सदा संसारमें शिरमौर रहा है। समस्त संसारके कारीगरों और विशेषज्ञोंने इस कलामें इसकी चरमोन्नतिको स्वीकार किया है। व्यापार-विभागपर इससे भी अधिक ध्यान दिया जाता था। इस विभाग-का प्रथम काम यह था कि आने और जानेके मार्गोंको, चाहे वे थलके हों चाहे जलके, खुला रक्खे और प्रत्येक प्रकारकी विपत्तियोंसे उनकी रक्षा करे। भारतके प्राचीन साहित्यमें और यूनानियों और चीनियोंके लेखोंमें इस देशकी बड़ी बड़ी सड़कों-का बहुत वर्णन है। सामुद्रिक व्यापारके लिये जहाज और बन्दर-स्थान बनाये जाते थे। सिकन्दर जिन जहाजोंमें वापस गया वे सब भारतमें बनाये गये थे। वे उस समयके बहुत बड़े बड़े जहाज थे। उनके माँझी और जहाज चलानेवाले भी भारतीय थे। भारतकी समस्त बड़ी बड़ी नदियोंमें नावें चलती थीं। यहांके प्रसिद्ध बन्दर-स्थान प्रायः मलाबार-तटपर स्थित थे। प्राचीन भारतका विदेशोंसे एक बहुत बड़े मानमें व्यापार था। इससे भारतको करोड़ों रुपयोंका लाभ होता था। क्योंकि उस समय जितना कला-कौशल और उद्योग-धंधा भारतमें था उतना दूसरे देशोंमें न था। प्रत्येक प्रकारके मणि-मुक्ता, रत्न, हीरक, अन्य बहुमूल्य पत्थर और सुवर्ण इस देशसे जाता था। नाना प्रकारके वस्त्र और मसाले भी यहांसे बाहर जाते थे। बाहरसे भी विदेशी वस्तुएँ इस देशमें आती थीं। व्यापारविभागके अध्यक्षका यह काम था कि वह व्यापारियोंको इस प्रकारकी जानकारी देता रहे कि कौनसे मार्गोंसे व्यापार करना

लाभदायक है, भार ले जानेपर कितना व्यय होता है, और कहाँ कहाँ किन किन वस्तुओंकी माँग है। जिन देशोंमें वस्तुयें भेजी जाती थीं वह उनके वृत्तान्त, वहाँके नगरोंकी अवस्था, और चुङ्गी तथा राजस्वके नियमोंकी भी सूचना देता था।

सिक्के। यह बात भी अब प्रमाणित हो चुकी है कि ईसाके सन्से पांच छः सौ वर्ष पूर्व भी इस देशमें चांदी, सोने और ताम्बेके सिक्के प्रचलित थे। हुण्डियोंकी प्रथा भी जारी थी। बौद्धकालके बहुतसे सिक्के मिल चुके हैं *।

ब्याज खाना। ब्याज खानेके विषयमें भिन्न भिन्न शास्त्रोंके भिन्न भिन्न आदेश हैं। कुछ शास्त्रोंमें ब्याज लेनेका सर्वथा निषेध है और कुछमें ब्याजकी दर नियत करके यह उपदेश दिया गया है कि किसी अवस्थामें दुगुनेसे अधिक ब्याज नहीं मिलना चाहिये। मगस्थनीज़ लिखता है कि जिस समय मैं भारतमें था उस समय सामान्यतः ब्याजपर ऋण लेनेका नियम जारी न था।

लोकल सेल्फ़ गवर्नमेंट।

लोकल सेल्फ गवर्नमेण्ट अर्थात् स्थानीय स्वराज्य भारतमें उतना ही पुराना है जितना कि वेद। अङ्गरेजी कालमें सबसे पहली बार इसका नाश किया गया और फिर लार्ड रिपनके समयमें उसको पुनः जारी करनेकी चेष्टा की गई।

---

* कहते हैं कि सबसे पहले सोनेके सिक्के ईसासे छः सौ वर्ष पहले एशिया-माइनरके अन्तर्गत लीडियामें बनाये गये। परन्तु अधिक सम्भव है कि इससे पहले से भारतमें सिक्के प्रचलित थे। ऐथन्समें छोटे छोटे सिक्के सिकन्दरके समयसे पहले प्रचलित थे, परन्तु रोममें उसके आरम्भिक इतिहासमें सिक्कोंका प्रचार न था। यूरोपमें सिक्कोंका प्रचार एशियाकी अपेक्षा बहुत पीछे हुआ।

भारतका स्थानीय स्वराज्य ग्रामोंसे आरम्भ होता था। गांवोंकी पञ्चायतें गाँवका समस्त भीतरी प्रबन्ध करती थीं। खेतोंकी सीमा बाँधना, खेतोंकी बाँट, खसरेके शजरेकी व्यवस्था, गाँवका आय और व्यय, शिक्षा और स्वच्छताका प्रबन्ध, कला-कौशल, कृषि और सिंचाई, दान-पुण्य और अभियोगोंका निर्णय सब उनके हाथमें था। केन्द्रिक शासन सामान्यतः कभी ग्रामोंके भीतरी विषयोंमें हस्तक्षेप न करता था। ग्रामोंमें यह प्रबन्ध लगभग चन्द्रगुप्तके समय तक ज्योंका त्यों जारी रहा। उस समय छोटे नगरोंमें भी ऐसा ही प्रबन्ध था।

ऐसा प्रतीत होता है कि चन्द्रगुप्तके समयमें केन्द्रिक शासन ग्रामों और नगरोंके भीतरी प्रबन्धमें अधिक हस्तक्षेप करने लगा। फिर भी यह हस्तक्षेप ऐसा न था जिससे पञ्चायतोंके स्थानीय स्वराज्यमें कुछ अन्तर पड़ता। अङ्गरेज़ी कालके आरम्भ तक भी उत्तर और दक्षिण भारतमें यह प्रबन्ध ऐसा पूर्ण था कि सर चार्लस मेटकाफ़ और सर चार्लस मनरो दोनोंने इस बातकी सही की है कि भारतवर्षके ग्राम एक प्रकारके छोटे छोटे लोकतन्त्र राज्य थे जो गांवके अधिवासियोंकी सभी आवश्यकताओंको पूरा करते थे। इन अङ्गरेज़ विद्वानोंने उस समयके ग्रामोंके जो वृत्तान्त लिखे हैं वे बहुत कुछ उन वृत्तान्तोंसे मिलते हैं जो पुरानी पुस्तकों या पुराने शास्त्रोंमें लिखे हैं।

तीसरा परिशिष्ट

आर्य्योंका मूल स्थान और वेदोंकी प्राचीनता।

एक संक्षिप्त टिप्पणी।

(क) आर्य्योंका मूल स्थान—मनुष्य-समाजको प्रायः तीन या चार श्रेणियोंमें विभक्त किया जाता है—पहले आर्य्य, दूसरे मङ्गोल, तीसरे सेमेटिक, चौथे नीग्रो अर्थात् हब्शी। यूरोपकी समस्त वर्त्तमान जातियाँ, भारतीय और ईरानी आर्य्य जातिकी गिनी जाती हैं। सेमेटिक जातिके दो प्रबल प्रतिनिधि यहूदी और अरब हैं। जापानी और चीनी मङ्गोल-जातिसे हैं। और अफ्रीकाके अधिवासी और एशियाके दक्षिणी द्वीपोंके कुछ लोग हब्शी जातिसे कहे जाते हैं। यह प्रकट है कि यह विभाजन कोई ऐसा नहीं जो समाप्त हो जाय। परन्तु यहाँपर हमारा उद्देश्य मनुष्य-समाजकी सभी जातियोंका वृत्तान्त लिखना नहीं, वरन् भूमिकाके रूपमें केवल इतना ही लिखना आवश्यक प्रतीत हुआ है।

यूरोपीय लोग अपने आपको आर्य्य-जातिसे बताते हैं और इस समय संसारके शासनकी बाग-डोर उनके हाथमें है, इसलिये स्वभावतः ही इस प्रश्नमें उन्हें अधिक रुचि है कि यह जाति आरम्भमें कहांसे आई और इसकी उन्नतिकी भिन्न भिन्न अवस्थायें क्या और कहाँ हुईं। कदाचित् यही कारण है कि यूरोपीय विद्वान् आर्य्य-वंशको मनुष्य-जातिके शेष सभी वंशोंसे

अधिक प्रतिष्ठित और मान्य समझते हैं। सच तो यह है कि इस समय संसारमें विशुद्ध वंश कोई नहीं है। सारे मनुष्य-वंश आपसमें खिचड़ी हो गये हैं। किसी जातिके विषयमें यह कहना कि वह किसी विशुद्ध वंशमेंसे है कुछ अधिक महत्व नहीं रखता। कदाचित् संसारकी शान्तिके लिये यह अच्छा हो कि यह विवाद सर्वथा बन्द हो जाय। परन्तु जबतक संसारमें जातीय गर्व शेष है तबतक लोगोंको इस प्रश्नमें रुचि रहेगी।

यह बात मानी हुई है कि भारतमें प्रचुर संख्या आर्य्य-जातिके लोगोंकी है। कमसे कम यह बात निश्चित है कि उसमें आर्य्य-जातिका रक्त संसारकी शेष सभी आर्य्य-जातियोंसे अधिक है। ईरानियोंमें लगभग सभी जातियोंका रक्त मिला हुआ है। यूरोपीय जातियोंके विषयमें अब यह सन्देह करनेके लिये पर्याप्त कारण हो गये हैं कि वे बिलकुल आर्य्य-जातिमेंसे नहीं हैं या उनमें आर्य्य-जातिका रुधिर बहुत थोड़ा है। जातियोंके सम्बन्धमें कतिपय आदर्श हैं जिनकी कसौटीपर अन्वेषक लोग भिन्न भिन्न जातियोंको परखते हैं। उदाहरणार्थ, यह विचार कि हिन्दू, ईरानी और यूरोपीय जातियां एक ही वंशसे हैं, सन् १७८६ ई० में सर विलियम जोन्ज़ने इस आधारपर प्रकट किया था कि इन जातियोंकी भाषाओंमें बहुत कुछ सादृश्य है और ये भाषायें अपनी बनावट और अपनी रीति-नीतिमें इस प्रकारकी हैं कि उनके सम्बन्धमें उचितरूपसे यह परिणाम निकाला जा सकता है कि उनके पूर्वज किसी समय एक ही वंशसे सम्बन्ध रखते थे और एक ही प्रदेशमें बसते थे। इसी आधारपर यह सम्मति स्थिर की गई थी कि आर्य्य-जातिका मूल निवास मध्य एशिया था। वहींसे यह जाति उत्तर, दक्षिण, पश्चिम, और पूर्वमें फैली। परन्तु गत १५० वर्षोंमें मनुष्यके प्राचीन इतिहासके

विषयमें जो कुछ जानकारी संग्रह की गई है उससे यह प्रतीत होता है कि यह कसौटी कोई ऐसी सच्ची कसौटी नहीं कि जिसके विषयमें सन्देह न किया जा सके। संसारमें बहुतसी ऐसी जातियाँ मिलती हैं जिनकी भाषा निश्चितरूपसे उनकी अपनी भाषा नहीं है। वह भाषा उनके अन्दर ऐतिहासिक कालमें प्रचलित हुई। उदाहरणार्थ, अमरीकाकी बहुतसी बस्तियाँ ऐसी हैं जो दो तीन सौ वर्षों से स्पेन और पुर्तगालकी भाषा बोलती हैं। दो तीन सौ वर्ष औरमें किसीको यह स्मरण न रहेगा कि उन्होंने यह भाषा अपने विजेताओंसे प्राप्त की। फिलिपाइन द्वीपसमूहके अधिवासियोंकी मूल भाषा इस समय साधारणतया स्पेनकी भाषा समझी जाती है। अब अमरीकाके संयुक्त राज्योंके अमरीकन लोग उनको अङ्गरेज़ी सिखा रहे हैं और कतिपय वर्षों में सारे द्वीप-समूहकी भाषा अङ्गरेज़ी हो जायगी।

वंश भेदकी दूसरी कसौटी खोपड़ियोंकी बनावट और लंबाई चौड़ाई है।

तीसरी कसौटी भिन्न भिन्न जातियोंके धार्मिक किस्से-कहानियां और रीति-रवाज हैं। परन्तु हमारी सम्मतिमें कोई भी आदर्श ऐसा सर्वाङ्गपूर्ण नहीं है जिसपर पूर्ण रूपसे भरोसा किया जा सके। फिर भी इन तीनों प्रकारकी साक्षियोंको इकट्ठा करके जो कुछ परिणाम इस समयतक इस सिद्धान्तपर कि आर्य्योंका मूल निवास कहां था स्थिर किये गये हैं उनको संक्षेपसे आगे दिया जाता है।

आर्य्यों की मूल और आदि जन्म-भूमिके विषयमें जो विचार इस समयतक प्रकट हो चुके हैं उनको इन प्रकारोंमें बांटा जा सकता है :—

पहला—आर्य्योंका मूलनिवास मध्य एशिया था। यह सबसे प्राचीन विचार है और अभीतक बहुमत इसीके पक्षमें है।

दूसरा—आर्य्योंका आदि निवास उत्तरी ध्रुवके समीप था। इस विचारके माननेवालोंमें हमारे प्रसिद्ध देशभक्त स्वर्गीय लोकमान्य बाल गङ्गाधर तिलक थे। कुछ यूरोपीय विद्वान भी इस विचारका समर्थन करते हैं।

तीसरा—कुछ लोग आर्य्यों का मूल निवास स्कण्डीनेविया अर्थात् यूरोपके उस भागको बताते हैं जो इस समय स्वीडन और नार्वेके नामसे प्रसिद्ध है।

चौथा—कुछ समयसे अन्वेषकोंका एक नवीन समाज उत्पन्न हुआ है। उसकी यह प्रतिज्ञा है कि आर्य्योंका मूल निवास दक्षिण-पूर्वी यूरोप था जो भूमध्य सागरके तटपर स्थिर है और एशियामें जो आर्य्य बसते हैं वे यहांसे ही गये।

पांचवां—अन्तिम वह समाज है जो एशिया-कोचकको आर्य्योंका मूल देश बताता है और कहता है कि यहांसे भिन्न भिन्न आर्य्य-दल पश्चिम, पूर्व, उत्तर और दक्षिणमें फैल गये। चौथा और पांचवां समाज बहुत अंशोंमें एक दूसरेके निकट है। इसी प्रकार दूसरा और तीसरा दल एक दूसरेसे समीप है। अतएव वास्तवमें इस प्रश्नपर तीन प्रकारके विचार रह जाते हैं। परन्तु एक और चौथा विचार भी है जिसका समर्थन समस्त हिन्दू-ऐतिह्य और हिन्दू-साहित्य करता है। वह यह कि आर्य्योंका मूल निवास उत्तर भारत था। वहींसे यह जाति, उसकी सभ्यता और उसकी भाषा एशिया, यूरोप और अफ्रीकाके भिन्न भिन्न भागोंमें फैली।

इस अन्तिम विचारकी पुष्टिमें जो प्रमाण मौजूद हैं उनको हालमें कलकत्ता विश्वविद्यालयमें प्राचीन भारतीय इतिहासके

अध्यापक श्रीयुत अविनाशचन्द्रदास नामके एक बङ्गाली विद्वानने "ऋग्वेदिक इण्डिया" नामक पुस्तकमें संग्रह किया है। श्री० अविनाशचन्द्रदासके परिणाम निश्चय ही वैसे महत्व और मूल्यके योग्य हैं जैसे कि दूसरे विचारोंके पक्षपोषकोंके परिणाम हैं। हमारी सम्मतिमें किसी भी व्यक्तिके पास कोई ऐसा प्रबल या अकाट्य प्रमाण नहीं है जिससे इस प्रश्नका निश्चयात्मक रूपसे निर्णय हो सके। श्रीयुत दासने अपने परिणामोंकी पुष्टिमें आगे लिखे शास्त्रोंके प्रमाण उपस्थित किये हैं :—

(१) उनका सबसे बड़ा आधार भूतत्त्व विद्याके अन्वेषण हैं। भूतत्त्वविदोंने इस बातको प्रमाणित ठहराया है कि किसी प्राचीन कालमें जो लाखों वर्षोंतक पहुंचता है भारतका मानचित्र वह न था जो अब है। जो प्रदेश अब गङ्गा और यमुनाके जलोंसे सींचा जाता है वहां उस समय समुद्र था। और यह समुद्र राजपुतानाके सीमान्तसे लेकर आसामतक फैला हुआ था। वर्त्तमान अवध, आगरा, इलाहाबाद, बिहार और बङ्गालके प्रान्त सब जल-मग्न थे। इस समुन्द्रका नाम पूर्वी समुद्र कहा जाता है। जहां अब राजपूतानेकी मरुभूमि है वहां भी उस समय समुद्र था। इस समुद्रका नाम उन्होंने राजपूताना सागर रक्खा है। उस समय अरब सागर भी उसी स्थानतक पहुंचता था जहां पञ्जाबकी पांचों नदियां सिन्धुमें मिलती हैं। इसके अतिरिक्त हिमालयके उत्तरमें तुर्किस्तानसे लेकर कृष्ण सागर-तक एक समुद्र था जो पूर्वसे पश्चिमकी ओर झील बेकालसे लेकर कृष्ण सागरतक और उत्तरसे दक्षिणकी ओर यूराल गिरि मालासे चलकर उत्तरीय सागरतक फैला हुआ था। कृष्ण-सागर कास्पियन सागर, अराल सागर और झील बलकाश ये सब उसी सागरके भग्नावशेष हैं। यह भी कहा जाता है कि

तुर्किस्तानके पूर्वकी ओर एक और मध्यवर्ती समुद्र था जिसको एशियाई भूमध्य सागरका नाम दिया जाता है। मानों प्राचीन सप्त सिन्धुके चारों ओर चार समुद्र थे। सप्त सिन्धु प्राचीन संस्कृतमें उस प्रदेशको कहा गया है जो सिन्धु, सरस्वती और पञ्जावकी पांचों नदियोंसे सींचा जाता था और जिसको आज-कल पञ्जाब कहा जाता है।

(२) उस समयमें दक्षिण भारत एक बड़े महादेशका भाग था। यह महादेश ब्रह्मासे आरम्भ होकर पूर्वी अफ्रीकाके तटतक पहुंचता था और अधिक सम्भव है कि दक्षिणमें यह आस्ट्रेलियाकी सीमातक था। एक यूरोपीय विद्वान ब्लैंफ़ोर्डने इस महादेशका नाम इण्डोओशियानिक रक्खा है। उसका विचार है कि भूकम्प आदिके कारण यह सारा महादेश उलट पलट हो गया और भारतका वह आकार वन गया जो इस समय है।

(३) सप्त सिन्धुके विषयमें वैज्ञानिक यह मानते हैं कि यह भूखण्ड उन प्रदेशोंमेंसे है जहां पहले जीवधारी उत्पन्न हुए और जहां मनुष्यका आविर्भाव हुआ और चूंकि यहां आर्य्य-जातिके लोग ऐसे कालसे रहते हैं जिसका निरूपण करना प्रायः असम्भव है इसलिये इसी प्रदेशको उनका आदिम स्थान समझना चाहिये। इसी प्रकार द्रविड़ लोग दक्षिणी महादेशके अधिवासी हैं। वे कभी मध्य एशियासे नहीं आये।

(४) ऋग्वेदकी आन्तरिक साक्षीसे श्रीयुत दास यह परिणाम निकालते हैं कि ऋग्वेदके समयमें पञ्जावके चारों ओर समुद्र था। जैसा कि ऊपर कह चुके हैं। पञ्जावकी पांचों नदियां और सिन्धु अरब सागरके उस भागमें गिरती थीं जो राजपूताना सागरसे मिला हुआ था। गङ्गा और यमुना पूर्वी समुद्रमें गिरती थीं। सरस्वती उस समय एक बहुत बड़ी नदी थी। वह हिमालयसे

निकलकर राजपूतानाके समुद्रमें गिरती थी। ऋग्वेदमें न तो दक्षिणका और न पूर्वी भारतका ही कुछ उल्लेख मिलता है। इसका कारण यह है कि पञ्जाब और इन प्रदेशोंके बीच बड़े बड़े सागर स्थित थे।

(५) श्रीयुत दासकी सम्मतिमें सप्त सिन्धु प्राचीन आर्य्योंका मूल निवास है। यहींसे ईरानी आर्य्य परस्परके झगड़ोंके कारण ईरानमें जाकर बस गये। यहींसे आर्य्योंकी भिन्न भिन्न शाखायें भिन्न भिन्न कालोंमें पश्चिमी एशिया और मिश्रमें जाकर रहने लगीं। इसी प्रकार दास महाशयके मतानुसार प्राचीन फोनीशियन लोग आर्य्यों के उसी दलमेंसे थे जिसको वैदिक साहित्यमें पणि नामसे पुकारा है। पणि लोग पहले पहले दक्षिणको गये। वहां इन्होंने चोल और पाण्ड्य जातियोंके लोगोंसे सम्बन्ध उत्पन्न करके उनको आर्य्य-सभ्यताका अनुयायी बनाया। इन चोल लोगोंने चैल्डियाको बसाया और बेबीलोनिया राज्यकी नींव डाली।

(६) दास महाशयकी सम्मतिमें पञ्जाबी आर्य्योंके भिन्न भिन्न दल स्वदेश छोड़कर पश्चिमी एशियामें जा बसे और वहां जाकर तूरानी वंशके साथ मिल गये। यह सम्भव है कि मिश्रित वंशके दल यूरोपके कुछ भागोंमें भी पहुंच गये। उनकी सम्मतिमें आर्मीनिया, केपीडोशिया, लिडिया, फर्गिया, थोएउस और इसके इर्द गिर्दके प्रान्तोंकी बस्तियां सब पञ्जाबी आर्य्यों के वंशसे हैं। इनकी कुछ शाखाओंने किसी पीछेके समयमें जाकर एशिया-कोचकके दूसरे भागोंको बसाया। इस प्रकार कोसीन, हिट्टाइट्स (Hittites) और मीटेनियन्स (Mittanians) ये सब आर्य्य-वंशसे समझे जाते हैं।

यह कहना कठिन है कि श्रीयुत दासके ये विचार कहांतक

ऐतिहासिक घटनाओंके रूपमें स्वीकार किये जा सकते हैं। परन्तु इससे इन्कार नहीं हो सकता कि उनके विचारोंका अध्ययन अतीव मनोरञ्जक है। आर्य्योंका मूल निवास कहां था और वेदोंका काल कौनसा था, इस प्रश्नपर श्रीयुत दासने बहुत कुछ नवीन प्रकाश डाला है।

चौथा परिशिष्ट

केम्ब्रिज हिस्टरी आव इण्डियाका प्रथम खण्ड ।

अर्थात्

प्राचीन भारत ।

इतिहास नहीं वरन् निबंधसंग्रह है ।

हमारी इस पुस्तककी बहुत सी कापियां लिखी जा चुकी थीं कि इंगलैंडके प्रसिद्ध विश्वविद्यालय केम्ब्रिजकी ओरसे उनके 'भारत-इतिहास' नामक ग्रन्थका प्रथम खण्ड प्रकाशित हुआ। इसमें प्राचीन भारतकी कथाका वर्णन किया गया है। यह इतिहास ईसाके संवत्के आरम्भतकका है। शेष भाग दूसरे खण्डमें प्रकाशित होगा। तीसरे और चौथे खण्डमें मुसलमानोंके समयका और पांचवें और छठवें खण्डमें अंगरेज़ी समयका इतिहास होगा। हमने इस मालाके पहले खण्डका ध्यानपूर्वक अध्ययन किया। हमारी सम्मतिमें यह इतिहास उस कोटिका नहीं जिसकी कि आशा की जा सकती थी। पहले तो उसको इतिहास कहना ही कठिन है। इसके भिन्न भिन्न परिच्छेद भिन्न भिन्न लेखकोंके लिखे हुए हैं और स्वभावतः ही उनके विचारोंमें कहीं कहीं भेद भी है। किसी एक व्यक्तिने किसी एक विचार-विन्दुको लेकर इस इतिहासको क्रमबद्ध नहीं किया। वास्तवमें यह इतिहास निबन्धोंका एक संग्रह है। इनमें भिन्न भिन्न यूरोपीय विद्वानोंने प्राचीन भारतके सम्बन्धमें अपने विचार प्रकट

किये हैं। इसीलिये पुस्तकमें वह एकत्व नहीं पाया जाता जो एक ही ग्रन्थकारके लेखमें हुआ करता है।

इस पुस्तकमें उस दलके विचार हैं जो भारतकी सभ्यतामें मौलिकता नहीं देखता।

दूसरे प्रायः ये निबन्ध उस दलके लिखे हुए हैं जिसकी सम्मतिमें प्राचीन भारतकी सभ्यतामें जो कुछ भी सम्मान और गौरवके योग्य है वह अधिकतर बाहरसे सीखा गया है। यह सिद्ध करनेका यत्न किया गया है कि बहुत प्राचीन कालसे भारत भिन्न भिन्न सभ्य जातियोंके अधीन रहा। इसलिये सभ्यताके जितने भी अङ्गोंमें इस देशने उन्नति की उसके मूलतत्त्व उसने बाहरसे लिये। उदाहरणार्थ, अन्तिम परिच्छेदमें अध्यापक मार्शलने यह प्रतिज्ञा की है कि भारतकी ललित कलाओंमें जो कुछ सराहनीय है वह यूनान, ईरान और बेबीलोनियासे सीखा गया है। हमारे इस लेखका यह तात्पर्य नहीं कि हमारी दृष्टिमें किसी जातिका दूसरी जातिसे कुछ सीखना बुरी बात है अथवा इससे उसकी महत्तामें कुछ अन्तर आता है। न इससे यह समझ लेना चाहिये कि हमारी सम्मतिमें भारतकी प्राचीन सभ्यतापर कभी कोई बाह्यप्रभाव नहीं पड़ा।

जिन यूरोपीय अन्वेषकोंने भारतकी प्राचीन सभ्यतापर सम्मति प्रकट की है उनको सामान्यतः दो दलोंमें विभक्त किया जाता है। एक वह दल है जिसकी सम्मतिमें भारतकी सभ्यता भारतीयोंके मस्तिष्कसे निकली है। उसकी नींवें सब भारतीय हैं और उसके भवनके समस्त महत्तायुक्त भाग स्वयं भारतीयोंके बनाये हुए हैं। दूसरा दल वह है जिसके विचार केम्ब्रिज विश्व-विद्यालयके इस इतिहासमें प्रकट किये गये हैं।

वर्त्तमान कालसे पूर्वके वृत्तान्त।

बौद्ध-कालके पहलेकी सभ्यताके विषयमें जो कुछ भी लिखा गया है उसमें अधिकतर कल्पनासे काम लिया गया है। फिर कल्पनायें भी ऐसी दौड़ाई गई हैं कि जिनके समर्थनमें कोई युक्तिसङ्गत प्रमाण नहीं।

विद्यार्थियोंके लिये यह पुस्तक लाभदायक नहीं।

हमारी सम्मतिमें यह पुस्तक केवल अनुसंधान करनेवाले विद्वानोंके लिये उपयोगी हो सकती है। साधारण विद्यार्थियोंके लिये इसका अध्ययन भयावह और पथभ्रष्ट कर देनेवाला होगा।

अब हम उसके भिन्न भिन्न परिच्छेदोंपर कुछ संक्षिप्त सी टिप्पणी लिखते हैं जिससे हमारे पाठकोंको उस पुस्तकका सारांश मालूम हो जाय।

भूगोल।

प्रथम परिच्छेदमें भारत महादेशका भूगोल है। इसमें उस कालका कुछ भी उल्लेख नहीं जब उत्तरी भारतमें समुद्र लहरें मारा करता था और जब भारतका दक्षिणी भाग स्थल-मार्गसे पूर्वी अफ्रीकासे मिला हुआ था। भारतका जो बड़ा मानचित्र इस इतिहासके साथ प्रकाशित किया गया है, उसमें मौंट एवरस्टको गौरीशङ्करसे पृथक् दिखलाया गया है। मौंट एवरस्टकी ऊंचाई २६ सहस्र फुटसे कुछ अधिक दी गई है। गौरीशङ्करकी ऊंचाई २३४४० फुट दी है। हिन्दुओंकी दृष्टिमें गौरीशङ्कर उसी चोटीका नाम था जिसको अब मौंट एवरस्टके नामसे पुकारा जाता है।

जातियां और भाषायें।

दूसरे परिच्छेदमें मनुष्य-संख्या और भाषाओंका वृत्तान्त है। इस परिच्छेदके पहले अनुच्छेदमें ही अनेक कथन ऐसे हैं जिनको

कोई भारतीय स्वीकार नहीं कर सकता और जिनसे साम्राज्य-सम्बन्धी स्वार्थों की झलक आती है। उदाहरणार्थ पहले ही वाक्यमें कहा गया है कि "भारतका साम्राज्य भिन्न भिन्न प्रकारके लोगोंका एक विस्तृत संग्रह है। ये लोग आपसमें एक दूसरेसे प्राकृतिक विशेषताओंमें, भाषाओंमें और संस्कृतिमें उससे अधिक भिन्न हैं जितने कि यूरोपके भिन्न भिन्न देशोंके अधिवासी आपसमें एक दूसरेसे हैं।" वंश-भेदके सम्बन्धमें बताया गया है कि भारतमें मनुष्यके तीनों वंशोंके प्रतिनिधि मौजूद हैं अर्थात् पहले आर्य्य, दूसरे मङ्गोल और तीसरे हब्शी (ईथियोपियन)। प्रथमोक्त दो ठेठ भारतमें और शेषोक्त अण्डेमान द्वीप-समूहमें पाये जाते हैं। परन्तु स्मरण रखना चाहिये कि प्रथमोक्त दोनों वंशोंके लोग यूरोपमें भी हैं और जितना मिलावट दक्षिण भारतके तीसरे प्रकारके कुछ अधिवासियोंमें पाई जाती है लगभग उतनी ही दक्षिणी यूरोपके अधिवासियोंमें भी मौजूद है।

भाषाओंके विषयमें लिखा है कि "सन् १९११ की मनुष्य-गणनामें २२० जीवित भाषायें लिखी गई हैं।" जिन सिद्धान्तोंपर भारतकी भिन्न भिन्न भाषाओंको बांटा गया है यदि उन्हीं सिद्धान्तोंपर यूरोपकी भाषाओंको बांटा जाय तो कदाचित् यूरोपीय भाषाओंकी संख्या भी सैकड़ोंसे बढ़ जावे। संसारकी भाषाओंको पांच भिन्न भिन्न शाखाओंमें बांटा गया है, अर्थात् (१) "आष्ट्रिक" (२) "तिब्बती और चीनी" (३) "द्रविड़" (४) "इण्डो यूरोपीय" (५) "सेमेटिक"।

यह माना गया है कि (१), (२) और (४) संसारमें बहुत विस्तारके साथ फैली हुई हैं, परन्तु (३) का अस्तित्व भारतसे बाहर नहीं पाया गया। यूरोपमें सिवाय (४) के शेष सब भाषायें पाई जाती हैं। इरानी भाषा इसी शाखासे है और यूरोपमें यदि

करोड़ों नहीं तो लाखों मनुष्य इस भाषाको बोलते हैं। इस भाषाके बहुतसे प्रकार हैं, जैसे जर्मनकी यिडिश उस यिडिशसे सर्वथा भिन्न है जो रूसमें या रूममें बोली जाती है। इसी अनुच्छेदमें फारसीको भी सेमेटिक भाषा बताया गया है। पर सम्भवतः यह लिखनेकी भूल है।

बाह्य विजयी। पृष्ठ ३८ पर यह वर्णन है कि उत्तर-पूर्व पहाड़ोंके मार्गसे असंख्य विजयी सेनायें * चीनकी ओरसे भारतमें प्रविष्ट हुईं। यह कथन हमारे ज्ञानमें बहुत सन्दिग्ध है और उस सारे ग्रंथ-खण्डमें इसके समर्थनमें एक भी ऐतिहासिक घटना नहीं दी गई और न कोई प्रमाण-पत्र ही उद्धृत किया गया है। सम्भवतः यह बात ठीक होगी कि कुछ जातियाँ † भारतमें बसनेके उद्देश्यसे इस ओरसे प्रविष्ट हुई हों। परन्तु आक्रमणकारी भी इस ओरसे आये इसका कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं उपस्थित किया गया। पृष्ठ ४६ पर "आस्ट्रिक" भाषाओंके उद्भवपर विवाद करते हुए फिर इन पूर्वी आक्रमणोंका उल्लेख किया गया है, परन्तु इसके समर्थनमें कोई प्रमाण नहीं उपस्थित किया गया। सम्भवतः इसका सम्बन्ध ब्रह्मा या भूटानसे है। ब्रह्माको भारतमें गिनना भारी भूल है। इस भूलसे भारतके इतिहासका सारा दृश्य अप्रकृत हो जाता है। उत्तर-पूर्वी दर्रोंसे सेनाओंका आना तो दूर रहा उस ओरसे पर्यटक और व्यापारी भी कभी भारतमें प्रविष्ट नहीं हुए। इस प्रकार जितने चीनी पर्यटक इस देशमें आये वे उत्तर-पश्चिमी मार्गोंसे आये। उन उत्तर-पश्चिमी मार्गोंसे प्रविष्ट होनेके लिये चीनसे चलकर उन्हें सारे चीनी तातार या तिब्बतको लाँघना पड़ा।

* Swarms of Nomads and Conquering Armies.

† Tribal migrations.

जातियोंका भेद करनेकी विद्या। यह भी स्मरण रहना चाहिये कि भिन्न भिन्न मानवी दलोंको भिन्न भिन्न जातियों या वंशोंमें विभक्त करनेकी विद्या अभी अपने बाल्यकालमें ही है। उसके सिद्धान्त अभी तक किसी स्थायी आधारपर प्रतिष्ठित नहीं हुए और बहुत अंशोंमें काल्पनिक हैं। इस विद्याका सहारा लेकर वंश-भेद और जातीय श्रेष्ठता तथा उच्चताकी बहुतसी निस्सार और निरर्थक प्रतिज्ञायें की जाती हैं। इन प्रतिज्ञाओंकी नींव बिलकुल कच्ची है। आर्थर जेम्स टाड नामके एक अमरीकन अध्यापकने अपनी "थियोरीज़ आव सोशल प्रोग्रेस" (१९१६ ई०) नामक पुस्तकके १८ वें परिच्छेदमें इस विषयपर बड़ी ही योग्यतासे विचार किया है। भारतीयोंके पारस्परिक सम्बन्धोंका निर्भर वंश-भेदपर नहीं है और वंश-भेदपर भारतकी जनताके किसी भागका दूसरे भारतीयोंकी तुलनामें श्रेष्ठता या उच्चताकी प्रतिज्ञा करना न केवल मिथ्या वरन् अत्यन्त हानिकारक है। जो यूरोपीय ऐतिहासिक भारतका इतिहास लिखते या भारतीय सभ्यतापर विवाद करते समय इन वंश-भेदोंपर बल देते हैं वे भारतीय राष्ट्रीयताके भावको दुर्बल करते हैं। हम उनपर कुसंकल्पका दोष नहीं लगाते। परन्तु हम भारतीय नवयुवकोंको इस मिथ्या विवादकी सर्वथा उपेक्षा करनेका परामर्श देते हैं। यह विवाद न केवल व्यर्थ वरन् घोर हानिकारक है। इसलिये भारतीय इतिहासोंमें इसपर अधिक जोर देनेकी आवश्यकता नहीं।

भारतके साहित्य-भाण्डारका स्थान। पृष्ठ ५८ पर अध्यापक रपसनकी आगे लिखी सम्मति विचारणीय है :—

"ब्राह्मण, बौद्ध और जैन साधुओंने जो साहित्य-भाण्डार छोड़े हैं उनमें स्वभावतः ही धार्मिक विश्वासोंपर विचार किया

गया है न कि राष्ट्रीयतापर ; उनका सम्बन्ध विचारोंसे है न कि कर्मसे, कल्पनाओंसे है न कि सत्य घटनाओंसे। सच तो यह है कि धर्म्म और तत्वज्ञानके इतिहासमें, कानून और सामाजिक संस्थाओंकी उन्नतिकी विद्याके लिये, और ऐसी विद्याओंके विकासकी कहानीमें जैसा कि व्याकरण है और जिसका निर्भर घटनाओंके अतीव सूक्ष्म तथा सावधान अवलोकनपर है, ये भाण्डार प्राचीन संसारके भाण्डारोंमें अपनी पूर्णता तथा क्रममें अद्वितीय हैं। परन्तु राजनीतिक प्रगतिके इतिहासके लिये वे अपर्याप्त हैं।"

यह विचार सर्वथा सत्य है कि प्राचीन आर्य्य-साहित्यमें, चाहे वह ब्राह्मणोंका हो, बौद्धोंका हो या जैनोंका, अधिकतर बल सिद्धान्तोंके वर्णनपर, तत्त्वज्ञानके स्पष्टीकरणपर और धर्म्मके व्याख्यानपर दिया गया है। राजनीतिक इतिहासको प्राचीन भारतीय वह महत्व न देते थे जो आजकलके यूरोपीय देते हैं। उनकी दृष्टिमें राजाओंके नाम, उनका कार्य-कलाप या लड़ाई-झगड़े इस योग्य न थे कि विद्वान् लोग अपना अमूल्य समय और मस्तिष्क उनका वर्णन करनेमें नष्ट करते। उनकी दृष्टिमें इतिहासका सर्वोत्तम उद्देश्य यह था कि लोगोंको भिन्न भिन्न कालोंके विचारों, रीतियों, नीतियों, और नियमोंका ज्ञान हो, न कि अकेले राजाओंके वृत्तान्तोंसे पोथेभर दिये जायँ। फिर भी हमारे प्राचीन साहित्यमें "इतिहास"की उपेक्षा नहीं की गई। भाग्यसे भारतका बहुतसा साहित्य नष्ट हो गया। जो ऐतिहासिक साहित्य शेष है उसमें बहुत कुछ प्रक्षेप किया गया है।

भारतीय सभ्यताकी विशेषता।

पृष्ठ ६१ पर आगे लिखी सम्मति भारतीय सभ्यताकी विशेषताको भली भाँति प्रकट करती है। शिलालेखों आदिसे जो

कुछ सहायता इतिहासमें मिलती है उसका वर्णन करते हुए अध्यापक रपसन लिखते हैं:—

"ये शिला-लेख जहां एक ओर एक सैनिक वर्ण (अर्थात् क्षत्रियों) की कभी विश्राम न लेने वाली चेष्टाके प्रमाण हैं वहां दूसरी ओर उनसे यह मालूम होता है कि भारतीय संस्थायें ऐसी दृढ़ नींवोंपर प्रतिष्ठित थीं कि सैनिक विजयोंसे उनमें कुछ भी अन्तर न आता था। भिन्न भिन्न विजेता एक दूसरेके पश्चात् आये, परन्तु भिन्न भिन्न राज्योंके प्रबन्धमें कोई परिवर्तन न हुआ। शासन प्रायः उसी राजा या उसी वंशके किसी दूसरे स्तम्भके हाथमें रहा और भिन्न भिन्न मठों (तथा अन्य धार्मिक संस्थाओं) के अधिकार (चार्टर) यथापूर्व नये सिरेसे दिये जाते रहे।"

जहाँतक विजयोंका सम्बन्ध है, यह कथन सत्य है। भारतमें बहुतसे राजनीतिक परिवर्तन आये; कुछ बाह्य आक्रमणोंके कारण और कुछ भीतरी कारणोंसे। परन्तु सामान्यतः देशके राजनीतिक और नागरिक जीवनपर उनका बहुत स्पष्ट प्रभाव न हुआ। प्राचीन हिन्दू इस सिद्धान्तपर पक्के थे कि वे प्रायः जिस देशको विजय करते थे उसकी शासन-पद्धतिमें कुछ भी परिवर्तन न करते थे और वहांके लोगोंकी स्वतन्त्रतामें बाधा न देते थे। राज्यकी परम्परा वही रहती थी। यहाँ तक कि वे कर लेनेपर भी आग्रह न करते थे। केवल उससे अपनी अधीनता स्वीकार करा लेते थे। लोगोंका नागरिक जीवन और रहन-सहनका ढंग पूर्ववत् बना रहता था। किसानोंको कोई कुछ न कहता था। फसलोंको लूटने या नष्ट करनेका घोर निषेध था। प्रजाके जीवनमें हस्तक्षेप करना पाप था। आजकलकी तरह शत्रुकी प्रजाके भोजन तथा जलका बन्द करना, उसपर बम

गिराना, उनके शस्यको जला देना आदि बातें कभी उनके मन तकमें न आती थीं।

आर्य्यके स्थानमें एक नया शब्द।

तीसरे परिच्छेदमें अध्यापक एपसनने "इण्डो यूरोपियन" या "इण्डो जर्मनिक" या "आर्य्य" शब्दके स्थानमें एक नवीन शब्दका उपयोग किया है। अबतक यह प्रथा चली आती है कि "इण्डो यूरोपियन" या "इण्डो जर्मनिक" भाषाओंके बोलनेवालोंको आर्य्य, या 'इण्डो यूरोपियन' या 'इण्डो जर्मनिक' कहा जाता है परन्तु अब उक्त अध्यापक 'वीरोस'* कहनेका परामर्श देते हैं। इस शब्दका अर्थ बहुत सी भाषाओंमें केवल "मनुष्य" है। अध्यापक महाशयकी सम्मतिमें प्राचीन आर्य्योंका निवास हंगरी, आस्टरिया और बोहिमिया था। वे वहाँसे चलकर मीसोपोटेमिया, ईरान, और भारतमें आये। अध्यापक महाशय यह भी लिखते हैं कि "इस स्थानान्तरकरणके लिये ईसाके २५०० वर्ष पूर्वसे पहलेका काल निरूपित करनेकी आवश्यकता नहीं †।" इस सारे परिच्छेदका आधार ऐसी कल्पनायें और विवाद हैं जिनकी नींवमें कोई योग्य घटनायें नहीं हैं। इसको "इतिहास" कहना सर्वथा अन्याय है।

ऋग्वेदकी प्राचीनता।

चौथे परिच्छेदमें यही अध्यापक महाशय ऋग्वेदका काल निरूपित करते हैं। इस सारे परिच्छेदका आधार भी अतीव निस्सार कल्पनाएँ हैं। वेदोंके विषयको समझने, उनके भिन्न भिन्न भागोंका समय निरूपित करने और उनसे परिणाम निकालनेमें भारतके प्राचीन या अर्वाचीन पण्डितों या विद्वानोंके मतका कहीं प्रमाण नहीं

* Wiros

† देखो पृष्ठ ७०

है। केवल यूरोपीय लेखकोंके प्रमाण दिये हैं। यूरोपीय तथा अमरीकन अध्यापक प्रायः इसी नियमपर चलते हैं। वे अपने विचारमें वैदिक विषयोंको भारतीय पण्डितोंकी अपेक्षा अधिक अच्छी तरहसे समझते हैं। वे सब भारतीय विद्वानोंकी सम्मतिको (चाहे वे प्राचीन हों या अर्वाचीन) मिथ्या समझकर उनकी सर्वथा उपेक्षा करते और अपनी मन-मानी कल्पनाओंके आधारपर भारतीय इतिहास लिखने बैठते हैं। इस सारे परिच्छेदमें पण्डित बाल गंगाधर तिलकके लेखोंका संकेततक नहीं। हाँ, पृष्ठ १४६ की पाद-टीकामें जो उन पुस्तकोंकी सूची दी गई है जिन्होंने ज्योतिष-विद्याकी साक्षीपर वेदोंका काल निरूपित किया है उसमें तिलककी पुस्तकका भी नाम है। न कहीं सायणाचार्यका प्रमाण है और न किसी दूसरे भारतीय विद्वानका। अपने परिणामोंके समर्थनमें जिस प्रकारकी युक्तियाँ उपस्थित की गई हैं उनके दो एक नमूने हम आगे लिखते हैं:—

नमूनेके रूपमें कतिपय युक्तियां।

पृष्ठ ७८ पर लिखा है कि ऋग्वेद-संहिताका वह भाग जिसको "दान-स्तुति" कहा है निस्सन्देह पीछेका है और "ऐतिह्य" की दृष्टिसे उसको इस संहितामें उचितरूपसे सम्मिलित नहीं किया गया। इस कथनके समर्थनमें कोई प्रमाण नहीं दिया गया।

पृष्ठ ७६ पर लिखा है कि ऋग्वेदका अधिकांश उस समयकी रचना है जब कि आर्य्य लोग सरस्वतीके इर्द गिर्द अम्बालाके दक्षिणमें बसते थे। "ऋग्वेदके मन्त्रोंमें अधिकतर वर्णन प्रकृतिके तत्त्वोंके लड़ाई-झगड़ोंका है। मेघके गर्जन और बिजलीके दृश्योंपर गीत बनाये गये हैं और बादलोंसे वर्षाके फूटनेका दृश्य दिखाया गया है।" अध्यापक महाशय लिखते हैं कि "ठेठ पञ्जाबमें ये

दृश्य नहीं पाये जाते। ठेठ पञ्जाबमें वर्षाकालमें केवल हलकी हलकी फुहारें पड़ती हैं। उसके विस्तृत मैदानोंमें वे पहाड़ नहीं मिलते जिनपर वैदिक भारतीयोंने अपनी 'कवि-कल्पनाका व्यय किया।" प्रत्येक पञ्जाबी यह कह सकता है कि यह कथन सारे-का सारा मिथ्या है। रावलपिण्डीसे कतिपय मीलके अन्तरपर हिमालयकी गिरिमाला है। वह निरन्तर आसाम तक चली जाती है। डलहौज़ी और धर्मशालाकी चोटियाँ मैदानसे बहुत निकट हैं। इन सब पर्वतोंमें बरसात बहुत ज़ोरकी होती है। बादल खूब गरजते हैं। बिजली खूब चमकती है और गिरती भी है। थानेश्वर या अम्बालाके प्रान्तमें वर्षा उससे अधिक नहीं होती जितनी कि ठेठ पञ्जाबमें होती है।

पृष्ठ ८० पर एक झील शर्यणावन्तका उल्लेख है। अध्यापक महाशयके मतमें यह थानेश्वरके निकट स्थित थी। परन्तु अध्यापक हिल ब्रेण्डकी सम्मतिमें यह काश्मीरकी 'वूलर डल' ही थी। यदि यह पिछला कथन सत्य है तो इसका यह अर्थ है कि ऋग्वेदके ऋषियोंको काश्मीरका ज्ञान था जहां वर्षा निहायत ज़ोरोंसे होती है और बिजली खूब कड़कती है। हमारी सम्मतिमें यह सारा विवाद मिथ्या है।

पृष्ठ ८५ और ८६ पर "दास" शब्दसे तात्पर्य "गुलाम" लिया गया है और परिणाम यह निकाला गया है कि वेदोंमें दासोंको व्यक्तिगत सम्पत्तिमें गिना गया है। परन्तु इस कथनके समर्थनमें किसी मन्त्रका प्रमाण नहीं दिया गया। पृष्ठ ८७ पर शब्द 'बेकनाट' के विषयमें लिखा गया है कि जो लोग यह समझते हैं कि इस शब्दसे किसी 'बेबीलोनियन' शब्दका पता चलता है वे भूल करते हैं।

इसका इससे अधिक युक्तिसंगत मूल "बीकानेर" प्रतीत होता

है। परन्तु यह नहीं बताया गया कि यह बीकानेर शब्द वही है जिससे तात्पर्य बीकानेर-राज्यकी राजधानी से है या कोई और। बीकानेरकी राजधानी तो वैदिक शब्द नहीं है। बीकानेर को बीका राठौरने ईसाकी पन्द्रहवीं शताब्दीके लगभग बसाया और अपने नामके साथ उस स्थानके मूल स्वामी नेर या नेराका नाम जोड़कर उसको बीकानेर कहने लगा। [देखो, टाड कृत राजस्थान, दूसरा खण्ड, पृष्ठ १४१]।

सारांश यह कि सारेका सारा परिच्छेद इसी प्रकारके मिथ्या परिणामोंसे भरा हुआ है। इस अध्यापककी सम्मतिमें ऋग्वेदका काल लगभग १२०० वर्ष ईसाके पूर्व था। इस परिच्छेदके अन्तिम भागमें प्रोफेसर जेकोबीके परिणामोंका खण्डन किया गया है। हमारी सम्मतिमें ऋग्वैदिक कालका इतिहास लिखनेकी चेष्टा सर्वथा निरर्थक है। यदि हिन्दुओंके वेद-सम्बन्धी विश्वासोंको न भी स्वीकार किया जाय तो भी अबतक संसारमें कोई विद्वान ऐसा उत्पन्न नहीं हुआ जिसने वेदोंकी भाषाको भली भांति समझा हो। अध्यापक मेक्समुलरके कथनानुसार यूरोपीय विद्वान लगभग डेढ़ सौ वर्षोंसे वेदोंके विषयोंको पहेलियोंके सदृश बूझनेका यत्न कर रहे हैं और अभीतक इसमें उनको सफलता नहीं हुई।

भारतीय विद्वानोंमें भी कोई ऐसा दिखाई नहीं देता जिसको वैदिक भाषापर अधिकार हो। कुछ मन्त्र साफ़ हैं। उनके अर्थ भी किये जा सकते हैं। वैदिक कालका निरूपण करने और तत्कालीन सभ्यताका पूर्ण चित्र उपस्थित करनेकी चेष्टा व्यर्थ है। जो भी हो इन कल्पनात्मक परिणामोंको ऐतिहासिक पद देना केवल धोखा देना है और इनको भारतीय इतिहासका अङ्ग बनाना भारी भूल है।

ऋग्वेदके समयकी सभ्यताका चित्र। वैदिक कालकी सभ्यताके विषयमें अध्यापक रपसनकी आगे लिखी सम्मतियां ध्यान देने योग्य हैं :—

(१) ऋग्वेदमें एक स्त्रीके एकसे अधिक पतियोंका का कोई उल्लेख नहीं। विवाहका सामान्य नियम एक पति और एक पत्नी (मानोगेमी) था। बाल्यावस्थाके विवाहका भी कोई चिह्न नहीं। वर और कन्याको आपसमें पसन्द करनेका अधिकार था। पृष्ठ ८८।

(२) जाति पांतिका भेद अभी दृढ नहीं हुआ था और परम्परागत न था। (पृष्ठ ९२)।

(३) राजा भूमिका स्वामी न समझा जाता था। (पृष्ठ ९५)।

(४) यद्यपि वेश्यायें थीं परन्तु आचारका आदर्श बहुत ऊंचा था। (पृष्ठ ९७)।

(५) वैदिक-कालमें लोग बहुतसे शिल्पोंको जानते थे और शिल्पके कारण किसी व्यक्तिको घृणाकी दृष्टिसे न देखा जाता था। बढ़ईका काम, लोहारका काम, रज्जु बनाना, कपड़े बुनना, सीना, बोरिये बनाना इत्यादि सबका उनको ज्ञान था। (पृष्ठ १००)।

(६) वैदिक आर्य्योंको जहाज चलाने और समुद्रका ज्ञान न था *। (पृष्ठ १०१)।

(७) जरीदार वस्त्रों और सोनेके आभूषणोंका बहुत बार उल्लेख मिला है। (पृष्ठ १०१)।

(८) फल और तरकारी भोजनका प्रधान भाग था। (पृष्ठ १०१)।

*—इस विषयमें देखो प्रो० अविनाशचन्द्र दासकी नवीन पुस्तक। इसमें उन्होंने वैदिक ऋषियोंके जहाज चलानेके प्रमाण दिये हैं।

(६) यद्यपि वैदिक आर्य्य अपने अतिथियोंके लिये बैलका बलिदान करते थे परन्तु गायको वे भी पवित्र समझते थे। (पृ० १०२)।

(१०) मदिरा (सुरा) का यद्यपि प्रचार था परन्तु उसको बुरा समझा जाता था। (पृ० १०२)।

(११) नाचने और गानेकी प्रथा थी और संगीत-विद्या आरम्भिक अवस्थासे उन्नति कर चुकी थी। (पृ० १०३)।

(१२) ऋतसे अभिप्राय प्रथम तो प्राकृतिक नियम और फिर नैतिक नियमसे है। (पृ० १०३)।

(१३) ऋग्वेदमें जन्तुओंकी पूजाका उल्लेख नहीं। जन्तुओंको पवित्र समझकर उनका पूजन न किया जाता था। (पृष्ठ २०५ तथा १०६)।

(१४) न सांपोंकी पूजाका कोई उल्लेख है। (पृ० १०६)।

(१५) ऋग्वेदमें मनुष्यके बलिदानका कोई चिह्न नहीं। (पृ० १०६)।

(१६) देवताओंके प्रति भारतीयोंका वर्ताव ऐसा न था जिससे पाया जाता हो कि वे उनसे डरते थे। उनकी सम्मतिमें यदि देवताओंकी उचित रीतिसे पूजा की जावे तो उनसे काम लिया जा सकता था। (पृ० १०६)।

(१७) सतीका कोई चिह्न नहीं और न आवागमनका है। (पृ० १०८)।

(१८) मन्त्रोंमें अधिकतर बल शक्तिपर दिया गया है न कि आचरणपर। (पृ० १०८)।

(१६) ऋग्वेदकी भाषा असाधारण रूपसे पूर्ण है। (पृ० १०६)।

यजु, साम और अथर्व वेदकी और ब्राह्मण, आरण्यक तथा उपनिषदोंकी सभ्यता।

पंचम परिच्छेदमें दूसरे वेदों, ब्राह्मणों और उपनिषदों आदिका वर्णन है। इसमें अधिकतर कल्पनाओंसे काम लिया गया है। सूत्रोंके समयको ब्राह्मणोंके समयके साथ खिचड़ी कर दिया गया है। उदाहरणार्थ पृष्ठ १२६ पर माना गया है कि ब्राह्मणोंमें शूद्रोंको घृणाकी दृष्टिसे नहीं देखा गया वरन् आर्यों और शूद्रोंकी सामान्य रक्षा तथा भलाईके लिये प्रार्थना की गई है और धनाढ्य शूद्रोंका उल्लेख मिलता है। परन्तु सूत्रोंमें शूद्रोंको वेद पढ़नेका निषेध है और उनके हाथसे खाना निषिद्ध है।*

तैत्तिरीय संहिता जो राजाके रत्न बताये गये हैं उनकी सूची यह है :—पुरोहित, राजन्य, महिषी (अर्थात् पहली रानी) सूत (अर्थात् रथवान), सेनानी अर्थात् सेनापति, ग्रामणी अर्थात् गांवका नम्बरदार, क्षत्तृ अर्थात् राजसदनका अध्यक्ष, संगृहीतृ अर्थात् खजानची, अक्षावाप अर्थात् जूआ खेलनेके यन्त्रोंका अध्यक्ष।

शतपथ ब्राह्मणमें व्याध और दूतको भी इस सूचीमें स्थान दिया गया है और मैत्रायिणी संहितामें तरखान और रथके बनानेवालेको भी उसी सूचीमें स्थान दिया गया है (पृ० १३०-१३१)।

पञ्चविंश ब्राह्मणमें आगे लिखे व्यक्तियोंको आठ वीरोंके नामसे पुकारा गया है :—

भाई, बेटा, पुरोहित, महारानी, सूत, ग्रामणी, क्षत्तृ, संग्रहीतृ।

विश्वकर्मा भौवन नामक एक राजाने अपने पुरोहितोंको भूमिका दान दिया। इसपर धरती माताने उसको बहुत लज्जित किया।

* कोई प्रमाण नहीं दिया गया।

वैदिक साहित्यमें 'समिति' और 'सभा' शब्दोंका बहुत प्रयोग पाया जाता है। यह भी लिखा है कि 'समिति' अर्थात् सर्वसाधारणका मण्डल राजाका निर्वाचन करता था। ब्राह्मण-साहित्यमें 'बहिष्कृत' राजाओंका उल्लेख प्रचुरतासे मिलता है। इससे प्रतीत होता है कि प्रजा उतनी आज्ञाकारिणी न थी जितनी कि कभी कभी प्रकट की जाती है। राजा लोग बहुत बार सिंहासन और राजमुकुटसे भी वंचित कर दिये जाते थे। मदिरापान 'महापाप' बताया गया है। न्यायका भाव यहांतक बढ़ा हुआ था कि जब राजा और पुरोहितसे संयोगवश एक लड़का मर गया तो उस विषयपर (समिति या सभामें) बहुत चर्चा हुई और बहुत सा वाद-विवाद हुआ (पृ० १३३), अन्ततः राजाको प्रायश्चित्त करना पड़ा।

फौजदारी अपराधोंके लिये केवल एक कुल्हाड़ीकी परीक्षा (आरडियल) का वर्णन है। परन्तु यह नहीं बताया गया कि कि इसका क्या अर्थ था। सूत्रोंमें अपराधोंके बदलेमें दंडरूपसे नगदी देनेका वर्णन है। क्षत्रियकी मृत्युका बदला एक सहस्र गाय, वैश्यकी मृत्युका एक सौ, और शूद्रकी मृत्युका दस गाय नियत था। शूद्रकी अवस्थामें दस गायोंके अतिरिक्त, जो मृत व्यक्तिके उत्तराधिकारियोंको दी जाती थीं, एक सांड राजाको भी देना आवश्यक होता था।

कानून। कानूनों, अपराधों और अभियोगोंका उल्लेख करते हुए इस परिच्छेदके लेखकने एक एक सूत्रके प्रमाणसे सामान्य परिणाम निकाले हैं और यह नहीं बताया कि बाकी सूत्रोंने उसी विषयपर क्या व्यवस्था दी है। उदाहरणार्थ यह लिखा है कि एक सूत्रमें स्त्रीको शूद्रका पद दिया गया है और उसको सम्पत्तिकी स्वामिनी बननेके अयोग्य बना दिया गया

है। उसकी अपनी आयपर उसको कोई अधिकार न था। वह उत्तराधिकारियोंमें गिनी न जाती थी, यद्यपि इस विषयमें धर्म्म-शास्त्रों और स्मृतियोंकी व्यवस्थायें परस्पर विरोधी हैं। कुछ सूत्रोंमें स्त्रीका पद बहुत नीचा है, कुछमें ऊँचा है। कुछ सूत्रोंमें नर-सन्तानके अभावकी अवस्थामें स्त्रीको दायाद बताया गया है और उसे अपने स्त्री-धनपर पूरे पूरे अधिकार दिये गये हैं।

शिल्पोंकी सूची बहुत लम्बी और पूर्ण है। धातुओंमेंसे सोने, चाँदी, सीसे, ताम्बे और लोहेका उल्लेख है। कहा गया है कि उस समयमें सिक्के न थे। परिच्छेदमें उनके वसनका, कुंकुमसे रँगे हुए परिधानका और रेशमी कपड़ोंका वर्णन है। मांस-भक्षणको कहीं कहीं बुरा कहा गया है। अथर्ववेदमें मांस खाने-को मदिरा-पानके समान पाप बताया गया है (पृ० १३७)।

चिकित्सा-शास्त्रमें उस कालमें बहुत उन्नति हुई। बहुतसे रोगोंके नाम लिखे हुए हैं, यद्यपि शरीर-व्यवच्छेद-विद्या (अनाटमी) का ज्ञान अभी बहुत अधूरा था।

नक्षत्र-विद्याके विषयमें अध्यापक रपसनकी सम्मति है कि नक्षत्रोंका ज्ञान भारतमें बेबीलोनसे आया। उसकी सम्मतिमें वैदिक ऋषियोंको ज्योतिषका कुछ भी ज्ञान न था, यद्यपि ब्राह्मणों-के कालमें इसमें पर्याप्त उन्नति हो गई थी (पृ० १४०)। इस विवादके लिये किसी भी सनदका प्रमाण नहीं दिया गया।

उपनिषदोंके विषयमें उक्त अध्यापक महाशय कोई बहुत उच्च सम्मति नहीं रखते। हाँ, इतना वे मानते हैं कि किसी किसी स्थानपर वादानुवादमें महत्ता और गौरव पाया जाता है।

यहाँतक तो भारतका इतिहास अधिकांशमें कल्पनाओंपर और किसी अंशमें हिन्दू-साहित्यके आधारपर लिखा गया है।

अब इसके पश्चात् जो परिच्छेद आते हैं उनमें दूसरे आधारोंका भी प्रमाण है।

जैनोंका इतिहास।

छठे परिच्छेदमें जैनोंका संक्षिप्त इतिहास दिया गया है। उसके आरम्भमें ही लिखा गया है कि बौद्ध साहित्यके अनुसार महात्मा बुद्ध और महात्मा महावीरके जन्मके समय भारतमें ६२ प्रकारके भिन्न भिन्न दार्शनिक सम्प्रदाय थे।

सातवें परिच्छेदमें बौद्धोंका आरम्भिक इतिहास है।

यह परिच्छेद अध्यापक हाइस डेविड्सकी लेखनीका लिखा हुआ है। इसमें वर्णित वृत्तान्त अधिकतर उनकी पुस्तक, "बुद्धिस्ट इण्डिया," के अनुसार हैं।

इस इतिहासमें महात्मा बुद्धके जन्म तथा मृत्युकी तिथियोंके सम्बन्धमें बहुतसे भिन्न भिन्न कथन हैं। पृष्ठ १५६ पर लिखा है कि "अब विद्वान सामान्यतः इस बातपर सहमत हैं कि महात्मा बुद्धका देहान्त ईसासे लगभग ४८० वर्ष पूर्व हुआ।" उस पृष्ठपर एक नोटमें यह संवत् ४८३ ई० पू० स्थिर किया गया है। परन्तु सातवें परिच्छेदके पहले ही अनुच्छेदमें ४८३ को बुद्धदेवके जन्मका संवत् लिखा गया है।

"बुधिस्ट इण्डिया" में उक्त अध्यापकने तत्कालीन भारतमें इस लोकतन्त्र राज्योंकी सूची दी है। इस पुस्तकमें उनकी संख्या पन्द्रह लिखी है (पृ० १७५)। पाँच जातियाँ वे थीं जिनका उल्लेख यवन दूत मगस्थनीज़ने किया है परन्तु उनकी अभी पूरी पहचान नहीं हुई।

बौद्धकालकी आर्थिक अवस्था।

आठवें परिच्छेदमें श्रीमती हाइस डेविड्स-पत्नीने उस समयकी आर्थिक अवस्था लिखी है। यह भी "बुधिस्ट इ[illegible]" के ही [illegible]

भूमिके राजस्वका दर । राजस्वकी दर १६' से ०८३' तक लिखी गई है (पृ० १९९)। ब्राह्मण और क्षत्रिय भी खेती-वारी करते थे। कृषि-कर्मको कोई घृणाकी दृष्टिसे नहीं देखता था।

दासत्व । श्रीमती हाइस डेविड्स-पत्नी दासत्वका मौजूद होना बतलाती हैं। उनके लेखानुसार आगे लिखी रीतियोंसे मनुष्योंको दासत्वका नरक भोगना पड़ता था :— लड़ाईमें पकड़े जानेसे, मृत्यु-दण्डके स्थानमें, ऋणके बदले, अपनी इच्छा, अथवा न्यायालयके निर्णयसे। गुलामोंको अधिकार था कि रुपया चुकाकर अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त कर लें अथवा कोई उनको स्वतन्त्र करा दे। परन्तु यह बात ध्यान देने योग्य है कि इन रीतियोंमें क्रम द्वारा गुलामीका वर्णन नहीं। सामान्य अवस्थाओंसे यह प्रतीत होती है कि उस कालमें भारतमें जिस गुलामीकी प्रथा थी वह अपने स्वरूपमें रोमन और यूनानीकालकी गुलामीसे भिन्न थी। आधुनिक कालकी गुलामीसे तो उसे कुछ अनुपात ही न था। सम्भवतः इसी विचारसे मगस्थनीज़ने लिखा है कि भारतमें गुलामीकी प्रथा न थी।

व्यवसायियोंकी पञ्चायतें । व्यवसायियोंकी अपनी कमेटियाँ थीं। इनको अंगरेजी भाषामें 'गिल्ड' कहते हैं और संस्कृतमें सेनी या श्रेणी लिखा है। इन श्रेणियोंके प्रमुख अर्थात् प्रधान कई बार मन्त्रीकी पदवी रखते थे। बौद्धोंके साहित्यसे प्रतीत होता है कि उस कालमें अभी जाति-पांतिके बन्धन इतने कड़े न हुए थे। लोग आपसमें एक दूसरेके साथ रोटी-बेटीका सम्बन्ध स्वतन्त्रता-पूर्वक करते थे। हां, चण्डालोंके हाथका छुआ हुआ कोई न खाता था और कतिपय व्यवसायोंको कम पसन्द किया जाता था, जैसे कि मृत-

शवोंके उठानेवाले या चमड़ेका व्यवहार करनेवाले या शिकारी इत्यादि।

समुद्र-यात्रा। पोतोंके द्वारा समुद्र-यात्राका भी उल्लेख है (यद्यपि कम)। पोत ऐसे बड़े बड़े बनाये जाते थे कि सैकड़ों मनुष्य एक पोतमें यात्रा कर सकते थे (पृष्ठ २१३)। स्थल-मार्गोंपर प्रायः कोई भय न था। राजकुमार, धनिक और ब्राह्मण लोग, किसी प्रकारकी रोक-टोक और लूटे जानेके डरके बिना, विश्वविद्यालयोंको जाया करते थे (पृ० २१४)।

हुण्डियां और प्रामिसरी नोट। उन दिनोंमें हुण्डियों और प्रामिसरी नोटोंकी प्रथा प्रचलित हो चुकी थी। सूदको "वड्ढी" कहते थे। यह शब्द आजकल घूसके लिये प्रयुक्त होता है। प्रचुर मुनाफ़ा लेना बुरा समझा था।

महाभारत रामायण और सूत्रोंका वर्णन। परिच्छेद ६ से परिच्छेद १२ तक अध्यापक वाशवर्न हापकिन्सके लिखे हुए हैं। वे एक अमरीकन विश्वविद्यालयके अध्यापक हैं। इन परिच्छेदोंमें सूत्रों, महाभारत, रामायण और धर्म्म-शास्त्रोंका वर्णन है। उस समयके सामाजिक नियमों, रीति-नीतियों, कानूनों और न्याय-पद्धतिपर विचार किया गया है।

जाति-पांति। सूत्र-कालमें वर्णोंको यद्यपि सामाजिक प्रयोजनोंके लिये अलग श्रेणियां थीं, परन्तु वे ऐसी तरहसे बांटे न गये थे जैसे कि आजकल देखनेमें आते हैं (पृ० २२२)।

कला। लिखा है कि "स्थापत्य, तक्षण, सोनारका काम और मुद्रांकनपर यूनान और रूमका खासा असर हो चुका था (पृष्ठ २२६)।

दसवें परिच्छेदमें लिखा है कि भिन्न भिन्न सूत्रोंमें भिन्न भिन्न कालों और भिन्न भिन्न प्रदेशोंके कानून लिखे हैं (पृ० २२७)। परन्तु इतना होते हुए भी स्वयं सूत्रोंको लेकर समस्त भारतके विषयमें सम्मति प्रकट की गई है और प्रायः नमूनेके लिये वे सूत्र और धर्म्म-शास्त्र चुन लिये गये हैं जिनका झुकाव हृदयकी संकीर्णताकी ओर है।

रसोईकी स्वच्छता। उस समय शूद्रों और दासोंसे भोजन बनवानेका काम लिया जाता था। परन्तु उनको आदेश था कि अपने बाल, दाढ़ी और नाखून प्रति दिन कटवायें * (पृष्ठ २३१)।

विवाह-संस्कार। विवाह-संस्कारमें 'सप्त पदी' अर्थात् फेरों का उल्लेख करते हुए उक्त अध्यापक महाशय लिखते हैं (पृष्ठ २३४) कि दुलहा दुलहिनका हाथ पकड़कर यह कहता है—"यह मैं हूँ, तू तू है। तू तू है और मैं यह हूँ। मैं आकाश हूँ तू पृथ्वी है। तू ऋचा है और मैं साम हूँ, तू मेरे साथ सतीभावसे रहियो।" आप कहते हैं कि विशेष नियमोंमें यह उल्लेख है कि स्त्रियाँ दुलहाके मकानपर खाना खाने जाती थीं, और खानेमें ब्राण्डी † पीती थीं, चार बार नाचती थीं। इस विचित्र रीतिके लिये शाङ्खायन गृह्यसूत्रका प्रमाण दिया गया है।

राजस्व-मोचन। पृष्ठ २४२ पर यह मत प्रकट किया गया है कि जो सूत्र शेष रह गये हैं वे उनसे आधे हैं

---

* इस सम्बन्धमें हिन्दुओंकी स्वच्छता और सावधानता संसारभरमें अद्वितीय है। आजकलकी यूरोपीय सभ्यता भी इतनी सावधान नहीं।

† जिस शब्दका अनुवाद ब्राण्डी किया गया है वह लिखा नहीं गया। आनन्दोत्सवपर गाने बजानेकी प्रथा प्राचीन भारतमें अवश्य थी।

जो नष्ट हो गये हैं। राजकरोंका वर्णन करते हुए पृष्ठ २४५ पर लिखा है कि आगे लिखे व्यक्ति करसे मुक्त थे :—

विद्वान् ब्राह्मण, राजकीय नौकर, वे लोग जिनका कोई आश्रयदाता न हो, साधु, बच्चे, विद्यार्थी, विधवायें जो वापस पिताके घर चली गई हों, कुमारी कन्यायें, नौकरोंकी स्त्रियाँ और प्रदत्ता (जिसका अर्थ अध्यापक महाशयने वे कन्यायें लिखा है जिनकी सगाई हो चुकी हो)।

युद्ध-नीति। युद्धके नियमोंके सम्बन्धमें आपस्तम्बकेप्रमाण, से यह लिखा है कि राजाको विषाक्त वाणोंका उपयोग करनेका निषेध था और उसे आदेश था कि वह शरणागतों या निरुपाय लोगोंपर आक्रमण न करे, और (बौद्धायनके प्रमाणसे) उनपर भी आघात न करे जो लड़ाईसे हाथ उठा चुके हों या जो अपनेको गऊ कहकर शरण ढूंढ़ते हों (पृ० २४७)।

न्यायके नियम। न्यायके सम्बन्धमें गौतमके धर्म-शास्त्रमें लिखा है कि "न्याय वेदों, धर्म-शास्त्रों, अङ्गों, पुराणों और उपवेदोंके अनुसार होना चाहिये।" (पृ०२४५)।

इसी शास्त्रमें उसकी व्याख्या इस प्रकार की गई है कि अभियोगों और झगड़ोंके निर्णयोंमें आगे लिखे कानूनोंका पालन किया जायगा :—"जाति-नियम, कुल-नियम, और प्रान्तकी ऐसी प्रथायें जो वेदोंके विरुद्ध न हों। कृषकों, व्यापारियों, गड़रियों, आसामी-वणिज करनेवालों, शिल्पियों आदि भिन्न भिन्न श्रेणियोंको अधिकार था कि अपने लिये आप नियम बना लें।"

स्त्रियोंके सम्बन्धमें आज्ञायें। सूत्रों और धर्म-सूत्रोंमें स्त्रियोंके सम्बन्धमें भिन्न भिन्न आज्ञायें और

भिन्न भिन्न मत प्रकट किये गये हैं। कुछ सूत्रों और शास्त्रोंमें स्त्रियोंको ऊंचा स्थान दिया गया है और कुछमें बहुत नीचा। परन्तु हमारे मित्र यूरोपीय अध्यापकोंको समस्त शास्त्रोंमेंसे वे भाग छाँट छाँटकर उपस्थित करनेका स्वभाव हो गया है जिनसे यह पाया जावे कि प्राचीन भारतमें स्त्रीकी पदवी बहुत अपमानजनक थी। यहांतक कि कुछ सूत्रों या श्लोकोंके अर्थ भी तोड़ मरोड़ कर उनसे अशुद्ध परिणाम निकाले जाते हैं। उदाहरणार्थ हम अध्यापक हापकिन्सकी कुछ सम्मतियाँ यहाँ उद्धृत करते हैं:—

पृष्ठ २४७ पर स्त्रियोंकी स्थितिपर विचार करते हुए बौद्धायन और गौतमके प्रमाणसे वे लिखते हैं कि स्त्री स्वतन्त्र नहीं, न यज्ञके लिये और न दायके लिये। स्त्रियाँ सम्पत्ति हैं (अर्थात् उनको व्यक्तिगत सम्पत्ति समझा जाता है और उनके साथ उसी प्रकार वर्ताव किया जाता है)। इसके समर्थनमें वसिष्ठका आगे लिखा प्रमाण दिया गया है :—

"यदि कोई गैर-व्यक्ति न्यासमें रक्खी वस्तुको या अप्राप्त वयस्कोंकी सम्पत्तिको, या खुले अथवा मुहर-बंद निक्षेपको, या स्त्रीको, या राजा या विद्वान् ब्राह्मणकी सम्पत्तिको उपभोगमें लाये तो उस उपभोगसे (मूल स्वामीका) कोई स्वत्व नष्ट नहीं हो जाता।" यहाँपर स्त्रियोंको ऐसी सम्पत्तियोंमें गिना गया है जिनपर अधिकार करने या जिनका उपभोग करनेसे प्रकृत स्वामीका अधिकार नष्ट नहीं होता। परन्तु यह बात स्पष्ट है कि यहाँपर उदाहरणके रूपमें स्त्रीका वर्णन आया है। उससे यह तात्पर्य न था कि स्त्रीको स्थावर या जंगम सम्पत्तिके रूपमें वर्णन किया जावे। एक ही अनुच्छेदमें तीन शास्त्रोंका—आपस्तम्ब, बौद्धायन, और वसिष्ठका—प्रमाण दिया गया है, परन्तु स्त्रियोंके विषयमें किसीकी भी पूरी आज्ञायें नहीं लिखी गई।

परिणाम निकालनेकी यह रीति अतीव सदोष और भ्रमोत्पादक है। पाठकोंको चाहिये कि इस विषयमें मूल शास्त्रोंका अध्ययन करें।

महाभारत और रामायणके विषयमें यूरोपीय विद्वानोंकी जो सम्मति है उसका सविस्तर वर्णन करनेकी आवश्यकता नहीं। मूल पुस्तकमें उसका उल्लेख किया जा चुका है। कतिपय बातोंको विशेष महत्वके कारण यहां नकल करते हैं:—

महाभारतके नैतिक भागमें जहाँ मानों जाति-पांतिका भेद उड़ा दिया गया है दासको भी पढ़नेका अधिकार बताया गया है:—

विद्वान दास नीतिकी भी शिक्षा दे सकता है, यद्यपि वास्तविक घटनाओंमें उसको ढोरोंका स्थान दिया गया है (पृष्ठ २६८)। ग्रामोंका प्रबन्ध प्रायः स्वतन्त्र था।

शासनका रहस्य। "राजाका शासन उसकी शक्तिके कारण नहीं वरन् उसकी नैतिक श्रेष्ठताके कारण है। आचारहीन राजाको सिंहासनच्युत किया जा सकता है। जो राजा प्रजाकी रक्षा करनेके स्थानमें उसको हानि पहुंचावे उसे मृत्यु-दण्ड देना उचित है। वह पागल कुत्तेके सदृश है। टेक्सोंका लगाना आवश्यक है क्योंकि रक्षाके लिये व्ययका प्रयोजन है। परन्तु टेक्स आवश्यकताके अनुसार हलके होने चाहिये।" व्यापारिक कमेटियोंके नियमोंमें राजाको हस्तक्षेप करनेका अधिकार न था। हां, मार्गों और बाटोंका विशेष निरीक्षण किया जाता था (पृष्ठ २६६)। पृष्ठ २७५ पर लिखा है कि यह विश्वास करनेका कोई युक्तिसंगत हेतु नहीं कि धार्मिक भेदोंके कारण युद्ध किये जाते थे।

स्मृति और धर्म-शास्त्र। बारहवें परिच्छेदमें सामान्यतः स्मृतियों और शास्त्रोंके विषयपर विचार किया गया है, और उन शास्त्रों तथा स्मृतियोंमें जो विरोध है उसको भी बतलाया गया है। पृष्ठ २९२ पर महाभारतकी व्यवस्था उद्धृत की गई है कि जो व्यक्ति लड़की बेचता है वह नरकको जाता है। गौतमके प्रमाणानुसार मनुष्योंके क्रय-विक्रयका घोर निषेध किया गया है। इसी पृष्ठपर यह कहा गया है कि सीताजीका विवाह छः वर्षकी अवस्थामें हुआ था। इस कथनके समर्थनमें कोई प्रमाण नहीं दिया गया।

स्त्रियोंकी स्थितिपर विचार करते हुए भी किसी कदर पक्षपातका प्रकाश किया गया है। उदाहरणार्थ, स्त्रियोंकी महत्ता अथवा उनके सम्मानके लिये मनुस्मृतिकी जो आज्ञायें हैं उनके विषयमें यह सम्मति प्रकट की गई है कि स्त्रियोंका सम्मान केवल माता होनेके कारण किया जाता था। मनुस्मृतिके प्रमाणसे यह लिखा है कि माताकी पदवी पिताके बराबर समझी गई है।* परदेके विषयमें यह लिखा है—"यह निश्चय नहीं कि स्त्रियोंको अन्तःपुरमें बन्द करनेकी प्रथा कबसे जारी हुई। अधिक सम्भव है कि पश्चिमी जातियोंके आक्रमणोंने हिन्दुओंको यह (प्रथा) ग्रहण करनेपर विवश किया।" (पृ० २९२—२९३)

तेरहवें परिच्छेदमें अध्यापक रपसन पुराणोंका और राजपरिवारोंकी वंशावलियों और अन्य राजनीतिक घटनाओंका निरूपण करनेमें उनसे जो सहायता मिलती है उसका वर्णन करते हैं।

---

* उस श्लोकका उल्लेख नहीं किया गया जिसमें माताका पितासे चौगुना अधिक सम्मान करनेकी आज्ञा है और जिसका प्रमाण रामायणमें दिया गया है। यह उस समयका प्रसङ्ग है जब श्रीराम कौशल्यासे आज्ञा लेने गये थे और कौशल्याने यह कहा था कि मेरी आज्ञा तेरे पिताकी आज्ञासे अधिक महत्त्व रखती है।

भारतमें ईरानियोंका शासन ।

चौदहवें परिच्छेदमें अमरीकाके अध्यापक जैकसनने भारतमें ईरानी शासनका इतिहास लिखा है। यह वृत्तान्त रोचक है क्योंकि दूसरे इतिहासोंमें उसका बहुत संक्षेपसे वर्णन किया गया है। इस विषयपर जो कुछ ऐतिहासिक सामग्री प्राप्त हुई है उसको अध्यापक जैकसनने इस परिच्छेदमें लिख दिया है। परन्तु हमारी सम्मतिमें उसके परिणाम ऐसे नहीं जिनको निश्चित रूपसे प्रमाणित कहा जा सके। अध्यापक जैकसनने ईरानियोंका पक्ष लिया है और यह सिद्ध करनेकी चेष्टा की है कि हिन्दूकुशसे लेकर सिन्धु नदीतक और फिर उसके पश्चात् व्यास नदीतक भिन्न भिन्न समयोंमें ईरानी-राज्य रहा। परन्तु हमारी सम्मतिमें यह सर्वथा सिद्ध नहीं होता कि ईरानी राज्य कभी किसी समयमें सिन्धु नदीके पूर्व-तक पहुंचा। अध्यापक एडवर्ड मेयरने यह मत प्रकट किया है और यह है भी ठीक क उत्तर-पूर्वमें बहुत समयतक भारत और ईरानी राज्यकी राज-नीतिक सीमा हिन्दूकुश रहा। जितने प्रमाण इस पुस्तकमें दिये गये हैं उनसे यह प्रकट होता है कि काबुल, गंधार और बलूचिस्तानके प्रदेशके लोगोंको ईरानी और हिन्दू-साहित्यमें और इसके अतिरिक्त यूनानी और लातीनी ऐतिहासिकोंने भी हिन्दू कहकर पुकारा है। अध्यापक एडवर्ड मेयर स्पष्टरूपसे लिखते हैं कि गंधार और काबुलकी उपत्यकाके प्रदेशमें जो जातियां बसती थीं वे भारतीय वंशसे थीं (पृ० ३२२)।

बहुतसे विद्वानोंने ज़र्दुश्तको महात्मा बुद्धका समकालीन माना है। ईरानियोंकी पवित्र पुस्तक "जन्दावस्ता" महात्मा ज़र्दुश्तकी रचना है। परन्त अध्यापक जैकसन "जन्दावस्ता"को

पांचवीं शताब्दी ईसा-पूर्वके भी बहुत पहलेकी बताते हैं। (पृ० ३२३)।

वेंदीदाद (जो अवस्ताका एक भाग है) पर पहला प्रमाण यह है कि अहुर मुजदने १६ प्रदेश उत्पन्न किये। उनमें "हप्त हिन्दू" भी था। सिंधु सिंध नदीका नाम है और यही विगड़कर हिन्दू हो गया। वेदोंमें भी "सप्तसिंधु" आता है। परन्तु इस बातका कोई प्रमाण नहीं कि "हप्तहिन्दू"से वही प्रदेश अभिप्रेत है जो वेदोंके "सप्तसिंधु"से है। वेदोंके "सप्तसिंधु"में सरस्वती भी सम्मिलित की जाती है, यद्यपि सब विद्वान् सहमत हैं कि ईरानी राज्य कभी व्यास नदीके पार नहीं हुआ। मानों उनके कथनानुसार भी सुतलजका प्रदेश "हप्तहिन्दू" में सम्मिलित न था। एक विद्वान डार्मस्टेटर (Darmesteter) ने स्पष्ट रूपसे लिखा है कि "जन्दावस्ता" के १६ प्रदेशोंसे अभिप्राय उन प्रदेशोंसे है जहां ज़र्दुश्तका धर्म्म फैला हुआ था। उससे राजनीतिक राज्यकी कल्पना करना ठीक नहीं (पृष्ठ ३२४का नोट)। धर्म्म प्रचारके सम्बन्धमें बहुतसी घटनायें वास्तविकतासे तनिक बढ़ाकर वर्णन की जाती हैं। ऐसे ही फिरदौसी एक स्थानपर लिखता है कि असफन्दयारने भारतके एक राजासे प्रतिमा-पूजन छुड़ाकर उसको अग्नि-पूजक बनाया।* यहांतक कि भारतमें प्रतिमा-पूजनका चिह्न भी न रहा। यह स्पष्ट है कि यह कथन सर्वथा मिथ्या है। इससे किसी प्रकारकी राजनीतिक सत्ताका परिणाम निकालना निरर्थक है।

इस विद्वानने वेंदीदादके लेखसे यह परिणाम निकाला है

---

* इस विषयके सम्बन्धमें सर हैनरी इलियटके भारत इतिहासके भाग ५ में पृष्ठ ५६० पर लिखा है कि ज़र्दुश्तने भारतमें दिग्विजय बनानेका यत्न किया, यहांतक कि एक विद्वान ब्राह्मण उसका अनुयायी होकर उसके प्रचारकोंको भारतमें लाया।

कि अफगानिस्तान और बलूचिस्तानमें हिन्दू-सभ्यता थी न कि ईरानी (पृ०३२७)।

अध्यापक जैकसनकी सम्मति है कि अवस्तामें हरात, काबुल, गंधार, और सीस्तानके जिलोंका उल्लेख है। परन्तु जो नाम इन प्रदेशोंके "ज़न्दावस्ता"में लिखे गये हैं उनका वर्त्तमान नामोंसे कोई सादृश्य नहीं है। उदाहरणार्थ, हरातका नाम "हरोइवा" काबुलका "व्रएकरेता", और गन्धारका "हरह्वैती" इत्यादि दिया है। अध्यापक जैकसन कहते हैं कि जो नदियां उत्तरसे आकर सीस्तानमें बहती हैं उनके नाम अब भी वही हैं जो पहले थे और चूंकि वे सब नाम ज़न्दावस्ताके उस भागमें आते हैं जिसमें कै-वंशका यशोगान किया गया है, इसलिये यह परिणाम निकाला जा सकता है कि यह समस्त प्रदेश कै-वंशके अधीन था (पृ०३२६)। फिर भारत और ईरानके बीच प्राचीन व्यापारका प्रमाण दिया गया है। परन्तु इससे ईरानकी राजनीतिक सत्ताके सम्बन्धमें कोई परिणाम नहीं निकाला जा सकता। यहांतक ईरानी प्रमाणोंका वर्णन है। इनसे हमारी सम्मतिमें यह सर्वथा सिद्ध नहीं होता कि छठी शताब्दी ईसा-पूर्वमें ईरानका राज्य अफगानिस्तान और बलूचिस्तानके प्रदेशोंमें था। इनको उस समयके भारतका अंग समझा जाता था।

यूनानियों और लातीनियोंके प्रमाण।

कहा जाता है कि सन् ५५८ और ५३० ईसा-पूर्वके बीच राजा महान् साईरसने ईरानके पूर्वमें चढ़ाई की। इसके सम्बन्धमें जो साक्षियां उपस्थित की जाती हैं वे यूनानी और लातीनी ऐतिहासिक हीरोडोटस, टेसियस (Ctesias) और जेनोफनकी हैं। इनमेंसे पहलेके विषयमें तो इसी पुस्तकके पृष्ठ

३६७ पर श्रीयुत वेवनने यह सम्मति प्रकट की है कि वह जान बूझकर झूठ बोलनेवाला मनुष्य था। उसने भारतके विषयमें जो कुछ लिखा है वह केवल विस्तार है। फिर भी उसके लेखों-का प्रभाव पश्चिममें बहुत अधिक रहा।

The Influence of Ctesias upon the Greek conception of India was probably great. It confirmed for ever in the west the idea that India was a land where nothing was impossible—a land of nightmare, monsters and strange poisons, of gold and gems. (P. 397)

हीरोडोटसके विषयमें श्रीयुत वेवन लिखते हैं (पृ०२६५) कि उसने भारतके सम्बन्धमें जो कुछ लिखा वह हेकेटियस (Hecataeus) से प्राप्त किया। इस शेषोक्त व्यक्तिके समस्त ज्ञानका मूल स्रोत एक व्यक्ति सकाई लेकस था। कुछ उसने ईरानी ग्रन्थकारोंसे भी प्राप्त किया (पृ० ३९४)। हीरोडोटसने लिखा है कि सिंधु नदी पूर्वको वहती है (पृ० ३९५) और उत्तर-पूर्वी भारतमें जो चींटियां सोना इकट्ठा करती हैं उनका डीलडौल कुत्तोंके बराबर होता है (पृ० ३९५)। हीरोडोटसने और भी अनेक मिथ्या बातें कही हैं।

ईरानके राजा साईरसके विजय। हीरोडोटसने साईरसके पूर्वी विजयोंका उल्लेख किया है और उनमें ऐसी जातियोंका भी उल्लेख किया है जो भारतके सीमान्तपर (हिन्दूकुश सीमा थी) बसती थीं।

टेसियस लिखता है कि साईरसको एक भारतीयने मारा। भारतीय लोग डरबीकस नामकी एक जातिकी ओरसे लड़ रहे थे।

तीसरा लेखक जिसका प्रमाण अध्यापक जैकसनने दिया है, ज़ेनोफन है। उसने साईरसका जीवनचरित एक अद्भुत कथाके रूपमें लिखा है। उसमें उसने लिखा है कि साईरसने बाखतरिया और भारतके लोगोंको विजय किया। ज़ेनोफनके वर्णन अतीव संदिग्ध और निरर्थक हैं। उनसे कोई ऐतिहासिक घटना सिद्ध नहीं होती। इसके विपरीत दो यूनानी लेखक एक नियारकस जो सिकन्दरके साथ आया था और दूसरा मगस्थनीज जो सिल्यूकसका दूत बनकर पाटलिपुत्रमें अनेक वर्ष रहा—बलपूर्वक इस बातका खण्डन करते हैं कि ईरानियोंने कभी भारतका कोई भाग विजय किया हो। (देखो पृ० ३३१ तथा ३३२)।

आरियन अपनी पुस्तक इण्डिकामें एक स्थानपर लिखता है कि जो भारतीय राज्य सिन्धु नदी और काबुलके बीच अवस्थित हैं वे पहले असीरियाके अधिकारियोंको फिर मीड लोगों (Medes) को और फिर ईरानियोंको कर देते रहे। परन्तु इस बातका कोई प्रमाण नहीं है। अतएव इन कारणोंसे अध्यापक जैकसनने पृष्ठ ३३३ पर जो यह परिणाम निकाला है कि साईरसने अफगानिस्तान और बलूचिस्तानपर आक्रमण किये, वह प्रमाणों द्वारा सिद्ध नहीं है। फिर उससे यह परिणाम निकालना तो और भी दूरकी बात रही कि उसने इन प्रदेशोंको जीतकर उनसे राजस्व लिया।

इन वर्णनोंसे ये परिणाम निकालना ऐसा ही है जैसा कि हम पुराणोंकी कथाओं या महाभारतके कुछ संकेतोंसे यह परिणाम निकाल लें कि प्राचीन हिन्दू चीन और पाताल अर्थात् अमरीकामें राज्य करते थे। इन वर्णनोंका कोई ऐतिहासिक मूल नहीं है।

केम्बीसिस। इसी प्रकार साईरसके उत्तराधिकारी केम्बीसेसके विषयमें भी जो साक्षी है वह अतीव निस्सार और निरर्थक है। हां, दाराके विजयोंके सम्बन्धमें जो साक्षी उपस्थित की जाती है वह कुछ महत्व रखती है।

दाराके शिला-लेख। दाराके समयके तीन शिला-लेख प्राप्त हुए हैं। उनमेंसे संख्या १ वाहिस्तान टीलेका शिला-लेख कहलाता है। इसकी तिथि सन् ५२० और ५१८ ईसा-पूर्वके बीच है। इस लेखमें दाराके राज्यके तेईस प्रान्तोंका वर्णन है जिनमें भारतके भागका कोई उल्लेख नहीं (और न काबुल और गंधारका)। यह शिला-लेख पूर्णरूपसे उन समस्त प्रमाणोंका खण्डन करता है जो इससे पहले इस प्रदेशमें ईरानी राज्यके विषयमें उपस्थित किये गये हैं।

दो शिला-लेख इसके पश्चात् हैं। ये सन् ५१५ और ५१८ ई० पू० के बीचके हैं। इनमें केवल "हिन्दू" शब्द आता है। इससे अध्यापक जैकसन यह परिणाम निकालते हैं कि उससे अभिप्राय पञ्जाबसे है। यह प्रमाण हमारी सम्मतिमें बिलकुल अपर्याप्त है। इसके अतिरिक्त हीरोडोटसका लेख उपस्थित किया जाता है। इसमें दाराके बीस प्रान्तोंमेंसे भारतको बीसवाँ वर्णन किया गया है। और यह भी लिखा है कि भारत दूसरे प्रान्तोंकी अपेक्षा अधिक राजस्व देता था। एक और साक्षी भी उपस्थित की जाती है। वह यह कि सन् ५१७ ई०-पू० के लगभग दाराने सकाई लेकसको एक जङ्गी बेड़ा देकर सिंधु नदीके मार्गसे मिस्रको भेजा। यह कथन भी हीरोडोटसका है। परन्तु इसके मिथ्या होनेका प्रमाण यह है कि वह लिखता है कि दाराने यह बेड़ा भारतको विजय करनेके पूर्व भेजा था, इसके अनन्तर उसने भारतको जीता। अध्यापक जैकसन इस पिछले कथनको सत्य

नहीं समझते। हमारी सम्मतिमें दोनों ही कथन मिथ्या और निर्मूल हैं। मिस्रको बेड़ा भेजनेके लिये सिंधु नदीसे होकर जानेकी आवश्यकता न थी। फ़ारसकी खाड़ीसे मार्ग सीधा था। इस साक्षीके आधारपर अध्यापक जैकसन यह सम्मति स्थिर करते हैं कि पञ्जाबका बहुत सा भाग अर्थात् हिन्दूकुशसे लेकर व्यास नदीतक दाराके शासनाधीन था। इस सम्बन्धमें विंसेंट स्मिथकी सम्मति भी अशुद्ध है। अधिकसे अधिक यह कहा जा सकता है कि सम्भव है कि हिन्दूकुशसे लेकर सिंधु नदीतकका प्रदेश कुछ कालके लिये दाराके शासनके अधीन रहा हो, यद्यपि नियारकस और मगस्थनीज़ इसका भी खण्डन करते हैं। हमारी सम्मतिमें हीरोडोटसकी साक्षी केवल अविश्वसनीय है।

अध्यापक जैकसनके पक्षपातका यह भी प्रमाण है कि वह टेसियसकी साक्षीका बार बार प्रमाण देता है। उसके तथा हीरोडोटसके विषयमें दूसरे विद्वानोंने जो सम्मति स्थिर की है उसका कुछ भी उल्लेख नहीं। हमारी सम्मतिमें यह सारा परिच्छेद एक विशेष प्रकारकी वकालत है। इससे हमको यह परिणाम निकालनेमें सुगमता होती है कि इस पुस्तकमें किस प्रकारकी सामग्री इकट्ठी की गई है।

सिकन्दरका आक्रमण। पन्द्रहवें परिच्छेदमें सिकन्दरके आक्रमणका उल्लेख है। यह श्री० बेवनका लिखा हुआ है। इस परिच्छेदमें कोई भी बात ऐसी नहीं जिसे नया कहा जा सके। श्रीयुत बेवनने पोरसकी वीरता और देशानुरागकी बहुत प्रशंसा की है और कमसे कम तीन अवसर ऐसे बतलाये हैं जब यूनानियोंने सर्वसाधारणकी हत्या की और स्त्री और बच्चे तकको न छोड़ा। सोलहवाँ परिच्छेद भी इसी महाशयका लिखा हुआ है। इसमें उन नानी और लातीनी लेखोंपर

विचार किया गया है जिनमें भारतका कुछ वृत्तान्त है। टेसियस और हीरोडोटसके विषयमें जो कुछ सम्मति श्री० वेवनने प्रकट की है उसका प्रमाण हम ऊपर दे चुके हैं। इस परिच्छेदमें अधिकतर मगस्थनीज़के लेखोंको उद्धृत किया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि मगस्थनीज़के पहले यूनानियोंने न कभी गन्ना (जिससे शक्कर बनाई जाती है) का नाम सुना था और न कभी रूई देखी थी। मगस्थनीज़ने लिखा है कि भारतीय लोग मधुमक्खियोंकी सहायताके विना सरकण्डोंके एक प्रकारके पौधेसे शक्कर बनाते हैं और पेड़ोंसे ऐसी रूई पैदा करते हैं जो भेड़ोंकी ऊनसे भी अधिक कोमल होती है। यूनानियोंको हिन्दुओंके स्वास्थ्यपर भी आश्चर्य होता था। उन्होंने लिखा है कि भारतमें वैद्योंको साँप काटेकी चिकित्साके सिवा और कोई काम नहीं है, क्योंकि ये लोग अतीव नीरोग हैं, इन्हें रोग बहुत कम होता है और वे देरतक जीते *हैं। उनके स्वास्थ्यका यह कारण बताया गया है कि उनका भोजन सादा है और वे मदिरापान नहीं करते (पृ० ४०८)।

यूनानी दूतने भी इस बातकी साक्षी दी है कि युद्ध-कालमें कृषकोंके साथ हस्तक्षेप नहीं किया जाता था। जहां लड़ाई होती थी उसीके समीप कृषक खेतीके लिये भूमि तैयार करते और फसल काटते थे। उनको कोई कुछ न कहता था (पृ० ४१०)। मगस्थनीज़ने लोगोंकी रीति-नीतिका वर्णन करते हुए उनकी भद्र सरलताकी बड़ी प्रशंसा की है† (पृ० ४१२)।

'Since diseases were so rare among Indians' p. 406.
* 'Singularly free from diseases and long lived.' p. 407.
† 'A noble simplicity seemed to him the predominant characteristic.'

परिच्छेदका वर्णन करते हुए यूनानी दूत एक प्रकारके चोगे, चादर और पगड़ीका उल्लेख करता है। वह छातों और जूतों-के उपयोगका भी उल्लेख करता है (पृ० ४१२)। वह लिखता है कि भारतीय लोग परिधानमें चमक दमकको पसन्द करते हैं। सोने और जवाहरातके आभूषण पहनते हैं और छतरियाँ लगाते हैं (पृ० ४१२)। भारतीयोंकी ईमानदारी और विवाह तथा सती आदिसे सम्बन्ध रखनेवाली रीतियोंके विषयमें हम मूल पुस्तकमें लिख चुके हैं। यहांपर केवल उन बातोंका वर्णन करते हैं जिनका उल्लेख मूल पुस्तकमें नहीं हुआ या केवल संकेत रूपसे हुआ है।

नियारकस लिखता है कि ईरानके सदृश भारतमें राजाओं-को प्रणाम करते समय भूमि-चुम्बन या पृथ्वीतक झुकनेकी प्रथा न थी (यह प्रथा भारतमें ईरानसे मुसलमानी कालमें आई)। जन्तुओंपर भारतीयोंका प्रायः प्यार था।* वे घुड़दौड़ आदिके रसिक थे। यह परिच्छेद बहुत ही मनोरञ्जक है।

सत्रहवें परिच्छेदमें सीरिया, पार्थिया और बाखतरियाके राज्योंका वहांतक वर्णन है जहांतक उनका सम्बन्ध भारतसे था।

अठारहवें परिच्छेदमें चन्द्रगुप्तका वृत्तान्त है। इस परि-च्छेदके लेखक श्रीयुत टामस पृष्ठ ४७३ पर लिखते हैं कि इस बातका कोई प्रमाण नहीं कि चन्द्रगुप्तकी नीति प्रजापीड़नकी नीति थी। विंसेंट स्मिथ और जस्टिनने यह मत प्रकट किया है।

उन्नीसवें परिच्छेदमें मौर्य्य-राज्यके संगठनका वर्णन है। इसको हम अपनी मूल पुस्तकमें सविस्तर लिख चुके हैं। पृष्ठ

* 'The Indians do not think lightly of any animal, tame or wild.' p. 417.

४८१ में लिखा है कि स्त्रियोंके विरुद्ध अपराधोंके लिये घोर दण्ड दिया जाता है। यह परिच्छेद भी बहुत मनोरञ्जक है।

बीसवें परिच्छेदमें सम्राट अशोकके समयका इतिहास है। इसमें हमें कोई विशेष बात टीका करने योग्य प्रतीत नहीं होती।

परिच्छेद २१, २२ और २३ अध्यापक रपसनके लिखे हुए हैं। इनमें मौर्य्यवंशके उत्तराधिकारियोंका वृत्तान्त है और सिकन्दर, तुर्कों और पार्थियोंके आक्रमणोंका भी वर्णन है।

परिच्छेद २४ में दक्षिणका आरम्भिक इतिहास है और परिच्छेद २५ में लङ्का द्वीपके वृत्तान्त हैं।

अन्तिम (२५ वाँ) परिच्छेद अध्यापक मार्शलकी लेखनीसे है। इसमें भारतकी ललित कलाओंका वर्णन है। इस लेखकका पक्षपात इससे प्रकट होता है कि यद्यपि भारतीय कलाओंपर श्रीयुत ई० वी० हेवल और डाक्टर आनन्दकुमार स्वामी उच्च कोटिके विशेषज्ञ गिने जाते हैं परन्तु उसने सारे परिच्छेदमें इन दोनों विद्वानोंका प्रमाणतक नहीं दिया।

हिन्दू-इतिहासकी कतिपय प्रसिद्ध और महत्वपूर्ण तिथियां ।

सूची [क]

हिन्दुओंके प्रसिद्ध ग्रन्थ ।

संख्या	घटना	ईसाके पूर्वका समय	ईसाके बाद	टिप्पणी
१	वेदोंका काल	भिन्न भिन्न यूरोपीय विद्वान् वेदोंका समय भिन्न भिन्न बतलाते हैं। बहुमत यही है कि वेद तीन सहस्र वर्ष ईसा-पूर्वसे पहलेके बने हुए हैं।		हिन्दू आर्य्य वेदोंको ईश्वरीय, अनादि और सनातन मानते हैं। उनका विश्वास है कि वर्तमान वेदोंका प्रकाश वर्तमान सृष्टिकी उत्पत्तिके समय
२	ब्राह्मण ग्रन्थ	१५०० ई०-पू०		
३	उपनिषद्	१००० तथा १५०० के बीच		
४	धर्म-सूत्र	१००० वर्ष		

सं०	घटना	ईसाके पूर्वका समय	ईसाके बाद	टिप्पणी
५	रामायण (वाल्मीकि)			
६	महाभारत	वर्तमान महाभारत ईसाके संवत्‌की आरम्भिक तिथियोंमें अन्तिम बार संपादित हुआ।		हिन्दुओंका विश्वास है कि महाभारतका युद्ध कलियुगके आरम्भमें हुआ जिसको ईसाके पहले ३१०२ वर्ष हुए। परन्तु कुछ ज्योतिर्विद् इससे ६०० वर्ष कमका समय बताते हैं। मूल महाभारत कब लिखा गया इसका समय-निरूपण करना अतीव कठिन है। उस महाभारतमें केवल ८ से १० सहस्र श्लोक थे। अब उसमें एक लाखसे अधिक हैं।
७	मनु स्मृति (वर्तमान)		दूसरीसे चौथी शताब्दी।	वर्तमान मनुस्मृति ईसाके संवत्‌की आरम्भिक शताब्दियोंका संग्रह है। परन्तु इसका आधार प्राचीन मानव धर्म सूत्रोंपर है।
८	मिलिन्दके प्रश्नोत्तर		तीसरी शताब्दी	

संख्या	घटना	ईसाके जन्मके पूर्वका समय	ईसाके पीछे-का समय	टिप्पणी
९	वायु, अग्नि, भागवत, मार्कण्डेय, भविष्य, विष्णु, मत्स्य और ब्रह्माण्ड पुराण ।		दूसरी शताब्दी से लेकर पांचवीं शताब्दी तक	यह प्रकट है कि पुराणोंमें कभी कभी परिवर्तन होता रहा है। मूल भविष्य पुराणका समय सन् २६० बताया जाता है, वायु ३१५-३२० और ब्रह्माण्ड ३२५-३३० ।
१०	कालिदास		४०० और ५००के बीच	
११	आर्यभट		४७६ जन्म	गणितका प्रसिद्ध विद्वान् ।
१२	वराहमिहिर		५८७ मृत्यु	"
१३	पाणिनि	कमसे कम सातवीं शताब्दी ई० पू०		वैदिक व्याकरण, अष्टाध्यायीका रचयिता ।
१४	पतञ्जलि	१८५ वर्ष		महाभाष्यकार ।
१५	बाण		७वीं शताब्दी	महाराज हर्षके समयका प्रसिद्ध कवि ।
१६	शङ्कराचार्य ।			

सूची [ख]

हिन्दुओंकी प्रसिद्ध ऐतिहासिक घटनायें।

संख्या	घटना	ईसाके पहलेका समय	टिप्पणी।
१	बिम्बिसार	५२०	मगधका महाराजा, महात्मा बुद्ध और महावीरका समकालीन।
२	अजात शत्रु	५०२	मगधका राजा।
३	भगवान बुद्ध	मृत्युका सन् ४८७	बौद्ध-धर्म्मके प्रवर्तक।
४	महात्मा महावीर	लगभग बुद्धका ही सन्	जैन धर्म्मके प्रवर्तक। कुछ लोग ५२७ कहते हैं।
५	नन्द वंश		
६	महान् सिकन्दरका आक्रमण	मई सन् ३२७ ई० पू०	हिन्दूकुशको पार किया।
”	”	फरवरी या मार्च ३२६	अटक नदीको पार किया।
”	”	जुलाई ३२६	पोरससे युद्ध।
”	”	सितम्बर ३२६	व्याससे लौटना।
”	”	सितम्बर ३२७	बलूचिस्तानमें प्रवेश।

संख्या	घटना	ईसाके पहलेका समय	टिप्पणी।
६	आक्रमण	एप्रिल ३२४	सोरामें च गया।
"	"	जून ३२३	मृत्यु।
"	पंजाब-विद्रोह	३२३ तथा ३२२	
७	चंद्रगुप्त मौर्यका राजतिलक	३२२	
८	सिल्यूकसका भारत-पर आक्रमण।	३०५ या ३०४	सिल्यूकस सिकन्दरका प्रतिनिधि था। सिकन्दरकी मृत्युपर यह शाम देशका राजा बना। उसने आक्रमण किया और हार खाकर चन्द्रगुप्तसे संधि की।
९	सिल्यूकसका पराजय	३०३	
१०	मगस्थनीज़ दूतका आना	३०२	सिल्यूकसका दूत।
११	विन्दुसारका सिंहासनपर बैठना	२९८	चन्द्रगुप्तका पुत्र।
१२	अशोकका सिंहासनपर बैठना	२७३	
"	अशोकका तिलकोत्सव	२६९	
"	अशोककी कलिङ्गपर चढ़ाई	२६१	

संख्या	घटना	ईसाके पूर्व	टिप्पणी
१२	अशोककी यात्रा	२४६	
"	मृत्यु	२३२	
१३	मौर्य-वंशका अन्त	१८५	
१४	पुष्य मित्रका गद्दीपर बैठना	१८५	
१५	मिनैण्डरका आक्रमण और पराजय	१५५ से १५३	
१६	शकोंका आक्रमण	१५० से १४०	
१७	विक्रमी संवत्	५८	
१८	आगस्टसके दरबारमें भारतीय दूत समूह	२६	
		ईसाके पश्चात्	
१९	कनिष्क	७८	पेशावर राजधानी।
२०	शालिवाहनका संवत्	७८	
२१	रोम-नरेश ट्राजनकी सेवामें भारतीय दूत	१००	
२२	चीनी तुर्कि०में कनिष्कके विजय	१०३	

संख्या	घटना	ईसाके पश्चात्	टिप्पणी
२३	कनिष्ककी मृत्यु	१२३	
२४	गुप्त संवत्	२६ फरवरी सन् ३२०	
२५	समुद्रगुप्तका राज्याभिषेक	३३०	भारतीय नेपोलियन।
२६	अश्वमेध यज्ञ	३५१	
२७	दूसरा चन्द्रगुप्त	३७५	
२८	फाहियानकी यात्रा	४०५ से ४११	
२९	हूण जातिका दूसरा आक्रमण	४७० से ४८०	
३०	मिहिरगुल राजा बना	५१० से ५४०	सियालकोट राजधानी।
३१	मिहिरगुलका पराजय	५२८	
३२	महाराज हर्ष	६०६ से ६४०	
३३	महाराज हर्षका तिलकोत्सव	६१२	
३४	कन्नौजकी सभा	फरवरी या मार्च ६४३	
३५	प्रयागका मेला	६४३	
३६	ह्यूनसांगकी यात्राका आरम्भ	६२९	
,,	इसकी काश्मीर यात्रा	६३१ से ६३३	

संख्या	घटना	ईसाके पश्चात्	टिप्पणी।
३६	उसका चीनमें लौट आना	६४५	
„	उसकी मृत्यु	६६४	
३७	इत्सिंगकी यात्रा	६७१	
३८	नालन्दमें उसकी प्रदर्शिनी	६७५ से ६८५	
३६	भ्रमण-वृत्तान्तकी तैयारी	६६१	
४०	चीनको लौट जाना	६६५	
४१	लासाकी नींव	६३६	
४२	लामाधर्म्मकी नींव	७४३ से ७८६	
४३	काश्मीरका राजा अवन्तिवर्म्मा	८८३ से ६०२	
४४	दुर्भिक्ष	६१७ से ६१८	
४५	काश्मीरका पहला मुसलमान राजा	१३३६	
४६	अकबरका काश्मीर-विजय	१५८७	
४७	कन्नौज-नरेश मिहिर भोज	८४० से ८६०	
४८	कन्नौज-नरेश द्वितीय भोज	६१० से ६४०	
४६	सबुक्तगीनका पहला आक्रमण	६८६ से ६८७	

पाचवां परिशिष्ट

प्राचीन भारतीय इतिहास-विषयक पुस्तकोंकी सूची

(पं० जयचन्द्र विद्यालङ्कार, अध्यापक पञ्जाब राष्ट्रीय विद्यापीठ द्वारा लिखित।)

१—देश-वर्णन और जाति-वर्णन।

Imperial Gazetteer of India, esp vol I (Descriptive) and vol. XXVI (Atlas)

Imperial Atlas of India—४ मील प्रति इञ्चके हिसाबसे यह बहुमूल्य एटलस तैयार की गई है और भारत सरकार द्वारा प्रकाशित हुई है।

Provincial Geographies of India (प्रधान सम्पादक सर टी० एच० हालैंड) केम्ब्रिज यूनीवर्सिटी प्रेस द्वारा प्रकाशित। अभीतक तीन खण्ड निकल चुके हैं।

(१) बङ्गाल, बिहार और उड़ीसा, सिक्किम—लेखक L. S S O Mally.

(२) मद्रास प्रान्त तथा मैसूर, कुर्ग और संयुक्त राज्य—लेखक—ई० थर्स्टन।

(३) पञ्जाब, उत्तर-पश्चिम सीमा प्रान्त और काश्मीर—लेखक—जे० डोई।

इस पुस्तक-मालाका आधारभूत विभाग यद्यपि अशुद्ध है तो भी यह बहुत उपयोगी है। आधुनिक सरकारी प्रान्त भारत-वर्षके स्वाभाविक या ऐतिहासिक विभागोंको बिलकुल

बुहलरने Grundriss der Indo Arischen Philologie and Alter-tums-Runde नामके एक भारतीय खोजके विश्वकोषको सम्पादन आरम्भ किया था, जिसे उनकी मृत्युके पश्चात् अध्यापक कीलहार्नने जारी रखा और अब लूडर्स और वैकरनेगल सम्पादित कर रहे हैं। उसका कोई हिस्सा अंगरेजीमें निकला है। यह पुस्तक भी उसीमें प्रकाशित हुई है।

रामप्रसाद चन्द—Indo-Aryan Races अपने विषयपर अत्यन्त प्रामाणिक पुस्तक है। रिस्लेके सिद्धान्तोंमें इसने कई अंशोंमें परिवर्त्तन किये हैं। इस पुस्तकका यूरोपमें भी बड़ा आदर हुआ है।

Gustav Opperi—On the Original Inhabitants of Bharatvarsha. एक प्राचीन पुस्तक।

सर डी इबट्सन— Outlines of Punjab Ethnography.

W. Crooke-Tribes and Castes of the N. W. Province

Elliot—Races of the N. W. Province.

Nesfield—Races of the N. W. P. and Oudh.

Thurston and Rangachari—The Castes and Tribes of S India.

गोपाल पनिकर—Malabar and its folk

२–प्राङ्मौर्यकाल(Pre-Maurya Period.)का इतिहास।

R B. Foote-Indian and Pre-historic and Proto Historic Antiquities.

A. C. Logan.—Old Chipped Stones of India.

V. A. Smith-Pre-historic Antiquities (Chap. II in volume of the Imp. Gay.)

ul —Vedic Antiquities.

नहीं करते। भारतवर्षको उनमें बँटा हुआ मानकर देखना इतिहासको अशुद्ध नींवपर खड़ा करना है। स्वाभाविक और ऐतिहासिक विभागोंमें भारतवर्षका दर्शन करानेवाली पुस्तकों-की अभी आवश्यकता है।

T. H. Holditch—The Gates of India.

A. Cunningham—Ancient Geog. of India. Based principally on Hiuen Tsang

शङ्कर बालकृष्ण दीक्षित—भारतवर्षीय भूवर्णन (मराठी में)। इसका आधार ऊपरकी पुस्तक है, परन्तु इसमें संस्कृत साहित्यसे भी अच्छी सहायता ली गई है।

नन्दलाल दे—A Geographical Dictionary of Ancient and Med. India. इसका संशोधित संस्करण इण्डियन एंटीके-रीके साथ परिशिष्ट रूपमें निकल रहा है। कनिङ्घमकी पुस्तकके निकलनेके पीछे प्राचीन भारतीय भूवर्णनके सम्बन्धमें बहुत कुछ काम हो चुका है। परन्तु वह भिन्न भिन्न सामयिक पत्रिकाओं-के पन्नोंमें बिखरा पड़ा है और इसे एक स्थानपर इकट्ठा करनेकी आवश्यकता है। श्रीयुतदेका इस सम्बन्धमें उद्योग यद्यपि अमूल्य है परन्तु वह अन्तिम नहीं कहा जा सकता।

C. Gappen.—Historical Atlas of India.

राधाकुमुद मुखोपाध्याय—The Fundamental Unity of India.

H. H. Risley.—The People of India (सन १९०१के मनुष्य-गणना-विवरणसे अलग करके छापा गया)। अपने विषयकी सबसे पहली पूर्ण पुस्तक।

E. Gait—The Census of India Report 1911.

G. D. Anderson—Peoples of India.

A. Baines—Ethnograhy. जर्मनीमें स्वर्गीय विद्वान डा॰

बुहलरने Grundriss der Indo Arischen Philologie and Alter-tums Runde नामके एक भारतीय खोजके त्रिवेकोष-का सम्पादन आरम्भ किया था, जिसे उनकी मृत्युके पश्चात् अध्यापक कीलहार्नने जारी रखा और अब लूडर्स और वैकर-नेगल सम्पादित कर रहे हैं। उसका कोई हिस्सा अंगरेजीमें निकला है। यह पुस्तक भी उन्हीमें प्रकाशित हुई है।

रामप्रसाद चन्द—Indo-Aryan Races अपने विषयपर अत्यन्त प्रामाणिक पुस्तक है। रिस्लेके सिद्धान्तोंमें इसने कई अंशोंमें परिवर्तन किये हैं। इस पुस्तकका यूरोपमें भी बड़ा आदर हुआ है।

Gustav Oppert—On the Original Inhabitants of Bharatvarsha एक प्राचीन पुस्तक।

सर डी इबटसन— Outlines of Punjab Ethnography.

W. Crooke-Tribes and Castes of the N W Province

Elliot—Races of the N W Province.

Nesfield—Races of the N W. P and Oudh

Thurston and Rangachari—The Castes and Tribes of S India

गोपाल पनिकर—Malabar and its folk

२–प्राङ्मौर्यकाल(Pre-Maurya Period.) का इतिहास।

R B Foote-Indian and Pre historic and Proto Historic Antiquities.

A C Logan —Old Chipped Stones of India

V A. Smith Pre-historic Antiquities (Chap II in the second volume of the Imp. Gay)

G J Dubrial —Vedic Antiquities.

ये पुस्तकें प्रागैतिहासिक कालसे सम्बन्ध रखती हैं और भारतीय अनार्य्य लोगोंकी सभ्यताका पता देती हैं। परन्तु प्रो॰ इग्गिअलने अपने उक्त पेम्फलटमें, जो हाल हीमें प्रकाशित हुआ है, आर्योंके वैदिक स्तूपों और अग्निद्रीयोंका पता निकालकर बड़े महत्वकी खोज की है।

Isac Taylor The Origin of the Aryans.

O. Shrader Pre-historic Antiquities of the Aryan People.

बालगङ्गाधर तिलक—Orion or Researches into the Antiquity of the Vedas.

बाल गङ्गाधर तिलक—Arctic Home in the Vedas

लोकमान्य तिलकने अपने पहले ग्रन्थमें वैदिक कालमें ओरियन अथवा मृगशिर नक्षत्रकी स्थितिके आधारपर वेदोंके काल-निर्णयका यत्न किया है। दूसरी पुस्तकमें उन्होंने वैदिक ऋचाओं और अवस्थाके आधारपर उत्तरी ध्रुवको आर्योंका मूल स्थान सिद्ध किया है।

N. B. Pavagee—Aryavartic Home and its Arctic Colonies.

तिलकके सिद्धान्तके खण्डनका यत्न। वैदिक देवकल्पना (mythology) के आधारपर लेखकने आर्यावर्तको आर्योंका मूल स्थान सिद्ध करना चाहा है। सामान्यरूपसे उच्छृङ्खल होते हुए भी पुस्तकमें कुछ कामकी बातें हैं।

R. Shamshastry—Gavam-Ayana or the Vedic Era.

Kaegi—The Rigveda,

A. C. Das—RigVedic India,

इस पुस्तकके लेखकने तिलकके सिद्धान्तका खण्डन करने और वेदोंके समयको और पीछे ले जानेका यत्न किया है।

P T. Shrinivas Aiyangar—life in India in the Age of the Mantras.

P. C. Basu—Rigvedic polity,

Bloomfield—The Atharva Veda and the Gopatha.

Brahmana—(published in Grund, D. Indo-ar phil)

A. A. Macdonell—Vedic Mythology.

Do —History of Sanskrit Literature,

(पहला भाग वैदिक साहित्यसे सम्बन्ध रखता है।)

A.A. Macdonnell and A.B. Keith—Vedic Index of Names and Subjects.

F. Max muller—History of Ancient Sanskrit Literature.

Do. —India, what can it teach us?

E. W. Hopkins—The Religions of India

,, India, Old and New.

,, The great Epic of India.

(महाभारतकी छान-बीन।)

२ मौर्यकालसे हिन्दूकाल तक।

C. M. Duff.—The Chronology of India.

Gopal Aiyar—Chronology of Ancient India.

E. B. Havell—History of Aryan Rule in India, भाग) भारतीय इतिहासके विकास-क्रमको मनोवैज्ञानिक दृष्टिसे (पहला दिखानेका यत्न।

V. A. Smith.—History of India, "स्मिथ महाशयमें-
Do. —Asoka, ऐतिहासिक बुद्धि-
Do. —Oxford History of India. का सामान्यतः

अभाव है, (विनयकुमार सरकार) तो भी इन पुस्तकोंमें पर्-

नामोंका जैसा संग्रह है वैसा दूसरी जगह मुश्किलसे मिलेगा। श्रीविनयकुमार सरकारका Political Science Quarterly an English History of India, शीर्षकका आलोचनात्मक लेख स्मिथकी पुस्तक पढ़नेवालोंको अवश्य देखना चाहिये।

S. Krishnaswami Aiyangar—Ancient India.

बहुत विशद पुस्तक। दक्षिणी भारतवर्षके इतिहासपर विशेष प्रकाश डालती है।

—Hindu India from Original Sources, part 1, 2.

जिन पाठकोंको इतिहासके स्रोतोंतक पहुँच नहीं होसकती, उन्हें उनका कुछ अनुमान इस छोटीसी पुस्तकसे हो सकता है।

—Beginnings of South India History.

E.J. Rapson.—Ancient India.

शकोंके समय तकका इतिहास। बहुत विशद।

Cambridge history of Ancient India (ed. E. J. Rapson).

शकोंके समय तक। भारतीय खोजका पूर्ण संग्रह। इस पुस्तकका उल्लेख ऊपर हो चुका है। मौर्यों और गुप्तोंके बीचके समयका इतिहास लिखनेमें, मगधके शुङ्ग और काण्व राजाओं, उत्तर पश्चिमके यूनानी और शकों, तथा दक्षिणके आन्ध्रोंका उल्लेख करनेकी रीति चल पड़ी है। इस कालके पश्चिमी भारतके गण राज्योंके इतिहासकी अभी पर्याप्त खोज नहीं हुई। इस पुस्तकमें भी यौधेय, मालव आदियोंके केवल नामोंका उल्लेख

है। विक्रम संवत् पार्थव (Parthian) राजा अयं (Ayes) से आरम्भ होनेकी कल्पना जो इस पुस्तकमें की गई है उसकी उतनी ही मिट्टी पलीद होनेकी आशा करनी चाहिये जितनी कि स्पूनरके "भारतीय इतिहासके पारसी युगकी हुई है। "संवत् १३६ अयस अयदस" इस एक पाठसे Ayes का संवत् होनेकी कल्पना कर ली गई है, यद्यपि इसका अर्थ "संवत् १३६ आयस्य आषाढस्य" भी आसानीसे हो सकता है।

पुस्तकका अन्तिम अध्याय कुछ समयानुकूल नहीं ; क्योंकि इस पुस्तकके लिखे जाने और प्रकाशित होनेके बीचके समयमें श्रीकाशी प्रसाद जायसवालने "यक्षों" की मूर्त्तियोंके विषयमें जो भारी खोज की है उसके कारण भारतीय कलाके विकासकी पुरानी कल्पनामें बहुत परिवर्तन आवश्यक हो गये हैं। पुस्तकके अन्तमें एक विस्तृत ग्रन्थ-सूची है पर उसमें तिलकके Arctic Home, ब्रजेन्द्रलाल सीलकी Positive Science of the Hindus, विनयकुमार सरकारकी Hindu Achievement in Exact Science, एवं राधाकुमुद मुकर्जीकी Fundamental Unity of India का उल्लेख न होना आश्चर्यकर है।

विश्वेश्वर नाथ रेउ—भारतवर्षके प्राचीन राजवंश (दो भागोंमें)। बहुत अच्छा संग्रह है। जगह जगह स्रोत-ग्रन्थोंसे उद्धरण देता है।

E. R. Bevan.—The House of Selucus.

रामकृष्ण गोपाल भाण्डारकर—A Peep into the Early History of India, etc.

Early History of the Dekhan.

(In the Bombay Gazetteer, 1896, vol. 1 pert 2.

Early History of Gujrat

(Bombay Gazetteer 1896, vol 1, Part 1 में)

J. F. Fleet—The Dynasties of the Kenarese Districts of the Bombay Presidency.

(Bombay Gaz. 1896, vol. 1 Part II में)

A. K. Mairn—History of the Konkan.

G. J. Dubreiul.—Ancient History of the Dekhan (अंगरेजी अनुवाद स्वामिनाथ दीक्षितकृत)

इस पुस्तकमें प्रो० डुब्रियलने यह सिद्ध किया है कि समुद्रगुप्तका आक्रमण दक्षिणी भारतके केवल पूर्वी भागपर ही हुआ था। केरल, महाराष्ट्र, खानदेशपर नहीं।

—The Pallavas. (अंगरेजी अनुवाद स्वा० दी० कृत)। विंसेंट स्मिथने भारतीय इतिहासके जिस अंशको बिलकुल अस्पष्ट कहा है उसीपर यह प्रकाश डालती है।

H. Parker.— Ancient Ceylon.

L. Rice— Mysore Gazetteer, vol. I. इसमें इतिहासका भी एक भाग।

Gait—A History of Assam.

Wright—History of Nepal.

Bendall.— History of Nepal (in the Journal of the Asiatic Society of Bengal, 1903).

गौरीशङ्कर हीराचन्द ओझा—सोलंकियोंका इतिहास "Has made the fullest use of all available materials, literary and epigraphical. (Killhorn)

पूर्ण और प्रामाणिक।

मुंशी देवी प्रसाद—सिंधका इतिहास।

(आठवींसे दसवीं शताब्दी तकके मुसलमान लेखकोंके आधारपर।)

गौडराजमाला (बंगलामें)—वरेन्द्र रीसर्च सोसायटी द्वारा प्रकाशित। पाल और सेन राजवंशोंका प्रामाणिक इतिहास।

राखलदास वंद्योपाध्याय—बङ्गालका इतिहास (बंगलामें) प्रथम भाग।

—The Palas of Bengal. Memoirs of the Asiatic Society of Bengal

J. Kennedy — Mediaeval History of N. India. (being Chap. 8 of the Imp. Gaz. vol II.)

C. G. Luard and K. K. Lele.—The Paramaras of Dhar and Malava.

C. V. Vaidya—Mediaeval Hindu India

हर्षवर्धनके बादके भारतीय इतिहासपर अभीतक कोई पूर्ण पुस्तक नहीं है। वैद्य महाशयकी इस पुस्तकने इस कमीको पूरा नहीं किया। विंसेंट स्मिथने इसपर केवल एक अध्याय लिखा है। उपर्युक्त पुस्तकोंके सिवा इस कालके इतिहासके भिन्न भिन्न अंशोंको पढनेके लिये Stein (स्टाइन) की राजतरङ्गिणी, टाडके Annals and Antiquities of Rajasthan, फ़ोर्बसकी रसमाला, तथा भिन्न भिन्न प्रदेशोंके गजेटीयर देखने चाहिये। श्री० प० गौरीशङ्कर हीराचन्द ओझा राजपूतोंका एक संक्षिप्त इतिहास लिख रहे हैं, जिसमें उत्तरी भारतके बहुतसे राजवंशोंके इतिहासपर नया प्रकाश पडनेकी आशा है।

इस कालके इतिहासके स्रोत बहुत विस्तृत हैं। उनका अच्छा निरीक्षण श्रीयुत गौरीशङ्कर हीराचन्द ओझा कृत "भारतीय इतिहासकी सामग्री" नामकी लघु पुस्तिकामें किया जा सकता है। प्राचीन भारतीय साहित्यमें भी इतिहास-सम्बन्धी अनेक पुस्तकें हैं। कौटिल्यका अर्थशास्त्र मौर्यकालकी राज-

नीति और समाजका पूरा दर्पण है। दिव्यावदानमें बौद्धोंकी ऐतिहासिक कहानियोंका संग्रह है। महावंश और दीपवंशमें बौद्ध धर्म और लङ्काका इतिहास है। मिलिन्द पन्हों, मुद्राराक्षस, मालविकाग्निमित्र और पुराणोंकी राजवंशावलियां—ये सब गुप्तकालके पहलेके समयसे सम्बन्ध रखते हैं। राजपूतकालके ऐतिहासिक काव्य बहुतसे हैं। राजतरङ्गिणी, हर्षचरित, विक्रमाङ्कदेव चरित, पृथ्वीराज विजय, प्रबन्धकोष, कान्हड़दे, प्रबन्ध, कलबलिनाडपट्ट आदि उनमें केवल मुख्य मुख्य हैं। हिन्दीके पृथ्वीराज रासोका कुछ महत्व नहीं है। विंसेंट स्मिथने लिखा है कि चन्दवरदाईके वंशजके पास रासोकी मूल प्रति मौजूद है, सो सब गप्प है।

A. Weber—The History of Indian Literature.

A. Barth—The Religions of India.

M. Monier Williams—Indian wisdom.

Do —Religious Thought and life in India

Ragozin—Vedic India (The story of the Nations Series.)

(पुरानी हो गई और अप्राप्य; वैदिक सभ्यताका दिग्दर्शन)।

V. S Dalal—History of India vol 1.

श्रीयुत दलालने पौराणिक और वैदिक साहित्यके आधारपर प्राङ्मौर्य कालका राजनीतिक इतिहास तैयार करनेका यत्न किया है। दूसरे लेखकोंकी पुस्तकोंमें केवल सभ्यताका इतिहास होता है। समयके विषयमें दलाल महाशय लोक० तिलकके अनुयायी हैं। खेद है कि ग्रन्थका पहला ही खण्ड समाप्त करनेपर उनका देहान्त हो गया।

मिश्र-बन्धु—भारतवर्षका इतिहास, प्रथम भाग।

मिश्र-बन्धुओंने भी श्रीयुत दलालके समान यत्न किया है।

उन्होंने स्वतन्त्ररूपसे पौराणिक वंशावलियोंके आधारपर ही काल-निर्णय करनेका यत्न किया है। उनका कथन है कि उनका परिणाम लोकमान्य तिलकके ज्योतिषसे निकाले हुए परिणामसे मिलता है।

C. V. Vaidya—Epic India.

Do ,—महाभारत मीमांसा (मराठी और हिन्दीमें)

N. B. Pavagee—Self Government in Vedic and Past Vedic Periods.

F. E. Pargiter—The Puranic Text of the Dynasties of the Kali Age.

(महाभारतकी लड़ाईके पीछेके पौराणिक राजवंशोंकी छानबीन।)

H. K. Deb—Udayana Vatsaraja.

H. Kern—Manual of Indian Buddhism (Grund, D Indo ar. Phil.)

Oldenberg—The Buddha (Eng, trans, by Holy).

Rockhill—Life of the Buddha—(तिब्बती साहित्यके आधारपर)।

T. W. Rhys Davids—American Lectures on Buddhism

,, —Buddhist India (Story of the Nation)

Mrs Sinclair Stevenson—The Heart of Jainism,

Barodia—History and Literature of Jainism.

पूर्णचन्द नाहर और कृष्णचन्द्र घोष—An Epitom of Jainism

L. D. Barnest—Antiquities of India.

R. C. Dutta—History of Civilizaton in Ancient India,

S. Krishnaswami Aiyangar—Hindu India from original sources (प्रथम भागका सम्बन्ध वैदिक कालसे है।)

R. Shamshastry—The Evolution of Indian Polity,

(वैदिक कालसे मौर्य कालतक। क्षत्रियोंकी उत्पत्तिके विषयमें शास्त्री महोदयका विचित्र सिद्धान्त है।)

R. Shamshastry The Evolution of Caste.

S. V. ketkar—History of Caste in India.

राजेन्द्रलाल मित्र—(Indo Aryans) वैदिक और उत्तर-वैदिक सभ्यताके अनेक अङ्गोंपर प्रकाश डालती है।

D. R. Bhandarkar—Carmichael Lectures, 1918.

(६५० ई० पू० से ३२५ ई० पू० तकका इतिहास)।

E. B. Havell—History of Aryan Rule in India. यह पुस्तक अकबरके समयतकका वर्णन करती है। पहले तीन अध्यायोंमें प्राङ्मौर्य कालकी सभ्यताका निरीक्षण है।

N. S. Subba Rao—Economic and Political Condition in Ancient India. जातकोंके आधारपर।

E. G Rapson—Ancient India.

यह शकोंके समय तकका (लगभग सन् ५० ई० तकका) संक्षिप्त इतिहास है। वैदिक और बौद्धकालका केवल सभ्यताका इतिहास है। भारतवर्षके इतिहासमें पहली राजनीतिक घटना जिसका रैपसन महाशयने उल्लेख किया है वह भारतपर पारसियों और सिकन्दरकी चढ़ाई है। इसके मुकाबलेमें दलालकी पूर्वोक्त पुस्तक देखनी चाहिये। भारतीय सभ्यताके इतिहासके विषयमें रेपसन महाशयके जो विचार हैं उनका मुंहतोड़ उत्तर राधाकुमुद मुकर्जीने अपनी पुस्तक "फण्डे मेण्टल यूनिटी आव इण्डिया" में दिया है। उसके अन्तमें प्राचीन भारतके भौगोलिक नामोंकी एक सूची है।

Cambridge History of India vol I.

यूरोप और अमरीकाके चौदह प्रामाणिक विद्वानोंने इस पुस्तकके भिन्न भिन्न भाग लिखे हैं और रेपसनने उनका सम्पादन

किया है। वस्तुतः इसे रेपसनकी उक्त पुस्तकका बड़ा संस्करण कहना अनुचित न होगा।

यह भारतीय खोजका विस्तृत विवरण है। पुस्तकके अन्तमें एक विस्तृत ग्रन्थ-सूची (Bibliography) है। परन्तु उसमें तिलकके Orion और ArcticHome एवं राधाकुमुद मुकर्जीकी उपर्युक्त पुस्तक और ऐसे ही अन्य ग्रन्थोंका नाम न देखकर आश्चर्य होता है।

आर्योंके आदि स्थानके विषयमें इसमें एक नया सिद्धान्त प्रतिपादित किया गया है। इस सिद्धान्तके अनुसार आरम्भिक आर्योंमें प्रसिद्ध वनस्पतियोंके आधारपर, आर्योंका मूल-स्थान डेन्यूबकी घाटी निश्चित किया गया है। आर्यलोगोंके लिये भी एक नया नाम प्रस्तावित किया गया है। पर लेखकोंने उस नामका वा उन वनस्पतियोंके नामोंका वैदिक रूप बतला देनेका कष्ट उठानेकी आवश्यकता नहीं समझी।

रामचन्द्र मोजमदार—Corporate Life in Ancient India, बहुत उपयोगी पुस्तक। प्राचीन भारतकी आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक और सामाजिक संस्थाओंपर अनुपम ग्रंथ। इसका सम्बन्ध सारे हिन्दू-कालसे है। परन्तु प्रत्येक अध्यायके आरम्भका भाग प्राङ्मौर्य कालका वर्णन करता है।

इन पुस्तकोंके अतिरिक्त विद्वानोंकी बहुतसी खोज पुरातत्त्व-सम्बन्धी पत्रिकाओं आदिमें बिखरी पड़ी है। जर्मन भाषामें वैदिक खोज सम्बन्धी साहित्य बहुत है।

वैदिक साहित्यमेंसे वेदों, ब्राह्मणों, उपनिषदों और सूत्रोंके एक बड़े अंशका संस्करण और अनुवाद हो चुका है। विद्वानोंकी बहुत सी खोज जिसका उल्लेख यहां नहीं किया गया है इन संस्करणोंकी भूमिकाओं और टिप्पणियों आदिमें बिखरी हुई है।

पौराणिक साहित्य (रामायण, महाभारत, पुराण) के ऐतिहासिक अंशोंका कुछ विवेचन हुआ तो है पर बहुत कम। इसका महत्व बहुत कम माना गया है। सौरनसेनने महाभारतके नामोंकी एक सूची तैयार की है। पार्जीटरने मार्कण्डेय पुराणका अनुवाद किया है। इसकी टिप्पणियां भौगोलिक खोजके लिये बहुत उपयोगी हैं। उनकी दूसरी पुस्तकका उल्लेख हो चुका है।

बौद्ध त्रिपिटक और जातकोंके एवं दीपवंश और महावंशके संस्करण और अनुवाद हो चुके हैं। जातकोंकी कहानियोंमें प्राचीन भारतीय समाजका सजीव चित्रण है। पालीटेक्स्ट सोसाइटी भी अन्य बौद्ध ग्रन्थोंका सम्पादन और अनुवाद करा रही है। जैन-सूत्रोंके संस्करण और अनुवाद भी प्रकाशित हो चुके हैं।

नवीन संस्कृतके साहित्यमेंसे इस कालसे सम्बन्ध रखनेवाला भासका "स्वप्न वासवदत्तम्" नामका ऐतिहासिक नाटक है। वह बुद्ध भगवान्‌के समयके राजाओंका वर्णन करता है। यह नाटक त्रिवेन्द्रम्‌संस्कृत सीरीजमें प्रकाशित हो चुका है।

आर्य्योंकी प्राचीनतम सभ्यताका पता भिन्न भिन्न आर्य्य-जातियोंकी भाषाओं, मतों, देवमालाओं और रीति-नीतिके तुलनात्मक अध्ययनसे लगता है। इस सम्बन्धमें भी विस्तृत साहित्य विद्यमान है जिसका उल्लेख हमारी इस सूचीमें नहीं हो सकता था। एक अमरीकन विद्वान डोएन(Doane)ने "Bible Myths and thier Parallels in other Religions" नामकी पुस्तकमें सब देशोंकी प्राचीन गाथाओंका बड़ा मनोरञ्जक संग्रह किया है और भारतीय गाथाओंसे उनका सम्बन्ध दिखलाया है।

प्राङ्मौर्य. कालमें भी भारतवर्षका सुमेर, आकाद, मिस्र,

बाबुल, खाल्डिया, असीरिया, ईरान और चीन आदिकी जातियोंसे व्यापारिक और अन्य प्रकारका सम्बन्ध था। पश्चिमी एशियाके शिलालेखोंमें वैदिक देवताओंके नाम मिले हैं। लोकमान्य तिलकने अपने अन्तिम लेखमें अथर्ववेदपर खाल्डियन प्रभाव दिखलाया था। इन दोनोंके ऐतिहासिक अवशेष भी प्राचीन भारतके इतिहासपर प्रकाश डालते हैं। इस क्षेत्रमें बहुत सी आधुनिक खोज हो चुकी है। इसका उल्लेख हमने ऊपर दी हुई पुस्तक-सूचीमें नहीं किया। पाठकोंको सुलभ रूपमें यह "हाल' महाशयकी 'Ancient History of the Near East' में अथवा रालिनसनकी 'Five great monarchies' या अन्य ऐसी ही पुस्तकोंमें मिल सकेगी।

स्वयं भारतवर्षमें प्राङ् मौर्य कालके बहुत कम अवशेष हैं। जो पत्थरके औजार मिले हैं उनसे आरम्भिक अनार्य जातियोंकी सभ्यताका कुछ पता चलता है। तांबेके कुछ औजार मिले हैं जिनका सम्बन्ध आर्योंसे होना भी असम्भव नहीं है। हालमें ही प्रो० डुब्रियलने दक्षिण भारतके वैदिक स्तूपोंका वर्णन प्रकाशित किया है। कलकत्ता और मथुरा म्यूजियममें तीन बड़ी मूर्त्तियां हैं जो मौर्यकालमें बनी हुई यक्षोंकी मूर्त्तियां समझी जाती थीं। श्रीकाशीप्रसाद जायसवालने उन्हें शैशुनाग राजाओंकी मौर्य-कालसे पहलेकी मूर्त्तियां सिद्ध किया है। मौर्योंसे पहलेके केवल दो समझनेके योग्य छोटे शिलालेख मिले हैं। जो सिक्के मिलते हैं उनपर कुछ लिखा नहीं होता, केवल कई चिह्न बने होते हैं।

विदेशी साहित्य भी इस कालका बहुत है। ग्रीक और लातीनी लेखकोंकी पुस्तकोंमें भारतवर्षके विषयमें जो कुछ है उसका संग्रह मक क्रिण्डल महाशयने किया है। मगस्थनीज़-के लेखोंके जो टुकड़े मिले हैं उनका श्वानबेकने संग्रह किया है।

मक क्रिण्डलने उनका अंगरेजी अनुवाद 'Indica of Megasthenes and Aryan' नामसे प्रकाशित किया है। मक क्रिण्डल के अन्य ग्रंथ ये हैं--Ancient India Its Invasion by Alexander the Great etc. Ancient India as described by Ptolemy—by Ktesias Classical writers.

पहली शताब्दीमें एक लातीनी व्यापारी भारतवर्षमें आया था। उसकी अत्यन्त उपयोगी पुस्तकका अनुवाद Schoff ने Periplus of the Erythrean Sea के नामसे किया है। भारतवर्षके उस समयके व्यापारका उसमें पूरा वर्णन है।

चीनी यात्रियोंके ग्रन्थोंमेंसे फाहियानका सबसे उत्तम अनुवाद Legge का किया हुआ है। हिन्दीमें जगन्मोहन वर्म्माने फाहियान और सुङ्गयुनका चीनी भाषासे नया अनुवाद किया है। इत्सिङ्ग*का अनुवाद अंगरेजीमें डाकृर ताकाकुसुने किया है। वेटर्सने यूअनच्वाङ्गके भ्रमण-वृत्तान्तका अनुवाद दो भागोंमें Yuan Chwangs Travelsके नामसे किया है। उसीकी यात्रा और जीवन-चरितका तथा सुंयुनके भ्रमण-वृत्तान्तका अनुवाद सेम्यूएल बीलने Siyuki or the Buddhist Records of the Western World और Life of HieuneTsang. के नामसे किया है। सोलहवीं शताब्दीमें तारानाथ नामके एक भारतीय बौद्ध भिक्षुने तिब्बती भाषामें बौद्ध धर्म्मका इतिहास लिखा था। उसका जर्मन अनुवाद हो चुका है। चीनी ऐतिहासिकोंके ग्रन्थोंसे भारतीय इतिहासपर अभी और प्रकाश पड़ सकता है। फ्रेंच विद्वानोंने इस सम्बन्धमें अच्छा काम किया है। प्राचीन खुतन और तुर्किस्तानसे ब्राह्मी और खरोष्ठी लिपि-

*—इसका हिन्दी-अनुवाद मैं कर चुका हूं। पर वह अभी प्रकाशित नहीं हो सका—दबाराम।

में लिखे हुए संस्कृतके ग्रन्थ और शिला-लेख मिले हैं। कर्नल बावरको सबसे पहले पुस्तक मिलनेके बाद जर्मनों, फ्रांसीसियों और अंगरेजोंकी कुछ मण्डलियां तुर्किस्तानका निरीक्षण कर चुकी हैं। कर्नल बावरकी पुस्तक Archaelogical Survey of India में निकल चुकी है। उसमें उन सब अन्वेषणोंका इतिहास भी है। डाक्टर स्टाइनने Ancient Khotan और Explorations in Eastern Turkistan नामकी पुस्तकें लिखी हैं। तीन अंगरेज विद्वानोंने अभी Kharoshthi Inscriptions Discovered by Sir A. M. Stein in Chinese Turkistan नामकी पुस्तक प्रकाशित की है।

जावा और बाली आदि द्वीपोंमें भी भारतीय सभ्यताका अच्छा प्रचार हुआ था। वहांसे संस्कृतकी पुस्तकें मिली हैं।

मुसलमान यात्रियोंमेंसे अलबेरूनी*का नाम प्रसिद्ध है। जाशोने उसकी पुस्तकका जर्मन और अंगरेजीमें अनुवाद किया है। सिंधमें अरबोंका राज्य स्थापित होनेपर अनेक अरब यात्रियोंने दक्षिण भारतकी यात्रा की और वहांका वृत्तान्त लिखा। उनका अनुवाद इलियटकी History of India as told by its own Historians के पहले दो खण्डोंमें मिलेगा। हालमें सुलेमान सौदागरके यात्रा-विवरणका अरबीसे हिन्दीमें अनुवाद काशी नागरी प्रचारिणी सभाने प्रकाशित किया है।

शिलालेख सहस्रोंकी संख्यामें निकल चुके हैं। वे अनेक पत्रिकाओंमें विशेष करके Epigraphical India में प्रकाशित होते हैं। ४०० ईसवीसे पहलेके लेखोंकी एक सूची लूडर्सने और बादको कीलहार्नने बनाई थी।

---

* —इसके ८० परिच्छेदोंमेंसे ४८ का हिन्दी-अनुवाद मैं कर चुका हूं। वह इंडियन प्रेस, प्रयागने प्रकाशित किया है—सन्तराम।

अशोकके शिलालेखोंका अच्छा संग्रह Mr. Senart का किया हुआ Le Inscription De Priadarsi नामसे है। इसका अनुवाद Indian Antiquary में डाक्टर ग्रीयर्सनने किया है। कनिङ्घमका संग्रह Corpus Inscriptionum Indicarum vol. I पुराना हो गया है। अशोकके भिन्न भिन्न शिलालेखोंके Epigraphia Indica में जो संस्करण हैं वे अधिक पूर्ण शुद्ध हैं। पण्डित रामावतार शर्म्माने "अशोक प्रशस्तयः" नामसे एक संग्रह निकाला है और नागरी प्रचारिणी पत्रिकामें भी उनका नया संस्करण हो रहा है। पर इनमें लेखोंके फोटो नहीं हैं। गत यूरोपीय युद्धके पहले जर्मन विद्वान डाक्टर हलश (Hultysch) को अशोकके शिलालेखोंका नया संग्रह प्रकाशित करनेका काम दिया गया था। पर युद्ध छिड़ जानेसे वह बीचमें ही रह गया। अशोकका मस्कीका लेख जो पीछे मिला है और जिसमें उसका नाम भी है Hyderabad Arch. Sur. की ओरसे प्रकाशित हुआ है।

मौर्य और गुप्तोंके बीचके शिलालेखोंको Corpus Inscriptionum Indicarum के दूसरे खण्डमें निकालनेका प्रस्ताव बहुत पुराना है। वह अभीतक पूर्ण नहीं हुआ। ये लेख Apigraphical Indica में और Arch. Sur. India में प्रकाशित हुए हैं।

गुप्तोंके लेखोंका संग्रह फ्लीटने Corpus Inscriptionum Indcarum vol. 3 में किया था। उसके पीछेके मिले हुए लेख Epigraphia Indica और Arch Survey में प्रकाशित हुए हैं।

पीछेके समयके लेख Epigraphia Indica और अन्य पत्रोंमें निकले हैं। दक्षिणी भारतवर्षके लेखोंका संग्रह हलश वेङ्कय्य और कृष्ण शास्त्रीने South Indian Inscriptions के

तीन भागोंमें प्रकाशित किया है। बङ्गालके लेप वरेन्द्र रीसर्च सोसायटीने 'गौड़ लेखमाला' नामके संग्रहमें निकाले हैं। राईसने इसी प्रकार मैसूरके लेखोंका संग्रह किया है। कर्नाटक और लंकाके लेख Epigraphia Carnatica और Epigraphia Zeylonica में प्रकाशित होते रहे हैं और कई शिला-लेखोंके संग्रह निकल चुके हैं और निकल रहे हैं, जैसे भवनगर Inscriptions, जैन लेख-संग्रह, जोधपुरके शिला लेखोंका संग्रह इत्यादि।

प्राचीन सिक्कोंसे भी भारतीय इतिहासकी बड़ी खोज हुई है। इन सिक्कोंका वर्णन भारतीय खोजकी पत्रिकाओंके सिवा Numsimatic Chronicle आदिमें भी निकला करता है। मुख्य मुख्य म्यूजियमोंके सिक्कोंके चित्र और लेखादि शृङ्खलाबद्ध संग्रहोंमें प्रकाशित हो चुके हैं। उनमेंसे मुख्य मुख्यके नाम आगे दिये जाते हैं—

1—A catalogue of the Indian coins in the British Museum; Catlogue of the coins of the Andhra Dynasty, The Western Kshatrapas, the Traikuta Dynasty and Bodhi Dynasty by E. J. Rapson.

2—A catlogue of the coins in the British Museum; The coins of the Greek and Scythic kings of Bactria and India by Percy Gardner.

3—A catalogue of the coins in the British Museum, Catalogue of the coins of the Gupta Dynasty and of Sasanka king of Gouda by John Allan.

4—A catalogue of coins in the Indian Museum Calcutta including the cabinet of the Asiatic Society of Bengal volume 1. by V. A. Smith. पहले

खण्डका सम्बन्ध प्राचीन भारतीय सिक्कोंसे है। उसके पीछेके खण्डोंमें मुसलमानी कालके सिक्कोंका वर्णन है।

5—Catalogue of the coins in the Panjab museum, Lahore volume. 1. Indo-Greek coins by R. A. Whitehead.

(पीछेके भागोंका सम्बन्ध मुसलमान कालके साथ है)।

6—Coins of Ancient India From the Earliest Times Down to the Seventh Century A. D. by A. Cunningham.

7—Coins of Mediaeval India. by A. cunningham.

8—Coins of the Indo-Scythians by A. Cunningham.

9—Coins of the later Indo-Scythians. by A. Cunningham.

मन्दिरों, स्तूपों, मूर्त्तियों और अन्य प्राचीन शिल्प पदार्थोंके अवशेष भी प्राचीन इतिहासको जोड़नेमें सहायक हुए हैं। इनके विषयका साहित्य बहुत विस्तृत है। कुछ पुस्तकोंके नाम चौथी सूचीमें दिये गये हैं। कनिङ्घमने Archaeological Survey of India की रिपोर्ट २३ भागोंमें लिखी है। उनका जनरल इण्डेक्स विंसेंट आर्थर स्मिथने बनाया है। सन् १९०२-३ से प्रतिवर्ष Archaeological Survey की वार्षिक रिपोर्ट फिर निकल रही है। भिन्न भिन्न म्यूजियमोंकी रिपोर्टोंसे लगातार होती रहनेवाली उन्नतिका पता लगता रहता है। इसके सिवा बीसियों स्वतन्त्र ग्रन्थ इस विषयपर प्रकाशित हो चुके हैं और हुआ करते हैं।

४ सभ्यताका इतिहास

रमेशचन्द्र दत्त—History of Civilization in Ancient India.

रमेशचन्द्र मोजमदार-Corporate Life in Ancient India

राधाकुमुद मुकर्जी—A History of Indian Shipping and Maritine Activity.

—Local Government in Ancient India.

—Nationolism in Hindu Culture.

नरेन्द्रनाथ ला—Some Aspets of Ancient Indian Polity.

—Studies in Ancient Hindu Polity. कौटिल्य अर्थशास्त्रकी छानबीन।

प्रमथनाथ बनर्जी—Public Administration in Ancient India.

K. V. Rangaswami Aiyangar—Considerations on Some Aspects of Ancient Indian Polity.

Srinivas Aiyangar—Tamil Studies.

V. K. Pillai—Tamils Eighteen Hundred Years Ago. यह उपयोगी पुस्तक अब दुर्लभ है।

काशीप्रसाद जायसवाल—हिन्दू राज्य-शास्त्र। ये महत्वपूर्ण लेख भागलपुर हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनमें पढ़े गये और फिर पाटलिपुत्र नामक पत्रमें प्रकाशित हुए हैं। सन्१९१३ ई०के माडर्न रीव्यूमें उनका अनुवाद छपा था। प्राचीन भारतीय गणोंपर पहले पहल इन्होंने प्रकाश डाला था।

विनयकुमार सरकार—Positive Background of Hindu Socialogy. शुक्रनीतिके आधारपर।

—Hindu Achievement in Exact Science.
बजेन्द्रनाथ सील—Positive Sciences of the Hindus.
P. C. Ray—History of Hindu Chemistry.
शङ्कर बालकृष्ण दीक्षित—भारतीय ज्योतिष शास्त्र (मराठी)
सुधाकर द्विवेदी—गणकतरङ्गिणी।
गौरीशंकर हीराचन्द ओझा--प्राचीन भारतीय लिपिमाला।
G. Buhler—Indische Palaeographic
अंग्रेजी अनुवाद Indian Antiquary में प्लेटें जर्मन पुस्तकके प्रकाशकोंसे मिलती हैं।)
ट० गोपीनाथ राव—Indian Geography.
R. D. Banerjee —प्राचीन भारतीय मुद्रा (बंगला)। हिन्दी अनुवाद छपनेको है।
E. J. Rapson.—Indian Coins (Grund de. Indo ar Phil)
गौराङ्ग नाथ वन्द्योपाध्याय—Hellenism in Ancient India.
H. G. Rawlinson.—Intercourse between India and the Western India
J. Ferguson and Burgess—Cave Temples of India.
V. A. Smith.—History of Fine Arts in India and Ceylon.
E. B. Hovell—Indian Sculpture and Painting
—A Handbook of Indian Art.
G. J. Dubreiul—Dravidian Architecture
—Pallava paintings

J. Burgess—Indian Architecture. (being Chaps. of the Imp. Gaz. vol 2)

V. A. Smith.—Archaeology of the Historical Period (being Chap. III of the Imp Gaz. vol. 2),

A Grunwedel—Buddhist Art in India.

A Foucher—Beginnings of Buddhist Art and other Essays

J. Griffith—Ajanta Paintings

P C. Venkataram Aiyar—Town Planning in Ancient India.

A. A. Macdonnel—History of Sanscrit Literature

M. Krishnamacharya—History of Classical Sanscrit Literature.

राजेन्द्रलाल मित्र—Indo-Aryans.

बालगंगाधर तिलक—गीता रहस्य (मराठी और हिन्दीमें)

पुनश्चः ऊपरकी सूची गत जुलाई मासमें तैयार की गई थी। उसके पीछे हमें तीन महत्वपूर्ण पुस्तकें देखनेको मिली हैं :—

1—F. E. Pargiter.—Ancient India Historical Traditions. श्रीयुत दलालके "इतिहास" के सम्बन्धमें जो टिप्पणी हम ऊपर दे आये हैं वह इस पुस्तकपर और भी अधिकांश में चरितार्थ होती थी। यह तीस वर्षके घोर परिश्रमका फल है इस पुस्तकमें पुराणोंकी साक्षीकी वैज्ञानिक रीतिसे छानबीन करके प्राङ्मौर्यकालका इतिहास दिया गया है। स्वतन्त्र खोजसे ग्रन्थकार इस परिणामपर पहुंचा है कि ईसाके १६००

वर्ष पूर्व आर्य लोग भारतवर्षसे चलकर ईरानमें और आगे पश्चिममें जा बसे, न कि वे उत्तर-पश्चिमसे भारतमें आये।

2—D. R. Bhandarkar—Charmichael Lectures 1921.

इन व्याख्यानोंमें भारतीय मुद्राविद्याका वर्णन है। ग्रन्थकार-ने भारतमें वैदिक कालमें भी सिक्कोंका होना सिद्ध किया है। इस प्रकार उसने इस सिद्धान्तका खण्डन कर दिया है कि मुद्रा बनानेकी कला भारतमें ईसाके पूर्व सातवीं या आठवीं शताब्दीमें पश्चिमी एशियासे लाई गई थी।

3—विनयकुमार सरकार—Political institutions and Theorios of the Hindus.

टिप्पण—इस ग्रंथ-सूचीको तैयार करते समय मेरे मनमें हिन्दी और उर्दू पाठकों और विशेषतः हिन्दी पाठकोंका ध्यान रहा है, क्योंकि जहां तक मुझे मालूम है इसके पहले उर्दूमें प्राचीन भारतीय इतिहासपर कोई भी नाम लेने योग्य ग्रन्थ मौजूद नहीं। इसलिये इसमें बहुतसी बातें ऐसी हैं जो अंगरेजी जाननेवाले पाठकोंको बहुत साधारण जान पड़ेंगी। मुझे यह ख्यालतक भी न था कि इसका अंगरेजीमें अनुवाद किया जायगा। ज० चं०)।